नैषधीयचरित में रस-योजना

(नैषधीयचरित का समीक्षात्मक अध्ययन)

डॉ० रविदत्त पाण्डेय,
साहित्याचार्य, एम० ए० (संस्कृत), पी-एच० डी०

समपणम्

जननी-मोहनी-प्रीत्यै विश्वेश्वर-पितुर्मुदे ।
नयो पुर समीक्षेय नैपधस्य समर्प्यते ॥

शुभाशसनम्

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरं कवि
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफलं काव्य परं नैषधम्।
शृङ्गारामृतशीतगोरभिनवोन्मेषा समाख्यामिमा-
मन्तश्चेतसि भावयन्तु सुमनसां प्रीतिं समुन्मीलतु ॥

आलोच्य महाकाव्य के असंख्य उदाहरणों द्वारा पर्याप्त योग्यता एवं परिश्रम से की गई है। शृंगार की दसों अवस्थाओं का नायिका दमयन्ती में चित्रण लेखक की सूक्ष्म दृष्टि को व्यक्त करता है। करुण रस में कालिदास (मेघदूत) एवं जायसी (पद्मावत) का तुलनात्मक उद्धरण सटीक बैठता है। आलोच्य महाकाव्य के उदाहरणों में सभी रसों का परिपाक निरूपण करने में लेखक सफल है। ग्रन्थ के शेष भाग में महाकाव्य के अन्य अंगों-तत्त्वों की भी विस्तृत विवेचना तथा अन्त में महाकवि श्रीहर्ष का जीवनवृत्त एवं नैषधीयचरित का विविध दृष्टिकोणीय महत्त्व प्रदर्शित कर उपसंहार किया गया है। आशा है कि श्री पाण्डेय जी की यह मनोयोगपूर्ण कृति संस्कृत प्रेमियों को रुचिकर लगेगी।

डॉ० भक्तराम पाराशर

प्रथम खण्ड के बारे में सम्मतियाँ

डॉ० नगेन्द्र
आचार्य हिन्दी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
दिनांक ११-१०-७६

'नैषधीयचरित में रस-योजना' ग्रन्थ का प्रथम खण्ड 'रस-योजना' लेखक के विस्तृत अध्ययन एवं आलोचन-क्षमता का परिचायक है। लेखक ने संस्कृत के प्रतिनिधि आचार्यों के अतिरिक्त हिन्दी के मान्य विद्वानों के मन्तव्यों का भी अवधानपूर्वक अध्ययन एवं परामर्श करने के बाद अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं जो उनकी स्वतन्त्र चिन्तना-शक्ति के प्रमाण हैं। मुझे आशा है कि रसशास्त्र के जिज्ञासु अध्येता रुचिपूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे।

❁

इन ११६ पृष्ठों में साहित्याचार्यों के प्रिय विषय 'रस' पर भरत (नाट्य-शास्त्र), अभिनवगुप्त (ना० शा० टीका), धनंजय (दशरूपक), आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोक), मम्मट (काव्यप्रकाश) पण्डितराज जगन्नाथ (रसगंगाधर) तथा विश्वनाथ (साहित्यदर्पण) के प्रामाणिक प्रमाणों एवं उद्धरणों से प्रकाश डालते हुए अपनी समीक्षा का सन्निवेश किया गया है। आधुनिक एवं बहुचर्चित विषय 'साधारणीकरण' पर वर्तमान साहित्य मनीषी डॉ० नगेन्द्र की मान्यता एवं नवीन उद्भावना से असहमति प्रकट की गई है तथा अपने मत की स्थापना की गई है। लेखक ने भरत, अभिनवगुप्त एवं मम्मट का पक्ष ही सर्वत्र प्रामाणिक स्वीकार किया है।

डॉ० भक्तराम पाराशर

दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली (१८-६-७६) से साभार उद्धृत।

आत्म-निवेदन

नैषधीयचरित संस्कृत साहित्य का एक विशिष्ट महाकाव्य है। प्राचीन तथा अर्वाचीन अनेक कृती विद्वानों ने इस महाकाव्य का मर्म प्रकाशित करने का प्रयास किया है। लगभग पचास संस्कृत टीकाओं का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार आधुनिक भाषाओं में भी इस का अनुवाद हो चुका है

नैषधीयचरित के कुछ विवेचकों ने संस्कृत साहित्य में इस महाकाव्य तथा इसके रचयिता श्रीहर्ष का महत्त्व निर्धारित करने में भी रुचि प्रदर्शित की है। इस महाकाव्य को बृहत्त्रयी में सर्वश्रेष्ठ स्थान का भागी तक माना गया है

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ।

परन्तु इस प्रकार की उक्तियां नैषधीयचरित तथा श्रीहर्ष के महत्त्व की ओर संकेत मात्र करती हैं नैषध के सौन्दर्य को सर्वजनसंवेद्य नहीं बनातीं। टीकाकारों का प्रधान लक्ष्य पदयोजना करना होता है अतः उनसे भी वैसी अपेक्षा नहीं की जा सकती।

नैषधीयचरित पर कुछ आधुनिक शोधप्रबन्ध भी प्रकाश में आ चुके हैं। डॉ० ए० एन० जानी के "क्रिटिकल स्टडी आफ श्रीहर्षाज नैषधीयचरितम्' नामक शोध-प्रबन्ध में नैषधीयचरित तथा श्रीहर्ष से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालने के साथ साथ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अध्ययन को भी समाविष्ट करने का प्रयास किया है (मायर्स प्रीफेस पृ० १०)। इसी प्रकार डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने अपने शोध प्रबन्ध 'नैषधपरिशीलन' में प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार नैषधीयचरित की समीक्षा करने के लिए प्रयत्नशील होते हुए भी श्रीहर्ष तथा नैषधीयचरित की अनेकरूप विशेषताओं को आत्मसात् कर लिया है। फलतः उपर्युक्त दोनों शोध-प्रबन्धों में भी नैषधीयचरित के अन्तरङ्ग अर्थात् रस-योजना की समीक्षा के लिए यथेष्ट अवकाश नहीं प्राप्त हो सका है।

काव्यकार यदि वह अपने को तथाकथित नया कवि नहीं समझता है अथवा विश्राभिनिवेशी नहीं होता है तो ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से अपनी कृति में रस-योजना के प्रति अवश्य सावधान रहता है। काव्यशास्त्र-जगत् में भी रसात्मक अभिनिवेश को ही कवि का मुख्य कर्तव्य स्वीकार किया गया है

वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम् ।
रसादिविषयेणैतत्कर्म मुख्यं महाकवेः ॥ ध्व० ३-८८ ।

अत किसी महाकाव्य की अनेकरूप गवेषणाओ मे कवि के मुख्य कर्म अर्थात् रस योजना की दृष्टि से की गई किसी काव्य की समीक्षा का वैशिष्ट्य स्वयसिद्ध है। नैषधीयचरित मे रस योजना शीर्षक प्रस्तुत प्रबन्ध इसी दिशा में किया गया एक नूतन विनम्र प्रयास है।

रचयिता के द्वारा रचना के अन्तर्गत प्रतिज्ञात तथा निर्वाहित अर्थो के उपकारक तत्त्वो के परिप्रेक्ष्य मे यदि उस रचना की समीक्षा की जाती है तो वह औचित्यपूर्ण एव असदिग्ध रहती है। अत नैषधीयचरित की प्रस्तुत रस-योजनात्मक समीक्षा मे रसात्मकता के उपायभूत विभिन्न तत्त्वो की पृष्ठभूमि मे ही प्रधान रूप से नैषधगत रसादिको की विशिष्टता तथा तात्त्विकता का निर्धारण किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेचन निकष अर्थात् रस अनेको काव्यात्म-तत्त्व-चिन्तको का प्रधान विवेच्य विषय रहा है। अनेकों प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्यात्म-तत्त्व-मीमासको ने काव्य के इस प्राणभूत तत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया है। परन्तु नैषधीयचरित की प्रस्तुत रस-योजनात्मक समीक्षा मे प्रधान रूप से अभिनव तथा अभिनव के द्वारा अनुगत एव अभिनव के अनुगामी विवेचकों के विभिन्न निर्देशो को ही आधार बनाया गया है। अभिनव श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती थे। नैषधीयचरित मे अनुगमन भी भरत, आनन्दवर्धन तथा अभिनव का किया गया है और नैषधीयचरित की रसवत्ता का सत्यापन भी अभिनव की कर्मभूमि अर्थात् कश्मीर मे हुआ था, ऐसी जनश्रुति है। इसके साथ-साथ यह एक अनुभूत सत्य है कि अभिनव ने प्राक्तन काव्य-तत्त्वमीमासको एव व्याख्याकारों की मान्यताओं का समाहार कर भरत के रससूत्र एव सूक्ष्म निर्देशो के आधार पर जिस रस-सिद्धान्त की स्थापना की है, अनेक वैमत्यो के होते हुए भी परवर्ती काव्यशास्त्रीय जगत मे उसे सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। अत नैषधीयचरित की प्रस्तुत रस योजनात्मक समीक्षा मे स्वीकृत अभिनववादि के निर्देशो का आधार औचित्ययुक्त एव वाछनीय ही है।

प्रबन्ध को दो खण्डों तथा छ अध्यायों मे विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड के रस-योजना नामक प्रथम अध्याय मे विभावादिक रस तत्त्वों के स्वरूप, भेदोपभेद तथा उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए सामाजिकगत रसानुभूति मे विभावादिकों के योगदान पर दृष्टिपात किया गया है और अन्त मे रस-स्वरूप, रसो की उत्पाद्योत्पादकता, रसादिको की अगागिभावता, काव्य की आत्मा—रस, वस्तु तथा अलकार, रस-भेदों तथा भावादिकों के स्वरूप आदि पर विचार विमर्श किया गया है। अध्याय मे सकलित सामग्री प्रस्तुतीकरण-मूलक मौलिकता से पूर्ण एव तटस्थ दृष्टि से पुनरीक्षित होने के साथ-साथ नैषधीयचरित की रस-योजनात्मक समीक्षा मे तुला का कार्य करती है।

नैषधीयचरित-समीक्षा नामक द्वितीय खण्ड के शृंगार-योजना शीर्षक द्वितीय अध्याय में नैषधगत अगी शृगार रस के विभिन्न भेदोपभेदो का आकलन कर उनकी समीक्षा की गई है।

अग-रस-योजना नामक तृतीय अध्याय मे शृगारेतर अग रसो का सग्रह किया गया है। इस अध्याय में शृगार-रसेतर हास्यादि सभी रसो की नैषधीयचरितगत योजना पर प्रकाश डालने के साथ-साथ विभिन्न सन्दर्भो की शृगार-रसागता का प्रदर्शन भी किया गया है।

भावादि-योजना शीर्षक चतुर्थ अध्याय मे नैषधीयचरितगत भाव, रसाभास, भावाभास, तथा भावशान्त्यादिको की योजना तथा उनकी शृगारागता पर विहगम दृष्टिपात किया गया है।

पचम अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है नैषधीयचरितगत व्यजक-योजना। इस अध्याय मे नैषधीयचरित की भाषा के अङ्ग—वर्ण, पदावयव, पद, वाक्य तथा सघटनादिको की योजना पर प्रकाश डालने के उपरान्त नैषधगत प्रबन्ध व्यजको की विशद समीक्षा की गई है। नैषधीयचरित की भाषा, नल की नायकता, नल-दमयन्ती-प्रकृति, दमयन्तीगत सात्त्विकालकार, महाभारत तथा नैषध के कथानक की तुलना, नैषधगत सन्धिया एव सन्ध्यग, विभिन्न रसो का निबन्धन तथा अलकार-योजना आदि इस अध्याय के प्रमुख विवेच्य विषय हैं।

अन्तिम उपसहार नामक षष्ठ अध्याय मे नैषधीयचरितगत विरुद्ध रसो के समावेश तथा उसके साहित्यिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एव सास्कृतिक महत्त्व पर दृष्टिपात करने के साथ-साथ नैषधगत दोषो एव नैषधीय-चरित की पूर्णता की समीक्षा की गई है। अन्त मे एक परिशिष्ट मे श्रीहर्ष का वैयक्तिक जीवन पुनरीक्षित किया गया है।

इस प्रकार समस्त प्रबन्ध मे रसात्मकता के उपायभूत विभिन्न तत्त्वो की पृष्ठभूमि में नैषधीयचरितगत रसादिको के व्यजक प्रकरणो की विशिष्टता पर दृष्टिपात करने के उपरान्त रसादिको के व्यजक विभिन्न उपायो की सत्ता तथा महत्ता का आकलन कर नैषधीयचरितगत आत्मस्वरूप रसादिकों पर प्रकाश डालने का विशेष प्रयास किया गया है और श्रीहर्ष की विभिन्न प्रतिज्ञाओं के सन्दर्भ मे नैषधीयचरितगत रस-योजना पर दृष्टिपात करते हुए यह देखने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार श्रीहर्ष आशिक भटकावो के होते हुए भी नैषधीयचरित को शृगार-प्रधान महाकाव्य बनाने मे सफल रहे हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध की उपादेयता का निर्धारण तो विवेचक पाठक करेगे। परन्तु जहाँ तक इस प्रबन्ध की नवीनता एव मौलिकता का सम्बन्ध है वह प्रश्न चिह्नो की परिधि मे नही आ सकती। क्योकि नैषधीयचरित का प्रस्तुत रस-योजनात्मक विशद अध्ययन न केवल श्रीहर्ष की प्रतिभा एव नैषधीयचरित की रसवत्ता का

ही परिचायक है अपितु मेरी जानकारी के अनुसार रस-योजना की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के किसी महाकाव्य का किया गया यह प्रथम आनुपूर्वी विशद अध्ययन है। इस प्रकार यह प्रबन्ध सुधी पाठकों को नैषधीयचरितगत रस-मन्दाकिनी में अवगाहन कराने के साथ-साथ अनुसंधान के क्षेत्र में एक नई दिशा का प्रदर्शक बन सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को मूर्त रूप देने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनके रचयिताओं का मैं परम आभारी हूं। प्रबन्ध के प्रकाशन हेतु शिक्षा तथा समाज कल्याण-मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ने जो ६०% अनुदान स्वीकृत किया है उसके लिए लेखक सर्वदा ऋणी रहेगा। प्रबन्ध को मूर्तरूप देने में प्रकाशक तथा गोयल प्रिंटर्स, भोलानाथ नगर, शाहदरा, दिल्ली ने जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिए भी लेखक आभारी है।

नैषधीयचरित रसाम्भोनिधि है और मेरी मति शुक्ति सदृश सीमाओं से नियमित है। फिर भी इस रत्नाकर के रत्नों का चयन करने में मुझे जो कुछ सफलता प्राप्त हो सकी है उसका श्रेय माननीय डॉ० रामकरण शर्मा जी, शिक्षा मन्त्रालय, नई दिल्ली, सम्प्रति कुलपति कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा को है। उनके सहज स्नेह सौहार्द पूर्ण परामर्शों के लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें मैं शतशत प्रणाम करता हूं। भारतीय विद्या-संस्थान, दिल्ली के निदेशक माननीय डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री जी एवं श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री जी ने मुझे जो समय-समय पर सहयोग एवं सत्परामर्श देकर अनुगृहीत किया है उसके लिये मैं उनके प्रति आभारी हूं। मैं अपने शुभचिन्तक डॉ० रामसागर त्रिपाठी जी, श्यामलाल कालिज, शाहदरा, दिल्ली की शुभसम्मतियों के लिये उनका भी कृतज्ञ हूं।

अन्त में अपनी अशक्ति तथा प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करता हुआ तथा श्रीहर्ष के स्वर में स्वर मिलाता हुआ मैं इस प्रबन्ध को आप सब के समक्ष इस आशा तथा विश्वास के साथ प्रस्तुत कर रहा हूं

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ॥ नै० १-३।

चन्द्रवाली, भोलानाथ नगर,
शाहदरा दिल्ली।

लेखक
रविदत्त पाण्डेय

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

रस योजना

प्रथम अध्याय

द्वितीय खण्ड

नैषधीयचरित-समीक्षा

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

संकेत-सूची

का० प्र०	काव्य प्रक. ।
का० प्र० वामनी	काव्य प्रकाश वामनाचार्य कृत बालबोधिनी टीका
का० सू०	काम-सूत्र
द० रू०	दश-रूपक
द० रू० सं० वृ०	दश-रूपक संस्कृत-वृत्ति
ध्व०	ध्वन्यालोक
ध्व० लोचन	ध्वन्यालोक लोचन व्याख्या
ना० शा०	नाट्य-शास्त्र
ना० शा० अभि०	नाट्य-शास्त्र अभिनवभारती-व्याख्या
नै० तथा नैषध	नैषधीयचरित
नै० प्र० व्या०	नैषधीयचरित प्रकाश व्याख्या
नै० जी०	नैषधीयचरित जीवातु टीका
प्र० रु०	प्रतापरुद्रीयम्
म० भा०	महाभारत
म० भा० आ० प०	महाभारत आरण्यक पर्व
र० ग०	रसगंगाधर
सा० द०	साहित्य-दर्पण
हि० अभि०	हिन्दी अभिनवभारती

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

रस-योजना

रस-सिद्धान्त भारतीय चिन्तन-परम्परा की अमूल्य देन है। अनको कृती भारतीय काव्यतत्त्व मीमासको ने रस स्वरूप तथा उसके विभिन्न तत्त्वो के विवेचन मे अपने समय तथा श्रम का उत्सर्ग कर रससिद्धान्त तथा उसकी अनुगति को सुज्ञेय बना दिया है। परन्तु यदि किसी कृति की समीक्षा आधारभूत सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य मे की जाती है तो उसके औचित्य युक्त बने रहने की सभावना अधिक रहती है। अत नैषधीयचरितगत रस योजना पर प्रकाश डालने के पूर्व रस तत्त्वो तथा रसस्वरूप पर सक्षिप्त दृष्टिपात कर लेना असमुचित न होगा।

रस तत्त्व—

भरत मुनि ने रस सूत्र—विभावानुभावव्यभिचारिसयोगात् रस निष्पत्ति —मे प्रत्यक्ष रूप से केवल तीन रस तत्त्वो का निर्देश किया है। परन्तु विभिन्न रसो के लक्षणो का निर्देश करते हुए उन्होने स्थायी भावो, सात्त्विक भावो तथा विभिन्न प्रकार की प्रकृतियो का भी अनेक रसो के लक्षणो मे उल्लेख किया है। यद्यपि स्थायी भावादिको को विभावादि के अन्तर्गत गतार्थ किया जा सकता है और इसी लिए भरत ने रस सूत्र मे इनका पृथक् उल्लेख नही किया है। परन्तु यह तत्त्व विभावादिको से यत्किचित रूप मे भिन्न भी अवश्य होते हैं। भरत ने स्वय भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। अत विभिन्न रसो के लक्षणो मे निर्दिष्ट होने के कारण तथा विभावादिको स यत्किचित् रूप मे भिन्न होने के कारण स्थायी भावादिको को भी रस तत्त्वो के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

परवर्ती विवेचको न भरत का ही इस विषय मे अनुगमन किया है। यदि किसी स्वतत्र चिन्तक ने उपर्युक्त तत्त्वो मे से किसी एक या दो तत्त्वो को ही रस परिपोष के लिए आवश्यक स्वीकार भी किया तो विद्वत्समाज मे उसे मान्यता नही प्राप्त हो सकी। फिर भी प्राय सभी चिन्तको ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि विभावादिको मे से किसी एक तत्त्व की योजना भी यदि प्रधान रूप से की गई हो तो रस प्रतीति करा सकती है। परन्तु ऐसे प्रकरणो को स्पष्टतया अनिर्दिष्ट तत्त्वो से न तो सर्वथा विहीन ही समझा जाता है और न उस प्रतीति को

हो केवल निर्दिष्ट तत्त्व जनित स्वीकार किया जाता है

सद्भावश्चेद्विभावादेर्द्वयोरेकस्य वा भवेत् ।
झटित्यन्यसमाक्षेपे तदा दोषो न विद्यते ।। सा० द० ३-१७

एवं च प्रामाणिके मिलितानां व्यञ्जकत्वे, यत्र क्वचिदेकस्मादेवासाधारणाद् रसोद्बोध ,तत्रेतरद्वयमाक्षेप्यम्, अतो नानैकान्तिकत्वम् । र०गं० पृ० १२० ।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि रस परिपोष मे उपर्युक्त समस्त तत्त्वो का योगदान रहता है । अत अग्रिम पृष्ठो मे इन सभी रस तत्त्वो के स्वरूप, भेद तथा रस परिपोष की दृष्टि से इनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास किया जाएगा ।

विभाव-स्वरूप

भरत के अनुसार आत्मानुभव भिन्न ज्ञान गोचर सभी विषय विभाव होते हैं

आत्मानुभवन भाव विभाव परदर्शनम ।
गुरुर्मित्र सखा स्निग्ध सबन्धी बन्धुरेव वा ।
आवेद्यते हि य प्राप्त स विभाव इति स्मृत ।।

ना० शा० २५-४१-४२ ।

यद्यपि भरत ने यहा पर दृष्ट विषयो की विभाव स्वरूपता का प्रतिपादन किया है ।परन्तु अनुभावो के स्वरूप का निर्देश करते हुए उन्होने प्रतिसदेश को अनुभाव स्वीकार किया है । प्रतिसदेश किसी श्रुत सदेश का ही अनुभाव हो सकता है । अत अभिनव ने दृष्ट विषयो के समान श्रुत तथा अनुमित विषयो को भी विभाव स्वीकार कर लिया है

न केवल प्रत्यक्षेण दृश्य एवानुभवश्चित्तवृत्ति गमयति । यावत्प्रमाणान्तरेण शब्दादिनाप्यविदित (आवेदित पाठ होना चाहिए) इति दर्शयितुमाह यस्त्वपि प्रतिसदेश इति । एतच्चानुमानस्याप्युपलक्षणम । ना० शा० अभि० २५-४५ ।

अभिनव ने भरत के समान विषयो का विभाव न कहकर विषयज्ञान या विषयानुभव को विभाव नाम दिया है

यतु व्यतिरिक्तवस्तुज्ञान तत्सर्वं सुखादिजनकत्वाद्विभाव । तदाह विभाव परदर्शनमिति । ना० शा० अभि० २५-४१ ।

परन्तु तात्त्विक रूप म भरत तथा अभिनव क उल्लेखो मे कोई अन्तर नहीं है क्योकि कोई भी विषय जब तक ज्ञान का विषय नही बन जाता तब तक वह किसी चित्तवृत्ति का उदय ही कैसे कर सकता है । परन्तु ज्ञान या अनुभव का जनक भी विषय ही होता है । अत विषय को भी चित्तवृत्ति के उदय का हेतु स्वीकार किया जा सकता है ।

मम्मटादि ने रत्यादि के जनक लौकिक कारणो को विभाव नाम स अभिहित

किया है। विभावों का प्रत्यायक यह उदाहरण भी भरत के द्वारा निर्दिष्ट विभाव स्वरूप से भिन्न नहीं है। धनंजय तथा विश्वनाथ ने शृंगार रस के विभावों का निर्देश करते हुए दृष्ट, श्रुत तथा अनुमित तीनों प्रकार के विभिन्न कारणों को शृंगार रस का विभाव स्वीकार किया है। द० रू० ४ ५२-५४। तथा

पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमिते श्रुते।
ईर्ष्यामानो भवेत् स्त्रीणाम्— ।। सा० द० ३-१९६।

अत निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि दर्शन गोचर होने वाले, श्रुत तथा अनुमित सभी विषय विभाव होते है।

भेद—

विभावों को आलम्बन तथा उद्दीपन नामक दो भेदों में विभक्त किया जाता है। परन्तु भरत ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है और न अभिनव ही इन भेदों के पक्ष में है। उन्होंने तथाकथित आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों हेतुओं को संयुक्त रूप में विभाव स्वीकार किया है

एव च सर्व एव समुदितो विभाव इति काल्पनिकमालम्बनविभाव उद्दीपन विभाव इति। अत एव मुनिना नाय क्वचिद्विभाग उक्त सूचितो वा। युक्त चैतत्। यथैकत्र रूपके उद्यानर्तुमाल्यादीना सर्वेषा दर्शनादेको रस स्यात्। विभावाभेदात्। ना० शा० अभि० पृ० ३०४।

विभाव भेदकों के अनुसार चित्तवृत्ति का विषय आलम्बन विभाव तथा उस चित्तवृत्ति के निमित्त कारण उद्दीपन विभाव होते हैं

एव यस्याश्चित्तवृत्तेर्या विषय, स तस्या आलम्बनम्, निमित्तानि चोद्दीपना-नीति बोध्यम्। र० गं० पृ० १३७।

दूसरी ओर अभिनव के अनुसार नायक तथा नायिकाए शृंगार रस के विभाव होते है तथा ऋत्वादि नायक-नायिकाओं की उत्तमता के साधक दूसरे शब्दों में चित्तवृत्ति के उदय के अनुरूप अवसर की सृष्टि करने वाले हेतु होते है

तत्रेह वस्तुत स्त्रीपुसौ परस्पर विभावौ। तयोरुत्तमत्वे चोपयोगीनि ऋत्वा-दीनि। उत्तमस्यानवसरे रत्यभावात्। ना० शा० अभि० पृ० ३०४।

पंडितराज तथा अभिनव के उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत नायक-नायिकाओं तथा ऋत्वादिकों की रसोद्बोध में जितनी तथा जैसी उपयोगिता होती है उसके बारे में दोनों एकमत है। पंडितराज ने केवल उन्हें दो भागों में विभक्त कर दिया है और अभिनव इस विभाजन को अनावश्यक मानते हैं।

अभिनव के अग्रिम विवेचन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि कुछ पूर्ववर्ती या उनके समकालीन काव्य-रसिकों ने आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों

को पृथक्-पृथक् रूप से भावोद्बोध का हेतु स्वीकार कर लिया था तथा आलम्बन एव उद्दीपन विभावो के पृथक् पृथक् उदाहरण उपन्यस्त कर इस तथ्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। परन्तु अभिनव ने उनकी इस मान्यता का खण्डन किया है

ननु प्रथम-प्रमदामात्र-दर्शने नोद्यानभवनादिसम्भव । क एवमाह । ऐश्वर्य-पूर्णस्य हि तावदात्मीयमभृद्धिसम्भारमस्वागनव (राव-गमात्) पूर्णतैव विभाव-वगस्य। तत्प्रधान हि रूपक तत्रोदाहरणम्। तेन पृथक्पृथगुदाहरणदानमनुपपन्नम्। ना० शा० अभि० पृ० ३०४।

सभव है कि अभिनव ने ऐसे विवेचकों के मन्तव्य को ध्यान मे रखकर ही विभाव भेदो को अनावश्यक मान लिया हो और विभाव भेदो के वे विरुद्ध हो गए हों। अन्यथा लोचन मे उन्होंने रसवदलकारो के प्रकरण मे एक उदाहरण की सगति का प्रदर्शन करते हुए श्रीकृष्णगत रति भावोद्बोधक स्मृत विभावो की आलम्बन तथा उद्दीपन उभयरूपता का स्वय ही उल्लेख किया है

एव त दृष्ट्वा गोपदर्शनप्रबुद्धसस्कार आलम्बनोद्दीपनविभावस्मरणात् प्रबुद्ध-रतिभावमात्मगतमौत्सुक्यगर्भमाह द्वारकागतो भगवान् कृष्ण ।

ध्व० लो० पृ० ४३२।

भरत ने यद्यपि विभाव भेदो का उल्लेख नही किया है। परन्तु उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे उनका खण्डन भी नहीं किया है। दूसरी ओर विभाव-भेदकों ने विभावों का दो भागो मे विभाजित करते हुए भी उभय-विध विभावों को समन्वित रूप मे ही स्थायी भावो के उद्बोध का हेतु स्वीकार किया है। पडितराज के अनुसार तो व्यभिचारी भावों तक की उत्पत्ति आलम्बन तथा उद्दीपन दोनो के सयोग से यत्र तत्र हुआ करती है

विभावस्तत्र व्यभिचारिणो निमित्तकारणसामान्यम् न तु रसस्येव सर्वथा-लम्बनोद्दीपन अपक्षिते। यदि तु क्वचित् सभव तदा न वार्यत।

र० ग० पृ० २७२।

और अस्थिर व्यभिचारी भावो की उत्पत्ति मे केवल उद्दीपन विभावों को पर्याप्त स्वीकार कर लेने मे कोई अनौचित्य भी नही प्रतीत होता।

इस प्रकार हम देखते हैं जब विभाव भेदक भी अभिनव की भाति आलम्बन तथा उद्दीपन दोनो प्रकारो के विभावों की रसाद्बोध मे समन्वित कारणता के समर्थक है तथा लोचन मे अभिनव ने विभाव भेदो को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार ही कर लिया है और व्याख्या भी विभाजनापेक्षी होती है। अत हम यहा पर विभाव भेदो को स्वीकार कर ही अग्रसर होगे।

आलम्बन विभाव भेद—

आलम्बन विभाव स्वरूप नायक-नायिकाओ आदि के अनेको भेदोपभेदो का निर्देश किया गया है। इस अध्याय मे उन समस्त भेदोपभेदो की चर्चा कर लेना न तो सभव है और न आवश्यक ही।

उद्दीपन विभाव भेद

उद्दीपन विभावो को चार भागो मे विभाजित किया गया है
आलम्बनगुणश्चैव तच्चेष्टा तदलङ्कृति ।
तटस्थश्चेति विज्ञेयश्चतुर्धोद्दीपनक्रम ।। प्र० रु० पृ० १२६।

उपर्युक्त भेदो मे से प्रथम तीन भेद आलम्बन मे सम्बद्ध होते है तथा चतुर्थ भेद तटस्थ उद्दीपक हेतु होते हैं। परन्तु भरत ने वीर रस के विभावो का निर्देश करते हुए असम्मोहाध्यवसायादि जिन हेतुओ को उत्साहजनक माना है वे आश्रय से सम्बद्ध होते हैं। आश्रय व्यक्ति के गुणो का उसकी वासनाओ के उद्बोध मे योगदान न होना हो ऐसी बात नही। नायक की सैन्य शक्ति तथा मत्रशक्ति आदि उसके उत्साह को उद्बुद्ध करने मे निश्चित रूप से कारण बना ही करते हैं। परन्तु आश्रयगत गुणो का उपर्युक्त उद्दीपन विभाव भेदो मे से किसी भेद मे अन्तर्भुक्त नही किया जा सकता। क्योकि आश्रय के गुणो को न तो आलम्बनगत उद्दीपन विभाव भेदो मे अन्तर्भुक्त किया जा सकता है और न तटस्थ भेद मे ही। क्योकि तटस्थ वह होता है जिसका किसी से सम्बन्ध न हो। परन्तु आश्रय के गुण आश्रय से सम्बद्ध होते है। अत उपर्युक्त उद्दीपन विभाव भेदो से पृथक् आश्रय गुण नामक एक अन्य भेद की स्वीकृति असमुचित न होगी।

उपयोगिता

विभाव रस-व्यजना के महत्त्वपूर्ण अग होते है। विभावो को कारण शब्द का पर्याय स्वीकार किया जाता है। अत जैसे किसी कारण के अनेक कार्य होते हैं उसी प्रकार विभावो की उपयोगिता भी अनेक रूप होती है। काव्य-मर्मज्ञो ने अन्य तथ्यो पर प्रकाश डालने के साथ-साथ इस विषय पर भी प्रकाश डाला है। भरत ने विभावो की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए उन्हे विशिष्ट ज्ञान का हेतु स्वीकार किया है

अथ विभाव इति कस्मात्। उच्यते विभावो विज्ञानार्थ। विभाव कारण निमित्त हेतुरिति पर्याया। विभाव्यन्ते अनेन वागङ्गसत्वाभिनया इत्यतो विभावा। ना० शा० पृ० ३४६।

अभिनव ने अपनी व्याख्या मे भरत के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए विभावो

को विशिष्ट ज्ञान का हेतु स्वीकार करने के कारण, ज्ञान के विषय तथा वह ज्ञान किसे कराते हैं इस तथ्य को भी स्पष्ट कर दिया है

वागादयोऽभिनया येषा स्थायिव्यभिचारिणा ते वागाद्यभिनयसहिता विभाव्यन्ते विशिष्टतया ज्ञायन्ते यैस्ते विभावा । अभिनयानामनेकहेतुत्वम् तद्यथा—हर्षादिभ्यो हास । धर्मधूमरोगादिभ्यो बाष्प । तद्बाष्पादि प्रतीयताम् । विभावात् झडित्येव निश्चय । अतएव—। ना०शा० अभि पृ० ३४७।

भरत न रसो तथा भावादिकों के लक्षणों को उपन्यस्त करते हुए विभावो को रसो तथा भावो का उत्पादक हेतु भी स्वीकार किया है। उनके अनुसार सभी रस तथा भावादि विभावों से उत्पन्न होते हैं। परन्तु अभिनव के अनुसार विभाव स्थायी भावो के तो उद्बोधक हेतु होते हैं और व्यभिचारी भावो के उत्पादक। अभिनव के अनुसार स्थायीभाव वासना स्वरूप होते हैं। अतएव वे विभावों को उनका उत्पादक न बताकर उद्बोधक हेतु स्वीकार करते है

अतएव विभावाम्नत्रोद्बोधका सन्त स्वरूपोपरञ्जकत्व विदधाना रत्युत्साहादेरुचितानुचितत्वमात्रमावहन्ति । न तु तदभावे सर्वथैव ते निरुपाख्या । वासनात्मतया सर्वजन्तूना तन्मयत्वेनोक्तत्वात्। ना० शा० अभि०पृ० २८३।

परन्तु व्यभिचारी भावों को अस्थिर होने के कारण वे विभत्वों में उत्पन्न स्वीकार करते हैं। जैसा कि उन्होंने भाव-लक्षणपरक कारिका की व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है

विभावेनाहृत इत्युक्तम्—तत्र यद्यपि प्रकरणाच्चित्तवृत्त्युद्भवहेतुर्विषयो विभाव शब्दस्यार्थ इति ज्ञातम्। ना०शा० अभि० पृ० ३३७।

उनके अनुसार व्यभिचारी भावों का विभाव के अभाव में स्थायी भावो के समान सद्भाव नहीं रहता

व्यभिचारिणा तु स्वविभावाभावे नामापि नास्तीति। वही पृ० २८३।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभाव सामाजिकों को भावादिकों का विशिष्ट ज्ञान कराने वाले, स्थायीभावो के उद्बोधक तथा व्यभिचारी भावों के उत्पादक हेतु होते हैं। और सामाजिक गत रसानुभूति तथा काव्यगत रसव्यजना में भावज्ञान तथा स्थायी भावोद्बोध आदि का सर्वाधिक महत्त्व होता है। अत विभावो की उपयोगिता के बारे मे भी यही कहा जा सकता है।

अनुभाव-स्वरूप

अनुभावों को लक्षित करते हुए भरत ने विभाव साक्षात्कार के अनन्तर अथवा दूतादिकों के मुख से सदेश श्रवण करने के उपरान्त उत्पन्न चेष्टाओ तथा प्रतिवचनादिको को अनुभाव नाम से अभिहित किया है

यत्वस्य सम्भ्रमोत्थानैरघ्यपाद्यासनादिभि ।
पूजन क्रियते भक्त्या सोऽनुभाव प्रकीर्ति ॥
यस्त्वपि प्रतिसदेशो दूतस्येह प्रदीयते ।
सोऽनुभाव इति ज्ञेय प्रतिसदेशदर्शित ॥ ना० शा० २५-४३, ४५ ।

अनुभाव स्वरूप उपर्युक्त चेष्टाए चित्तवृत्ति का उदय हो जाने के उपरान्त उत्पन्न होती है। अतएव अनुभावो की लौकिक रत्यादि भावो के कार्यो से भी तुलना की जाती है

उद्बुद्ध कारणै स्वै स्वैवहिर्भाव प्रकाशयन् ।
लोके य कायरूप सोऽनुभाव काव्यनाट्ययो ॥
सा० द० ३-१३२-१३३

भेद

अभिनव के अनुसार विभिन्न प्रकार के अभिनय अनुभाव ही होते हैं

अभिनया अनुभावा एव । ना०शा० अभि०पृ० २६० ।

अत विभिन्न प्रकार के अभिनयो को अनुभावो के भेद के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। भरत ने रसाध्याय म चार प्रकार के अभिनयो का निर्देश किया है

आंगिका वाचिकश्चैव आहार्य सात्त्विकस्तथा ।
चत्वारो ह्यभिनया ह्येते——॥ ना० शा० ६-२३ ।

परन्तु इक्कीसवें अध्याय मे उन्होने अहार्याभिनय को सभी अभिनयो का उपजीव्य तथा सर्वानुग्राहक स्वीकार कर लिया है

यस्मात् प्रयोग सर्वोऽयमाहार्याभिनये स्थित ॥ ना० शा० २१-१ ।

आवेदितपूर्वमाहार्यस्य प्रधान्यादेव ह्यद्य सर्वानुग्राहकत्व सर्वोपजीव्यताख्यापनाय पश्चादभिधानम् । वही अभि०

इसी प्रकार भरत ने सात्त्विकाभिनयो की रस परिपोषक उन्वास भावो मे गणना कर उनकी भी अन्य अभिनयो से भिन्नता तथा महत्ता का प्रतिपादन कर दिया है। उपर्युक्त अभिनय भेदो के अतिरिक्त भरत ने सामान्य तथा चित्राभिनयो का भी निर्देश किया है। परन्तु उन्हे उन्होने आगिकादि अभिनयो से सवथा भिन्न न स्वीकार कर उनका ही शेष स्वीकार कर लिया है।

ना०शा० अभि० २२-१, २५-१ ।

उपयोगिता

भरत के अनुसार अनुभाव भी विभावो क समान भावा का ज्ञान कराने वाले हेतु होते ह

अनुभाव्यतेऽनेन वागगसत्वकृतोऽभिनय इति । अत्र श्लोक —

वागगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोनुभाव्यते ।

शाखागोपागमयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृत ।। ना० शा० ७-५ ।

अभिनव के शब्दो मे तो अनुभावो को रसानुभूति कराने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अग कहा जा सकता है

तस्य तु प्रथमतःछायामेव रसनागोचरत्वाभिमनस्य नयनचातुर्यादिभी रसै(सो) रसनाद्याभिमुख्य नीयते । अत एव तेऽभिनया अनुभावाश्च । आभिमुख्यनयनमनुभावन च । तद्साम्वादे समर्थाचरणमुद्दीपनम् । अत एव तदभावे विभवादिवर्णनप्रधानेऽपि काव्ये न चमत्कार । रसनायास्तत्राभावात् । वही अभि० पृ० ८०५ ।

सात्विकाभिनय

भरत ने सात्विकाभिनयों को भावो मे गणना कर अन्य अभिनयो से उनकी पृथक्ता का प्रतिपादन कर दिया है। अत यहा पर सात्विकाभिनय के बारे मे पृथक् रूप से कुछ चर्चा कर लेना अप्रासागिक न होगा।

भरत ने सात्विकाभिनयो का दो स्थानो पर निर्देश किया है—भावाध्याय मे तथा सामान्याभिनयाध्याय मे। आगिकादि अभिनयो का निर्देश करते हुए उन्होने यह स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि सात्विकाभिनयो का वे भावो के साथ ही कथन कर चुके हैं

सात्विक पूर्वमुक्तस्तु भावैश्च सहितो मया । ना० शा० ८-११ ।

अत आगिकादि अभिनयो के साथ उन्होने पुन सात्विकाभिनयो का निर्देश नही किया है। परन्तु सामान्याभिनयाध्याय मे उन्होने अन्य अभिनयो के अवशिष्ट भाग का निर्देश करते हुए सात्विकाभिनयो के अवशिष्ट भाग का भी निर्देश किया है। भावाध्याय मे विवेचित सात्विकाभिनयो को उन्होने भाव नाम से अभिहित किया है तथा सामान्याभिनयाध्याय मे विवेचित सात्विकाभिनयो को अलकार नाम से अभिहित किया है। उन्होने दोनों स्थानों पर उपनिबद्ध सात्विकाभिनयो के अन्तर का भी स्पष्ट कर दिया है

अव्यक्तरूप सत्त्व हि विज्ञेय भावसश्रयम् ।

यथास्थानरसोपेत रोमाचादिभिर्गुणै ।।

अलकारास्तु नाट्यज्ञैर्ज्ञेया भावरसाश्रया ।

यौवनेऽभ्यधिका स्त्रीणा विकारा वक्त्रगात्रजा ।। ना० शा० २२-३-४ ।

भरत की उपर्युक्त कारिकाओं तथा अभिनव की अधोलिखित व्याख्या पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि सात्विक भाव अव्यक्त, चित्तवृत्ति स्वरूप तथा विभिन्न रसो के स्थाना अर्थात् आश्रयो से सम्बद्ध होते हैं। रोमाचादि उनके गुण होते हैं। जब कि सात्विकालकार व्यक्त देह-धर्म-स्वरूप तथा केवल रति-

भाव मात्र के अनुभावक होते हैं

इह चित्तवृत्तिरेव सवेदनभूमौ सक्रान्ता देहमपि व्याप्नोति। सैव च सत्त्वमित्युच्यते। तत्र चाव्यक्त सवित्प्राणभूमिद्वयानिपतित यत्सत्त्व तद्भावाद्याश्रयत्वेनैव विज्ञेयम्। तस्य च ये गुणा देहपर्यन्तना प्राप्ता धर्मेरामाचादय तेऽपि तत्रैवोक्ता किंचित। यथास्थानमिति यस्य रसस्य यत् स्थान तद्यथा शृगारस्य-उत्तमौ-स्त्रीपुमौ, रौद्रस्य रक्षोदानवादि, भयानकस्याधमप्रकृति, तदनतिक्रमेण रसेषूपेत सम्बद्ध तत्सत्त्वम्।—अलकाराम्स्विति तु व्यतिरेके, अन्ये भावाद्याय एवोक्ता, ऐते तु वक्तव्या ते तु तत्र नोक्ता यत एते केवलमलकारा देहमात्रनिष्ठा न तु चित्तवृत्तिरूपा। भावमश्रया इति रतिभावमात्रमभिनयन्तीत्यर्थ। ते हि यौवने उद्रिक्ता दृश्यन्ते बाल्ये त्वनुद्भिन्ना बार्धके तिरोभूता।—वक्त्र गात्रजा इति देहविकारमात्ररूपा एव पर न हि यथा वागादीनामन्त प्राणभुवि कण्ठरोधादिरूप लक्ष्यते तथा चेष्टालकाराणाम्। अभि० पृ० १५०-१५४।

नायिकाओ के सात्त्विक अलकारो के समान भरत ने नायको के सात्त्विक गुणो का भी उल्लेख किया है

शोभाविलासौ माधुर्य स्थैर्यगाम्भीर्यमेव च।

ललितौदार्यतेजासि सत्त्वभेदास्तु पौरुषा ॥ ना०शा० २२-२३।

और अभिनव ने इन सात्त्विक गुणो को भी सामान्याभिनय ही स्वीकार किया है

एव पुरुषगता अपि शोभादय उत्साहप्रकृतिरयमित्येतावन्मात्र गमयन्त सामान्याभिनया एव। ना० शा० अभि० पृ० १५३।

भेद

उपर्युक्त विवेचन के सदर्भ मे सात्त्विकाभिनय को निम्नलिखित तालिका के अनुसार विभाजित किया जा सकता है

सात्त्विकाभिनय
- सवेदन स्वरूप सात्त्विक भाव
- देहधर्म स्वरूप
  - नायिकाओ के सात्त्विक अलकार
  - पुरुषो के सात्त्विक गुण

उपर्युक्त सभी प्रकार के सात्त्विकाभिनयो के उपभेदो को भी प्रदर्शित किया गया है। जैसे सात्त्विक भाव आठ होते है

स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाच स्वरभेदोऽथ वेपथु।

वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका स्मृता ॥ ना० शा० ६-२२।

इसी प्रकार सात्त्विक अलकारो के भी भेदोपभेदो का निर्देश किया गया है

आदौ वर्योऽजजास्तथा दश स्वाभाविका परे।
अयत्नजा पुन सप्त रसभावोपबृंहिता। ना० शा० २२-५।
सात्विक गुणों के भेदों का निर्देश किया ही जा चुका है।

उपयोगिता

अभिनयों अर्थात् अनुभावो की उपयोगिता की ओर सकेत किया जा चुका है। सात्विकाभिनय भी अन्य सभी अभिनयो के समान उपयोगी होते हैं। परन्तु भरत ने सात्विकाभिनयो को अन्य अभिनयों से अधिक महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार नाट्य प्रतिष्ठा का मूल सात्विकाभिनय ही होता है

नाट्य सत्वे प्रतिष्ठितम्। ना० शा० २२-१।

इसी प्रकार अभिनव ने भी सात्विकाभिनयों की महत्ता का प्रतिपादन किया है

अथ सात्विकोऽप्यनुच एव, तदभिनयन प्रयत्य सपद्यते परमिति यावत्। यदि त्वितरापेक्षया सात्विका न्यूनस्तर्हि अभिनयक्रिया स्वरूपेणापूर्णा सपद्यते इत्यत्र। सात्विकाभावे ह्यभिनयक्रिया नामापि नोन्मीलति। वही अभि० पृ०१५०।

व्यभिचारीभाव स्वरूप

भरत ने रस-पोषक उन्चास भावों मे व्यभिचारी भावों का परिगणन किया है। और रस-पोषक समस्त भावो को वे विभावो तथा अनुभावों के सयोग से व्यजना का प्रतिपादन करते हैं

काव्यार्थसश्रितैर्विभावानुभावव्यजितैरेकोनपचाशद् भावै — आदि।
ना० शा० पृ० ३४६।

अत व्यभिचारी भावों को विभाव तथा अनुभावों के सयोग से व्यक्त भाव विशेष कहा जाएगा। विभिन्न व्यभिचारी भावो के लक्षणो मे उन्होंने प्रदर्शन भी विभावो तथा अनुभावों का ही किया है। परन्तु अभिनव के विवेचन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि कुछ विवेचको ने व्यभिचारी भावो की व्यजना में व्यभिचारी भावों को भी कारण माना है। परन्तु अभिनव उनसे सहमत नहीं हैं

नैरिति व्यभिचारिभिश्च मान्यते मिश्रीक्रियते इति व्यभिचारिणामपि व्यभिचारिणो भवन्ति यथा निर्वेदस्य चिन्ता श्रमस्य निर्वेद इत्यादि व्याचक्षते तन्चासत्।
ना० शा० अभि० पृ० ३४५।

यद्यपि व्यभिचारी भाव व्यभिचरित होकर व्यभिचारी भाव की व्यजना के हेतु नहीं बनते। परन्तु वे विभाव तथा अनुभाव के रूप से स्वभिन्न व्यभिचारी भाव की व्यजना किया ही करते हैं। जैसा कि पडितराज ने स्वीकार ही किया है

एषु च सचारिषु मध्ये केचन केषाचन विभावा अनुभावाश्च भवन्ति। तथाहि ईर्ष्याया निर्वेद प्रति विभावत्वम् असूया प्रति चानुभावत्वम्। चिन्ताया निद्रा प्रति

विभावत्वम् औत्सुक्य प्रति चानुभावनेत्यादि स्वयमुह्यम् । र० ग० पृ० ३३५ ।

यह व्यभिचारी भाव भी स्थायी भावो के समान चित्तवृत्ति स्वरूप होते हैं। परन्तु वे स्थायी भावो के समान जन्मजात नही होते यहा तक कि कुछ व्यभिचारी भाव तो कुछ व्यक्तियो मे विभाव साक्षात्कार के अनन्तर भी नही उत्पन्न हो सकते। और यदि वे विभाव साक्षात्कार के अनन्तर उत्पन्न हो जाते है तो विभाव के अदृश्य होते ही विलीन हो जाते है

ये पुनरमी ग्लानिशकाप्रभृतयश्चित्तवृत्तिविशेषास्ते समुचितविभावा-भावा ज्जन्म मध्येऽपि न भवन्त्येव। तथाहि— रसायनमुपयुक्तवतो मुनेर्ग्लान्यालस्यश्रम-प्रभृतया नोत्तिष्ठन्ति। यस्यापि भवन्ति विभावबलात्तस्यापि हेतुप्रक्षये क्षीयमाणा सस्कार-शेषता तावत् नानुबध्नन्ति। ना० शा० अभि० पृ० २८३।

भेद

भरत ने तैंतीस व्यभिचारी भावा का उल्लेख किया है

निर्वेदग्लानिशकास्यास्तथासूयामद श्रम ।
आलस्य चैव दैन्य च चिन्ता मोह स्मृतिर्धृति ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्य निद्रापस्मार एव च ॥
सुप्त विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता ।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिण ।
त्रयस्त्रिंशदमी भावा समाख्यातास्तु नामत । ना० शा० ६-१८-२१

परवर्ती विवेचको मे कुछ विवेचको ने कुछ अन्य व्यभिचारी भावो का भी निर्देश किया है। परन्तु अधिकाश विद्वानो ने परम्परा-प्राप्त व्यभिचारी भावो को ही स्वीकार किया है।

उपयोगिता

व्यभिचारी भाव भी विभावो तथा अनुभावो के समान सामाजिको को भाव ज्ञान कराते है। ना० शा० अभि० २८४। इसके साथ साथ व्यभिचारी भाव अपनी रसनीयता के द्वारा रसो का परिपोष भी किया करते हैं

एव विभाव समय एव रसनीयस्यानुभावावसरेऽवस्थावेशवैरस्यास्पदस्य पश्चाद्व्यभिचारिण स्वामेव रसनीयता चित्रयन्त सातिशय पुष्यन्ति।
ना० शा०अभि० पृ० ३०६।

रस सूत्र मे अपरिगणित रसव्यंजक तत्त्व

हम देख चुके हैं कि भरत ने रस सूत्र मे स्थायी भावो, सात्विक भावो तथा विभिन्न प्रकार की प्रकृतियो का रसव्यजक तत्त्वो के रूप मे स्पष्ट उल्लेख नही किया है। सात्विकाभिनयो के स्वरूप तथा उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए हम यह देख चुके हैं कि सामान्य अनुभावो से भिन्न होते हुए भी सात्विक भावो को अनुभाव स्वरूप स्वीकार कर लेने के कारण भरत ने उनका रस तत्त्वो मे पृथक् रूप से उल्लेख नही किया है परन्तु रसव्यजना मे उनका अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। इसी प्रकार आगे हम देखेंगे कि स्थायीभावो तथा प्रकृतियो का भी रसव्यजना मे अपना एक विशिष्ट स्थान होता है।

स्थायीभाव-स्वरूप

भरत के विवेचन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उन्होने स्थायी भावो को रस सज्ञक तथा भाव सज्ञक दो श्रेणियो का स्वीकार किया है। रस सज्ञक स्थायी भावो को वे रसो से अभिन्न स्वीकार करते हैं। इसीलिए उन्होने रसो के लक्षणो का रस-सज्ञक स्थायी भावो के लक्षण के रूप मे स्वीकार कर लिया है

लक्षण खलु पूर्वमभिहितमेषा रससज्ञकानाम्। ना० शा० पृ० ३५०।

रस-सज्ञक स्थायी भावो की व्यजना मे उन्होने विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावादि सभी रस तत्त्वो की व्यजकता का उल्लेख कर इस तथ्य को और भी स्पष्ट कर दिया है

विभावानुभावव्यभिचारिपरिवृत स्थायी भावो रसनाम लभते।

ना० शा० पृ० ३४६।

परन्तु भावस्वरूप स्थायीभावो के लक्षणो को निर्दिष्ट करने की प्रतिज्ञा करने के उपरान्त उन्होने विभिन्न स्थायी भावों के जो लक्षण उपन्यस्त किए हैं उनमे व्यभिचारी भावो का निर्देश नही किया है

इदानी भावसामान्यलक्षणमभिधास्याम। तत्र स्थायिभावान्वक्ष्याम।

ना० शा० पृ० ३५०।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थायी भाव यदि व्यभिचारी भावो से भी परि-पुष्ट होता है तो वह रस बन जाता है और यदि वह व्यभिचारी भावो से परि-पुष्ट न हो केवल विभाव तथा अनुभावो से ही व्यक्त हो तो उसे भाव नाम से अभिहित किया जाता है।

स्थायी भाव वासनाओं के रूप मे सभी प्राणियों मे जन्म से ही विद्यमान रहते हैं। परन्तु सभी स्थायीभाव सभी प्राणियो मे समान रूप से नही व्याप्त रहते।

व्यक्तियो के स्वभाव के अनुरूप न्यून या अधिक तथा नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित अवस्था मे वे उनमे रहा करते है

जात एव हि जन्तुरियतीभि सविद्भि परीतो भवति।—न ह्यतच्चित्तवृत्तिवासनाशून्य प्राणी भवति। केवल कस्यचित्काचिदधिका चित्तवृत्ति काचिदूना कस्यचिदुचितविषयनियन्त्रिता कस्यचिदन्यथा तत्काचिदेव पुमर्थोपयोगिनीत्युपदेश्या। तद्विभाव (ग) कृतश्चोत्तमप्रकृत्यादिव्यवहार ।

वही अभि० पृ० २८२-२८३।

हम देख चुके हैं कि वासना स्वरूप स्थायी भाव विभावो से उत्पन्न न होकर उद्बुद्ध हुआ करते है।

भेद

भरत ने आठ स्थायी भावो का उल्लेख किया है

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्माहौ भय तथा ।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा प्रकीर्तिता ।। ना० शा० ६-१७।

अभिनव ने शान्त रस के स्थायी भाव को तत्त्वज्ञान नाम देकर तथा उसे उपर्युक्त सभी स्थायी भावो तथा अन्य भावो का भित्ति-स्थानीय स्वीकार कर एक नवीन स्थायी की कल्पना करते हुए भी उपर्युक्त सख्या मे परिवतन नही किया है। इस प्रकार उन्होने तत्त्वज्ञान नामक स्थायी भाव की स्थापना करने का प्रशसनीय प्रयत्न किया है

तत्त्वज्ञान तु सकलभावान्तरभित्तिस्थानीय सर्वस्थायिभ्य स्थायितम सर्वा रत्यादिकास्थायिचित्तवृत्तीर्व्यभिचारीभावयत निसर्गत एव सिद्धस्थायिभावमिति। तन्नवचनेन (तन्नवचनीयम्)। अत एव पृथगस्य गणना न युक्ता।

ना० शा० अभि० पृ० ३३६।

परन्तु परवर्ती विवेचको ने स्थायी भावो की सख्या मे भी परिवर्धन किया है।

उपयोगिता—

रस सज्ञक स्थायी भाव तो स्वत प्राधान्येन आस्वाद्य होता है। अत रस परिपोष मे उसकी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता का प्रश्न ही नही उठता। परन्तु भाव सज्ञक स्थायी भाव अन्य भावा के समान रस परिपोषक होते ही है। इसी लिए भरत ने सभी उन्चास भावो की—जिनमे स्थायी भाव भी आ जाते है रसपोषकता का उल्लेख कर दिया है

एवमेते रसाभिव्यक्तिहेतव एकोनपचाशद्भावा प्रत्यवगन्तव्या ।

ना० शा० पृ० ३४८।

और रसो के लक्षणों का निर्देश करते हुए स्थायी भावो की व्यभिचारी भावो मे गणना कर इस तथ्य का प्रदर्शन भी कर दिया है

व्यभिचारिणश्चाम्यालस्यौग्र्यजुगुप्सावर्ज्या । ना० शा० पृ ३०६ ।

इसी प्रकार अभिनव ने भी स्थायी भावो की रस पोषकता अर्थात् व्यभिचारीभावता का समर्थन किया है

स्थायिनो हि व्यभिचरिता भवति । ना० शा० अभि० पृ० ३४५ ।

स्थायी भावो की रस पोषकता को स्वीकार कर लेने के अनन्तर इस तथ्य को भी स्वीकार करने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्थायी भाव भी व्यभिचारी भावो के समान सामाजिको को भाव ज्ञान कराने वाले हेतु होते हैं।

परन्तु इस प्रकार रसोपयोगी होने पर भी भरत ने रसपोषक तत्त्वों में इनका उल्लेख क्यो नही किया ? इस प्रश्न का उत्तर भी स्पष्ट है। भरत ने रस पोषक स्थायी भावो का व्यभिचारी भावो म परिगणन किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थायी भाव जब किसी रस का परिपोषक हो जाता है तो वह व्यभिचारी भावो की कोटि म आ जाता है। अत व्यभिचारी भावो से पृथक् उनकी चर्चा करने की आवश्यकता ही नही रहती। फिर भी सामान्यतया व्यभिचारी भावो से वे भिन्न ही होते हैं। इसीलिए यहा पर उन्हे पृथक् स्थान दे दिया गया है।

प्रकृति—

स्थायी भावो तथा रसो की प्रकृति अर्थात् स्वभाव स्वरूपता —

अनेक रसो तथा भावो के लक्षणो का निर्देश करते हुए भरत ने रसो तथा भावो की प्रकृति स्वरूपता का उल्लेख किया है

रौद्रो नाम क्रोधस्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धतमनुष्यप्रकृति ।
ना० शा० पृ० ३१६।

अथ वीरो नामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मक । वही पृ० ३२४।

उत्साहो नाम उत्तमप्रकृति । वही पृ० ३५३।

भय नाम स्त्रीनीचप्रकृतिकम्। वही पृ० ३५३।

अभिनव ने प्रथम दोनो उद्धरणो की व्याख्या करते हुए रसो की प्रकृति स्वरूपता तथा प्रकृति की रस चर्वणोदय हेतुता का प्रतिपादन किया है

उद्रिक्त हन्तृत्व येषा ते उद्धता । तद्वपप्राणिनो ये नटास्ते। प्रकृतिश्चर्वणोदयहेतुरस्य। ना० शा० अभि० पृ० ३१६।

उत्तमाना स्वभावो यत उत्साहोऽतो वीररसोऽपि तथा। यदि वा काव्ये नाट्ये प्रयुज्यमान उत्तमप्रकृतिर्हेतुरस्य। ना० शा० अभि० पृ० ३२८ ।

आचार्य विश्वेश्वर ने उपर्युक्त उद्धरणो मे प्रयुक्त प्रकृति शब्द को हेतु का पर्याय मान कर पुरुषो का रसचर्वणोदय का हेतु स्वीकार कर लिया है

उन (उद्धतो) का वेष धारण करने वाले नट भी (उद्धत हुए) वे जिसके आस्वाद (चवणोदय) की प्रकृति अर्थात् हेतु है—वह रौद्र रस होना है ।

हि० अ० भा० पृ० ५८३।

अथवा काव्य और नाटक मे प्रयुक्त उत्तम (पुरुष) जिसकी प्रकृति अर्थात कारण हैं। वही पृ० ५६३।

परन्तु उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण में अभिनव ने स्पष्ट शब्दो मे प्रकृति शब्द को स्वभाव शब्द का पर्याय स्वीकार किया है। इसी प्रकार आचाय जी ने उत्तम शब्द का अर्थ पुरुष ग्रहण कर लिया है। परन्तु शृ गार रस के प्रकरण म अभिनव ने स्पष्ट शब्दो में उत्तम शब्द को वासनाओ का द्योतक स्वीकार किया है पुरुषो का नही

अत एवोत्तम-युवप्रकृत्ति । उत्तमश्च उत्तमा चोत्तमौ । एव युवानौ। तद्योत्तमयुवशब्देन तत्सविदुच्यते। नतु काय । चैत-यस्यैव हि परमार्थत उत्तम-युवत्व विशेष । ना० शा० अभि० पृ० ३०२।

वस्तुत यहा पर भरत ने प्रकृति शब्द का प्रयोग स्वभाव के अथ म ही किया है कारण या हेतु के अर्थ म नही। और उत्तम शब्द के द्वारा उन्होंने प्रकृति अर्थात् स्वभाव की विशेषता की ओर ही सकेत किया है पुरुषो की ओर नहीं । क्योकि भरत ने उत्तमादि भेदो मे प्रकृति अर्थात् मनुष्यो आदि के स्वभावो को ही विभाजित किया है।

समासनस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता।

पुरुषाणामथस्त्रीणामुत्तमाधममध्यमा ।। ना० शा० २४ १।

अभिनव ने भी भरत के इस विभाजन को स्त्रीपुरुषो के स्वभाव का विभाजन स्वीकार किया है

स्त्रीणा च पुसा च यद्यपि विचित्रा स्वभावास्तथापि त प्रतिपदमशक्यकलना इति प्रकृतित्रयेण ते सर्वे शक्यसग्रहा इति प्रकृतित्रय वक्तव्यम्।

वही अभि० पृ० २४८।

अत उपर्युक्त उद्धरणो म निर्दिष्ट प्रकृति शब्द को स्वभाव का पर्याय तथा उत्तमादि विशेषणो को स्वभावो की विशेषता का द्योतक स्वीकार कर लेने से यह सिद्ध हो जाता है कि रस तथा स्थायी भाव प्रकृति अर्थात् स्वभाव स्वरूप होते है।

स्थायी भावो के स्वरूप पर विचार करत हुए हम देख चुके हैं कि स्थायी *भाव वासना रूप होते हुए भी सभी व्यक्तियो मे न्यूनाधिक मात्रा मे ही* उद्बुद्ध होते है और उन स्थायी भावो की नियमितता तथा स्वच्छन्दता के आधार पर पुरुषो को उत्तमादि भेदो म विभक्त किया जाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि वासना रूप म विद्यमान रहन वाले स्थायी भाव स्वभाव के अभिन्न अग होते हैं। वस्तुत स्थायी भाव जब चित्तवृत्ति स्वरूप होते है तथा विभिन्न प्रकार

की चित्तवृत्तिया व्यक्तियो के स्वभाव का अभिन्न अग होती हैं तो स्थायी भावो की स्वभाव स्वरूपता का प्रतिपादन तथा प्रकृति विभाजन मे उनको आधार स्वीकार कर लेना समुचित ही है। यही नही भरत ने विभिन्न प्रकृतियो की भेदक विशेषताओ मे कुछ स्थायी भावो का निर्देश भी किया है

क्रोधना पातकाश्चैव अधमा नरा ॥ ना० शा० २४ ५-७।

लोक व्यवहार मे प्रयुक्त होने वाले क्रोधी तथा उत्साही जैसे शब्द भी क्रोध तथा उत्साहादि स्थायी भावो की स्वभाव स्वरूपता की ओर सकेत करते है।

विभावादिको से व्यक्त स्थायी भाव को ही रस नामसे अभिहित किया जाता है। इसी लिए भरत ने स्थायी भावो के समान रसो को भी स्वभाव स्वरूप स्वीकार कर लिया है।

यद्यपि सभी स्थायी भाव सभी व्यक्तियो मे वासना रूप मे विद्यमान रहते हैं। परन्तु उनका उद्बोध न्यूनाधिक मात्रा मे व्यक्तियो की प्रकृति के अनुसार हुआ करता है। इसीलिए कुछ रसो तथा भावो का विशिष्ट प्रकृति स्वरूप स्वीकार कर लिया गया है। जिन रसो तथा भावो को भरत ने विशिष्ट प्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है उन रसो,स्थायी भावो तथा व्यभिचारी भावो की विशिष्ट प्रकृति स्वरूपता का उन्होने स्वय उल्लेख कर दिया है। जिन्हें उन्होने सामान्य प्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है उनके लक्षणो मे उन्होने उस रस की विशिष्ट प्रकृति स्वरूपता का उल्लेख नहीं किया है। रौद्र रस के प्रसग मे उनके द्वारा उठाया गया प्रश्न तथा उनके द्वारा स्वय ही किया गया उस प्रश्न का समाधान इस तथ्य को पुष्ट कर देता है

अत्राह–यदभिहित रक्षोदानवादीना रौद्रो रस । किमन्येषा नास्ति। उच्यते-अस्त्यन्येषामपि रौद्रो रस । किन्त्वधिकारोऽत्र गृह्यते। ते हि स्वभावत एव रौद्रा । ना० शा० पृ० ३२१।

रस स्वरूप प्रकृति का आधार

काव्य मे प्राय चित्तवृत्ति के विषय अर्थात् आलम्बन तथा उस चित्तवृत्ति के आधार अर्थात् आश्रय दो कोटियो के पात्रो की योजना की जाती है। केवल कुछ विशिष्ट प्रकरणो को इसका अपवाद कहा जा सकता है

ननु रति क्रोधोत्साहभयशोकविस्मयनिर्वेदेषु प्रागुदाहृतेषु यथातम्बनाश्रययो सप्रत्यय, न तथा हासे जुगुप्साया च तत्रालम्बनस्यैव प्रतीत । र० ग० पृ०१७१।

जिन स्थलो मे इन दो कोटियो के पात्रो मे से किसी एक की स्पष्ट योजना नहीं की गई होती है वहा पर उनका आक्षेप कर लिया जाता है। और इन दोनो कोटियो के पात्र उत्तममध्यमादि प्रकृतियो से युक्त होते हैं। अत इन दोनो पात्रो मे से स्व-भाव स्वरूप रसो या रस स्वरूप प्रकृति का आधार कौन होता है? इस तथ्य पर

प्रकाश डाल देना भी आवश्यक है।

हम देख चुके हैं कि भरत ने रौद्र रस को रक्षोदानवोद्धत प्रकृति स्वरूप तथा भय को नीच प्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है। इसी प्रकार उन्होंने शृंगार को उत्तमयुवप्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है

म च स्त्रीपुरुषहेतुक उत्तमयुव-प्रकृति। ना० शा० पृ० ३०१।

और अभिनव ने सात्विकालकारो के विवेचन में भरत की व्याख्या करते हुए उपर्युक्त प्रकृतियो से युक्त व्यक्तियो को ही उन रसो का स्थान स्वीकार किया है

यथास्थानमिति यस्य रसस्य यत् स्थान तद्यथा—शृंगारस्य उत्तमौ (स्त्रीपुसौ) रौद्रस्य रक्षोदानवादि, भयानकस्याधमप्रकृति। ना० शा० अभि० पृ० १५२।

इसी प्रकार भरत ने भी हास्य रस की सत्ता स्त्री तथा नीच प्रकृति-युक्त व्यक्ति में स्वीकार की है

स्त्रीनीचप्रकृतावेष भूयिष्ठ दृश्यते रस। ना० शा० ६-५१।

भरत तथा अभिनव के इन उल्लेखो मे यह स्पष्ट हो जाता है कि रस स्वरूप प्रकृति का आधार वही पात्र होता है जो रस का आधार होता है। और रस या स्थायी भावो के आधार पात्र को आश्रय कोटि मे स्थान दिया जाता है। आलम्बन कोटि का पात्र उत्तमादि प्रकृतियुक्त तो होता है। परन्तु जब तक उसके स्थायी भाव उद्बुद्ध नहीं हो जाते तब तक उसकी प्रकृति रसस्वरूपता को नही प्राप्त कर पाती। और स्थायी भाव उद्बुद्ध होते है विभाव साक्षात्कारादि से। विभाव साक्षात्कारादि के उपरान्त यदि आलम्बन के स्थायी भाव उदबुद्ध हो जाते हैं तो वह भी आश्रय कोटि मे आ जाता है। ऐसी स्थिति मे उसके स्वभाव को भी रस-स्वरूप कहा जा सकता है।

डा० रघुवश ने नाट्य शास्त्रगत उपर्युक्त हास्य-परक कारिकाश तथा रौद्ररस परक उद्धरण के पाठ भेद पर टिप्पणी करते हुए यह स्वीकार कर लिया है कि इन उद्धरणो मे हास्य तथा रौद्र रस के आलम्बन विभावो की ओर सकेत किया गया है

'*भरत के समय हास्य के विभावो की स्थिति स्त्री और निम्न प्रकृति के* पुरुषो तक स्वीकार की गई है। परन्तु यह हास्य के आलम्बन की चर्चा है हास्य का रसानुभव सभी सामाजिक करते हैं।" भारत का ना०शा० अनुवाद पृ० ३५८।

इसी प्रकार रौद्र रस-परक उद्धरण के पाठ-भेद का स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं '*मनुष्यप्रभव पाठ का अर्थ सीधा ही है। यह रस राक्षस तथा उद्धत मनुष्य* से उत्पन्न होता है अर्थात् ये इसके आलम्बन है।" वही पृ० ३६६।

परन्तु डॉ० साहब का यह मन्तव्य भ्रामक प्रतीत होता है। क्योंकि हम देख चुके हैं कि भरत ने यहा पर आलम्बन विभावो की ओर सकेत न कर हास्य रस के *आश्रय तथा रौद्र रस की राक्षसादि प्रकृति स्वरूपता का निर्देश किया है।*

आलम्बन विभावों के भेदोपभेदों की ओर संकेत किया जा चुका है। आलम्बन विभावों के उन सभी भेदोपभेदों की रस स्वरूप प्रकृति के आधार अर्थात् आश्रय के रूप में योजना की जा सकती है।

उपयोगिता

स्थायी भावों को रसरूपता प्रदान कराने में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। स्थायी भावों के स्वरूप पर विचार करते हुए हम देख चुके हैं कि सभी स्थायी भाव सभी व्यक्तियों में समान रूप से नहीं प्रस्फुटित होते। क्रोधी उत्तम व्यक्ति का क्रोध ही रौद्र रस रूपता को प्राप्त हो सकता है किसी ऐरे गैर का क्रोध हास्य चर्वणा ही करायेगा। इसी प्रकार किसी बालक का क्रोध तथा रति भाव रौद्र तथा शृंगार रस रूपता को नहीं प्राप्त हो सकता। अतः रस व्यंजना में आश्रय पात्र की प्रकृति के महत्त्वपूर्ण योगदान का अपलाप नहीं किया जा सकता। भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के अन्तर्गत स्वभाव स्वरूप अनेक विशेषताओं का परिगणन किया गया है। उन विशेषताओं में से कुछ विशिष्ट विशेषताओं से युक्त प्रकृति विशिष्ट रसों की व्यंजना में अधिक सहायक सिद्ध होती है। जैसे उत्साही तथा ज्ञानी यह दोनों व्यक्ति उत्तम प्रकृतियुक्त तो होते हैं। परन्तु उनकी उत्साह तथा ज्ञानमूलक उत्तमता शृंगार व्यंजना की अपेक्षा वीर तथा शान्त रस व्यंजना में अधिक योगदान करेगी। इसीलिए आचार्यों ने प्रकृति के अनुरूप स्थायी भावों की योजना को रस व्यंजक तथा प्रकृत्यनौचित्य को रस भंग का हेतु स्वीकार कर लिया है। आनन्दवर्धन ने स्थायी भावादिकों के औचित्य को रस व्यंजना का मूल स्वीकार करते हुए प्रकृति के अनुरूप स्थायी भावादिकों की व्यंजना को स्थायी भावादिकों के औचित्य का मूल स्वीकार कर रस व्यंजना में प्रकृतियों की महत्ता को स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है

प्रकृतिह्युत्तममध्यमाधमभावेन, दिव्यमानुषादिभावेन च विभेदिनी। ता यथायथमनुसृत्यासंकीर्णः स्थायीभाव उपनिबध्यमान औचित्यवान् भवति।

ध्व० पृ० २६६॥

हम देख चुके हैं कि अभिनव ने भी प्रकृति को रस चर्वणोदय का हेतु स्वीकार किया है। वस्तुतः रस चर्वणा सामाजिक करता है और उसकी इस चर्वणा का हेतु समस्त काव्य-व्यापार ही होता है। परन्तु सामाजिक का हृदय संवाद आश्रयगत स्थायी भावों से ही होता है जिन्हें विशिष्ट प्रकृति-स्वरूप स्वीकार किया जा चुका है। इसीलिए अभिनव ने आश्रय की प्रकृति को रस चर्वणोदय का हेतु स्वीकार कर लिया है। क्योंकि सामाजिक की रस चर्वणा में उसकी प्रधान कारणता जो होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति भी अन्य रस तत्त्वों के समान रस-व्यंजना

का महत्त्वपूर्ण अंग है। परन्तु भरत ने रससूत्र मे इसका पृथक् निर्देश इसलिए नही किया है। क्योकि आश्रय के गुण जिनके आधार पर उन्हे विभिन्न प्रकार की उत्तमादि श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है उद्दीपन विभाव स्वरूप होते है। हम देख चुके है कि आश्रय की अपनी विशेषताए भी उसके स्थायी भावोदबोध म योगदान किया करती है। और भरत ने उन विशेषताओ को विभावो क रूप मे वीर रस के प्रकरण मे उद्धृत भी किया है। अत जब प्रकृति के आधारभूत गुणो का निर्देश विभाव निर्देश मे हो जाता था तो रस सूत्र में उनकी पृथक् रूप से चर्चा करना अनावश्यक ही था। परन्तु आश्रय की प्रकृति अन्य विभावो के समान आश्रय से पृथक् न होकर आश्रयगत ही होती है। अत इस विशेषता के आधार पर उनकी पृथक् रूप से की गई उपर्युक्त चर्चा को अनावश्यक नही कहा जा सकता।

विभावादिको का सयोग तथा रस निष्पत्ति—

उपर्युक्त सभी रस तत्त्वो के सयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रस रूपता को प्राप्त करता है। इसीलिए भरत ने उपर्युक्त समस्त तत्त्वो के सयोग की रस व्यजकता का प्रतिपादन किया है। यह हो सकता है कि किसी प्रकरण मे किसी तत्त्व की स्पष्टरूपेण योजना किसी कवि ने न की हो। परन्तु उस स्पष्टरूपेण अनियोजित तत्त्व का वहा पर सर्वथा अभाव नही स्वीकार किया जाता। अपितु उसे आक्षिप्त माना जाता है। और इस प्रकार उपर्युक्त समस्त तत्त्वो मे से किसी तत्त्व की स्पष्ट योजना के अभाव मे भी सभी तत्त्वो के सयोग की रस व्यजकता का प्रतिपादन किया जाता है। विभावादिको के सयोग की रस व्यजकता का प्रतिपादन करते हुए एक कारण और भी बताया जाता है। वह यह कि विभावादिको मे स कोई एक तत्त्व रस व्यजना कर नही सकता क्योकि विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो मे से कोई तत्त्व किसी एक रस का व्यजक नही होता। एक ही विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारीभाव अनेक रसो का व्यजक होता है। परन्तु यदि विभावादि सभी तत्त्वो की सयुक्त योजना की गई हो तो अभिव्यक्त स्थायी भाव की निश्चित प्रतीति हो जाती है। जैसा कि अभिनव तथा मम्मटादि ने स्वीकार किया है

तत्रानुभावाना विभावाना व्यभिचारिणा च पृथक स्थायिनि नियमो नास्ति। बाष्पादेरानन्दाक्षिरोगादिजत्वदर्शनात । व्याघ्रादेश्च क्रोधभयादिहेतुत्वात। श्र(श्र)मचिन्तादेरुत्साहभयाद्यनेकसहचरत्वावलोकनात् व्याभिचारिणि। तथाहि बन्धु-विनाशो यत्र विभाव परिदेवितास्थ्यपातादिस्त्वनुभाव चिन्तादैन्यादिर्व्य-भिचारी सोऽवश्य शोक एवे (व) त्येव मग्रयोदये शकात्मकविघ्नशमनाय सयोग उपात्त। ना० शा० अभि० पृ० २८४।

व्याघ्रादयो विभावा भयानकस्येव वीराद्भुतरौद्राणाम् अश्रुपातादयोऽनुभावा शृङ्गारस्येव करुणभयानकयो चिन्तादयो व्यभिचारिण शृङ्गारस्येव वीरकरुणभयानकानामिति पृथगनैकान्तिकत्वात् सूत्रे मिलिता निर्दिष्टा ।

का० प्र० पृ० ९१।

विभावानुभावव्यभिचारिणामेकस्य तु रसान्तरसाधारणतया नियतरसव्यञ्जकतानुपपत्ते सूत्रे मिलितानामुपादानम् । र० ग० पृ० ११६।

परन्तु हम देख चुके है कि यदि किसी प्रकरण मे किसी असाधारण विभावादि की योजना रस व्यजना करा भी रही हो तो वहा पर अन्य तत्त्वो का आक्षेप कर लिया जाता है।

फिर भी अभिनव के अनुसार विभावादिको मे से किसी एक तत्त्व की प्राधान्येन योजना की अपेक्षा रसास्वाद का उत्कर्ष समप्राधान्य योजना मे ही होता है

किन्तु समप्राधान्य एव रसास्वादस्योत्कर्ष । ना० शा० अभि० पृ० २८७।

भरत के अनुसार उपर्युक्त विभावादिक समस्त तत्त्वो के सयोग से या दूसरे शब्दो मे विभावो तथा अनुभावो के सयोग से व्यक्त भावो के उपगम से रस निष्पत्ति हो जाती है अथवा विभावो से व्यक्त विभिन्न भावो के द्वारा सामान्यगुण योग से रस निष्पन्न कर दिया जाता है या यों कहो कि स्थायी भाव अनेक भावो से उपगत होकर रसत्व को प्राप्त कर लेता है

नानाभावोपगमाद्रसनिष्पत्ति । ना० शा० पृ० २८७।

काव्यार्थसश्रितैर्विभावानुभावव्यञ्जितैरेकानपचाशद्भावै सामान्यगुणयोगेनाभिनिष्पद्यन्ते रसा । ना० शा० पृ० ३४६।

नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति। वही पृ० २८८।

परन्तु भावो की व्यजना विभावो तथा अनुभावो के सयोग से ही हो जाती है

एव ते विभावानुभावसयुक्ता भावा इति व्याख्याता । ना० शा० पृ० ३४८।

अत विभावो तथा अनुभावो के सयोग की ही भाव व्यजकता का प्रतिपादन किया गया है। भरत ने स्वय भी भावो के लक्षणो मे विभावो तथा अनुभावो का निर्देश कर उनकी विभाव तथा अनुभाव व्यजकता की स्थापना की है। इसी प्रकार रसाभासो तथा भावाभासादिको की भी विभावादिको के सयोग से ही व्यजना होती है।

भरत के अनुसार भावाभिनयादि मे व्यक्त स्थायी भावो का सुमनस् दर्शक आस्वादन करने लगते हैं

नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस प्रेक्षका हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति। ना० शा० पृ० २८९।

परन्तु अभिनव के अनुसार स्थायी भावो की व्यजना तथा सामाजिको के

द्वारा उनकी चवणा इन दोनों के मध्य मे रसादिको की अनुभूति मे सहायक कुछ व्यापारो के निष्पन्न हो जाने के उपरान्त ही सामाजिक रसानुभूति करता है। और उन सभी व्यापारो की निष्पन्नता के हेतु भी विभावादिही होते हैं। अत रस स्वरूप पर विचार करने मे पूर्व रसानुभूति म सहायक उन व्यापारो पर दृष्टिपात कर लेना अप्रासगिक न होगा।

विघ्नापसारण—

अभिनव ने निर्विघ्न प्रतीति ग्राह्य भाव को ही रस नाम से अभिहित किया है

सर्वथा रसनात्मकवीतविघ्नप्रतीतिग्राह्यो भाव एव रस ।

ना० शा० अभि० पृ० २८० ।

अतएव उन्होंने उस प्रतीति को सविघ्न बनाने वाले हेतुओ की चर्चा करते हुए उन विघ्नों को दूर कर देने वाले उपायो का विस्तार पूर्वक निर्देश किया है। उनके अनुसार निम्नलिखित विघ्न रसात्मक प्रतीति के व्याघातक होते हैं

विघ्नाश्चास्या प्रतिपत्तावयोग्यता सभावनाविरहो नाम स्वगतपरगतत्वनियमेन देशकालविशेषावेशो निजसुखादिविवशीभाव प्रतीत्युपायवैकल्य स्फुटत्वाभावो अप्रधानता सशययोगश्च । ना० शा० अभि० पृ० २८० ।

इन विघ्नो मे से प्रथम तीन विघ्न सामाजिक से तथा अन्तिम चार विघ्न काव्य स सम्बद्ध होते है। परन्तु इन दोनो प्रकार के विघ्नो का अपसारण विभावादिको के द्वारा ही होता है

तत्र विघ्नापसारका विभावप्रभृतय । वही पृ० २८० ।

जैसे प्रतिपत्ति मे अयोग्यता नामक विघ्न लोकसामान्य तथा प्रख्यात वस्तु की योजना करने से, देशकालविशेषावेश नामक द्वितीय विघ्न पूर्वरग, प्रस्तावना, भाषा तथा लास्यादिको के प्रयोग से, निजसुखदु खादिविवशता नामक तृतीय विघ्न वाद्य गान तथा नृत्यादिको से तथा काव्यगत प्रतीत्युपायवैकल्य, स्फुटत्वाभाव,अप्रधानता तथा सशययोग नामक विघ्न विभावादिको की सयुक्त तथा समुचित योजना करने से अपसृत हो जाते हैं। वही पृ० २८०-२८४।

उपर्युक्त सामाजिकगत विघ्नो के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अभिनव ने हृदयसवाद सधारणीकरण तथा सहृदयता का क्रमश प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय विघ्नो का अपसारक हेतु स्वीकार किया है। और विभावादिको को हृदयसवाद, साधारणीकरण तथा सहृदयता का आश्रय स्वीकार किया है। अभिनव की इस स्वीकृति मे प्रतीत होता है कि विभावादि प्रथम तीन विघ्नो का अपसारण तो परम्परा सम्बन्ध स करते है तथा अन्तिम चार विघ्नो का साक्षात् सबन्ध मे। अत यहा पर प्रथम तीन विघ्नो के अपसारक उन हेतुओ की सक्षिप्त चर्चा कर

नेना असगत न होगा।

हृदय-सवाद—

अभिनव के अनुसार काव्यगत विषयो को असभव मानने वाला व्यक्ति कभी भी रसास्वादन नही कर सकता। परन्तु लोक सामान्य विषयो की योजना मे प्राय व्यक्तियो का हृदय सवाद हो जाता है और वे रसानुभाव करने लगते हैं। अतएव उन्होने काव्य मे लोकसामान्य वस्तु की याजना करने पर विशेष बल दिया है

तथाहि सवेद्यमसभावयमान सवेद्ये सविद विनिवेशयितुमेव(यो)न शक्नोति का तत्र विश्रान्तिरिति प्रथमो विघ्न । तत्रपसारणे हृदयसवादो लोकसामान्यवस्तुविषय । ना० शा० अभि० पृ० २८०।

इसी प्रकार भरत ने भी हृदयसवादी अर्थ की रस जनकता का प्रतिपादन किया है

योऽर्थो हृदयसवादी तस्य भावो रसोद्भव ।

शरीर व्याप्यत तेन शुष्क काष्ठमिवाग्निना ।। ना० शा० ७ ७

इस प्रकार हम देखते हैं कि हृदयसवादी विषय ही वस्तुत रसानुभूति करा सकते हैं। और कोई भी विषय हृदयसवादी तब होता है जब कि वह लोक सामान्य हो दूसर शब्दो मे विभावादिको के औचित्य से युक्त हो। इसी लिए प्रबन्ध व्यजको मे विभावादिको के औचित्य को प्रथम हेतु स्वीकार किया गया है

विभावभावानुभावसचार्यौचित्यचारुण ।

विधि कथाशरीरस्य वृत्तस्योत्प्रेक्षितस्य वा ।। ध्व० ३ १६ ।

विषय के समान व्यक्ति का हृदय सवादी होना भी रसानुभूति के लिए आवश्यक होता है। सामान्यतया यदि काव्यगत विषय औचित्य युक्त होता है तो वह व्यक्ति को हृदयसवादी बना ही देता है। परन्तु कुछ व्यक्ति स्वभावत भी हृदयसवादी होते हैं। अभिनव के अनुसार ऐसे व्यक्तियो को ही वस्तुत सहृदय कहा जा सकता है

येषा काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसवादभाजा सहृदया । ध्व० लोचन० पृ० ६३।

इसी प्रकार भरत ने भी श्रेष्ठ प्रेक्षक उन्हे ही माना है जो वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता से युक्त अर्थात् हृदयसवादी होते हैं

यस्तुष्टो तुष्टिमायाति शोके शोकमुपैति च ।।

क्रुद्ध क्रोधे भये भीत स श्रेष्ठ प्रेक्षक स्मृत । ना० शा० २७-६१-६२।

साधारणीकरण—

उपर्युक्त द्वितीय देशकाल-विशेषावेश नामक विघ्न काव्यगत विषयों को स्वगत अथवा परगत मानने के कारण उपस्थित हो जाता है। परन्तु काव्यगत विभावादिकों के विभावनादि व्यापार से जब काव्यगत विषय साधारण रूप में प्रतीत होने लगते हैं तो उस विघ्न का निवारण हो जाता है। इस प्रकार इस साधारणीकृत प्रतीति के हेतु भी विभादि ही होते है। जैसा कि अभिनव ने स्पष्ट रूप से कह भी दिया है

साधारणी (भावना च) विभावादिभिरिति। ना० शा० अभि० पृ० २८६। विभावादिकों के द्वारा यह विघ्न किस प्रकार निर्मूल कर दिया जाता है? इस प्रश्न का उत्तर उनके द्वारा निर्दिष्ट साधारणीकरण प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने से हो जाता है। अपने रस विवेचन को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए अभिनव कहते हैं

मुकुटप्रतिशीर्षकादिना तावन्नटबुद्धिराच्छाद्यते। गाढप्राक्तनसंविल्संस्काराच्च काव्यबलानीयमानापि न तत्र रामधीर्विश्राम्यति। अत एवोभयदेशकालत्यागः। रोमाचादयश्च भूयसा रतिप्रतीतिकारितया दृष्टास्तत्रापि लौकिका(स्तावनाक्ता) देशकालनियमेन तत्र रतिं गमयन्ति। यस्यां स्वात्मापि तद्वासनावत्त्वादनुप्रविष्टः। अत एव न तटस्थतया रत्यवगमः। न च नियतकारणतया। येनार्जनाभिषगादिसम्भावना। न च नियतपरात्मैकगतत्त्या। येन दुःखद्वेषाद्युदयः। तेन साधारणीभूता सन्तानवृत्तेरेकस्या एव वा संविदो गोचरभूता रतिः शृंगारः।

ना० शा० अभि० पृ० २८५।

—अर्थात् (नाटक में अनुकार्य की वेषभूषा के अनुरूप नट के द्वारा धारण किए गए) मुकुट पगड़ी आदि के द्वारा पहले नटबुद्धि आच्छादित हो जाती है। और पूर्वकाल के गाढज्ञान सस्कारों एवं काव्य के द्वारा बलपूर्वक कराई जाने पर भी रामबुद्धि उस (नट) में स्थिर नहीं होती है। इसलिए नट तथा रामादि दोनों (से सम्बद्ध) देशकालादि का परित्याग हो जाता है। और (लोक में जो व्यभिचारी भाव) बहुधा रति की प्रतीति कराने वाले रूप में देखे गए हैं फिर भी वे व्यभिचारी भाव रोमाञ्चादि (अनुभाव नट में) भी देशकालादि के नियम के बिना रति का बोध कराते है। जिस (प्रतीति) में (सामाजिक का) अपना आत्मा भी सस्कारयुक्त (सहृदयत्वशालि) होने के कारण आ जाता है। इसलिए (वह) रत्यादि का ज्ञान तटस्थ रूप में नहीं होता है। और न (सीतारामादि रूप) निश्चित कारणों से होता है कि जिसमें (उसमें) अर्जन विषयावेश (अभिष्वग) आदि (विघ्नों) की सम्भावना हो। और न निश्चित रूपसे परगत (नटगत) रूप से (उसकी प्रतीति होती है) जिससे (परगत रत्यादि को देखकर) दुःखद्वेषादि

की उत्पत्ति हो। इसलिए (क्षणिकतावादी जो बौद्ध चित्तसतान चित्तधारा मानते हैं उनके मत म) साधारणीभूत चित्तवृत्तिप्रवाह की अथवा (स्थिरतावादी न्यायादि के मत मे) एक ही नान की विषयभूत रति शृ गार (रस कहलाती) है। आभि० पृ० ४८६।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिनव के अनुसार विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव तथा स्थायी सभी का साधारणीकरण होता है। भट्टनायक को भी यही अभीष्ट था जैसा कि पण्डितराज के कथन से स्पष्ट है

मतस्यैतस्य पूर्वस्मात्मताद् भावकत्वव्यापारान्तर स्वीकार एव विशेष। भागस्तु व्यक्ति। भोगकृतत्व तु व्यजनादविशिष्टम्। अन्यत्तु सैव सरणि। र० ग० पृ० १००।

अत डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित का यह कथन जिसमे वे भट्टनायक तथा अभिनव के साधारणीकरण मे अन्तर खोजते हुए से प्रतीत होते हैं सही नहीं है

'इस प्रकार भट्टनायक द्वारा कथित विभावादि का साधारणीकरण उन्हीं तक सीमित न रहकर प्रमाता के साधारणीकरण तक पहुच गया। आदि"

रससिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृ० ११६।

वस्तुत प्रमाता का साधारणीकरण भी जिसे डॉ० साहब ने स्वीकार किया है सर्वथा स्वीकाय प्रतीत नही होता। क्योंकि साधारणीकरण तो विभावादि एव स्थायी का ही होता है। प्रमाता के स्थायी का तो उसमे अनुप्रवेश स्वीकार किया गया है। (यस्या स्वात्मापि तद्वासनावत्वादनुप्रविष्ट)। जिसे प्रमाता का साधारणीकरण कहना उचित न होगा। वामनी मे साधारणीकरण का सक्षिप्त तथा सटीक लक्षण दिया गया है

"अन्यसबन्धित्वेनासाधारणस्य विभावादे स्थायिनश्च व्यक्तिविशेषाशपरिहारेणोपस्थापन साधारणीकरणम्"। का० प्र० वामनी पृ० ६।
परन्तु यहा पर प्रमाता के साधारणीकरण का निर्देश नही है। केवल विभावादि तथा स्थायी के ही साधारणीकरण का उल्लेख है।

एक प्रश्न यह उठता है कि यह साधारणीकरण होता क्यो है?

अभिनव के विवेचन पर दृष्टिपात करने से इसका भी उत्तर सरलता से मिल जाता है। सामाजिक सहृदयता अर्थात् विमल प्रतिभानशालिहृदयतावश काव्यार्थ को देशकालादि विभाग से असम्पृक्त रूप म ग्रहण करता है। अर्थात सहृदय को होन वाली काव्यार्थ की प्रतीति देशकाल के बधन से मुक्त होती है। काव्यगत भीत मृगशावक को साधारण रूप मे तथा त्रासक को अपारमार्थिक रूप मे ग्रहण करन के कारण मृगशावक का भय भी देशकाल से मुक्त बन जाता है। और इसीलिए स्व-पर, सुख-दु ख तथा हानि-लाभ आदि से मुक्त हो जाने से वह आस्वाद्य होता है

अधिकारी चात्र विमलप्रतिभानशालिहृदय । तस्य च ग्रीवाभङ्गाभिरामम्० इत्यादि वाक्येभ्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तेरनन्तर मानसी साक्षात्कारात्मिका अपहृसित-तत्तद्वाक्योपात्तकालादिविभागा तावत् प्रतीतिरुपजायते ।

तस्या च यो मृगपोतकादिर्भाति तस्य विशेषरूपत्वाभावाद भीत इति त्रासकस्यापारमार्थिकत्वाद् भयमेव पर देशकालाद्यनालिङ्गित तत एव भीतोऽह, भीतोऽय शत्रुर्वयस्यो मध्यस्थो वा इत्यादि प्रत्ययेभ्यो सुखदु खादिकृत (हानादि) बुध्यन्तरादयनियमवत्तया विघ्नबहुलेभ्यो विलक्षण निर्विघ्नप्रतीतिग्राह्य साक्षादिव हृदये निविशमान चक्षुषोरिव विपरिवर्तमान भयानको रस । तथाविधे हि भये नात्मात्यन्त तिरस्कृतो न विशेषत उल्लिखित । अभि० पृ । ४७१

अभिनव के विवेचन पर दृष्टिपात करने से साधारणीकरण के हेतु भी स्पष्ट हो जाते हैं। अभिनव के अनुसार साधारणीकरण का मुख्य तथा प्रथम कारण सामाजिक की सहृदयता को कहा जाएगा। इसीलिए वे सर्वप्रथम उसका निरूपण कर लेते है। नटादि सामग्री को भी साधारणीकरण का हेतु कहा जा सकता है क्योंकि नटादि सामग्री सहृदयता का सचार करने मे सहायक होती है

तदत्र साक्षात्कारायमाणत्वेन परिपोषिका नटादि सामग्री । अभि०-४७१ ।

आतोद्यगानविचित्रमण्डपपदविदग्धगणिकादिभिरुपरजन समाश्रित येनाहृदयोऽपि हृदयवैमल्यप्राप्त्या सहृदयीक्रियत । अभि० पृ० ४७६ ।

इसी प्रकार विभावादि जोकि विभावना अनुभावना समुपरजकत्व प्राण होते है साधारणीकरण के हेतु स्वीकार ही किए गए हैं। वैसे नटादि सामग्री को भी विभावादिकों के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। परन्तु सहृदयता को पृथक रूप से हेतु स्वीकार करना ही ठीक है। इसीलए रस-प्रक्रिया का निर्देश करते हुए भी अभिनव उसका सकीर्तन अवश्य कर लेते ह

तत्र लोकव्यवहारे कार्यकारणसहचारात्मकलिंगदर्शने स्थाय्यात्मपरचित्तवृत्यनुमानाभ्यासपाटवादधुना तैरेवोद्यानकटाक्षवीक्षादिभिर्लौकिकीं कारणत्वादिभुवमतिक्रान्तैर्विभावनानुभावनासमुपरजकत्वमात्रप्राणै अत एवालौकिकविभावादिव्यपदेशभाग्भि प्राच्यकारणादिरूपसंस्कारानुजीवनव्यापनाय विभावादिनामधेयव्यपदेश्यैर्भावाद्यप्रायेऽपि वक्ष्यमाणस्वरूपभेदैर्गुणप्रधानतापर्ययेण सामाजिकधियि सम्यग्याग सम्बन्धमैकाग्र्य वासादितवद्भि अलौकिकनिर्विघ्नसवेदनात्मकचर्वणागोचरता नीतोऽर्थ चर्व्यमाणतैकसारो न तु सिद्धस्वभाव तात्कालिक एव न तु चर्वणातिरिक्तकालावलम्बी स्थायिविलक्षण एव रस । अभि० पृ० ४८३ ।

अर्थात लोकव्यवहार मे कार्यकारण सहकारी रूप लिंगो (अनुमापक हेतुओ) को देखकर (रत्यादि रूप) स्थायिभावात्मक अन्य व्यक्ति की चित्तवृत्ति के अनुमान के अभ्यास की तीक्ष्णता के कारण उन्ही उद्यान कटाक्षवीक्षण आदि (अनुभावो) के द्वारा (जोकि नाटको मे) कारणत्व आदि रूप को छोड़कर विभावना अनु

भावना एव समुपरञ्जकत्वमात्र रूप का प्राप्त इसलिए अलौकिक विभावादि नामों से निर्दिष्ट किए जाने वाले और भावाध्याय (सप्तम अध्याय) मे भी जिनका स्वरूप आगे कहेंगे इस प्रकार के (विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के) सामाजिक की बुद्धि मे गुणप्रधानभाव से भली प्रकार के योग अर्थात् सम्बन्ध अथवा एकत्रीभाव को प्राप्त हुए (विभावादि) के द्वारा अलौकिक तथा निर्विघ्न सवेदन रूप चर्वणा का विषय बनाया गया हुआ (रत्यादि रूप) अर्थ जिनका चर्वणा ही एकमात्र सार है न कि घटादि के समान पहिले से सिद्ध अर्थात् विद्यमान स्वरूप वाला अर्थात् केवल उस (चर्वणा) के काल मे ही रहने वाला अर्थात् चर्वणा से अतिरिक्त काल मे न रहनेवाला इस लिए भट्टलोल्लट तथा शकुक आदि के रसाभिमत स्थायीभाव से विलक्षण रस होता है।' अभि० पृ० ४८३।

इस प्रकार सक्षेप मे हम कह सकते है कि विभावादि तथा स्थायी सभी का साधारणीकरण होता है। सामाजिक की अपनी वासनाओ का भी उस स्थायी की प्रतीति मे अनुप्रवेश होता है । साधारणीकरण सामाजिक की सहृदयता तथा काव्य की देशकालाद्यनालिंगित स्वरूपता के कारण होता है । सामाजिक का लोकानुभव अर्थात् उसकी विमलप्रतिभानशालिहृदयता एव विभावनादि व्यापारयुक्त विभावादि साधारणीकरण के हेतु होते हैं।

डा० नगेन्द्र ने साधारणीकरण प्रक्रिया मे सम्बन्धित विषयवस्तु की विशद समीक्षा करते हुए प्राचीन परम्परा प्राप्त मान्यता मे भिन्न एक नए सिद्धान्त की स्थापना की है। जैसा कि वे कहते हैं

"अन्त मे हम घूम फिरकर भट्ट नायक के इस मन्तव्य पर लौट आते हैं कि साधारणीकरण वास्तव मे सर्वांग का होता है। दूसरे शब्दो मे सम्पूर्ण प्रसग ही विशिष्ट देशकालबद्ध घटना न रहकर साधारणीकृत हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्रमाता की चेतना भी व्यक्ति-ससर्गों से मुक्त साधारणीकृत हो जाती है।"

रस सिद्धान्त पृ० २०१।

परन्तु डॉ० साहब को प्राचीन आचार्यों का यह सिद्धान्त सन्तुष्ट नही कर पाता। अत अपनी एक नई देन के लोभ मे या यो कहिए कि जिस सिद्धान्त की स्थापना वे पहले 'रीतिकाव्य की भूमिका' मे कर चुके थे उसी के समर्थन के आग्रह स्वरूप वे पुन कहते हैं

किन्तु यह काव्य-प्रसग तो अपने आप मे जड वस्तु है—इसका चैतन्य अश तो इसका 'अर्थ' है और यह अर्थ क्या है ? कवि का सवेद्य—कवि की अनुभूति, सामान्य भावानुभूति नही, सर्जनात्मक अनुभूति, भाव की कल्पनात्मक पुन सर्जना की अनुभूति—भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली मे 'भावना'। इसी का शास्त्रीय नाम "व्यर्थ है। जो एक ओर कवि के अर्थ का व्यक्त करता है और दूसरी ओर प्रमाता के चित्त मे समान अर्थ को उद्बुद्ध करता है। काव्य प्रसग

इसी का मूर्तरूप या बिम्ब है। अर्थ के अनुरूप ही यह बिम्ब सरल अथवा सश्लिष्ट होता है—प्राय सश्लिष्ट ही होता है। अत काव्य-प्रसग और कुछ नहीं कवि की भावना का बिम्ब मात्र है। यह काव्य-प्रसग या बिम्ब शरीर है और कवि भावना उसको प्रकाशित करने वाली चैतन्य आत्मा है। और चूकि साधारणीकरण जड यान्त्रिक क्रिया न होकर चैतन्य क्रिया है। अत काव्य-प्रसग या रस के समस्त अवयवो का साधारणीकरण मानने की अपेक्षा कवि भावना का साधारणीकरण मानना मनोविज्ञान के अधिक अनुकूल है। वही पृ० २०६।

डॉ० साहब के उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वे साधारणीकरण किसका होना है ? इसका निर्णय करते हुए कवि की सजनात्मक अनुभूति या भावना का साधारणीकरण होने का प्रतिपादन करते हैं।

डॉ० साहब की यह मान्यता साहित्यिक जगत् म पर्याप्त विवाद का विषय रही है। अपनी मान्यता पर लगाए जाने वाले एक आक्षेप का उत्तर देते हुए वे आगे कहते है

दूसरा आक्षेप यह है कि जिस प्रकार प्रत्येक स्थिति मे आश्रय के साथ तादात्म्य स्थापित करना हमारे लिए सभव नही। इसी प्रकार प्रत्येक स्थिति म कवि के साथ तादात्म्य करने मे कठिनाई हो सकती है। जिस प्रकार आश्रय की भावनाए हमारी भावनाओ के सवथा विपरीत हो सकती है इसी प्रकार कवि की भी। इस समस्या का समाधान भी कठिन नही है। ये सभी परिस्थितिया वास्तव मे ऐसी है जहा स्वय कवि अपनी भावना का साधारणीकरण करने मे असमर्थ रहता है। साम्प्रदायिक चेतना अथवा राजनीतिक या साहित्यिक पूर्वाग्रह के कारण उसकी अनुभूति विशिष्ट ही रहती है। और जब कवि स्वय ही अपनी अनुभूति के साधारणीकरण म असमथ रहता है तब पाठक समाज के चित्त मे समान अनुभूति का उद्बोध वह कैसे कर सकता है ? इस प्रकार मूलत असाधारणीकृत या साधारणीकरण के अयोग्य कवि अनुभूति का उदाहरण देकर हमारी स्थापना को असिद्ध नही किया जा सकता। वास्तव म उपर्युक्त उदाहरणो मे तो अनुभूति व्यक्तिगत ही रह जाती है। काव्यानुभूति वह बन ही नही पाती क्योकि कवि अथवा यो कहें कि कवि-कर्म मे रत व्यक्ति स्वय अपने चित्त को एक तान नही कर पाया। रस-सिद्धान्त, पृ० २११।

डा०साहब के उपर्युक्त समाधानके अनुसार तो साहित्य का एक बहुत बडा भाग साधारणीकरण के अयोग्य हो जाने के कारण आस्वाद योग्य ही नही रह जाएगा। जबकि ऐसे सामयिक एव राजनीतिक प्रभाव से युक्त साहित्य का सामान्यतया सर्वत्र प्रचलन है और उसका आस्वादन किया जाता है। जनतान्त्रिक देशो मे जन-मानस स्वतत्रता प्रेमी होने के कारण सवदा जनतान्त्रिक विचारधाराओ से अनुप्राणित साहि य का समादर करेगा। वैसी रचनाओ म वह रसास्वादन भी

करेगा। अतः वहां साधारणीकरण की सत्ता को भी स्वीकारना ही होगा। वस्तुतः व्यक्ति के संस्कारों का किसी भी स्थिति में अपलाप नहीं किया जा सकता। इसीलिए अभिनव ने रसचर्वणा के व्याघात स्वरूप विघ्नों की चर्चा करते हुए सर्वप्रथम सामाजिक की प्रतीति में व्याघात उपस्थित करने वाले प्रतिपत्ति की अयोग्यता नामक विघ्न के निवारण हेतु लोक सामान्य तथा प्रख्यात वस्तु की योजना करने का निर्देश दिया है

तथाहि संवेद्यमसंभावयमानः संवेद्ये संविद निवेशयितुमेव न शक्नोति का तत्र विश्रान्तिरिति प्रथमो विघ्नः। तदपसारणे हृदयसंवादो लोकसामान्यवस्तुविषय अलोकसामान्येषु तु चेष्टितेष्वखण्डितप्रसिद्धिजनितगाढप्रत्ययप्रसरकारीप्रख्यातरामादिनामधेयपरिग्रहश्चोपायः। अभि० पृ० ४७४।

जहां तक व्यक्तियों के वैयक्तिक संस्कारों अथवा विशिष्ट चेतनाओं आदि का सम्बन्ध है वे अपरिहार्य है। इसीलिए भरत तथा अभिनव ने विभिन्न रसों का स्वरूप निरूपण करते हुए रसों की विशिष्ट प्रकृति स्वरूपता का प्रतिपादन किया है। अतः हम मानव प्रकृति को तो बदल नहीं सकते। हम अपने सिद्धान्तों को ही उसके अनुरूप बनाना होगा। यदि सामाजिक वैसी रचनाओं में रसास्वादन करता है तो हमें भी उसे स्वीकार करना ही होगा तथा वहां भी साधारणीकरण की सत्ता को स्वीकार करना होगा। यह सम्भव है कि किसी विशेष स्थल में कवि ऐसे विभावादिकों की योजना अशक्ति के कारण कर बैठे जो साधारणीकरणके अयोग्य होनेके कारण रसव्यंजना के अनुपयुक्त हों और वहां पर रसानुभूति भी सामाजिक को न हो। परन्तु यदि किसी रचना का सामाजिक तो आस्वादन करते हों परन्तु कवि का हृदय उसमें संवादित न होता हो, आवेश में आकर उसने वैसी रचना करदी हो परन्तु कालान्तर में कवि उस रचना को अनास्वाद्य मानने लगा हो तो केवल इसी आधार पर कविता को अकविता नहीं कहा जा सकता। "सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा" इस राष्ट्रीय गीत का गायक कवि कालान्तर में इस गीत से नफरत करने लगा था और उसने अपना गीत ही बदल डाला। परन्तु यह गीत आज भी लोगोंकी हृत्तन्त्री को झंकृत कर देता है। इकबाल साहबको नापसन्द हो जाने पर भी यह गीत गीत है। इकबाल साहब के परिवर्तन को तो लोगों ने स्वीकार कर लिया

हिन्दी होने पे नाज जिसे कल तक था हजाजी बन बैठा।
अपनी महफिल का रिन्द पुराना आज नमाजी बन बैठा॥ बांगे दरा पृ० २२।
परन्तु सारे जहां गीत आज भी पूर्ववत् सुना जाता है।

अतः यह स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं दृष्टिगत होती कि साधारणीकरण के योग्य सभी रचनाओं का साधारणीकरण होता है। यदि कोई रचना किसी पूर्वाग्रह से युक्त होती भी है तो साधारणीकरण हो जाने से वह देशकाल के

बन्धन से मुक्त हो जाती है। अतः साधारणीकरण सभी आस्वाद्य रचनाओं का स्वीकार करना अभीष्ट प्रतीत होता है चाहे वे राजनीतिक पूर्वाग्रह से युक्त हो या साहित्यिक अथवा साम्प्रदायिक चेतना से प्रभावित हो। हो सकता है कि वैसी रचनाएं देशकाल के बंधन को पारकर सर्वत्र सर्वदा के लिए दृष्ट न हो सकें। परन्तु देशकाल के बन्धन मे आबद्ध है कौन नही ? बन्धन सकुचित अथवा उदार हो सकता है परन्तु बन्धन विहीन कवि या रचना की कल्पना मात्र कल्पना ही प्रतीत होती है। भारत तथा चीन के युद्ध के समय रचे गये साहित्य ने देश काल के बन्धन से आबद्ध होते हुए भी भारतीय जन मानस को रसाप्लावित किया है।

डॉ० साहब के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने साधारणीकरण प्रक्रिया को स्वीकार करने की मूल आवश्यकता की ओर ध्यान न देकर साधारणीकरण किसका होता है? इस प्रश्न पर ही अपना ध्यान अधिक केन्द्रित रक्खा है। और इसीलिए उनकी मान्यता जिसे वे मनोवैज्ञानिकता के बल पर स्थापित करना चाहते है मूल प्रश्न से हट गई है।

साधारणीकरण शब्द का प्रयोग रस के क्षेत्र मे सर्वप्रथम भट्टनायक ने किया है ऐसा स्वीकार किया जाता है। परन्तु भट्टनायक का अपना कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही हुआ है। अभिनव गुप्त तथा मम्मटादि ने केवल उनके अभिमत का उल्लेख भर किया है। अतः भट्टनायक का पूर्ण विवेचन उपलब्ध न होनेके कारण हम यह नही कह सकते कि उन्होने रस के क्षेत्र मे इस शास्त्रीय विवाद को क्यो लाकर खड़ा कर दिया था।

अभिनव की रस सम्बन्धी मान्यताएं अभिनव भारती के प्रकाशन से सहृदय समाज के सम्मुख स्पष्ट हो चुकी है। अभिनव के अनुसार साधारणीकरण को स्वीकार करने का मुख्य कारण काव्य तथा नाटकगत विषयो को स्वगत अथवा परगत मानने के कारण उत्पन्न होने वाला देश-कालादि का प्रभाव प्रतीत होता है। यदि साधारणीकरण की प्रक्रिया को न स्वीकार किया जाय तो काव्य तथा नाटकगत विषय सामग्री व्यक्ति विशेष से सबद्ध हो जायेगी। वैसी स्थिति मे किसी नाटक को देखकर अथवा काव्य का श्रवणकर वैसी ही स्थिति का उपस्थित हो जाना अवश्यभावी है जैसी कि इन्द्र विजयोत्सव मे भरत मुनि के द्वारा अभिनीत नाटक को देखकर दैत्यो ने उपस्थित कर दी थी जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। काव्यगत तथा नाटकगत पात्रो के क्रिया कलापो को देख सुनकर श्रोता अथवा दर्शक क्यो भाव विभोर हो जाता है ? एक ही नायिका के हाव-भावो से अनेको दर्शक तथा श्रोता एक ही स्थान पर बैठे हुए विमुग्ध होते रहते है और आपस मे किसी को किसी से कोई शिकायत नही होती। नायक नायिका की मृत्यु पर विलख रहा है फिर भी दर्शक अश्रुधारा बहाते हुए भी उस दृश्य का बार-बार

देखता है। यह सब क्यों होता है ? अभिनव का कहना है कि यह सब साधारणीकरण के कारण होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारणीकरण के जन्मदाताओं के सामने जो मूल समस्या थी तथा जिसका समाधान करने के लिए उन्होंने एक प्रक्रिया को खोजा था और उसे साधारणीकरण नाम देकर प्रतिष्ठित किया था डा० साहब ने उस मूल समस्या की ओर दृष्टिपात न करके अपने सिद्धान्त की स्थापना कर डाली है।

अभिनव के अनुसार काव्य तथा नाटकगत विषय जब तक स्व-पर सम्बन्ध से मुक्त नहीं हो जाते सामाजिक रसास्वाद कर ही नहीं सकता है। साधारणीकरण प्रक्रिया के द्वारा काव्य तथा नाटकगत विषयों के स्व-पर सबन्ध से मुक्त हो जाने के उपरान्त ही सामाजिक रसास्वादन कर सकता है। उनके मन्तव्य को देखिए —

स्वैकगतानां च सुखदु.खसंविदामास्वादे यथासंभवं तदपगमभीरुतया वा, तत् परिरक्षाव्यग्रतया वा, तत्सदृशार्जिजीविषया वा तज्जिहासया वा, तत्प्रचिख्यापयिषया वा तद्गोपनेच्छया वा, प्रकारान्तरेण वा संवेदनान्तर समुद्गम एव परमो विघ्न ।

परगततवनियमभाजामपि सुखदु खाना संवेदने नियमेन स्वात्मनि सुखदु ख-मोहमाध्यस्थादिसंविदन्तरोदगमनमभावदवश्यभावी विघ्न ।

तदपसारणे कार्यो नातिप्रसंगगोऽत्र' इत्यादिना पूर्वरंगविधि प्रति इति पूर्व-रंगानिगूहनेन 'नटी विदूषको वापि' इति लक्षितप्रस्तावनावलोकेन च यो नटस्पर्नाद्रिमसंस्पर्श्यम्मर प्रतिशीर्षकादिना तत्प्रच्छादनप्रकारोऽभ्युपाय, अलौकिकभाषादिभेदनाम्यागरंगपीठमण्डपगतकक्ष्यादिपरिग्रह-नाट्यधर्मि सहित । तस्मिन हि सति अन्यैव' 'अत्रैव एतद्वेव च सुख दु ख वेति न भवति। प्रतीति-स्वरूपस्य निह्नवात् रूपान्तरस्य चारोपितस्य प्रतिभासविद्धिश्रान्तिस्वरूपे विश्रान्त्यभावात । सत्ये तदीयस्य परिह्नवमात्रे एव पर्यवसानात् ।

स एष सर्वो मुनिना साधारणीभावसिद्धया रसचर्वणोपयोगित्वेन परिकरबन्ध समाश्रित इति तत्रैव स्फुटीभविष्यति तदिह तावन्तोद्यमनीयम। तत स एष स्वपर-नियतता विघ्नापसारणप्रकारो व्याख्यात । अभि० पृ० ४७५ — ४७६

—अर्थात् (यदि सामाजिक) स्वगत सुख दु ख आदि प्रतीतियों का आस्वादन करता है तो कभी उसके नष्ट होने के भय से, कभी उसकी रक्षा के लिए व्यग्र हो जाने से अथवा उसके सदृश अन्य सुख की प्राप्ति की इच्छा से, अथवा उस (दु ख) के परित्याग की इच्छा से, अथवा उसको प्रकट करने की इच्छा से, या उसको छिपाने की इच्छा से अथवा अन्य किसी प्रकार से अन्य ज्ञान का उत्पन्न हो जाना ही (रसास्वाद का) महाविघ्न है।

और परगतत्व के नियम मे युक्त (नियमन नटगत रस) मानने पर भी सुख दुःख आदि का संवेदन होने पर सामाजिक को अपने भीतर निश्चय रूप से सुख-दुःख मोह या माध्यस्थ्यादि अन्य ज्ञानो के उत्पन्न होने से (रसास्वाद मे) विघ्न अवश्य होगा।

उसके निवारण के लिए (कार्यो नाति प्रसगोऽत्र) इत्यादि के द्वारा तथा 'पूर्व-रगविधि प्रति' इत्यादि द्वारा (निर्दिष्ट) पूर्वरंग के (अनिगूहन) दर्शन एव 'नटी विदूषको वापि' इस रूप मे लक्षित प्रस्तावना के अवलोकन से जो नटरूपता की प्रतीति होती है उसके साथ (अनुकार्य रामादि के वेष-भूषा के अनुरूप) मुकुटादि के द्वारा अलौकिक भाषादि के भेद नृत्यादि के अंग, रंगपीठ तथा मण्डपगत कक्ष्यादि के परिग्रहरूप नाट्यधर्मी सहित नट के स्वरूप प्रच्छादन का प्रकार उपाय है। क्योंकि उसके होने पर इसी (नट) का यहां ही और इसी मे सुख या दुःख होता है यह नहीं कहा जा सकता। (नट की) प्रतीति के स्वरूप का (मुकुटादि द्वारा) आच्छादन हो जाने से उसमे आरोपित रूप (रामादि) के प्रतिभानात्मक संविद् मे विश्रान्ति न होने से और अपने स्वरूप मे विश्रान्ति का अभाव होने से स्वरूप मे विश्रान्ति के होने पर इसके (नट, के) स्वरूप के आच्छादन मे ही पर्यवसान हो जाने से।

भरतमुनि ने साधारणीकरण की सिद्धि द्वारा रसास्वादन के उपयोगी इस सब कारण कलाप का संग्रह कर दिया है यह बात यथा स्थान वहां ही स्पष्ट होगी। इसलिए यहां उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इस तरह यह नियत रूप से स्वगत या परगत (रसानुभूति मे आने वाले) विघ्नो के कारण का प्रकार दिखलाया है। अभि० पृ० ४७५-४७६।

अभिनव के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारणीकरण रसास्वादन का अनिवार्य अंग होता है और यह साधारणीकरण होता है विभावादिको का न कि कवि अनुभूति का। क्योंकि विभावादिको के ही स्वगत अथवा परगत मान लेने से रसास्वाद मे विघ्न उपस्थित होता है और उनका ही साधारणीकरण हो जाने से रसास्वादन होने लगता है। अतः विभावादि का ही साधारणीकरण स्वीकार करना समुचित होगा। सामाजिक कवि की अनुभूति या भावना तक पहुंचता भी विभावादि का साधारणीकरण हो जाने के बाद ही है। अतः जब तक सामाजिक कवि भावना तक पहुँच ही नहीं पाएगा तब तक उसका कवि भावना से तादात्म्य ही कैसे हो सकता है जिसे डा० साहब स्वीकार करते हैं।

साधारणीकरण के क्षेत्र मे तादात्म्य की स्वीकृति भी चाहे वह आंशिक ही क्यो न हो जैसी कि डा० साहब ने स्वीकार की है वांछित नहीं प्रतीत होती क्योंकि साधारणीकृत स्थायी मे सामाजिक की अनुभूति का अनुप्रवेश ही स्वीकार किया गया है जिसे निश्चय ही तादात्म्य नहीं कहा जा सकता।

कवि की अनुभूति भी जिसमे तादात्म्य हो जाने की बात कही जाती है वस्तुत साधारणीकृत अनुभूति ही होती है। वाल्मीकि का शोक जो कि क्रौञ्च द्वन्द्व वियोग से उत्पन्न हुआ था उनका व्यक्तिगत शोक न होकर साधारणीकृत शोक ही था जो क्रौञ्च के क्रन्दन से उद्बुद्ध होकर क्रौंच के शोक के साथ साधारणीकृत हो गया था। यदि वाल्मीकि का शोक साधारणीकृत न हो गया होता तो वह कविता के रूप मे प्रस्फुटित ही न होता। वस्तुत कवि रचना मे प्रवृत्त ही तब होता है जब उसका किसी विषय से हृदय सवादित हो जाता है, ऐसी स्थिति मे कविता को एक अनुभाव के रूप मे ग्रहण करना चाहिए। जैसे क्रौंच अपने सहचर की मृत्यु का देखकर विलख रहा था। हृदय सवाद हो जाने के कारण वाल्मीकि भी उसी प्रकार अपने भावो को सवृत न रख सके और कविता वह निकली। इस कविता को कविगत शोक का अनुभाव कहना समीचीन ही होगा। आनन्दवर्धन तथा अभिनव दोनो ने ही उपर्युक्त विषय को स्पष्ट करते हुए इस तथ्य की ओर इगित किया है कि वाल्मीकि का शोक सामान्य शोक न हो कर साधारणीकृत अर्थात् करुण रस स्वरूपता को प्राप्त शोक था

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत ॥ ध्व० १—५

आदिकवे वाल्मीके निहतसहचरविरहकातरक्रौञ्चाक्रन्दजनित शोक एव श्लोकतया परिणत । वही वृत्ति

अभिनव ने इसी बात को और भी स्पष्ट रूप से प्रकट किया है

शोक इति। क्रौञ्चस्य द्वन्द्ववियोगेन सहचरीहननोद्भूतेन साहचर्यध्वसनेनोत्थितो य शोक स्थायिभावो निरपेक्षभावत्वाद्विप्रलम्भशृङ्गारोचितरतिस्थायिभावादन्य एव, स एव तथाभूतविभावतदुत्थाक्रन्दाद्यनुभावचर्वणया हृदयसवादतन्मयीभवनक्रमादास्वाद्यमानता प्रतिपन्न करुणरसरूपता लौकिकशोकव्यतिरिक्ता स्वचित्तद्रुतिसमास्वाद्यसारा प्रतिपन्न रसपूर्णकुम्भोच्चलनवच्चित्तवृत्तिनि ष्यन्दस्वभाववाग्विलापादिवच्च समयानपेक्षित्वेऽपि चित्तवृत्तिव्यञ्जकत्वादितिनयनाकृत्रिमतयैवावेशवशात्समुचितशब्दच्छन्दोवृत्तादिनियन्त्रितश्लोकरूपता प्राप्त । लोचन पृ० १५७

यहा पर अभिनव द्वारा प्रयुक्त विभाव, अनुभाव, हृदयसवाद तथा तन्मयीभवन शब्द विशेष महत्वपूर्ण हैं। जो क्रौंचगत शोक को वाल्मीकि के शोक के साथ साधारणीकृत बनाकर वाल्मीकि के शोक की रसस्वरूपता को सिद्ध करते हैं।

आगे अभिनव इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वाल्मीकि के शोक को शोक न मानकर करुण रस ही मानना चाहिए—

न तु मुने शोक इति मन्तव्यम्। एवहि सति तु खेन सोऽपि दु खित इति कृत्वा रसस्यात्मतेति निरवकाश भवेत्, न च दु खसतप्तस्यैषा दशेति। एव चर्वणोचित-

शोकस्यायिभावात्मककरुणरससमुच्चलनस्वभावात् स एव काव्यस्यात्मा सारभूत-स्वभावोऽपरशब्दवैलक्षण्यकारक । लोचन पृ० १५६ ।

अब प्रश्न यह है कि लौकिक विषय कवि के लिए विभावादि स्वरूप कैसे बन सकते हैं ? वस्तुत यही तो कवि की अन्य सामान्य जनो से विशेषता है। कवि का हृदय एक विशिष्ट सहृदय का हृदय होता है। उसका हृदय लौकिक विषयो में अनायास ही संवादित हो जाता है। ऐसी दशा मे उसकी भावना अनायास ही स्व-पर के सम्बन्ध से उठकर उस दशा मे पहुँच जाती है जो एक ओर रस दशा होती है तो दूसरी ओर सजनात्मक भावदशा। कवि सामान्यजनो की भाँति रसास्वादन कर केवल शिर को ही नहीं आदोलित करता। उसकी स्वय की कविता भी उसके मुख से प्रवाहित हो उठती है। वह केवल साधुवाद ही नही करता अपितु स्वय आत्मविभोर होने के साथ-साथ औरो को भी आत्मविभोर कर देता है। परन्तु उसकी यह भावदशा होती साधारणीकृत ही है, वैयक्तिक नही। अत कवि की अनुभूति से तादात्म्य स्वीकार करने से भी लौकिक विषयो एव कवि-भावना दोनो का ही साधारणी-करण स्वीकार करना होगा।

भरतमुनि भी अप्रत्यक्ष शब्दो मे साधारणीकृत विभावादिको के समवाय को ही नाट्य स्वीकार करते है

योऽय स्वभावो लोकस्य सुख-दु ख समन्वित ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥ ना० शा० पृ० ११६।

भरतमुनि का लोकस्य पद साधारणीकृत स्थायी की ओर ही सकेत करता है, विशिष्ट की ओर नही।

सहृदयताधान

भरत के अनुसार सुमनस् रसास्वाद के अधिकारी होते हैं और अभिनव के शब्दों मे उन्हे विमल प्रतिभानशालिहृदय भी कहा जा सकता हैं

स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस प्रेक्षका हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति ।
ना० शा० २८६।

अधिकारी चात्र विमलप्रतिभानशालिहृदय । ना० शा० अभि० पृ० २७६।

भरत ने अन्य नाट्य तत्त्वो का विवेचन करने के साथ-साथ प्रेक्षकों की विशेषताओं का भी निर्देश किया है

अव्यग्रैरिन्द्रियै शुद्ध ऊहापोहविशारद ।
त्यक्तदोषोऽनुरागी च स नाट्ये प्रेक्षक स्मृत । ना० शा० २७-५१।

परन्तु उनके अनुसार यह सभी गुण सभी प्रेक्षकों मे निश्चित रूप से विद्यमान रहते हों ऐसी बात नहीं। कुछ प्रेक्षक ऐसे भी होते है जो अपनी

प्रकृति के अनुसार रसास्वादन किया करते हैं। जैसे तरुण शृंगार का, ज्ञानी शान्त का, शूर वीर का तथा बालक, स्त्रियाँ एवं मूर्ख हास्य रस का प्रधान रूप में आस्वादन किया करते हैं। ना० शा० २७-५५-६१।

परन्तु जो व्यक्ति सामान्यतया उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त नहीं होते दूसरे शब्दों में सहृदय नहीं होते अभिनव के अनुसार काव्यगत सामग्री उन व्यक्तियों में भी सहृदयता का आधान कर उन्हें भी रसास्वाद का अधिकारी बना देती है

निजसुखादिविवशीभूतश्च कथं वस्त्वन्तरे संविदं विश्रामयेदिति तत्प्रत्यूह-व्यपोहनाय प्रतिपदार्थनिष्ठैः साधारण्यमहिम्ना सकलभोग्यत्वसहिष्णुभिः शब्दा-दिविषयमयीभि (मयै) रातोद्यगानविचित्रमण्डपविदग्धगणिकादिभिरुपरञ्जनं समा-श्रितम्। येनाहृदयोऽपि हृदयवैमल्यप्राप्त्या सहृदयीक्रियते।

ना० शा० अभि० पृ० २८१।

रसना निष्पत्ति

अभिनव के अनुसार विभावादि का संयोग वस्तुतः रस निष्पत्ति न कर रसना की निष्पत्ति करता है। परन्तु रस रसनायत्तजीवित होता है। इसी-लिए भरत ने रस सूत्र में रस निष्पत्ति का कथन कर दिया है

अत एव विभावादयो न निष्पत्तिहेतवो रसस्य। तद्बोधापगमेऽपि रस-संभवप्रसंगात्। तर्हि सूत्रे निष्पत्तिरिति कथम्। नेयं रसस्य। अपि तु तद्विषयरसनायाः। तन्निष्पत्त्या तु यदि तदेकायत्तजीवितस्य रसस्य निष्पत्तिरुच्यते न कश्चिदत्र दोषः। ना० शा० अभि० पृ० २८५।

वस्तुतः अभिनव ने भरत की भाँति विभावादिकों से व्यक्त नायक-नायिका-दिगत स्थायी भावों को रस स्वीकार करते हुए भी सामाजिक के द्वारा आस्वाद्य स्थायी भावों की रस स्वरूपता पर अधिक बल दिया है। इसीलिए उन्होंने विभावादिकों को रस निष्पत्ति का हेतु न कहकर सामाजिकगत रसना निष्पत्ति का हेतु स्वीकार किया है। सामाजिकगत रसना के निष्पादक विभावादि होते ही हैं। इसीलिए उन्होंने विभावादिकों को रसना निष्पादक तथा उस रसना के द्वारा आस्वाद्य अर्थ को रस नाम से अभिहित किया है

तेन विभावादिसंयोगाद्रसना यतो निष्पद्यते ततस्तथाविधरसनागोचरो लोकोत्तरोऽर्थो रस इति तात्पर्यं सूत्रस्य। ना० शा० अभि० पृ० २८५।

रसना से अभिनव का क्या तात्पर्य है ? इस तथ्य को उन्होंने स्वतः स्पष्ट कर दिया है

सा च रसना न प्रमाणव्यापारो न कारकव्यापारः। स्वयं तु नाप्रामाणिकः। स्वसंवेदनसिद्धत्वात्। रसना च बोधरूपैव। किंतु बोधान्तरेभ्यो लौकिकेभ्यो

विलक्षणैव । उपायादीनां विभावादीनां लौकिकवैलक्षण्यात् । वही पृ० २८५ । अर्थात् उन्होंने स्वसंवेदनात्मक लोकविलक्षण बोध को रसना नाम से अभिहित किया है ।

इसी प्रकार उन्होंने रसना को निर्विघ्न स्वसंवेदनात्मक विश्रान्ति तथा विघ्न विनिर्मुक्त संवित्ति का पर्याय भी स्वीकार किया है

निर्विघ्नस्वसंवेदनात्मक-हर्ष-विश्रान्तिलक्षणेन रसनापरपर्यायेण व्यापारेण ग्रह्यमाणत्वाद्रसनान्द्रनाभिधीयते । वही पृ० २६७ ।

तथाहि लोके-सकलविघ्नविनिर्मुक्ता संवित्तिरेव चमत्कारनिर्वेशरसनास्वादनभोगलयविश्रान्त्यादिशब्दैरभिधीयते । वही पृ० २८० ।

हम देख चुके हैं कि वे रसनागोचर अर्थ को रस कहते हैं । और उन्होंने अलौकिक निर्विघ्न स्वसंवेदनात्मक चर्वणागोचर अर्थ को भी रस स्वीकार किया है

अलौकिकनिर्विघ्नस्वसंवेदनात्मकचर्वणागोचरता नीतोऽर्थ —एव रस ।
वही पृ० २८४ ।

इससे यह सिद्ध होता है कि निर्विघ्न स्वसंवेदनात्मक चर्वणा को भी रसना नाम से अभिहित किया जा सकता है ।

इन समस्त सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि अभिनव ने निर्विघ्न स्वसंवेदनात्मक प्रतीति, चवणा, बोध, संवित्ति तथा विश्रान्ति आदि को ही रसना नाम से अभिहित किया है ।

यह रसना निष्पन्न कैसे होती है । अभिनव ने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला है

तथाहि-लौकिकेनानुमानेन संस्कृत प्रमदादिना(दि न)ताटस्थ्येन प्रतिपद्यते । अपि तु हृदयसंवादात्मकसहृदयत्वबलात् पूर्णीभविष्यद्रसास्वादाङ्कुरीभावेनानुमानस्मृत्यादिसोपानमारुह्यैव तन्मयीभावोचितचर्वणाप्राणतया । वही पृ० २८४ । अर्थात् साधारणीकृत प्रतीति हृदयसंवादात्मकता से युक्त होकर रसना अर्थात् चवणात्मकता को प्राप्त हो जाती है ।

उपर्युक्त समस्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि विभावादिकों का संयोग स्थायी-भावोद्बोध, भावाभिव्यक्ति तथा भाव व्यंजना, करने के साथ-साथ विघ्नापसारण, साधारणीकरण, हृदयसंवाद तथा सहृदयताधान का भी हेतु होता है । अलौकिक विभावादिकों के द्वारा किए गए इन स्थायी भावोद्बोध, भावोत्पत्ति, भावव्यंजना, विघ्नापसारण, साधारणीकरण, हृदयसंवाद तथा सहृदयताधान के समाहार स्वरूप सामाजिक में जिस प्रतीति की उपस्थिति होती है अभिनव ने उसे ही स्वसंवेदनात्मक चर्वणा या रसना नाम से अभिहित किया है । और विभावादिकों को इस चवणा की निष्पत्ति का हेतु

स्वीकार कर इस चर्वणागोचर अर्थ की रसरूपता का प्रतिपादन किया है।

रस

रस तत्त्वों के स्वरूप तथा उनके द्वारा सम्पादित रसानुभूति में सहायक विभिन्न व्यापारों पर दृष्टिपात करने के अनन्तर अब हम रस स्वरूप पर विचार करेंगे।

हम देख चुके हैं कि भरत ने विभावादिकों से परिवृत स्थायी भाव को रस नाम से अभिहित किया है

विभावानुभावव्यभिचारिपरिवृत स्थायी भावो रस नाम लभते।

ना० शा० पृ० ३४६।

और रस कैसे आस्वादन किया जाता है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्थायी भावों के आस्वादन प्रकार का ही उल्लेख किया है

कथमास्वाद्यते रस।—नानाभावाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयंति सुमनस प्रेक्षका। वही पृ० २८६।

भरत के इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे विभावसाक्षात्कार से उद्बुद्ध अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों से प्रतीत होनेवाले आश्रयगत स्थायी भावों को रस नाम से अभिहित करते हैं। परन्तु आश्रयगत स्थायी की प्रतीति तब तक ही होती रह सकती है, जब तक विभाव सामग्री उपस्थित रहे। अत विभावादिकों तथा विभावादिकों से व्यक्त स्थायीभाव दोनों के समवाय को ही रस नाम से अभिहित किया जायेगा।

डॉ० नगेन्द्र ने भरत के रस विषयक विवेचन पर प्रकाश डालने के उपरान्त अधोलिखित निष्कर्ष निकाला है

रस आस्वाद नहीं है, आस्वाद्य है—अर्थात् अनुभूति नहीं है अनुभूति का विषय है नवीन शब्दावली में, रस विषयिगत नहीं है विषयगत है। तथा

इस प्रकार भरत के अनुसार नाभावोपगत स्थायी भाव ही रस है, और स्पष्ट शब्दावली में—विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से संयुक्त एवं वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से व्यंजित स्थायी भाव ही रस है। अर्थात् रस एक प्रकार की भावमूलक कलात्मक स्थिति है जो कविनिबद्ध विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के प्रसंग से नाट्य सामग्री के द्वारा रंगमंच पर उपस्थित हो जाती है। रससिद्धान्त पृ० ७९-८०।

परन्तु भरत तथा अभिनव के विभिन्न सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि डॉ० साहब के उपर्युक्त निष्कर्ष उनके मन्तव्य के विरुद्ध हैं।

भरत तथा अभिनव ने रस को अनुभूति का विषय तथा आस्वाद्य तो माना है। परन्तु रस को विषयगत नहीं माना है। रस को विषयगत स्वीकार करने

का अर्थ होगा कि आश्रयगत वासनाएँ आश्रय के लिए भी रस होती हैं। परन्तु अभिनव ने रसना के द्वारा ग्रहीत होने के कारण स्थायी भावों को रस माना है न कि नायक की वासना होने से ही उन्हें रस मान लिया है। भरत के अनुसार भी आस्वाद्य होने से ही स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होता है और स्थायी भाव आस्वाद्य होता है नानाभावाभिनयादि के द्वारा व्यक्त होने से। स्थायी भाव को आस्वाद्य बनाने वाले इन साधनों में से अभिनयादि का स्वयं नायक के लिए कुछ महत्त्व नहीं होता। भरत ने प्रेक्षक को ही रसास्वादक बताया है न कि पात्रों को। अतः आस्वाद्य स्थायी भावों को ही रस स्वीकार किया जा सकता है। और स्थायी भाव आस्वाद्य होता है विभावादि के संयोग से। इसीलिए भरत ने विभावादि के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायी भाव को आस्वाद्य होने से रस कहा है। अतः रस को विषयगत कहने की अपेक्षा विषय को रस कहना समीचीन प्रतीत होता है। वस्तुतः भरत के अनुसार समस्त कवि व्यापार को तो रस कहा जा सकता परन्तु रस को कवि व्यापार गत नहीं कहा जा सकता। वैसा कहने का अर्थ होगा कवि व्यापार तथा रस दोनों भिन्न भिन्न हैं। अभिनव ने भी नाट्य को तो रस कहा है परन्तु वे नाट्य समुदाय को रस तथा रस समुदाय को ही नाट्य मानते हैं। न कि केवल स्थायी भावों को नाट्य अथवा रस मानते हैं

नाट्यात् समुदायरूपाद्रसा। यदि वा नाट्यमेव रसा। रससमुदायो हि नाट्यम्। अभि० पृ० २६०।

यद्यपि अभिनव ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि पर्यन्त में समस्त कवि व्यापार नायकादि की चित्तवृत्ति में पर्यवसित हो जाता है। परन्तु समस्त-कवि व्यापार का नायक की चित्तवृत्ति में पर्यवसान कर उसे आस्वाद्य बनाने के लिए भी तो उसकी आवश्यकता होती है। इसीलिए अभिनव ने रस तथा नाट्य दोनों को एक ही मान लिया है। यही नहीं अभिनव ने तो स्पष्ट शब्दों में नाट्य, काव्य, अर्थ तथा स्थायी भाव सभी की एकता का प्रतिपादन किया है

तत्र नाट्य नाम नटगताभिनयप्रभावसाक्षात्कारायमाणैक घनमानसनिरचलाध्यवसेय समस्तनाटकाद्यनेकाव्यविशेषान्य ध्वननीयाश्च। स च यद्यप्यनन्तविभावाद्यात्मा तथापि सर्वेषां जडानां मविदि तस्याश्च भोक्तरि भोक्तृवर्गस्य च प्रधाने भोक्तरि पर्यवसाना नायकाभिधानभोक्तृविशेषस्थायिचित्तवृत्तिस्वभाव। ना० शा० अभि० पृ० २६६।

तेन रस एव नाट्यम्। वही पृ० २६७।

काव्य च नाट्यमेव। वही पृ० २६१।

डॉ० नगेन्द्र भी भरत के मन्तव्य को और अधिक स्पष्ट करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं।

उपर्युक्त सदर्भों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि अभिनव ने भी भरत की भांति समस्त कवि व्यापार को रस स्वीकार कर तो लिया है। परन्तु उन्होंने स्थायी भाव को रस स्वीकार करनेवाले शकुक का खण्डन करते हुए स्थायी भाव रस हो जाता है, इस प्रकार के कथनों को औचित्य कथन मात्र स्वीकार किया है

स्थायिविल(यिल)क्षण एव रस । ननु (न तु) यथाशकुकादिभिरभ्यधीयत स्थाय्येव विभावादिप्रत्यायो रस्यमानत्वाद्रस उच्यते । इति। एव हि लौकिकोऽपि किं न रस ।

—केवलमौचित्यादेवमुच्यते स्थायी रसीभूत इति । वही पृ० २८४।

इसी प्रकार लोचन में भी उन्होंने 'शोक श्लोकत्वमागत' की व्याख्या करते हुए उपर्युक्त मन्तव्य को प्रकट किया है

शोके हि स्थायिभावे ये विभावानुभावास्तत्समुचिता चित्तवृत्तिश्चर्व्य-माणात्मा रस इत्यौचित्यात्स्थायिनो रसनापत्तिरित्युच्यते ।

ध्व० लो० पृ० १६४।

तात्विक रूप से अभिनव ने चर्वणागोचर अर्थ को ही रस स्वीकार किया है। जैसा कि रसना निष्पत्ति के सन्दर्भ में उद्धृत उनके विभिन्न उल्लेखो से स्पष्ट हो जाता है। परन्तु उन्होंने प्रतीयमान अर्थों की रस स्वरूपता का प्रतिपादन करते हुए भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अभिव्यक्त स्थायी भावों के लिए रस शब्द का प्रयोग प्रचलित रहा है और उन्होंने स्वय भी व्यक्त स्थायी भावो को रसनाम से अभिहित किया है

रसा प्रतीयन्त इति तु ओदन पचतीतिवद्व्यवहार, प्रतीयमान एव हि रस । प्रतीतिरेव विशिष्टा रसना । ध्व० लोच। पृ० ३६४।

तस्मात् स्थितमेतत्—अभिव्यज्यन्ते रसा प्रतीत्यैव च रस्यन्त इति ।

ध्व० लोचन पृ० ३८६।

इस प्रकार हम देखते है कि अभिनव के अनुसार रस तात्विक रूप मे अनुभूति स्वरूप होता है, वह अनुभूति का विषय नहीं होता। परन्तु औचित्यवश वे अनुभूति के विषय को भी रस नाम से अभिहित करते हैं। दूसरी ओर भरत ने रस की अनुभूति विषयता का तो स्पष्ट उल्लेख किया है। परन्तु क्या भरत को रस की अनुभूति स्वरूपता भी स्वीकार्य है या नहीं ? यह विचारणीय विषय है।

हम देख चुके हैं कि अभिनव के अनुसार रसना-गोचर अर्थ रस होता है और यह अर्थ अर्थात् स्थायीभावस्वरूप वासना रसना गोचर तब होती है जब कि काव्यगत विभावादिकों तथा उनसे अभिव्यक्त स्थायी भाव दोनों का ही साधारणीकरण हो जाता है। साधारणीकृत विभावादि ही रसना के निष्पादक

होते हैं तथा साधारणीकृत स्थायी भाव ही उस रसनात्मक प्रतीति के द्वारा आस्वाद्य होते है। और हृदयसंवादात्मक सहृदयता से युक्त व्यक्ति उसके आस्वादक होते हैं।

नाट्यशास्त्र के विभिन्न सन्दर्भो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भरत के अनुसार भी विभावादिकों को विशेष रूप से न ग्रहण कर साधारण रूप से ग्रहण करने से ही रसास्वादन किया जा सकता है। जैसा कि भरत ने स्वय ही प्रकट कर दिया है। उनके अनुसार इन्द्र विजयोत्सव मे उनके द्वारा प्रयुक्त नाट्य दैत्या को नही सतुष्ट कर पाता क्योंकि वे उस नाट्य को साधारण रूप में न ग्रहण कर विशेष रूप मे ग्रहण कर रहे थे

एव प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने।

अभवन् क्षुभिता सर्वे दैत्या ये तत्र सगता ॥ ना० शा० १-६४।

दैत्य क्षुब्ध क्यो हो गए थे इसका कारण उनकी विशिष्ट बुद्धि ही थी जैसा कि उनके ब्रह्मा के सम्मुख किए गए निवेदन से स्वत प्रकट हो जाता है

योऽय भगवता सृष्टो नाट्यवेद सुरेच्छया।

प्रत्यादेशोऽयमस्माक सुरार्थं भवता कृत ॥ ना० शा० १-१०३।

परन्तु जब ब्रह्मा दैत्यो को वस्तुस्थिति से अवगत करा देते हैं कि इस नाट्य में किसी विशेष व्यक्ति का सकीर्तन न कर त्रैलोक्य के भावो का सकीर्तन किया गया है तो वे विघ्न करने से विरत हो जाते हैं

नैकान्ततोऽत्र भवता देवाना चानुभावनम्।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम् ॥ ना० शा० १-१०७।

उपर्युक्त सदर्भ पर दृष्टिपात करने से यह निश्चित हो जाता है कि भरत के अनुसार भी विभावादिकों को साधारणीकृत रूप मे ग्रहण करने के उपरान्त ही रसानुभव किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि भरत ने साधारणीकरण प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख भले ही न किया हो परन्तु नाटक को सामान्य रूप मे ग्रहण करने तथा प्रेक्षक को स्व-पर की भावना से मुक्त रहने की आवश्यकता पर बल देकर उन्होंने साधारणीकरण प्रक्रिया का ही समर्थन किया है।

उपर्युक्त सदर्भो पर दृष्टिपात करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी व्यक्ति तब तक रसास्वादन नही कर सकता जब तक कि काव्यगत भावो से उसका हृदय सवाद न हो गया हो। हम देख चुके हैं कि भरत ने श्रेष्ठ प्रेक्षक उसे ही स्वीकार किया है जिसका सभी भावो मे हृदय सवाद हो जाता हो। ना० शा० २७-६१-६२। और उन्होंने हृदयसवादी अर्थ की आस्वाद्य-मानता का समर्थन भी किया है

योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भव ।
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना ॥ ना० शा० ७-७ ।

इन सभी तथ्यो पर दृष्टिपात करने से यही प्रतीत होता है कि भरत ने जिन स्थायी भावो के आस्वादन को रस कहा है वे स्थायी भाव सर्वथा नायकगत व्यक्त स्थायी भाव ही नहीं होते। अपितु प्रेक्षक के हृदय से संवादित व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध से मुक्त दूसरे शब्दो मे साधारणीकृत स्थायी भाव होते हैं। और साधारणीकृत स्थायी भावो की प्रतीति अनुभूति स्वरूप ही होती है। अत यह कहा जा सकता है कि भरत भी रसो को अनुभूति स्वरूप स्वीकार करते हैं। अन्य यदि रसो की अनुभूति स्वरूपता के समर्थक न होते तो अभिनव ने अपनी स्थापना की नूतनता की ओर कहीं न कहीं पर संकेत अवश्य किया होता। परन्तु अभिनव रसो की अनुभूति स्वरूपता का प्रतिपादन करते हुए भी सर्वत्र उसे भरत सम्मत ही स्वीकार करते हैं।

परवर्ती विवेचको ने प्राय रस शब्द का प्रयोग उपर्युक्त दोनो अर्थों मे किया है। स्थायी भावो के अर्थ मे रस शब्द का प्रयोग प्रचलित तो रहा। परन्तु तात्त्विक रूप मे सभी रसो की अनुभूति स्वरूपता का ही समर्थन करते रहे। जैसा कि अधोलिखित सदर्भो पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है

एतच्च सर्वं रसो रसान्तरस्य व्यभिचारी भवति इति निदर्शनं तन्मतेनोच्यते। मतान्तरे तु रसाना स्थायिनो भावा उपचाराद्रसशब्देनोक्ता

ध्व० पृ० ३९७-३९८।

श्रोतृप्रेक्षकाणामन्तर्विपरिवर्तमानो रत्यादिवक्ष्यमाणलक्षण स्थायी स्वादगोचरता निर्भरानन्दसंविदात्मतामानीयमानो रस । तेन रसिका सामाजिका । काव्य तु तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुभावेन रसवदायुर्घृतमित्यादिव्यपदेशवत्।

द० रू० स० वृ० पृ० ४१३।

यद्यपि—रसस्यास्वादानतिरिक्तत्वम्, तथापि रस स्वाद्यते इति काल्पनिक भेदमुररीकृत्य, कर्मकर्तरि वा प्रयोग । —एवमन्यत्राप्येवंविधस्थलेषूपचारेण प्रयोगो ज्ञेय । सा० द० पृ० ४९-५०।

रसपदेनात्र प्रकरणे तदुपाधि स्थायिभावो गृह्यते, रसस्य सामाजिकवृत्तित्वेन नायकाद्यवृत्तित्वात्। र० ग० पृ० १७८।

रसो की उत्पाद्योत्पादकता

भरत मुनि के अनुसार शृगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स यह चार रस क्रमश हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक रस के जनक होते हैं

शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः । ना० शा० ६-३६ ।

शृंगारादि रसों से अन्य रसों की उत्पत्ति कैसे होती है ? इसका समाधान अधोलिखित कारिकाओं से किया गया है

शृंगारानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः ।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म स ज्ञेयः करुणो रसः ॥
वीरस्यापि च यत् कर्म सोऽद्‌भुतः परिकीर्तितः ।
वीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः स तु भयानकः ॥ ना० शा० ६-४०, ४१ ।

अभिनव ने अनुकृति का अर्थ आभास ग्रहण कर शृंगाराभास की हास्य-जनकता का प्रतिपादन किया है। इसके साथ-साथ उन्होंने शृंगाराभास के समान ही अन्य रसों तथा भावों के आभासत्व को भी हास्य रस का जनक स्वीकार कर लिया है

तथा हि—तदाभासत्वे तदनुकाररूपतया हेतुत्वं शृंगारेण सूचितम् । तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम् । अनौचित्यप्रवृत्तिकृतमेव हि हास्यविभावत्वम् । तच्चानौचित्यं सर्वरसानां विभावानुभावादौ सम्भाव्यते । तेन व्यभिचारिणाप्येवं वार्ता ।—मर्मोक्षहेतावपि तदाभासतया शान्ताभासो हास्य एव पहसन रूप । अभि० पृ० २९५-२९६ ।

भरत ने रौद्ररस के कर्म को करुणरस कहा है। परन्तु अभिनव ने कारिकागत चकार तथा एव के आधार पर रौद्र रस के कर्मों की परम्परया करुणजनकता का प्रतिपादन तथा अत्यन्ताव्यवहित करुणजनकता का निराकरण किया है। उनके अनुसार रौद्ररस का कर्म बधबन्धादि होता है और बधबन्धादि रौद्ररस के जनक होते हैं। इस प्रकार रौद्र परम्परया करुण रस का जनक होता है

यदीयफलानन्तर द्वितीयो रसोऽवश्यभावी तस्योदाहरणं रौद्रः । रौद्रस्य हि फलं बधबन्धादि । तद्विभावकेनावश्यं करुणेन भाव्यम् । वही पृ० २९६ ।

तथा परम्परा फलत्वेन रसान्तराक्षेपे रौद्र उदाहरणम् । रौद्रस्य यत्कर्म फलात्मकं बधादि चकारात्तस्य यत्कर्म फलरूपं स एव करुणः । एवकारेणात्यन्तव्यवहितो परम्परा पराकरोति । अभि० पृ० २९८ ।

रौद्ररस से करुण रस की उत्पत्ति स्वीकार करने के साथ-साथ अभिनव ने अन्य रसों की उत्पाद्योत्पादकता का भी प्रतिपादन किया है। जैसे रौद्र से भयानक, शृंगार से करुण तथा वीर से भयानक रस की उत्पत्ति

एवं रौद्रानन्तरं नियमेन भयानकः । शृंगारानन्तरं नियमेन करुणः व्याप्रियते रवसौ तज्जन्मति यथा तापसवत्सराजचरिते वासवदत्तादाहाने वत्सराजस्य । एवं वीराद् भयानकोत्पत्तिः । नियमेन तु भवतीति वक्तव्यम् । नियमश्चकारेणोक्तो रौद्रात्पितानन्तयसूचकपचम्यन्तनरप्रयुक्तेन । अभि० पृ० २९६-२९७ ।

अभिनव ने रौद्र से भयानकादि उपर्युक्त रसो की उत्पत्ति का प्रतिपादन भरत की ३६वीं कारिकागत चकार के आधार पर किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिनव रौद्र से करुण रस की उत्पत्ति आवश्यक रूप से तथा भयानक की उत्पत्ति नियम से स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार शृगार से करुण एव वीर से भयानक रस की उत्पत्ति भी नियमेन स्वीकार की है। नियमेन शब्द यहाँ पर कुछ विशिष्ट परिस्थितियों की ओर सकेत करता है, अनिवार्यता की ओर नहीं। अनिवार्यरूपेण तो रौद्र के अनन्तर करुण रस की उत्पत्ति होने का ही उन्होंने उल्लेख किया है।

भरत के अनुसार वीर रस का कर्म अद्भुत रस होता है। हम देख चुके हैं कि उन्होंने रौद्र के कर्म को करुण कहा है। अभिनव ने दोनों रसों के कर्मों की भिन्नता की ओर सकेत करते हुए वीर रस से अद्भुत रस की समनन्तर फलत्वेन तथा रौद्र से करुण की परम्पराफलत्वेन उत्पत्ति होने का निर्देश किया है

यस्तु रसो रसान्तरफलत्वेनाभिसन्धाय प्रवर्तते तस्योदाहरण वीर। महापुरुषोत्साहो हि जगद्विस्मयफलाभिसन्धानेनैव। रौद्रस्तु परविनाशन फलत्वेनाभिसन्धाय प्रवर्तते न करुणमिति विशेष। अभि० पृ० २९७।

अभिनव ने भरत के 'अपि' पद के आधार पर वीर रस से शृगार रस की भी उत्पत्ति स्वीकार कर ली है

अपि शब्दाच्छृगारोऽपि वीरस्यानन्तर फल द्रौपदीस्वयवरादौ।

अभि० पृ० २९८।

भरत ने बीभत्सदर्शन को भयानक रस अर्थात् बीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होना स्वीकार किया है। अभिनव के अनुसार बीभत्स तथा भयानक दोनो रसो के कुछ विभावादि समान होते हैं। अत बीभत्स तथा भयानक उभयसाधारण विभावादिको की उपस्थिति मे बीभत्स रस के समान भयानक रस की प्रतीति भी सम्भव है

यस्तु रसानुपविभावत्वान्नियमेन रसान्तर हि परमाभिपति तस्योदाहरण बीभत्स। तस्य ये विभावा रुधिरप्रभृतयस्तेऽवश्य भयहेतव। तथा तद्व्यभिचारिणो मरणमोहापस्माराद्या। तदनुभावास्तु मुखविकूणनादय। सहभावेन रसान्तराक्षेप बीभत्स उदाहरणम्। यदेव बीभत्सदर्शन विभावादिरूप स एव भयानक। तद्विभावत्वादुपचारस्य। सहभावप्रतीति फलम्।

अभि० पृ० २९७-२९८।

भरत तथा अभिनव के उपर्युक्त सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पडता है।

१ रत्यादि स्थायी भावो के आश्रय की चेष्टाएँ तथा भाव ही सर्वदा

आस्वाद्य नही बने रहने वे आलम्बन बनकर किसी अन्य आश्रय के भावोद्बोध मे हेतु भी बन जाते है जैसा कि विभिन्न रसाभास तथा भावाभासात्मक स्थलो मे हास्य रस की व्यजना होने से प्रकट होता है।

- २ शृगाराभास ही नही समस्त रसाभास तथा भावाभास हास्य रस के जनक हो सकते हैं।

३ रौद्र रसात्मक प्रकरण तब तक ही रौद्ररस की चर्वणा कराते हैं जब तक कि वधबन्धादि न कर दिया गया हो वधबन्धादि के उपरान्त रौद्र का उपशम हो जाता है और करुण रस उपस्थित हो जाता है।

४ रौद्र रस के आश्रय ने यदि किसी वधबन्धादि कुत्सित कर्म को न किया हो, केवल वैसी सम्भावना का ही प्रदर्शन किया गया हो अथवा वध न करके केवल बन्धादि ही किया गया हो वहा पर भयानक रस की सृष्टि हो सकती है।

५ अभिनव ने शृगार से करुण रस की उत्पत्ति होने का सकेत किया है। परन्तु यह नियम सर्वत्र नही लागू हो सकता। शृगार के आलम्बन की मृत्यु के अनन्तर ही शृगार करुण की व्यजना करता है जैसा कि अभिनव स्वीकार करते हैं

रतिप्रलापेषु च कुमारसभवे शृगार एव करुणस्य जीवितम्।

अभि० पृ० ५२३।

इष्ट की प्राप्ति न हो सकने के निश्चय के अनन्तर भी शृगार रस को करुण रस का जनक बनाया जा सकता है। यहा पर शृगार शब्द से शृगार के नायक-नायिकादि आलम्बन विभावो को ग्रहण किया जा सकता है। जैसा कि अभिनव ने भी भरत मुनि के द्वारा रौद्र रस के प्रकरण मे प्रयुक्त शृगार शब्द से ग्रहण किया है

शृगारश्च तै प्रायश प्रसभ सेव्यते। ना० शा० पृ० ३३२।

शृगारशब्देनात्र तद्विभाव प्रमदोद्यानादि। अभि० पृ० ३३२।

६ वीर रस अर्थात् उत्साह स्थायी भाव के आश्रय के विभिन्न व्यापार तथा शत्रुपराजयादि वीर रस के आलम्बन मे अथवा अन्य किसी कायर पुरुष मे भय सचार कर सकते है।

७ वीर रस का स्थायी भाव उत्साह निश्चित रूप से विस्मयजनक होता है।

८ वीररस का आश्रय किसी नायिका मे रति भावना का उदय कर शृगार का जनक बन सकता है।

९ बीभत्स रस के रुधिरादि विभाव भयानक रस के भी जनक होते हैं। अत वैसे स्थलो मे दोनो रसो की एकत्र अभिव्यक्ति सम्भव है।

उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने मे ज्ञात होता है कि कुछ रसो के विभावादि अन्य रसो की अभिव्यक्ति भी करा सकते हैं। भरत तथा अभिनव द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त रसो से तत्तत् रसो की अभिव्यक्ति तो होती ही है। इसके साथ-साथ कुछ अन्य रसो की उत्पाद्योत्पादकता भी सम्भव है। उदाहरण-स्वरूप हम अधोलिखित रसो को ले सकते है

१ शृगाराभास हास्य का जनक होता है। परन्तु उसे रौद्ररस का जनक भी बनाया जा सकता है। जैसे सीता के प्रति रावण का प्रणय-निवेदन प्रदर्शित कर सीता के क्रोध की अभिव्यक्ति का प्रदर्शन असगत न होगा।

२ रौद्र रस के कर्म के समान वीर रस का कर्म भी करुण रस का हेतु बन सकता है। इसी प्रकार रौद्र रस के कर्म को वीर तथा बीभत्स रस का हेतु भी बनाया जा सकता है।

३ शृगार के समान गुरु, पुत्र तथा मित्रादि-विषयकरति भाव से भी आल-म्बन की विपन्नता प्रदर्शित कर करुण रस की व्यजना की जा सकती है।

४ बीभत्स रस के विभाव शान्त रस की व्यजना भी कर सकते है। अभि-नव के गुरु ने बीभत्स रस के शुद्ध भेद को शान्त रस का जनक माना भी है

उपाध्यायास्त्वाहु-बीभत्सस्तावद्विभावविशेषात्। यत्र तु ससारनाट्यनायक-रागप्रतिपक्षतया मोक्षसाधनत्वाच्छुद्ध। अभि० पृ० ३३१।

५ रसो के समान ही कुछ भाव भी अन्य भावो के जनक होते है। जैसा कि भाव लक्षणो पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है।

वस्तुत महाकाव्य की विस्तृत पृष्ठभूमि एक सजीव रगभूमि होती है। *जिसमे सभी पात्र एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा स्वय भी प्रभावित* होते हैं, सभी घटनाए अन्य घटनाओ के लिए आधार तैयार करती हैं तथा स्वय भी उन पर ही आधारित होती है। अत रसो का परस्पर सापेक्ष्य होना स्वाभाविक ही है।

अगीरस तथा अगरस

यद्यपि आस्वाद्य होने के कारण सभी रस समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं। परन्तु अनेक विवेचको ने सभी रसो मे स किसी एक रस को अन्य रसो की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान किया है। शृगार को रस राज स्वीकार करने वाले चिन्तको की सख्या भले ही अधिक हो परतु वीर, करुण तथा शान्त रस को सभी रसो से श्रेष्ठ स्वीकार करने वाले मनीषियो के भी अपने मार्गभित तर्क हैं। विभिन्न विवेचको के तर्कों मे अतर होते हुए भी साहित्य जगत् मे उनकी मान्यताओ को आदर प्रदान किया गया है और महाकाव्यो मे प्राय उन्ही रसो की प्रधान रूप मे योजना करने पर बल दिया गया है जिन्हे किसी न किसी

मनीषी ने रस राज सिद्ध करने का प्रयत्न किया है

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा —॥ सा०द० ६-३१७ ।

काव्य मे सर्व प्रथम ही जिसकी व्यजना की गई हो तथा अन्त तक जिसका पुन-पुन अनुसधान किया गया हो ऐसे स्थायी रूप से भासित होने वाले रस को आनन्दवधन ने अगी रस के नाम से अभिहित किया है

प्रबन्धेषु प्रथमतर प्रस्तुत सन् पुन पुनरनुसधीयमानत्वेन स्थायी यो रसस्तस्य सकलवन्धव्यापिनो रसान्तरैरन्तरालवर्तिभि समावेशो य, स नागितामुपहन्ति। ध्व० पृ० ३८७ ।

अर्थात् महाकाव्य मे जो रस प्रधान रूप से विनियोजित होता है, यत्र-तत्र विनियोजित अन्य रस उसकी प्रधानता के विघातक नही होते। और वह प्राधान्येन विनियोजित रस अगी बना रहता है।

नाट्य शास्त्र मे प्राधान्येन विनियोजित रस को स्थायी रस के नाम से अभिहित किया गया है

बहूना समवेताना रूप यस्य भवेद् बहु ।
स मन्तव्यो रस स्थायी शेषा सचारिणो मता ॥
ना० शा० ७-१२० ।

और आनन्दवर्धन ने स्थायी रस को ही अगी रस स्वीकार किया है। उनके अनुसार काव्य मे किसी एक रस की अगी के रूप मे तथा अन्य रसो की उसके अग के रूप मे योजना करने म ही वे रसप्रवण बन सकते ह

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धाना नानारसनिबन्धने ।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥ ध्व० ३-७२ ।

उन्होने रसो के अगागि रूप मे सन्निविष्ट करने से सम्बन्धित अनेक उपायो का निर्देश भी किया है। यद्यपि कुछ रस परस्पर विरोधी रस होते ह। परन्तु उनके अनुसार यदि किसी एक रस को काव्य मे प्रधान रूप म योजना कर दी जाती है तो विरुद्ध रस उस प्रधान रस के विघातक नही रहते

अविरोधी विरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे ।
परिपोष न नेतव्यस्तथा स्यादविरोधिता । ध्व० ३-८० ।

इसी प्रकार अभिनव ने भी मीमासको के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए यह स्वीकार किया है कि यत्र-तत्र विनियोजित रस प्रधान रस का परिपोष किया करते हैं

एतदुक्त भवति—अगभूतान्यपि रसान्तराणि स्वविभावादिसामग्र्या स्वावस्थाया यद्यपि लब्धपरिपोषाणि चमत्कारगोचरता प्रतिपद्यन्ते, तथापि स चमत्कारस्तावतैव न परितुष्य विश्राम्यति किन्तु चमत्कारान्तरमनुधावति ।

सर्वत्रैवागागिभावेऽप्यमेवोदन्त । यथाह तत्र भवान्—

गुण कृतात्मसस्कार प्रधान प्रतिपद्यते ।

प्रधानस्योपकारे हि तथा भूयसि वर्तते ॥ ध्व० लोचन पृ० ६२७ ।

और नाट्यशास्त्र की व्याख्या मे तो उन्होने प्रधान पात्र अर्थात् नायकगत स्थायी भाव मे अन्य स्थायी भावादिको के पर्यवसित हो जाने का स्पष्ट निर्देश कर दिया है

स च यद्यप्यनन्तविभावाद्यात्मा तथापि सर्वेषा जडाना सविदि तस्याश्च भोक्तरि भोक्तृवगस्य च प्रधाने भोक्तरि पर्यवमाना नायकाभिधानभोक्तृविशेष-स्थायिचित्तवृत्तिस्वभाव । ना० शा० अभि० पृ० १६६ ।

इस प्रकार हम देखते है कि काव्य मे सव प्रथम सनिविष्ट तथा अत तक पुन-पुन अनुसधीयमान स्थायी रूप मे प्रतीत होने वाले अन्य रसो से परिपुष्ट प्रधान रस को अगी रस के नाम से अभिहित किया जाता है तथा यत्र-तत्र विनियोजित प्रधान रस के उपकारक अन्य रसो को अग रस के नाम से अभिहित किया जाता है। महाकाव्य मे इन दोनो प्रकार के रसो का सनिवेश करना अनिवार्य होता है।

काव्य की आत्म—रस, वस्तु तथा अलकार

सामान्यतया ध्वनि अर्थात् प्रतीयमान अर्थ को काव्य की आत्मा कहा गया है और इस प्रतीयमान अर्थ के रस, वस्तु तथा अलकार यह तीन भेद प्रदर्शित किए गए हैं। इन तीनो मे से रस के बारे मे हम पर्याप्त विचार कर चुके हैं। वस्तु तथा अलकार यह दोनो ही रसेतर अर्थ को दिए गए दो नाम हैं। वस्तु रूप अर्थ लोक प्रसिद्ध वस्तु मात्र स्वरूप होता है तथा अलकार रूप अर्थ विभिन्न अलकारो के रूप मे परिभाषित विशिष्ट अर्थ स्वरूप होता है। वस्तु स्वरूप अर्थ स्वगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से अनन्त होता है। केवल व्यजको की विशिष्टता के आधार पर उसके कुछ निश्चित भेदो का उल्लेख किया गया है। अलकार तथा वस्तु दोनो को मिलाकर ध्वनि के १८ भेदो का निर्देश किया गया है।

यद्यपि अलकारो को मात्र चारुता का हेतु स्वीकार किया जाता है

अलकारो हि चारुत्वहेतु प्रसिद्ध । ध्व० पृ० १०५।

परन्तु ध्वनिस्वरूपता को प्राप्त अलकारो को काव्य की आत्मा भी स्वीकार कर लिया गया है। कटक कुण्डलादि के समान जो अलकार परम्परया शब्दो तथा अर्थो का आश्रय ग्रहण कर रसादिका का उत्कर्ष वर्धन किया करते हैं वे ही काव्य की आत्मा कहलाने के अधिकारी कैसे बन जाते हैं ? इस विषय पर प्रकाश डालते हुए आनन्दवर्धन कहते है

शरीरीकरणं येषां वाच्यत्वे न व्यवस्थितम् ।
तेऽलङ्काराः परां छायां यान्ति ध्वन्यङ्गतां गताः ।। ध्व० २-५१।

ध्वन्यङ्गता चोभाभ्यां प्रकाराभ्यां व्यञ्जकत्वेन व्यङ्ग्यत्वेन च । तत्रेह प्रकरणाद्व्यङ्ग्यत्वेनेत्यवगन्तव्यम् । वृत्ति पृ० २१४।

—अर्थात् जो अलंकार वाच्यता दशा में शरीर के महत्त्व को भी प्राप्त करने के योग्य नहीं समझे जाते वे ही व्यंग्य होकर परम शोभा को प्राप्त कर लेने के कारण काव्य की आत्मा कहलाने के अधिकारी बन जाते हैं।

यहाँ पर आनन्दवर्धन ने व्यंजक तथा व्यंग्य दो प्रकार के अलंकारों की ओर संकेत किया है। यद्यपि इन दोनों ही रूपों में सन्निविष्ट अलंकारों को ध्वनि का अंग माना जाता है। परन्तु व्यंजक अलंकार ध्वनि के उपकारक होने के कारण उसके अंग माने जाते हैं और व्यंग्य अलंकार होते ही ध्वनि स्वरूप हैं। अतः ध्वन्यात्मक होने से उन्हें ध्वनि का अंग स्वीकार किया जाता है।

परन्तु सभी व्यंग्य अलंकार ध्वनि स्वरूप ही नहीं होते। व्यंग्य की प्रधानता तथा अप्रधानता के आधार पर उन्हें ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य दो प्रकार का प्रतिपादित किया गया है

व्यङ्ग्यत्वेऽप्यलङ्काराणां प्राधान्यविवक्षायामेव सत्यां ध्वनावन्तःपातः । इतरथा तु गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं प्रतिपादयिष्यते। ध्व० पृ० २१५।

व्यंजक अलंकारों को व्यंग्यार्थ की विशिष्टता के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—१ रसव्यंजक अलंकार, २ वस्तु व्यंजक अलंकार, ३ तथा अलंकार व्यंजक अलंकार। इन तीनों प्रकारों में से वस्तु तथा अलंकार व्यंजक अलंकारों के द्वारा यदि व्यक्त वस्तु तथा अलंकार चारुत्वातिशय युक्त होते हैं तो उन्हें भी ध्वनि के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है

तदेवमर्थमात्रेणालङ्कारविशेषरूपेण वार्थेन अर्थान्तरस्य अलङ्कारस्य वा प्रकाशने चारुत्वोत्कर्षनिबन्धने सति प्राधान्ये अर्थशक्त्युद्भवानुरणनरूपव्यङ्ग्यो ध्वनिरवगन्तव्यः । ध्व० पृ० २१८।

परन्तु जहाँ पर व्यक्त वस्तु अथवा अलंकार चारुतायुक्त नहीं होता उसे गुणीभूत व्यंग्य स्वीकार किया जाता है।

रस व्यंजक अलंकारों को भी सात भागों में विभक्त किया जा सकता है। १ अनुप्रासादि शब्दालंकार जिनकी नियन्त्रित योजना को रसव्यंजक स्वीकार किया गया है

शृङ्गारस्याङ्गिनो यत्नादेकरूपानुबन्धनात् ।
सर्वेष्वेव प्रभेदेषु नानुप्रासः प्रकाशकः ।। ध्व० २-३७।

एकरूपं त्वनुबन्धं त्यक्त्वा विचित्रोऽनुप्रासो न दोषायेत्येकरूपग्रहणम् ।
लोचन पृ० ४७७।

२ चित्र काव्य सज्ञक शब्दालकार। ३ चित्र काव्य सज्ञक अर्थालकार। यह दोनो ही अलकार नाम मात्र के लिए रसव्यजक होते हैं। केवल तात्पर्य पर्यालोचनया इन्हे रस व्यजक माना जाता है।

यत्र तु रसादीनामविषयत्व स काव्यप्रकारो न सम्भवत्येव।

तथा— रसभावादिविषय-विवक्षा-विरहे सति।
अलकार निबन्धो य स चित्रविषयो मत ॥
रसादिषु विवक्षा तु स्यात्तात्पर्यवती यदा
तदा नास्त्येव तत्काव्य ध्वनेर्यत्तु न गोचर ॥

ध्व० पृ० ५४६ व ५४६।

४ उपमा रूपकादि अर्थालकार जिनकी समीक्षापूर्वक की गई योजना को चारुता का हेतु होने के कारण रसव्यजक माना गया है

ध्वन्यात्मभूते शृगारे समीक्ष्य विनिवेशित ।
रूपकादिरलकारवर्ग एति यथार्थताम् ॥ ध्व० २-४०।

रूपकादि अर्थालकारो की समीक्षापूर्वक की गई योजना की अत्यधिक प्रशसा की गई है। एक ओर इन्हे रसादि मे चारुता का आधायक माना गया है तो दूसरी ओर कवित्व शक्ति प्राप्त कराने वाला भी कहा गया है।

५ रसवदादि अलकार—जहा रसादि स्वभिन्न रस, वस्तु या अलकार रूप अर्थ की चारुता का उत्कर्ष-वर्धन करते हैं वहा उन्हे रसवदादि अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

यत्र तु प्राधान्येनार्थान्तरस्य वाक्यार्थी भावे रसादिभिश्चारुत्वनिष्पत्ति क्रियते स रसादेरलकारताया विषय । ध्व० पृ० १०६।

रसवदादि अलकारो को गुणीभूत व्यग्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है और समस्त गुणीभूत व्यग्य प्रकारो को पर्यन्त में रसव्यजक स्वीकार किया गया है। अत रसवदादिको की भी पर्यन्त में रसव्यजकता सिद्ध हो जाती है

प्रकारोऽन्य गुणीभूतव्यग्योऽपि ध्वनिरूपताम्।
धत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुन ॥ ध्व० ३-६३।

६ गुणीभूत व्यग्य स्वरूप अलकार व्यग्य होते हुए भी गौण होने के कारण ध्वनित्व को न प्राप्त कर पाने से गुणीभूत व्यग्य के नाम से अभिहित किए जाते हैं

अलकारान्तरस्य रूपकादेरलकारस्य प्रतीतौ सत्यामपि यत्र वाच्यस्य व्यग्य-प्रतिपादनौन्मुख्येन चारुत्व न प्रकाशते, नासौ ध्वनेर्मार्ग । ध्व० पृ० ११८।

इस प्रकार के अलकार भी अन्य गुणीभूत व्यग्य भेदो के समान रस व्यजना करते हैं।

७ व्यग्य—ध्वनिसज्ञक अलकार लोकि वस्तु तथा अलकार दोनो से ही व्यक्त होते हैं तथा प्राधान्येन व्यक्त होने के कारण उन्हे ध्वनि के अन्तर्गत गिना जाता है

व्यज्यन्ते वस्तुमात्रेण यदालङ्कृतयस्तदा।
ध्रुव ध्वन्यगता तासाम् काव्यवृत्तेस्तदाश्रयात्॥
अलकारान्तरव्यग्यभावे ध्वन्यगता भवेत्। ध्व० २-५२-५३।

इन ध्वनिसज्ञक अलकारो को भी गुणीभूतव्यग्य सज्ञक अलकारो के समान ही रसव्यजक माना गया है

न केवल गुणीभूतव्यग्यायेव पदान्यलक्ष्यक्रम-ध्वनेर्व्यञ्जकानि यावदर्थान्तर-सक्रमितवाच्यानि ध्वनिप्रभेदरूपाण्यपि। ध्व० पृ० ५३०।

व्यग्य अलकारो के जिन दो भेदो का निर्देश किया जा चुका है उन्हे व्यजको के वैशिष्ट्य के आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है। जैसे ध्वनि-सज्ञक अलकार दो प्रकार के होते है—शब्दशक्ति-व्यग्य तथा अर्थशक्ति-व्यग्य। शब्द-शक्ति-व्यग्य अलकार को शब्द-शक्त्युद्भव-ध्वनि भी कहा जाता है

आक्षिप्त एवालकार शब्दशक्त्या प्रकाशते।
यस्मिन्ननुक्त शब्देन शब्दशक्त्युद्भवो हि स॥ ध्व० २-४८।

अर्थ-शक्ति-व्यग्य अलकार व्यजक अर्थ के द्विविध होने के कारण दो प्रकार के होते है—वस्तु-व्यग्य तथा अलकार-व्यग्य

अगित्वेन व्यग्यतायामप्यलकाराणा द्वयी गति, कदाचिद्वस्तुमात्रेण व्यज्यन्ते कदाचिदलकारेण। ध्व० पृ० २१५।

गुणीभूत व्यग्यस्वरूप अलकारो को भी चार भेदो मे विभक्त किया जा सकता है

१ समस्त अलकारगर्भित अलकार जैसे अतिशयोक्ति अलकार को समस्त अलकार-गर्भित माना जाता है

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलकारोऽनया विना॥ ध्व०पृ०५०२।

इसी प्रकार उपमा की व्यापकता का भी प्रतिपादन किया गया है

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदात्।
रजयति काव्यरगे नृत्यन्ती तद्विदाचेत॥
चित्रमीमासा पृ० ४१।

२ विशेष-अलकार-गर्भित अलकार—जैसे व्याजस्तुति अलकार मे प्रेयालकार गर्भित होता है।

३ अलकार-सामान्य-गर्भित अलकार—जैसे सन्देह मे उपमा अलकार गर्भित होता है।

४ परस्पर-गर्भित अलंकार जैसे—दीपक तथा मालोपमा अलंकार परस्पर गर्भित होते हैं।

इन समस्त अलंकार प्रकारो को गुणीभूत व्यंग्य स्वीकार किया गया है। तथा इन सबकी पर्यन्त मे रसव्यंजकता का भी निर्देश किया गया है। उपर्युक्त समस्त व्यंजक एवं व्यंग्य अलंकार भेदो को तालिका मे इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

१ अनुप्रासादि अलंकार, २ शब्दचित्र, ३ अर्थचित्र, ४ उपमादि अर्थालंकार ५ रसवदादि अलंकार, ६ गुणीभूतव्यंग्य-संज्ञक अलंकार, ७ ध्वनि-संज्ञक अलंकार।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलंकार योजना के क्षेत्र मे कवियों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। उसे केवल एक लक्ष्य ही सामने रखना होता है वह यह कि समस्त प्रकार की अलंकार योजना का मुख्य उद्देश्य मात्र रस परिपोष होता है।

काव्य मे अलंकारो के विनिवेश के जो ऊपर विभिन्न प्रकार बताए गए हैं उनमे से केवल ध्वनि-संज्ञक व्यंग्य अलंकारो को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया गया है अन्य अलंकारो को चाहे वे रसव्यंजना कितनी ही उत्कृष्ट क्यो न करते हो, उन्हें ध्वनि का उपकारक होने के कारण मात्र व्यंग्य ही कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रस, वस्तु तथा कुछ विशिष्ट प्रकार से उपनिबद्ध अलंकार इन तीनो को काव्य की आत्मा प्रतिपादित किया गया है। परन्तु काव्यात्मा तीनो को मानते हुए भी महत्त्व रसादिको को ही प्रदान किया गया

है। यही नहीं वस्तु तथा अलंकार को पर्यन्त में रसपर्यवसायी स्वीकार कर केवल रस को ही काव्य की आत्मा कहलाने का अधिकारी रखा गया है वस्तु तथा अलंकार को नहीं।

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥ ध्व० १-५।

प्रतीयमानस्य चान्यभेददर्शनेऽपि रसभावमुखेनैवोपलक्षणम्, प्राधान्यात्।
वही पृ० ३३।

काव्यात्मत्वमितिहासव्याजेन च दर्शयति-काव्यस्यात्मेति। स एवेति। प्रतीयमानमात्रेऽपि प्रक्रान्ते तृतीय एव रसध्वनिरिति मन्तव्यम्। इतिहासबलात् प्रक्रान्तग्रन्थबलाच्च। तेन रस एव वस्तुत आत्मा। वस्त्वलंकारध्वनी तु सर्वथा रस प्रति पर्यवस्येते इति। वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभिप्रायेण ध्वनिः काव्यस्यात्मेति सामान्येनोक्तम्। ध्व० लोचन पृ० १५५।

यद्यपि यहाँ पर अभिनव ने केवल रस को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। परन्तु ध्वन्यालोक के उपर्युक्त वृत्तिभाग की व्याख्या करते हुए उन्होंने भावादिकों को भी काव्य की आत्मा स्वीकार कर लिया है

भावग्रहणेन व्यभिचारिणोऽपि चर्व्यमाणस्य तावन्मात्रविश्रान्तावपि स्थायिचर्वणापर्यवसानोचितरसप्रतिष्ठामनवाप्यापि प्राणत्वं भवतीत्युक्तम्।—रसभावशब्देन च तदाभास तत्प्रशमावपि संगृहीतावेव, अवान्तरवैचित्र्येऽपि तदेकरूपात्।
वही लोचन पृ० १६५।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल रस ही नहीं अपितु भावादिकों को भी काव्य की आत्मा स्वरूप स्वीकार किया गया है। इसीलिए आनन्दवर्धन ने रसादि रूप अर्थ को रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्त्यादि अनेक प्रकार का स्वीकार किया है

रसभावतदाभासभावशान्त्यादिरक्रमः।
ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ॥ ध्व० २-२५।

परन्तु अभिनव के अनुसार भावादि ध्वनि स्वरूप अर्थ भी पर्यन्त में किसी न किसी रस का ही परिपोष किया करता है

यद्यपि च रसेनैव सर्वं जीवति काव्यम्। तथापि तस्य रसस्यैकघनचमत्कारात्मनोऽपि कुतश्चिदंशात्प्रयोजकीभूतादधिकोऽसौ चमत्कारो भवति। तत्र यदा कश्चिदुद्रिक्तावस्थां प्रतिपन्नो व्यभिचारी चमत्कारातिशयप्रयोजको भवति तदा भावध्वनिः। वही लोचन पृ० ३७०।

एवं रसध्वनेरेवामी भावध्वनिप्रभृतयो निष्यन्दा आस्वादे प्रधानं प्रयोजकमेवमंशं विभज्य पृथग्व्यवस्थाप्यन्ते। यथागुर्वादिद्रव्यैरेकरससंमूर्छितामोदोपभोगेऽपि शुद्धमांस्यादिप्रयुक्तमिदं सौरभमिति। वही पृ० ३७७।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि भावादि भी रसादिको के समान आस्वाद्य होते हैं। परन्तु जिस प्रकार अग रस अगी रस के परिपोषक होते हैं उसी प्रकार भावादि भी किसी न किसी रस के उत्कर्षवधक होते हैं।

उपसहार

रस तत्त्वो तथा रस स्वरूप पर विचार करने के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि किसी भी काव्य को रसात्मक काव्य तभी कहा जा सकता है यदि उसमे विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव, सात्त्विक भाव तथा विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ आदि का विनियोजन औचित्य युक्त, प्रतीति विघानक विघ्नो का अपसारण करने मे समर्थ, हृदयसवादी तथा असहृदयो मे भी सहृदयता का आधान कर सकने मे सक्षम हो। इसके साथ-साथ उसमे रसो तथा भावो आदि की भी अगागिभाव के रूप मे ही सघटना की गई हो। इन सभी विशेषताओ से युक्त काव्य ही आस्वाद्य होता है।

हिंदी की आधुनिक नई कविता को आस्वाद्य स्वीकार करते हुए भी रसहीन कहा जाता है "बीसवी सदी के मनुष्य की मन स्थिति जीवन के प्रति दृष्टिकोण मे आमूल परिवतन आ जाने के कारण इतनी दूर तक बदल चुकी है कि वह अपने रागात्मक सम्बन्धो को न तो पितृसम्प्रदाय करके सन्तुष्ट हो पाता है न किसी देवता के चरणो पर आत्म समपण करके मुक्तिलाभ कर पाता है। एक गहरा असन्तोष सहज अनास्था और फ्रस्ट्रेशन उसके हृदय मे व्याप्त हो गया है जिसके कारण विश्वास ठहर नही पाते बुद्धि और तर्क उन्हे टिकने नही देते। एक ओर भौतिकता की जड उपासना म उसकी चेतना विद्रोह करती है दूसरी ओर आत्मा की अतीन्द्रिय सत्ता और अखण्ड अनाहत आनन्द की उसे अनुभूति नही हो पाती। अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् के सघर्ष तथा उनकी महत्ता के पोषक सिद्धान्तो के द्वन्द्व ने जीवन मे एक विचित्र गतिरोध ला दिया है। आदर्शो मे शताब्दियो से प्रतिष्ठित भारी अराजकता आ गई है तथा आदर्श और यथार्थ का पारस्परिक सघात घनीभूत हो गया है। यह मनोदशा व्यक्ति की न होकर युग की है। और साहित्य के क्षेत्र मे आनेवाली नई कृतियाँ स्पष्ट रूप मे इसको व्यक्त कर रही हैं। केवल वर्तमान आर्थिक कारणो से ही यह असन्तोष और अनास्था उपजी है यह नही कहा जा सकता। इसका सम्बन्ध नैतिक मूल्यो और सस्कारो मे आई हुई सक्रान्ति से भी है जिस पर वैज्ञानिक युगीन बौद्धिकता की गहरी छाया है। बुद्धि भावो को स्थायी नही होने देती। और फलत आलम्बन स्थिर नही रहते। रस एक विशेष मन स्थिति मे विशेष प्रक्रिया से निष्पन्न होता है। इस विषण्ण युग के कवि की दृष्टि रस निष्पत्ति की ओर नही जाती और अधिकाश नई कविता का लक्ष्य रसानुभूति कराना नही है ऐसा मुझे

लगता है।" (रस सिद्धान्त से उद्धृत) डा० जगदीश गुप्त—आलोचना त्रैमासिक वर्ष २, अंक ३, पृ० ५६।

जहाँ तक नई कविता की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध है वह कैसी भी हो। परन्तु नई कविता का रसभावादि से रहित होना अथवा प्राचीन काव्य मनीषियों द्वारा स्वीकृत काव्य की आत्मा से भिन्न किसी नवीन आत्मा से अनुप्राणित होना और इसीलिए उसको नई स्वीकार करना उचित नहीं प्रतीत होता। कवि प्राचीन काल से ही स्वतन्त्र रहे हैं। रसभावादि की विवक्षा सर्वदा सब कवियों को मान्य नहीं रही। चित्रकाव्य की विपुलता इसका उदाहरण है। ऐसे काव्यों को रसहीन भी माना गया है। परन्तु वैसी रचनाओं को रसभावादि से भिन्न किसी अन्य स्वतन्त्र भावना का द्योतक नहीं स्वीकार किया गया है। क्योंकि न तो रसभावादि से सर्वथा हीन कोई काव्य हो सकता है और न कवि किसी ऐसे शब्दार्थों की कल्पना ही कर सकता है जो रसादि से सर्वथा शून्य होते हुए तथा किसी न किसी भाव के जनक बनकर विभावादि के अन्तर्गत समाहित न हो जाते हों। जैसा कि कहा गया है

सत्यम् न तादृक् काव्यप्रकारोऽस्ति यत्र रसादीनामप्रतिपत्ति । किन्तु यदा रसभावादिविवक्षाशून्य कवि शब्दालकारमर्थालंकार वा उपनिबध्नाति तदा तद्विवक्षापेक्षया रसादिशून्यतार्थस्य परिकल्प्यते। ध्व० पृ० ५/८।

अत केवल कवि की इच्छा मात्र से ही किसी रचना को रसादि से सर्वथा शून्य और इसीलिए एक नई काव्यधारा का अनुगामी नहीं कहा जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि काव्य रसादि का व्यंजक हो या न हो परन्तु उसे सर्वथा रस से शून्य अथवा प्राचीन रसप्राण काव्यपरम्परा से भिन्न नहीं कहा जा सकता। जैसा कि आनन्दवर्धन ने स्वीकार किया है

यत्र तु रसादीनामविषयत्वम् स काव्यप्रकारो न सम्भवत्येव। यस्मादवस्तु सस्पर्शिता काव्यस्य नोपपद्यते। वस्तु च सर्वमेव जगद्गतमवश्य कस्यचिद्रसस्य चागत्व प्रतिपद्यते। अन्ततो विभावत्वेन। चित्तवृत्तिविशेषा हि रसादय । न च तदस्ति वस्तु किंचिद् यत्र चित्तवृत्तिविशेषमुपजनयति। ध्व० पृ० ५४६-५४७।

परन्तु यदि नए कवि प्राचीन परिभाषाओं से अपरिभाषित होने के कारण ही अपनी कविता तथा कवितागत भावों को प्राचीन कविता तथा भावों से भिन्न स्वीकार करते हैं तो केवल इस हेतु से ही उन्हें परम्परा से भिन्न नई सृष्टि का विधाता नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्योंकि नए कवि भी अपनी कविता द्वारा किसी न किसी भाव को ही भले ही वह प्राचीन परिभाषाओं से परिभाषित न किया गया हो, प्रकट करते ही हैं अथवा यों कहें कि कवि स्वय अपनी अनुभूतियों को या लोकानुभूतियों को ही कविता का रूप देते हैं। अत नई कविता में व्यक्त अनुभूतियों को भावों से भिन्न नहीं कहा जा सकता।

क्योकि भाव कहते ही अनुभूति को हैं

आत्मानुभावन भाव । ना० शा० २५-४१ ।

रही भावो की प्राचीनता तथा नवीनता की बात। वस्तुत भावो की सख्या प्राचीन आचार्यों ने जो दी है वह इयत्ता की द्योतक नही है केवल परम्परा पालन हेतु उनकी सख्या मे वृद्धि नही की गई है। और कुछ विचारको ने तो सख्या वृद्धि भी की है।

इसी प्रकार सभी कविताओ मे अनिवार्यरूपेण रसव्यजना का अनुमोदन भी समस्त आचार्यों ने नही किया है। भावादि ध्वनियाँ तथा वस्तु एव अलकार ध्वनियाँ स्वतन्त्र रूप से भी आस्वाद्य मानी गई हैं। अत नई कविता की प्राचीन काव्यधारा से भिन्नता का प्रतिपादन करना तथा भिन्न होते हुए भी उसको आस्वाद्य मानना भ्रान्तिजनित प्रतीत होता है।

रस भेद

नाट्यशास्त्र मे आठ रसो का उल्लेख किया गया है—

शृगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानका ।

बीभत्सोद्भुतसज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा स्मृता ॥ ना०शा० ६-१५।

परन्तु अभिनव के अनुसार भरत को नौ रस अभीष्ट थे। शान्त रस को स्वीकार करने वालो ने नव के स्थान पर अष्टौ पाठ कर लिया है

तेन प्रथम रसा । ते च नव शान्तापलापिनस्त्वष्टाविति पठन्ति ।

ना० शा० अभि० पृ० २६७।

जो भी हो अभिनव ने रसो के अन्तर्गत शात रस को भी स्वीकार कर लिया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भरत को भी शान्तरस अभीष्ट था। परवर्ती विवेचको मे यद्यपि शान्त रस की स्वीकृति विवादास्पद रही। तथापि अधिकाश विद्वानो ने शान्त को भी रस स्वीकार कर लिया।

परवर्ती विवेचको मे कुछ चिन्तको ने अन्य रसो को भी स्वीकार किया है। परन्तु अभिनव अन्य रसो को स्वीकार करने के पक्ष मे नहीं हैं।

एव ते नवैव रसा । पुमर्थोपयोगित्वेन रञ्जनाधिक्येन वा इयतामेवोपदेश्यत्वात् । ना० शा० अभि० पृ० ३४१।

शृगार रस

शृगाररस को रस भेदो मे प्रथम स्थान दिया गया है। भरत के अनुसार शृगार रस रति स्थायी-भाव-प्रभाव होता है।

तत्र शृगारो नाम रतिस्थायीभावप्रभव । ना० शा० पृ० ३००।

भरत ने रतिस्थायीभाव को शृगाररसरूपता प्रदान करने वाले विभावादिको का विस्तारपूर्वक निर्देश दिया है। उनके अनुसार रति स्थायीभाव प्रभव

शृंगार विभावों से उत्पन्न होता है। तथा अनुभावों से अभिनीत होता है।
वही पृ० ३०३-३०६।

परन्तु अभिनव ने आस्वाद्यमान रति स्थायी भाव को शृंगार रस के नाम से अभिहित किया है

रतिरेवास्वाद्यमानो मुख्य शृगार । वही अभि० पृ० ३००।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत ने रगमच अर्थात् काव्य एव नाटकादिगत शृंगार रस का लक्षण प्रस्तुत किया है जबकि अभिनव ने अनुभूतिस्वरूप शृंगार रस के स्वरूप की ओर सकेत किया है। धनजय ने शृंगार रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भरत का ही अनुगमन किया है

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनै ।
प्रमोदात्मा रति सैव यूनोरन्योन्यरक्तयो ।
प्रहृष्यमाण शृगारो मधुराङ्गविचेष्टितै ॥ द० रू० ४-४८।

शृंगार रस के उपर्युक्त दोनो रूपो को यदि हम एक लक्षण में उपनिबद्ध करना चाहें तो विभावादि की सम्यक् योजना से व्यक्त तथा चर्वणा-गोचर रति स्थायी भाव को शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

स्थायी भाव

शृंगार रस का स्थायी भाव रति होता है। यह रति स्थायी भाव अर्थात् रिरसा वासना रूप में सभी प्राणियो में विद्यमान रहती है

सर्वो रिरसया व्याप्त । ना० शा० अभि० पृ० २८२।

भरत के अनुसार शृंगार-रस-सज्ञक रति स्थायी भाव स्त्री-पुरुष-हेतुक एव उत्तम-युव-प्रकृति स्वरूप होता है

स च स्त्रीपुरुषहेतुक उत्तमयुवप्रकृति । ना० शा० पृ० ३०१।

अभिनव ने भरत के इस सूत्र की विशद व्याख्या की है। उन्होंने लौकिक रति तथा स्थायी भाव स्वरूप रति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए स्थायी भाव स्वरूप रति की शृंगार हेतुकता का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार लौकिक रति अभिलाषा पूर्तिमात्र पर निर्भर रहनेवाली, कामावस्थानुवर्तिनी तथा व्यभिचरित होनेवाली होती है जबकि स्थायी भाव स्वरूपा रति स्थिर, प्रारम्भ से फल प्राप्ति पर्यन्त व्याप्त रहने वाली तथा एकमात्र सुख प्रदान करने वाली होती है

अथ रति स्थायीति सूत्रभाग भाष्येण स्पष्टयति—स चेत्यादिना। स्त्रीपुरुष-शब्देन परस्पराभिलाषसम्भोगलक्षणया लौकिक्या अन्यय स्त्री इति या (यिया)। तेनाभिलाषमात्रसाराया कामावस्थानुवर्तिन्या व्यभिचारिरूपिण्योतिया (पानीनाया) विलक्षणैव इय स्थायिरूपा प्रारम्भादिफलाप्तिपर्यन्ता व्यापिनी परिपूर्णसुखैकफला

रतिमत्ता भवति हेतुत्त्य। ना० शा० अभि० पृ० ३०२।

अभिनव के अनुसार परम्परया लौकिक रति भी शृगार का हेतु होती है। कवि, नट तथा सामाजिक की लौकिक-रति-वासनानुविद्धता को उन्होंने इसका प्रमाण माना है

कविर्हि लौकिकरतिवासनानुविद्धस्तथा विभावादीनाहरति नाट्य चा (नटश्चा)नुभावान् यथा रत्यास्वाद शृगारो भवतीति। आस्वादयितुरपि प्राक्कक्ष्याया रत्यवगम उपयोगीत्युक्त प्राक्। ना० शा० पृ० ३०२।

अभिनव के विवेचन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे स्त्री तथा पुरुष उभयगत रति को एक ही स्वीकार करते है। वे आधार भेद के आधार पर रति को विभाजित करने के पक्ष मे नहीं है जैसा कि उनके समय मे कुछ विवेचको को अभीष्ट रहा होगा

अत एव यत्कैश्चिदुक्तम्-रतेराधारभेदेन भेदान् कथमेको रस इति। तदनभिज्ञतया। एकैव ह्यसौ तावती रति। यत्रान्योन्यसविदा एकवियोगो न भवति।

वही पृ० ३०२।

भरत के द्वारा निर्दिष्ट रति स्थायी भाव की उत्तमयुव-प्रकृति-स्वरूपता पर बल देते हुए अभिनव कहते है कि उत्तमयुव-प्रकृति-स्वरूप रति वासना ही आस्वाद योग्य होती है। अत वही शृगार रस रूपता को प्राप्त हो सकती है। अनुत्तम अथवा अयुव-प्रकृति-स्वरूप रति वासना नहीं। क्योकि अनुत्तम रति वासना मे दृढता नही होती तथा अयुवत्व युक्त रति वासना को रति स्थायी भाव के नाम से नहीं अभिहित किया जा सकता। अनुत्तमत्व तथा अयुवत्व-युक्त रति वासना मे विच्छिन्नता की सम्भावना भी बनी रहती है और शृगार अविच्छिन्न-रति-वासना-प्राण होता है। अत उत्तमयुव-प्रकृति-स्वरूप रति स्थायी भाव ही शृगार रस रूपता को प्राप्त कर सकता है मध्यम, अधम तथा अयुव प्रकृति स्वरूप रति वासना नही

अत एवोत्तमयुवप्रकृति। उत्तमश्चोत्तमा चोत्तमौ। एव युवानौ। तत्रोत्तमयुवशब्देन तत्सविदुच्यते। न तु काय। चैतन्यस्यैव हि परमार्थत उत्तमयुवत्व विशेष।—सा सविदास्वादयोग्यत्वात् शृगाररसीभवतीति। अनुत्तमत्वे तु(न) दार्ढ्यमयुवत्वे चेति न सा रतिमविन्। वियोगस्य सम्भावनात्। अवियुक्तसविद्रूपाणस्तु शृगार। ना० शा० अभि० पृ० ३०२।

विभाव

भरत ने रसो के आलम्बन तथा उद्दीपन जैसे भेदो का निर्देश करते हुए शृगार रस के विभावो का उल्लेख नही किया। उन्होंने रति स्थायी भाव की स्त्री-पुरुष हेतुकता का उल्लेख करते हुए सम्भोग शृगार के समुत्पादक विभावो

का निर्देश कर दिया है। उन्हे आलम्बन या उद्दीपन नाम से नही अभिहित किया है

तत्र सम्भोगस्तावत् ऋतुमाल्यानुलेपनालकारेष्टजनविषयवरभवनोपभोगोपवनगमनानुभवनश्रवणदर्शनक्रीडालीलादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।

नाο शाο पृο ३०३।

भरत के समान ही अभिनव भी आलम्बन तथा उद्दीपन विभावो के पक्ष मे नहीं है। अतएव उन्होने भी भरत के द्वारा निर्दिष्ट विभावो को आलम्बन या उद्दीपन नाम से न अभिहित कर विभाव नाम से ही अभिहित किया है

सव एव समुदिता विभाव इति काल्पनिकमालम्बनविभाव उद्दीपनविभाव इति। वही अभिο पृο ३०४।

परन्तु अभिनव भी नायक नायिकाओ की परस्पर विभावता का निर्देश भरत के समान करते ही है

तत्रेह वस्तुत स्त्री पुसौ परस्पर विभावौ। वही पृο ३०४।

धनजयादि के अनुसार परस्पर विभाव स्वरूप यह नायक-नायिका ही शृगार रस के आलम्बन विभाव होते है।

अभिनव के अनुसार भरत के द्वारा निर्दिष्ट शृगार रस के उपर्युक्त विभाव नायक-नायिकाओ की प्रकृति मे उत्तमता का आधान करने वाले तथा रति वासनोदय के अनुरूप अवसर की सृष्टि करनेवाले हेतु होते हैं

तयोरुत्तमत्वे चोपयोगीनि ऋत्वादीनि। उत्तमस्यानवसरे रत्यभावात्।

वही पृο ३०४।

और विभाव भेदको ने रतिवासनोदय के अनुरूप अवसर की सृष्टि करने वाले भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त विभावो मे से अधिकाश विभावो को ही उद्दीपन विभाव स्वीकार किया है। अत भरत के द्वारा निर्दिष्ट विभावो को उद्दीपन विभावो के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

भरत के अनुसार ऋतुमाल्यादि सम्भोग शृगार के विभाव होते है। परन्तु उन्होने विप्रलम्भ शृगार के विभावो का पृथक् रूप से निर्देश भी नही किया है। यद्यपि अभिनव ने भी ऋतुमाल्यादिको की सम्भोग शृगार विभावता का समर्थन किया है

एवं कविनोपनिबद्धैर्नटेन च साक्षात्कारकल्पतामानीतै र्नम्यगिरवविम्नभोगारमकसम्भोगो रस उत्पद्यते भटित्येव। वही पृο ३०५।

परन्तु शृगार रस के भेदो को स्वीकार न करने के कारण उन्होने सम्भोग तथा विप्रलम्भ दोनो के विभावो की अभिन्नता का प्रतिपादन भी कर दिया है

न हि विप्रलम्भे विभाव स्थायी च सम्भोगाद् भिद्यते। एक एवामावितिबहुश उक्तम्। वही पृο ३१०।

यद्यपि सम्भोग काल मे जो वस्तुएँ सुखद प्रतीत होती हैं और नायक-नायिकाओं की वासना को तीव्र किया करती हैं वियोग काल मे वे ही विरहियो को सतप्त एव अपने प्रिय व्यक्तियो की स्मृति मे खो जाने के लिए विवश कर दिया करती हैं। जैसाकि सूरदास ने गोपियो के मुख से प्रकट कराया है

> बिनु गोपाल बैरिन भई कुजे।
> तब वै लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुजे।
> सूर पदावली २४४।

परन्तु सम्भोग कालीन रति-वासनोत्तेजक सभी विषयों की वियोग कालीन रतिवासनोद्दीपकता तथा वियोगकालीन स्थायीभावोद्बोधक सभी विषयो की सम्भोगकालीन रति-वासनोद्दीपकता को स्वीकार कर लेना समीचीन नहीं प्रतीत होता। उदाहरण स्वरूप उत्स्वप्नायित, मोगाक तथा गोत्र-स्खलनादि विभावो को लिया जा सकता है। यह विभाव ईर्ष्यामान के ही जनक हो सकते है सम्भोग शृगार के नही। सभोग तथा विप्रलम्भ शृगार नामक उभयविध प्रतीतियो म एक दूसरे की आशिक रूप मे मिली-जुली प्रतीति होने की बात को स्वीकार भी कर लिया जाये जैसाकि अभिनव न स्वीकार किया है

अत एव सम्भोगे विप्रलम्भ-सम्भावनाभीरुत्व विप्रलम्भेऽपि सम्भोगमनोराज्या (रथा) नुवेध इति इयच्छृगारस्य वपु। वही पृ० ३०३।

फिर भी यह स्वीकार करना ही होगा कि सामान्यतया सभी विभाव समान रूप से सम्भोग तथा विप्रलम्भ शृगार के विभाव नही बन सकते।

धनजय तथा पण्डितराज ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त विभावों से भिन्न किसी नवीन विभाव का उल्लेख नहीं किया है। विश्वनाथ ने आलम्बन की चेष्टाओ तथा उसके रूप व वेशविन्यासादि की भी उद्दीपन विभावता का प्रतिपादन किया है

> उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
> आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा। सा० द० ३-१३२।
> चेष्टाद्या इत्याद्यशब्दाद्रूपभूषणादय। वही

सम्भोगानुभाव

भरत ने सम्भोग तथा विप्रलम्भ शृगार के अनुभावा का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है। उनके अनुसार सभोग शृगार के अनुभाव निम्नलिखित होते हैं

तस्य नयनचातुर्यभ्रूक्षेपकटाक्षसचारललितमधुरागहारवाक्यादिभिरनुभावैरभिनय प्रयोक्तव्य। ना० शा० पृ० ३०५।

अभिनव ने भरत के आदि पद के आधार पर सात्विक भावो, मुखराग

तथा पुलकादिको को भी सम्भोग शृगार का अनुभाव स्वीकार कर लिया है

आदिग्रहणात्सात्विको मुखरागपुलकादिर्गृह्यते ।

वही अभि० पृ० ३०६ ।

धनजय ने सम्भोग शृगार के किसी नवीन अनुभाव का निर्देश नही किया है। विश्वनाथ के अनुसार नायिकाओ के सात्विक अलकार भी अनुभाव स्वरूप होते है

उक्ता स्त्रीणामलकारा अगजाश्च स्वभावजा ।

तद्रूपा सात्विका भावास्तथा चेष्टा परा अपि ।।

सा० द० ३-१३३-१३४ ।

सात्विक अलकारो की अनुभाव स्वरूपता तथा शृगार रस मे उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला जा चुका है। अन सात्विकालकारो को भी शृगार रस के अनुभावो मे सम्मिलित किया जा सकता है। पण्डितराज के द्वारा निर्दिष्ट शृगार रस के अनुभाव भरत के अनुभावो से भिन्न न होते हुए भी उक्ति वैचित्र्य के साथ निर्दिष्ट किए गए है

तत्र शृगारस्य तन्मुखावलोकनतद्गुणश्रवणकीर्तनादयोऽश्रुसात्विकभावाश्चानुभावा । र० ग० पृ० १३६ ।

पण्डितराज के द्वारा निर्दिष्ट अनुभाव तथा सात्विकालकार सम्भोग तथा विप्रलम्भ दोनो के ही अनुभावक हो सकते हैं।

विप्रलम्भ शृगारानुभाव

भरत ने शृगार रस पोषक समस्त व्यभिचारी भावो का निर्देश करने के अनन्तर कुछ व्यभिचारी भावो की विप्रलम्भ पोषकता का पृथक् रूप मे निर्देश किया है तथा उन व्यभिचारी भावो को व्यभिचारी भाव न कहकर अनुभाव नाम से अभिहित किया है

विप्रलम्भकृतस्तु निर्वेदग्लानिशकासूयाश्रमचिन्तौत्सुक्यनिद्रास्वप्नविबोधव्याध्युन्मादापस्मारजाड्यमरणादिभिरनुभावैरभिनेतव्य । ना० शा० पृ० ३०६ ।

अभिनव के अनुसार उपर्युक्त व्यभिचारी चूकि अपने अनुभवो से अनुभावित होकर विप्रलम्भ का अनुभावन कराते हैं। अतएव भरत ने इन्हे अनुभाव नाम से अभिहित कर दिया है

एते व्यभिचारिणोऽपि स्वानुभावैरनुभाविता विप्रलम्भमनुभावयन्ति । तस्मादनुभावैरित्युक्तम् । वही अभि० पृ० ३०७ ।

अत भरत के प्रयोग तथा अभिनव की टिप्पणी के आधार पर विप्रलम्भ पोषक व्यभिचारियो के कुछ अनुभावो को विप्रलम्भ के अनुभावो के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। विप्रलम्भ पोषक व्यभिचारियो के अनुभावो के

समान उनके कुछ विभाव भी विप्रलम्भ शृंगार के उद्दीपक बन सकते हैं। यह अधोलिखित सूची से स्पष्ट हो जाएगा। अत विप्रलम्भपोषक व्यभिचारियों के कुछ विभावों को विप्रलम्भ शृंगार का उद्दीपक भी स्वीकार किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप भरत के द्वारा निर्दिष्ट विप्रलम्भ पोषक व्यभिचारी भावों के अधोलिखित विभावों तथा अनुभावों को उद्धृत किया जा सकता है

व्यभिचारी भाव	विभाव	अनुभाव
१ निर्वेद	इष्टजन वियोग	रुदित, उच्छ्वसित, निश्वसितादि।
२ ग्लानि	प्रियव्यलीकता	कपोलक्षामता, वेपन, वैवर्ण्यादि।
३ शंका	प्रियव्यलीकता	मुखशोष, जिह्वापरिलेहन, मुखवैवर्ण्यादि।
४ असूया	नायककृत अपराध, परसौभाग्य	ईर्ष्यापूर्वक अवलोकन, मुखावनमन, भृकुटीकरणादि।
५ श्रम	रोदनादि	विश्वसित, विजृम्भितादि।
६ चिन्ता	इष्टापहार	निश्वसित, उच्छ्वसितादि।
७ औत्सुक्य	इष्टजन-वियोगानुस्मरण	दीर्घ निश्वास, अधोमुख-विचिन्तनादि।
८ निद्रा	मद, आलस्य	उच्छ्वसितादि।
९ स्वप्न	विषयोपगमनादि	उच्छ्वसितादि।
१० वियोग	स्वप्नान्ततीव्र-शब्द-श्रवणादि	जृम्भणादि।
११ व्याधि	विरह (पंडितराज)	निश्वसन, वेपनादि।
१२ उन्माद	इष्टजन वियोग	अनिमित्त हसित, रुदितादि।
१३ अपस्मार	देवग्रहणानुस्मरण	निश्वसित, स्वेदादि।
१४ जड़ता	इष्टानिष्ट श्रवण-दर्शनादि	तूष्णीभाव, अनिमेषनिरीक्षणादि।
१५ स्मरण	इष्टाप्राप्ति	विषण्णाननादि।
१६ दैन्य	दौगत्य	अधृति, अयमनस्कतादि।
१७ मोह	दैवापघातादि	अचैतन्यता पतनादि।

धनजय तथा विश्वनाथ के द्वारा निर्दिष्ट विप्रलम्भ शृंगार के विभिन्न भेदोपभेदों के विभाव तथा अनुभाव उपर्युक्त विभावों तथा अनुभावों से भिन्न नहीं हैं।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार आलस्य, औग्रय तथा जुगुप्सा के अतिरिक्त सभी व्यभिचारी तथा स्थायी भाव शृंगार रस के पोषक होते हैं

व्यभिचारिणश्चास्यालस्यौग्रयजुगुप्सावर्ज्या । ना० शा० पृ० ३०६ ।

हम देख चुके हैं कि भरत ने विप्रलम्भ पोषक व्यभिचारियों का पृथक् रूप से निर्देश कर दिया है। अत उपर्युक्त विप्रलम्भपोषक व्यभिचारियों से भिन्न व्यभिचारियों को सम्भोग शृंगार का पोषक स्वीकार किया जा सकता है। अभिनव ने भरत के उपर्युक्त विभाजन को स्वीकार करते हुए भी कुछ नियमित कर दिया है

सम्भोगदशायां तु विभावसामर्थ्ये निद्रायभावाद्विबोधोऽपि व्यभिचारी। सम्भोगेऽपि रतिश्रमकृतनिद्रादि यद्यप्यस्ति तथापि न रतौ तच्चित्तनामावहते ।

ना० शा० अभि० पृ० ३०७ ।

भरत के द्वारा प्रयुक्त आदि पद के आधार पर अभिनव ने विप्रलम्भ पोषक व्यभिचारियों में दैन्य तथा मोह को भी सम्मिलित कर लिया है

आदिशब्देन दैन्यमोहादय । वही पृ० ३०७ ।

धनजय के अनुसार यदि आलस्य, औग्र्य तथा जुगुप्सा की भी युक्तिपूर्वक योजना की जाय तो वे भी शृंगार रस का परिपोष कर सकते हैं

त्यक्तौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिण।

आलस्यमौग्र्य मरण जुगुप्सा तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम् ॥

द० रू० ४-४६ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राय सभी व्यभिचारी तथा स्थायी भाव शृंगार रस के पोषक स्वीकार कर लिए गए हैं।

आश्रय

यद्यपि रस सूत्र में आश्रय की प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं की गई है। परन्तु हम देख चुके हैं कि रस रूप प्रकृति—जिसका आधार आश्रय होता है का भी रस परिपोष में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। अत प्रसगवश यहा पर शृंगार रस के आश्रय के बारे में भी दो शब्द कह लेना अनावश्यक न होगा।

शृंगार रस के स्थायी भाव रति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए हम देख चुके हैं कि भरत तथा अभिनव ने शृंगार रस को उत्तमयुव-प्रकृति-स्वरूप स्वीकार किया है। अत उत्तम प्रकृतिसूचक गुणों से युक्त युवा नायक-नायिकाओं को शृंगार रस का आश्रय स्वीकार किया जा सकता है। विश्वनाथ ने भी शृंगार रस को उत्तम प्रकृतिप्राय स्वीकार किया है

उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते । सा० द० ३-१८३ ।

निष्कर्ष

शृंगार रस के विभावादिकों का निर्देश करने के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि उद्दीपन विभावस्वरूप रम्य देशकालादि में आलम्बन विभाव-स्वरूप नायिका अथवा नायक के दर्शनादि से आश्रय स्वरूप नायक नायिकागत रति वासना उद्बुद्ध हो जाती है। जिसे उनके अनुभाव स्वरूप व्यापार प्रकट करने लगते हैं। आश्रय की चित्तवृत्ति में रति वासना का उद्बोध होने के साथ-साथ अन्य भाव भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु वे भाव उत्पन्न होने के अनन्तर तत्काल ही विलीन हो जाते हैं। केवल रति भाव स्थिरता धारण कर लेता है। काव्य में अंकित अथवा रंगमंच पर अभिनीत इस दृश्य को शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जाता है। उपर्युक्त दृश्य को देखकर या पढ़कर अथवा सुनकर संस्कारों के रूप में सुप्त सामाजिकगत रति वासना भी जाग्रत हो जाती है। अतः हृदयसंवादवश सामाजिक स्वगत रति वासना का अनुभव करने लगता है। सामाजिक की इस अनुभूति को भी शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जाता है।

भेद

भरत ने शृंगार रस के दो अधिष्ठानों का उल्लेख किया है

तस्य द्वे अधिष्ठाने सम्भोगो विप्रलम्भश्च। ना० शा० पृ० ३००।

परवर्ती विवेचकों ने इन अधिष्ठानों को ही शृंगार रस के भेद के नाम से अभिहित किया है। परन्तु अभिनव के अनुसार अधिष्ठान भेद न होकर शृंगार रस की अवस्थाएँ हैं। जैसे शावलेयत्व तथा बाहुलेयत्व गोत्व के भेद नहीं होते उसी प्रकार संभोग तथा विप्रलम्भ भी शृंगार रस के भेद नहीं होते। शृंगार रस की इन दोनों अवस्थाओं में चूंकि रति वासना का ही आस्वाद किया जाता है और दोनों अवस्थाओं में एक दूसरी अवस्था की प्रतीति भी अनुस्यूत रहती है तथा चमत्काराधिक्य भी दोनों अवस्थाओं की समन्वित प्रतीति में ही होता है। अतः इन दोनों संभोग तथा विप्रलम्भ नामक शृंगार रस की अवस्थाओं को एक दूसरी अवस्था से भिन्न नहीं कहा जा सकता

अधिष्ठाने अवस्थे इत्यर्थः। अधिष्ठीयते अवस्थात्रं शृंगारत्वेन। तेन शृंगारस्य नैमौ भेदौ गोत्वस्येव शावलेयत्व बाहुलेयत्वे। अपि तु तद्दशाद्वयेऽप्यनुयायिनी या रतिरास्वादनात्मिका तस्याश्चास्वाद्यमानः रूपः शृंगारः —अतएव संभोगः विप्रलम्भसंभावनाभीरुत्वं विप्रलम्भेऽपि संभोगमनोराज्यानुवेध इति।—

अतएव एतद्द्वयमेलन एव सातिशयश्चमत्कार ।

हि० अभि० दि० वि० वि० प्रकाशन, पृ० ५४३-५४४ ।

अभिनव के इस विवेचन पर दृष्टिपात करने मे प्रतीत होता है कि उन्होने शृगार रस के सभोग तथा विप्रलम्भ नामक भेदो का निरास शृगार के सभी भेदो मे प्रतीत होनेवाली प्रतीति की एकता को आधार बनाकर किया है । परन्तु आनन्दवधन ने प्रतीयमान रसादिको की एकता तथा आत्मस्वरूपता को स्वीकार करते हुए भी अगो तथा स्वगत विशेषताओ के आधार पर रसादिको के भेदोपभेदो की अनन्तता का प्रतिपादन किया है

अगिनया व्यग्यो रसादिविवक्षितान्यपरवाच्यस्य ध्वनेरेक आत्मा य उक्त, तस्यागाना वाच्यवाचकानुपातिनामलकाराणा ये प्रभेदा निरवधयो, ये च स्वगतास्तस्यागिनोऽर्थस्य रसभावतदाभासतत्प्रशमलक्षणा विभावानुभावव्यभिचारिप्रतिपादनसहिता अनन्ता स्वाश्रयापेक्षया निस्सीमाना विशेषा तेषामन्योन्य-सम्बन्धपरिकल्पने क्रियमाणे, कस्यचिदन्यतमस्यापि रसस्य प्रकारा परिसख्यातु न शक्यन्ते, किमुत सर्वेषाम् । तथा हि—शृगारस्यैवागिनस्तावदाद्यौ द्वौ भेदौ, सभोगो विप्रलम्भश्च । आदि—ध्व० पृ० १२३ ।

भरत मुनि ने स्वय भी सभी रसो के भेदो का उल्लेख करते हुए शृगार रस की त्रिविधता का निर्देश किया है

शृगार त्रिविध विद्याद्वाड्नैपथ्यक्रियात्मकम् । ना० शा० ६-७७ ।

और अभिनव ने भी भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त भेदो का खण्डन न कर उन्हे प्रधानभूत-विभावानुगुण भाव-प्रतिपादकता का सूचक माना है

अथ प्रधानभूतविभावानुगुण भाव प्रतिपादन भेदप्रदर्शनव्याजेन करोति । शृगारमित्यादिना । ना० शा० अभि० पृ० ३३० ।

इसी प्रकार अभिनव ने अन्य रसो के भेदो को निर्दिष्ट करने वाली नाट्य-शास्त्रगत कारिकाओ मे प्रयुक्त 'चकार' एव 'तथा' के आधार पर भावो की विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावानुरूपता की ओर भी अप्रत्यक्ष रूप से सकेत कर दिया है

एषु च शृगारमित्यादिषु श्लोकेषु चकारा विभावानुभावान्तरनिरासशका परार्कर्तुम् ।—तथाशब्दा अनुक्तविभावाद्यूहनार्था इति यथायोग योज्यम् ।

वही पृ० ३३२ ।

अत अनुभूति के रूप मे एक होते हुए भी विभावादि अगो के आधार पर किए गए शृगार रस के भेदोपभेदो को स्वीकार कर लेना असमुचित नही प्रतीत होता । पडितराज के विवेचन के अनुसार सभोग तथा विप्रलम्भ नामक भेदो को रति स्थायी भाव की सयोग तथा वियोग कालीनता पर आधारित कहा जा सकता है

रते सयोगकालीनावच्छिन्नत्व प्रथम । वियोगकालीनावच्छिन्नत्वे द्वितीय ।
र० ग० पृ० १६६ ।

धनजय ने शृगार रस के सब प्रथम तीन भेदो का निर्देश किया है

अयोगो विप्रयोगश्च सभोगश्चेति स त्रिधा । द० रू० ४-५० ।

धनिक के अनुसार धनजय विप्रलम्भ इस लाक्षणिक शब्द का प्रयोग नही करना चाहते थे। अतएव उन्होने विप्रलम्भ के स्थान पर अयोग तथा विप्रयोग नामक भेदो का निर्देश किया है

अयोगविप्रयोगविशेषत्वाद् विप्रलम्भस्यैतन् सामान्याभिधायित्वेन विप्रलम्भ-शब्द उपचरितवृत्तिर्माभूदिति न प्रयुक्त । द० रू० स० वृ० पृ० ४४५ ।

परन्तु अभिनव के अनुसार विप्रलम्भ शब्द ही नही अपितु सभोग शब्द भी लाक्षणिक है

सभोगशृगार इत्यादि व्यपदेशोऽभोगेप्युपचारात् । वही अभि० पृ० ३०३ ।

अत धनजय जब सभोग इस लाक्षणिक शब्द का प्रयोग करते ही हैं तो उनके द्वारा विप्रलम्भ के स्थान पर की गई दो भेदो की कल्पना को गौरवास्पद ही कहा जाएगा । पडितराज ने भी सभोग के स्थान पर सयोग शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु उन्होंने इस परिवर्तन का कोई कारण नहीं निर्दिष्ट किया है। सभव है कि उन्होने भी किसी कारण वश सभोग के स्थान पर सयोग का प्रयोग किया हो। परन्तु चूकि उन्होंने किसी कारण का निर्देश नही किया है और सभोग शब्द प्रचलित भी है। अत परम्परा प्राप्त सभोग तथा विप्रलम्भ नामक भेदो को स्वीकार कर ही हम अग्रसर होंगे।

सभोग शृगार भेद

धनजय के अनुसार जहा पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका एक-दूसरे के दर्शन स्पर्शनादि का सेवन कर आनन्दानुभव कर रहे हो, वहा पर सम्भोग शृगार होता है

अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्य विलासिनौ ।
दर्शनस्पर्शनादीनि स सभोगो मुदान्वित ॥ द० रू० ४-६६ ।

आनन्दवर्धन ने उपर्युक्त स्वरूप सम्भोग शृगार के तीन प्रकारो का उल्लेख किया है

सभोगस्य च परस्परप्रेमदर्शनसुरतविहरणादिलक्षण प्रकारा ।
ध्व० पृ० १२४ ।

अभिनव ने यद्यपि अभिनव भारती मे शृगार रस के भेदो का खण्डन किया है। परन्तु लोचन म उन्होंने आनन्दवर्धन के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त भेदो पर टिप्पणी करते हुए दर्शनादि के अतिरिक्त अन्य प्रकारो की ओर भी सकेत किया है

परस्पर प्रेम्णा दर्शनमित्युपलक्षण सम्भाषणादेरपि। सुरत चातु परिष्वङ्गमालिंगनादि। विहरणमुद्यानगमनम्। आदिग्रहणेन जलक्रीडापानकचन्द्रोदयक्रीडादि।
ध्व० लोचन पृ० ४७२।

मम्मट तथा विश्वनाथ ने सभोग शृगार के कुछ प्रकारो का उल्लेख करते हुए भी सभोग प्रकारो की अनन्तता के कारण उसके भेदो का निर्देश नही किया है

तत्राद्य परस्परावलोकनालिगनाधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तत्वादपरिच्छेद्य एक एव हि गण्यते। का० प्र० पृ० १००।

सख्यानुमत्रयनया चुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात्।
अनमेक एव धीरै कथित सभोगशृगार ॥ मा०द० ३-२११।

धनजय तथा पण्डितराज ने इस ओर दृष्टिपात ही नही किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि सभोग शृगार के भेदो का निर्देश करने मे मम्मटादि ने विशेष रुचि नही ली है। परन्तु आनन्दवर्धन ने उसके भेदो का निर्देश किया ही है। और मम्मटादि ने उसके भेदो को स्वीकार न करने का कोई विशेष कारण भी नही दिया है। अत आनन्दवर्धन के द्वारा निर्दिष्ट सभोग शृगार के भेदो को स्वीकार कर ही हम अग्रसर होगे।

इसी प्रकार अभिनव के द्वारा निर्दिष्ट सभाषण की सभोग-शृगार-प्रकारता का भी अपलाप नही किया जा सकता। उनके द्वारा निर्दिष्ट जलक्रीडा, पानक तथा चन्द्रोदय-क्रीडादि भी विभिन्न प्रकार की शृगारिक क्रीडाएँ होती है जिन्हे नायक-नायिका आमोद-प्रमोद के लिए आयोजित करते है। अत इन विभिन्न क्रीडाओ को भी सभोग शृगार के एक क्रीडा भेद के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

इस प्रकार सभोग शृगार को आनन्दवर्धन के द्वारा निर्दिष्ट दर्शन, सुरत एव विहरण तथा अभिनव के द्वारा निर्दिष्ट सम्भाषण एव क्रीडा नामक पाच भेदो मे विभाजित किया जा सकता है।

विश्वनाथ के अनुसार ऋतुवर्णनादि भी सभोग शृगार के अन्तर्गत आते है

तत्र स्यादृतुषट्क चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमय।
जलकेलिवनविहारप्रभातमधुपानयामिनीप्रभृति ॥
अनुलेपनभूषाद्या वाच्य शुचिमेध्यमन्यच्च। सा० द० ३-२१२-२१३।

परन्तु विश्वनाथ के द्वारा निर्दिष्ट इन शृगारिक योजनाओ को उपर्युक्त विहरण तथा क्रीडा प्रकारो मे ही समाविष्ट किया जा सकता है। अत उन्हे पृथक् रूप से भेद स्वीकार करने की आवश्यकता ही नही रहती।

यद्यपि उपर्युक्त सभोग प्रकारो की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती है। परन्तु काव्य मे उनकी योजना समन्वित रूप से भी की जा सकती है। सभोग

शृंगार के यह भेद शृंगाराभिव्यंजक अनुभाव स्वरूप दर्शनादिक व्यापारों पर आधारित होते हैं।

विप्रलम्भ शृंगार भेद

जहाँ पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका किसी कारणवश इष्ट समागम को न प्राप्त कर पा रहे हों वहाँ विप्रलम्भ शृंगार होता है

यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ। सा०द० ३-१८७।

आनन्दवर्धन ने विप्रलम्भ शृंगार के चार भेदों का निर्देश किया है

विप्रलम्भस्याप्यभिलाषेर्ष्याविरहप्रवासविप्रलम्भादयः। ध्व० पृ० १२४।

मम्मट ने शाप नामक एक अन्य भेद को भी स्वीकार कर लिया है

अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक पञ्चविधः। का०प्र० पृ० १०२।

अभिनव तथा पण्डितराज का इन भेदों में भी कोई विशेषता नहीं परिलक्षित होती

अभिलाषेर्ष्याप्रवासादिदशास्ववस्थासु नर्मता। ना० शा० अभि० पृ० ३०३।

इम च पञ्चविध प्राच प्रवासादिभिरुपाधिभिरामनन्ति। ते च प्रवासाभिलाषविरहेर्ष्याशापाता विशेषानुपलम्भान्नास्माभि प्रपञ्चिता।

र० गं० पृ० १४२।

परन्तु आनन्दवर्धनादि के द्वारा निर्दिष्ट विप्रलम्भ शृंगार के भेद व्यंजकों पर आधारित हैं। और व्यंजकों में भिन्नता तथा अनेकरूपता होती ही है। इसके साथ-साथ व्यंजकों की यह विशिष्टता व्यंग्य भावों को भी यत्किंचित् रूप में विशिष्टता अवश्य प्रदान करती है। अतः विप्रलम्भ शृंगार के भेदोपभेदों का स्वीकार कर हो हम अग्रसर होंगे।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने उपर्युक्त भेदों का उल्लेख न कर भिन्न रीति से विप्रलम्भ शृंगार के भेदोपभेदों का निर्देश किया है। अतः यहाँ पर धनंजय तथा विश्वनाथ के द्वारा निर्दिष्ट विप्रलम्भ भेदों तथा उपर्युक्त भेदों की समानता तथा असमानता पर विचार कर लेना अनावश्यक न होगा।

हम देख चुके हैं कि धनंजय ने संभोग शृंगार के अतिरिक्त अयोग तथा विप्रयोग नामक दो अन्य भेदों को स्वीकार कर लिया है। उनके अनुसार जहाँ पर नवीन अवस्था वाले अर्थात् जिन्हें एक-दूसरे का समागम न प्राप्त हो सका हो ऐसे नायक-नायिकाओं का परस्पर अनुरक्त होते हुए भी परतन्त्रता आदि के कारण समागम नहीं हो पाता वहाँ पर अयोग शृंगार होता है

तत्रायोगो नुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः ॥

पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः। द० रू० ४-५०-५१।

तथा जहाँ पर रूढ-विश्रम्भ अर्थात् पहले से एक-दूसरे का समागम प्राप्त करते

रहने के कारण एक-दूसर पर विश्वास रखने वाले नायक-नायिकाओ का विश्लेष वश समागम नहीं हो पाता वहा विप्रयोग शृगार होता है

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविश्रम्भयाद्विधा । द० रू० ४-५७ ।

इस प्रकार हम देखते है कि धनजय के यह भेद नायक नायिकाओ के वियोग की समागम-पूर्वकालीनता तथा समागमोत्तरकालीनता पर आधारित है ।

विश्वनाथ ने धनजय के द्वारा निर्दिष्ट अयोग तथा विप्रयोग नामक भेदो के अभिधानो को स्वीकार न करते हुए भी उन भेदो में प्रतिपादित तथ्यो को आत्मसात् कर नए तरीके से विप्रलम्भ शृगार को विभाजित किया है। उन्होने विप्रलम्भ के स्थान पर अयोग तथा विप्रयोग नामक भेदो को न स्वीकार कर विप्रलम्भ शृगार के चार भेदो का निर्देश किया है

स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुधा स्यात् ।। सा० द० ३-१८७ ।

उनके इन चार भेदो मे स पूर्वराग भेद धनजय के अयोग शृगार का नामान्तर मात्र प्रतीत होता है। हम देख चुके है कि परस्पर अनुरक्त नवीन अवस्था वाले नायक-नायिकाओ के असयोग को धनजय ने अयोग नाम से अभिहित किया है। और विश्वनाथ न भी श्रवण या दर्शनादि से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओ का समागम प्राप्त कर पाने से पूर्ववर्ती अवस्था को पूर्वराग नाम स अभिहित किया है

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथ सरूढरागयो ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वराग स उच्यते ।। सा० द० ३-१८८ ।

धनजय के अनुसार अयोग शृगार की दश अवस्थाएँ होती है

दशावस्थ स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ।
स्मृतिगुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसज्वरा ।
जडतामरण चेति दुरवस्थ यथोत्तरम् ।। द० रू० ४-५१-५२ ।

इसी प्रकार विश्वनाथ के अनुसार पूर्वराग की भी उपर्युक्त दश दशाएँ होती है

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसप्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशा ।।
सा० द० ३-१९० ।

धनजय ने अयोग शृगार की सवप्रथम अवस्था को उत्पन्न करने वाले जिन दशनादिक उपायो का निर्देश किया है हम देख चुके है कि विश्वनाथ ने पूर्वराग की उत्पत्ति के भी वे ही कारण बताए है

अभिलाष स्पृहा तत्र कान्ते सर्वांगसुन्दरे ।
दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसा ।। द० रू० ४-५३ ।

इस प्रकार हम देखते है कि धनजय के अयोग तथा विश्वनाथ के पूर्वराग भेद मे कोई तात्विक अन्तर नहीं है। वामन के द्वारा की गई अभिलाष भेद की

व्याख्या पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि मम्मटादि के द्वारा निर्दिष्ट अभिलाष तथा पूर्वराग में भी कोई अन्तर नहीं होगा

अभिलाष पूर्वरागमात्रम् । अप्राप्तिसमागमयोरन्योन्यप्राप्तीच्छा वा ।

का० प्र० वामनी पृ० १०२ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिलाष, अयोग तथा पूर्वराग नामक भेद एक तथ्य पर ही प्रकाश डालते हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध में हम पूर्वराग भेद को स्वीकार कर ही अग्रसर होंगे। क्योंकि अयोग भेद को स्वीकार कर लेने से हमें विप्रयोग नामक भेद को भी स्वीकार करना होगा और इन दो भेदों को स्वीकार करने की गौरवता पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं। इसी प्रकार अभिलाष भेद को यदि स्वीकार किया जाता है तो उसे अन्य कामदशाओं का उपलक्षण स्वीकार करना होगा। क्योंकि अभिलाष एक अवस्था का भी नाम है और अभिलाष भेद के अन्तर्गत अभिलाष नामक अवस्था को स्वीकार करना गौरवास्पद ही होगा। दूसरी ओर पूर्वराग भेद को स्वीकार करने में वैसी कोई असंगति नहीं दृष्टिगत होती।

विश्वनाथ ने पूर्वराग के तीन भेदों का भी निर्देश किया है

नीली कुसुम मंजिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा । सा०द० ३-१९५ ।

मम्मटादि ने अभिलाष विप्रलम्भ के तथा धनंजय ने अयोग शृंगार के भेदों का निर्देश नहीं किया है।

पूर्वराग तथा कामदशाएँ

पूर्वराग में सब प्रथम नायक-नायिकाओं में अभिलाष अवस्था की उत्पत्ति होती है। एक बार उत्पन्न हो जाने के उपरान्त यह अवस्था उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है तथा नायक-नायिकाओं के शारीरिक तथा मानसिक व्यापारों में भी उसके साथ ही परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों को ही आधार बनाकर नायक-नायिकाओं की कामावस्था को अभिलाष आदि भेदों में विभक्त किया गया है। भरत अभिनव तथा धनञ्जयादि ने इन अवस्थाओं के स्वरूप को स्पष्ट करनेवाली अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है। उनके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उन विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना अनावश्यक न होगा।

कामदशाओं की विशेषताएँ

१ भरत के अनुसार कामदशाएँ दस होती हैं। परन्तु धनंजय के अनुसार यह अनन्त होती हैं

दशस्थानगत काम नानाभावैः प्रदर्शयेत् ॥ ना० शा० २२-१६६ ।
दशावस्थ क्रमाचार्यैः प्रायोवृत्या निदर्शितम् ॥
महाकविप्रबन्धेषु दृश्यते तदनन्तता । द० रू० ४-५५-५६ ।

२ इनकी उत्पत्ति नवीन अवस्था वाले अर्थात् युवा नायक-नायिकाओं में होती है । द० रू० ४-५० ।

३ इनकी उत्पत्ति ऐसे नायक-नायिकाओं में ही होती है जिन्हें अपने इष्ट का समागम प्राप्त करने का कभी अवसर न प्राप्त हुआ हो

एव विधै कामलिंगैरप्राप्तसुरतोत्सवा ।
दशस्थानगतम् ॥ ना० शा० २२-१६६ ।

परन्तु अभिनव तथा उनके गुरु भट्टतोत के अनुसार समागम प्राप्ति के अनन्तर भी यह दशाएँ उत्पन्न हो सकती है

अप्राप्तसुरतोत्सवेति प्राप्तसंभोगत्वे तु नैते विकारा प्रादुर्भवन्ति । यदा तु काम उदितस्तदादे प्राप्तसंभोगता कामावस्थानामुदय एव त त्रा च प्राप्तसंभोगतायामपि विप्रलम्भे कुसुमसदृक्षादिमहिमा प्राप्त कामिजनसंभोगे भवन्त्येवैता अवस्था । तथा च भट्टतोतनाख्यतम्—कामावस्था न शृंगारे क्वचिदासां नदगता । इति । पुनप्राप्तसंभोगतायामपि शृंगारागतति यावत् । वही अभि० पृ० १६६ ।

विश्वनाथ ने भी उपर्युक्त कामदशाओं मे मिलनी-पुनर्मी प्रवास कालीन दश स्मरदशाओं का भी निर्देश किया है । सा० ३-२०४-२०५ ।

४ परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओं का कामविकार अभिलाषात्मक होता है । और यह अभिलाषात्मक कामविकार ही क्रमश चिन्तादि अवस्थाओं के रूप मे परिणत हो जाता है

अभिलाषात्मक काम क्रमादीदृशीदशा प्रतिपद्यत इत्याह प्रथमे त्वभिलाष इत्यादि । ना० शा० अभि० २२-१७० पृ० १६६ ।

५ क्रमश उत्पन्न होने वाली यह दशाएँ उत्तरोत्तर कष्टकारक होती हैं ।
द० रू० ४-५२ ।

६ दशा अवस्थाएँ केवल उन्हीं नायक-नायिकाओं मे प्रदर्शित की जाती है जिन्हे मरणावस्था पर्यन्त इष्ट समागम नहीं प्राप्त होता । यदि कुछ अवस्थाओं की उत्पत्ति हो जाने के उपरान्त इष्ट का समागम प्राप्त हो जाता है तो शेष अवस्थाओं का प्रदर्शन नहीं किया जाता । जैसे उन्मादावस्था उपस्थित हो जाने के उपरान्त भी यदि इष्ट का समागम नहीं प्राप्त होता तथा समागम प्राप्ति के लिए किए गए सभी प्रयास निष्फल हो जाते है तभी व्याधि आदि अवस्थाओं की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं

सामदानाथसंभोगै काम्यै सम्प्रेषणैरपि ।
सर्वैनिराकृतैः पश्चाद् व्याधि समुपजायते ॥ ना० शा० २२-१८७ ।

७ कामावस्थाओं का प्रदर्शन विभिन्न मनोभावों तथा व्यापारो के द्वारा किया जाता है। ना० शा० २२-१६६।

८ दो अभिन्न अवस्थाएँ एक दूसरे के निकट होती हैं। अत पूर्वावस्था के सूचक व्यापार उत्तरावस्था मे भी विद्यमान रह सकते हैं

पूर्वावस्थाया उत्तरावस्थान्तरी भवनीति दर्शयति उद्विग्ना सती विलापिनी भवतीति। ना० शा० अभि० २२-१८४ पृ० २०२।

९ यह अवस्थाएँ नायक तथा नायिका दोनो मे ही उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु नायक के लिए नायिका का समागम प्राप्त कर लेना अपेक्षाकृत सरल होता है। अत उनमे प्राय सभी अवस्थाओं का प्रदर्शन उतनी अधिक स्पष्टता से नहीं किया जाता जितना कि नायिकाओं मे किया जाता है

पुरुषस्य सुलभोपायत्वान्मध्य एव समागम सम्पद्यत इत्य, न तु योषितामित्याशयेन कामावस्था स्त्रीपूपदिष्टा, पुरुषेष्वतिदिष्टा।

ना० शा० अभि० २२-१६३ पृ० २०४।

कामावस्थाएं तथा व्यभिचारी भाव

कामावस्थाओं मे से अभिलाष, गुणीकीर्तन, उद्वेग तथा विलाप के अतिरिक्त शेष चिन्तादि दशाओं का व्यभिचारी भावो के रूप मे भी उल्लेख किया गया है। अत कामावस्थाओं तथा व्यभिचारी भावों की भिन्नता अथवा अभिन्नता पर विचार कर लेना भी आवश्यक है।

भरत ने सभी कामावस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो के लक्षण उपन्यस्त किए हैं। उनके द्वारा निर्दिष्ट चिन्तादि कामावस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो के लक्षणो मे पर्याप्त अन्तर है। परन्तु भरत ने दोनो की एकता अथवा भिन्नता के बारे मे कुछ नहीं कहा है। अभिनव ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट चिन्तादि अवस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो के लक्षणो की असमानता की ओर तो संकेत किया है। परन्तु उन दोनो की एकता अथवा भिन्नता के बारे मे उन्होंने भी कुछ नहीं कहा है

अत्र व्यभिचारिण एव केचित् कामावस्थालक्षणान्तरयोगादिह पुनरुक्ता।

ना० शा० अभि० २२-१७० पृ० १९९।

धनजय ने कामावस्थाओं मे से केवल अभिलाष अवस्था का ही लक्षण उपनिबद्ध किया है। चिन्तादि अवस्थाओं के लक्षणो के जिज्ञासुओं के लिए उन्होंने चिन्तादि व्यभिचारी भावो के लक्षणो की ओर संकेत कर दिया है

सानुभावविभावास्तु चिन्ताद्या पूर्वदर्शिता। द० रू० ४ ५५।

इसी प्रकार कामावस्थाओं की अनन्यता की ओर संकेत करते हुए उन्होंने अपने मन्तव्य का समर्थन करने के लिए निर्वेदादि व्यभिचारियो को भी कामावस्था-स्वरूप मान लिया है

दृष्टे श्रुतेऽभिलाषाच्च किं नौत्सुक्य प्रजायते ।
अप्राप्तौ किं न निर्वेदो ग्लानि किं नातिचिन्तनात् ।।

द० रू० ४-५६-५७ ।

धनजय के इन सकेतो से प्रतीत होता है कि वे चिन्तादि कामावस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो को अभिन्न मानते है। जबकि भरत के द्वारा उपन्यस्त अवस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो के लक्षणों मे अन्तर है।

कामावस्थाओं तथा व्यभिचारी भावो के स्वरूप एव कार्यो मे उनकी की गई योजना पर दृष्टिपात करने से तो यही प्रतीत होता है कि वस्तुत कुछ समानताओं के होते हुए भी इन दोनो मे अनेक असमानताएँ होती है। जैसे चिन्तादि व्यभिचारी भावो की उत्पत्ति अनेको विभावो से हो सकती है। परन्तु चिन्तादि अवस्थाओं की उत्पत्ति केवल कान्यदर्शनादि से ही होती है। चिन्तादि व्यभिचारी अनेक रसो के परिपोषक होते है। परन्तु चिन्तादि अवस्थाएँ केवल विप्रलम्भ-शृगार-प्रवण ही होती हैं। चिन्तादि व्यभिचारी भावो की प्रतीति अस्थिर होती है। अत किसी एक व्यभिचारी की विशद योजना नही की जा सकती है। परन्तु चिन्तादि अवस्थाओं मे से किसी भी अवस्था की विशद योजना की जा सकती है। चिन्तादि व्यभिचारी भावो की भाव के रूप मे स्वतन्त्र योजना भी की जा सकती है। परन्तु चिन्तादि अवस्थाओं की स्वतन्त्र योजना नही की जा सकती है। क्योंकि चिन्तादि अवस्थाओं मे सर्वत्र व्यग्य रति स्थायी भाव ही होता है। अत चिन्तादि व्यभिचारी भावो तथा अवस्थाओं को एक नही कहा जा सकता।

धनजय के अनुसार विप्रयोग शृगार मान तथा प्रवास नामक दो प्रकार का होता है

विप्रयोगस्तु द्विधा ।
मानप्रवासभेदेन ।। द० रू० ४-५७-५८ ।

विश्वनाथ ने विप्रयोग भेद को स्वीकार न करते हुए भी उपयुक्त भेदो को स्वीकार कर लिया है। हम देख चुके है कि मान तथा प्रवास नामक भेद उनके अनुसार विप्रलम्भ शृगार के होते हैं। मान तथा प्रवास की स्थिति उन नायक-नायिकाओं के सामने ही आ सकती है जो कि पहले से एक-दूसरे का समागम प्राप्त कर चुके हो। धनजय के अनुसार विप्रयोग शृगार भी समागमोत्तर-कालीन ही होता है। इस प्रकार हम देखते है कि विश्वनाथ ने अयोग शृगार को तो स्वीकार नही किया है। परन्तु अयोग शृगार की मूलभूत विशेषताओं पर आधारित उसके भेदो को स्वीकार ही कर लिया है। और अयोग शृगार के भेदो को सीधे विप्रलम्भ शृगार के भेद के रूप मे स्वीकार करने के

कारण उन्हें अयोग नामक पृथक भेद को स्वीकार करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ी है।

धनंजय ने मान को प्रणय तथा ईर्ष्या नामक दो भागों में विभाजित किया है

मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययो। द० रू० ४-५८।

इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी मान के उपर्युक्त भेदों का उल्लेख किया है

मान कोप स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भव। सा० द० ३-१९८।

धनंजय तथा विश्वनाथ दोनों के अनुसार प्रणय मान नायक-नायिका उभयगत होता है जबकि ईर्ष्या-मान केवल नायिकागत ही होता है।

द० रू० ४-५८-५९ तथा सा० द० ३-१९८-२००।

मम्मट तथा आनन्दवर्धन ने केवल ईर्ष्या भेद का ही उल्लेख किया है। प्रणय-मान का नहीं। परन्तु उनके ईर्ष्या भेद को प्रणय-मान का उपलक्षण स्वीकार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन, मम्मट, धनंजय तथा विश्वनाथ सभी ने प्रवास भेद का उल्लेख किया है। परन्तु उसके भेदों का निर्देश आनन्दवर्धन तथा मम्मट ने नहीं किया है। धनंजय तथा विश्वनाथ ने उसके भेदों का भी निर्देश किया है। उन्होंने उसके भेद प्रवास के कारणों तथा समय के आधार पर किए हैं

कार्यत सम्भ्रमाच्छापात् प्रवासो भिन्नदेशता।
स च भावी भवन् भूतस्त्रिधाद्यो बुद्धिपूर्वक ॥

द० रू० ४-६४-६५।

प्रवासो भिन्नदेशित्व कार्याच्छापाच्च सम्भ्रमात्।
भावी भवन् भूत इति त्रिधा स्यात्तत्र कार्यज ॥

सा० द० ३-२०८-२०८।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धनंजय तथा विश्वनाथ ने शाप को प्रवास का भेद स्वीकार किया है जबकि मम्मट के अनुसार वह विप्रलम्भ शृंगार का पृथक् भेद होता है।

धनंजय के द्वारा निर्दिष्ट प्रवास के अन्य भेदों में शाप भेद की विशिष्टता पर दृष्टिपात करने से तो यही प्रतीत होता है कि मम्मट के द्वारा किया गया शाप भेद का पृथक् परिगणन समुचित ही है

स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापज सन्निधावपि। द० रू० ४-६६।

धनंजय के अनुसार मृत आलम्बन के पुन जीवित हो जाने की सम्भावना में भी शृंगार रस होता है

मृते त्वेकत्र यत्रान्य प्रलपेच्छोक एव स।
व्याश्रयत्वान्न शृंगार प्रत्यापन्ने तु नेतर ॥ द० रू० ४६७।

धनिक के अनुसार ऐसे प्रकरणों को प्रवास शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

कादम्बर्यां तु प्रथम करुण आकाशसरस्वतीवचनादूर्ध्वं प्रवास शृंगार एवेति। द० रू० स० वृ० पृ० ४५१।

परन्तु प्रवास शृंगार के उपर्युक्त भेदों में से किसी भेद में उपर्युक्त स्वरूप विप्रलम्भ को अन्तर्भुक्त करना असमीचीन ही होगा। क्योंकि आलम्बन की मृत्यु का अवसर न तो कार्य-प्रवास के अन्तर्गत ही आता है और न सम्भ्रम-प्रवास के अन्तर्गत। कदाचित् इसीलिए विश्वनाथ ने एक करुण नामक विप्रलम्भ भेद को पृथक् रूप में स्वीकार कर लिया है

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तर पुनर्लभ्ये।

विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्य ॥ सा० द० ३-२०६।

आनन्दवर्धन तथा मम्मट ने इस भेद का पृथक् रूप से उल्लेख नहीं किया है।

आनन्दवर्धन तथा मम्मट ने विरह नामक एक अन्य विप्रलम्भ भेद का भी उल्लेख किया है। परन्तु धनंजय तथा विश्वनाथ ने इस भेद का उल्लेख नहीं किया है। वामन के स्पष्टीकरण के अनुसार जहाँ पर नायक नायिका दोनों के एक देश में स्थित होने पर भी किसी एक की अननुरक्तता, दैवप्रतिबन्धकता अथवा लज्जा आदि के कारण दोनों का संयोग नहीं हो पाता वहाँ विरह विप्रलम्भ होता है

विरहस्तु एकदेशस्थितयोरपि एकतरस्याननुरागात् अनुरागे सत्यपि वा दैवप्रतिबन्धात् गुरुजनलज्जादिवशाच्चासंयोग। का० प्र० वामनी पृ० १०२।

वामन के द्वारा निर्दिष्ट विरह विप्रलम्भ की उपर्युक्त विशेषताओं में से कुछ विशेषताएँ तो विप्रलम्भ शृंगार के अन्य भेदों में भी उपलब्ध हो जाती है। परन्तु सभी विशेषताएँ किसी भी अन्य भेद में नहीं उपलब्ध होतीं। जैसे मान तथा शाप विप्रलम्भ भी विरह के समान नायक नायिकाओं के एक देश में स्थित होने पर होता है। परन्तु एक देश में स्थित नायक-नायिकाओं का वियोग जब कोप के कारण होता है तो वहाँ पर मान विप्रलम्भ होता है। जबकि विरह सत्र वियोग के हेतु कार्य-व्यग्रतादि भी हो सकते है। इसी प्रकार विरह की हेतु-भूत दैवप्रतिबन्धकता भी शाप के हेतु-भूत अपराधादि के कारण उपस्थित न होकर दुर्भाग्यवश उपस्थित हो सकती है। उपर्युक्त नायक नायिकाओं में से किसी एक की कार्य-व्यग्रतादि जन्य अननुरक्तता को शृंगाराभास के नाम से भी नहीं अभिहित किया जा सकता। क्योंकि शृंगाराभास में नायक नायिकाओं में से कोई एक दूसरे के प्रति पूर्णतया विरक्त होता है अर्थात् वहाँ पर रति अनुभयनिष्ठ होती है। परन्तु विरह के क्षेत्र में वैसा नहीं होता। वहाँ पर वस्तुत दोनों परस्पर अनुरक्त तो होते हैं। परन्तु कार्य-व्यग्रतादिवश एक व्यक्ति दूसरे की इच्छा को पूर्ण करने की ओर ध्यान नहीं देता।

पूर्वराग विप्रलम्भ भी नायक-नायिकाओं के एक देश में स्थित होने पर हो सकता है और पूर्वराग सजक असयोग के कारण भी विरह की भांति दैवप्रतिबन्धकता तथा लज्जादि होते हैं। परन्तु पूर्वराग नायक-नायिका-समागम-पूर्वकालीन होता है जबकि विरह नायक-नायिका-समागमोत्तर-कालीन होता है। इसी प्रकार विप्रलम्भ के किसी अन्य भेद या उपभेद में भी विरह का अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। अत विप्रलम्भ के भेदों में विरह नामक भेद का परिगणन भी आवश्यक प्रतीत होता है।

विप्रलम्भ शृगार के उपर्युक्त सभी भेदोपभेदों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि विप्रलम्भ शृगार के भेदोपभेद नायक-नायिकाओं के वियोग की समागम-पूर्वकालीनता तथा समागमोत्तर-कालीनता, उनके अवस्थान तथा उनका परस्पर समागम न होने देने वाले कारणों आदि पर आधारित हैं। विप्रलम्भ शृगार के इन भेदक तत्त्वों को आधार बनाकर उपर्युक्त सभी भेदों को एक तालिका में इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है

हास्य रस

स्थायी भाव

हास्य रस का स्थायी भाव हास होता है। हास स्थायी भाव विकास नामक चित्तवृत्ति का अपरपर्याय होता है

वागगादिविकारदर्शनजन्मा विकासाख्यो हास । र० ग० पृ० १३३ ।
इस विकास नामक चित्तवृत्ति का उदय तब होता है जब कि विभिन्न प्रकार की विकृतियो को देखकर व्यक्ति अपने को उस विकृतियुक्त व्यक्ति या विषय की अपेक्षा उत्कर्षयुक्त अनुभव करता है। सभी व्यक्तियो मे यह आत्मोत्कर्षानुभूति की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। इसीलिए इसे वासना या स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया जाता है
सर्वो—स्वात्मन्युत्कर्षमानितया परमुपहसन्—जायते। ना०शा०अभि०पृ० २८२।
डॉ० बरसाने लाल चतुर्वेदी जी द्वारा अनूदित तथा उद्धृत हाब्स के कथन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होने भी अभिनव के उपर्युक्त मन्तव्य का समर्थन किया है

हसी अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।

दी पैशन आफ लाफ्टर इज नथिंग एल्स बट सडेन ग्लोरी एराइजिंग फ्राम ए सडेन कम्पैरीजन विद दी इनफर्मिटी आफ अदस आर विद आवर ओन फर्मिटी। (हाब्स)। हिन्दी साहित्य मे हास्य रस पृ० ५६।

विभावादिको के सयोग से व्यक्त उपर्युक्त हास स्थायी भाव को ही हास्य रस नाम से अभिहित किया जाता है।

विभाव

भरत तथा अभिनव के द्वारा की गयी भरत की व्याख्या के अनुसार देश, काल, प्रकृति, वय तथा अवस्था आदि के विपरीत वेष-रचना, अलकार-धारण, अथवा गमन, निर्लज्जता, लौल्य, कुहक अर्थात बालको का विस्मित करने वाले वाय, असत्प्रलाप, अगहीनता आदि के दर्शन तथा दोषोदाहरणादि हास्य रस के विभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३१२।

यद्यपि भरत ने विकृत-वेषादिको के दर्शन तथा दोषो के उदाहरण अर्थात् वर्णन को ही स्पष्ट शब्दो मे हास्य रस का विभाव स्वीकार किया है

स च विकृतपरवेषालकार-धाष्ट्‌य-लौल्य-कुहकासत्प्रलाप-व्यगदर्शन-दोषोदाहरणादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। ना० शा० पृ० ३१२।
परन्तु अभिनव ने विकृत वेषादिको के दर्शन तथा वर्णन, दोषो के वर्णन तथा आदि पद के आधार पर सकल्प तथा स्मृति को भी विभाव स्वीकार कर लिया है

तत्र वेष वेनादिरचना—अगविगमो विस्तुनादि व्यगम्। एषा दर्शनमिति समास। दोषा अन्तःप्रकृतेरपि भयादय अकार्यकरणादयश्च विकृतवेषादय एव वा। तेषामुदाहरण वर्णनम्। आदिग्रहणात् सकल्पस्मृत्यादि। अभि० पृ० ३८२।

भरत तथा अभिनव के द्वारा निर्दिष्ट हास्य रस के विभावो पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने विभाव भेदो को स्वीकार न करने के कारण

सम्मिलित रूप में ही हास्य रस के विभावों का निर्देश कर दिया है। विभावभेदकों ने उपयुक्त विकृतियों से युक्त व्यक्तियों का आलम्बन तथा उस व्यक्ति की चेष्टाओं को उद्दीपन विभाव के नाम से अभिहित किया है

विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥ सा० द० ३-२१५।

आश्रय

हास्य रस स्त्री तथा नीच प्रकृतियों में अधिक अनुरूप होता है स्त्रीनीचप्रकृतावेष भूयिष्ठं दृश्यते रसः। ना० शा० ६-५१।

परन्तु अन्य प्रकृतियों से युक्त व्यक्तियों में हास्य रस की उत्पत्ति होती ही न हो ऐसी बात नहीं। भरत का उपर्युक्त भूयिष्ठ शब्द स्त्री तथा नीच प्रकृतियों में हास्य रस की अधिकता से उत्पत्ति होने का निर्देश करने के साथ-साथ हास्य रस की व्यापकता की ओर भी संकेत करता है। आगे हम देखेंगे कि भरत ने हास्य रस के स्मितहसितादि भेदों का उत्तम तथा मध्यम प्रकृतिगत होने का उल्लेख भी किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि स्त्री तथा नीच प्रकृति से युक्त आश्रय हास्य रस के अधिक अनुरूप होता है। परन्तु उसकी उत्पत्ति सामान्यतया सभी प्रकार की प्रकृतियों से युक्त आश्रय में हो सकती है।

अनुभाव

ओष्ठ, नासिका तथा कपोलस्पन्दन, दृष्टि विकास, दृष्टि निमीलन नेत्रों का ईषत् आकुंचन, स्वेद, मुखराग तथा शरीर के पार्श्वभागों का पीडनादि हास्य रस के अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३१३।

विश्वनाथ ने स्मितादि को भी अनुभावों में परिगणित किया है

अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः। सा० द० ३-२१६।

यद्यपि भरत ने हसन क्रिया के हसितादि भेदों को हास्य रस के अनुभावों में नहीं सम्मिलित किया है। परन्तु उनके द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त अनुभाव किसी स्मितादिक से युक्त मुख में ही हो सकते हैं। हास भाव का लक्षण प्रस्तुत करते हुए भरत ने स्मितादिकों की अनुभावस्वरूपता को स्वीकार ही किया है

हासो नाम—तमभिनयेत् पूर्वोक्तैर्हसितादिभिरनुभावैः।

ना० शा० पृ० ३५०।

ज्ञात यह होता है कि हास्य रस के प्रकरण में स्मितादिकों को हास्य रस का भेद स्वीकार कर लेने के कारण भरत ने उनकी अनुभावरूपता का उल्लेख न कर स्मितादिकों के सूचक मुख तथा नेत्र विकारों की अनुभाव स्वरूपता का प्रतिपादन किया है। अथवा भरत ने हास्य रस के जिन स्मितादि भेदों का

उल्लेख किया है वे वस्तुत हास्य रस के अनुभाव ही होते हैं। परन्तु हम देख चुके है कि रसो के भेद विभावो तथा अनुभावो पर ही आधारित होते है। अत भरत ने स्मितादिको के नाम से यदि हास्य रस के भेदो का नामकरण कर दिया है तो उसे भी असगत नही कहा जा सकता।

व्यभिचारी भाव

अवहित्था, आलस्य, तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध तथा असूयादि हास्य रस के पोषक व्यभिचारी भाव होते है। ना० शा० पृ० ३१३।

भरत ने तेतीस व्यभिचारियो मे तन्द्रा का उल्लेख नही किया है। परन्तु उन्होने हास्य रस के व्यभिचारियो मे तन्द्रा का भी उल्लेख कर दिया है। अभिनव ने इस असगति का दूर करने के लिए तन्द्रा के स्थान पर मोह व्यभिचारी भाव की हास्य रस पोषकता को स्वीकार कर लिया है

तन्द्रा शब्देन मोह । वही अभि० पृ० ३१३।

घनजय ने श्रम तथा ग्लानि को भी हास्य रस पोषक माना है

निद्रालस्य श्रमग्लानिमूर्छाश्च सहचारिण । द० रू० ४-७८।

अभिनव के अनुसार उपर्युक्त सभी विभावादिको के द्वारा सभी प्रकार की प्रकृतियो मे हास्य रस की व्यजना नही की जा सकती। विभिन्न प्रकार की प्रकृतियो के अनुरूप उनकी योजना करनी चाहिए। ना० शा० अभि० पृ० ३१३।

भेद

भरत ने सर्वप्रथम हास्य रस के आत्मस्थ तथा परस्थ नामक दो भेदो का उल्लेख किया है

द्विविधश्चायमात्मस्थ परस्थश्च। ना० शा० पृ० ३१३।

जब विभावो का साक्षात्कार कर कोई पात्र हसने लगता है तो उसके हास्य को आत्मस्थ कहा जाता है। परन्तु हसने वाले व्यक्ति को देखकर जब दूसरा व्यक्ति हँसने लगता है तो उसके हास्य को परस्थ कहा जाता है। दूसरे व्यक्ति के हास्य का कारण प्रथम व्यक्ति का हास होता है और प्रथम व्यक्ति के हास के कारण विकृत-वेषादि विभाव होते है

यदा स्वय हसति तदात्मस्थ । यदा तु पर हासयति तदा परस्थ ।

विपरीतालकारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च ।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रस स्मृतो हास्य ॥
विकृताचारैर्वाक्यैरगविकारैश्च विकृतवेषैश्च ।
हासयति जन यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्य ॥ ना० शा० ६-४६-५०।

यद्यपि भरत ने यहा पर यह स्पष्ट नही किया है कि दूसरे को हसाने वाला

के भेद हैं स्मित और हसित, मध्यम के भेद है विहसित और उपहसित तथा अधम के भेद है अपहसित तथा अतिहसित। ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से हंसने की क्रिया बारह तरह से हो सकती है।"

(दृश्य काव्य में हास्य तत्त्व—*आलोचना जनवरी १९५५ पृ० ६४।* —लेखक डॉ० रामकुमार वर्मा।) हिंदी साहित्य में हास्य रस पृ० ३०।

डॉ० वर्मा के द्वारा स्वीकृत उपयुक्त तथ्य अभिनव को स्वीकार नहीं हैं। उन्होंने भरत के विभिन्न उल्लेखों को आधार बनाकर यह सिद्ध किया है कि भरत को हास्य रस के छ भेद ही स्वीकार थे बारह नहीं। अतएव वे हास्य रस के बारह भेदों को स्वीकार करनेवाले किसी प्राचीन चिन्तक के प्रति अपनी असहमति व्यक्त कर देते हैं

अन्यस्त्वाह—तिसृषु प्रकृतिषु व्यवस्था विभावतारतम्यात् द्विरूप। पुनरात्मपरस्थत्वेन द्विधनि द्वादशभेदोऽयमिति कारिका तात्पर्यम्। अत्र च पृथग्विभावनमपि भवति। तत्त्वनिप्रसंगावह तन्मतमिति नोदाहृतम्।

ना० शा० अभि० पृ० ३१७।

भरत ने प्रत्येक प्रकृति में हास्य के दो-दो भेदों का प्रदर्शन करने का निर्देश दिया है। अभिनव ने भरत के उस निर्देश को आधार बनाकर यह प्रतिपादित किया है कि स्मितादिक हास्य रस के भेद क्रमशः तथा आत्मस्थ होते है और हसितादिक भेद सक्रान्त तथा परस्थ होते हैं। इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृतिगत स्मित, विहसित तथा अपहसित नामक भेद आत्मस्थ होते हैं तथा हसित, उपहसित तथा अतिहसित नामक भेद परस्थ होते हैं

स्मितं हि यदुत्तमप्रकृतौ तत्सक्रान्तं हसितं सम्पद्यते।

ना० शा० अभि० पृ० ३१५।

अभिनव ने अपने मन्तव्य के समर्थन में भरत की अधोलिखित कारिका को प्रमाण माना है

इत्येष स्वसमुत्थस्तथापरसमुत्थश्च विज्ञेय।

द्विविधस्त्रिप्रकृतिगतस्त्र्यवस्थभावो रसो हास्य॥ ना० शा० ६-६१।

अभिनव के अनुसार यदि भरत को यह अभीष्ट न होता कि स्मित ही सक्रान्त होकर हसित बन जाता है तो उन्होंने उपयुक्त कारिका में हास्य रस की तीन अवस्थाओं का उल्लेख न कर छ अवस्थाओं का उल्लेख किया होता। और यदि *भरत ने तीन अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है तो यह स्वीकार करना* ही समीचीन है कि स्मितादि सक्रान्त होकर हसितादि बन जाते हैं

स्मितं हि यदुत्तमप्रकृतौ तत्सक्रान्तं हसितं सम्पद्यते। अतएव त्र्यवस्थो हास इति वक्ष्यते षड्वस्था ह्यन्यथा स्यात्। ना० शा० अभि० पृ० ३१५।

उपर्युक्त कारिकागत स्वसमुत्थ तथा परसमुत्थ शब्दों की व्याख्या करते हुये उन्होंने अपने मन्तव्य को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है

स्वसमुत्थ इत्यसकात्स्मितविहसितापहसितलक्षण । परसमुत्थ सकाशात् हसितोपहसितातिहसितरूप । हसितादिरूपसक्रमणयो (भेदो) त्कृष्टप्रकृतौ स्मितादिरूपम् । ना० शा० अभि० पृ० ३१६ ।

भरत ने अंग, नेपथ्य तथा वाक्य के आधार पर हास्य रस को तीन प्रकार का होने का उल्लेख भी किया है

अंगनेपथ्यवाक्यैश्च हास्यरौद्रौ त्रिधा स्मृतौ । ना० शा० ६ ७७ ।

परन्तु इन भेदों को परवर्ती विवेचकों ने विशेष गौरव नहीं प्रदान किया । उपर्युक्त भेद विभावों की विविधता पर आधारित हैं । जबकि स्मितादिक भेद अनुभावों की अनेक-रूपता पर आधारित है ।

करुण रस

स्थायी भाव

करुण रस का स्थायी भाव शोक होता है। शोक स्थायी भाव का लक्षण ग्रन्थकारों ने इष्टनाशादि-जन्य वैक्लव्य नामक चित्तवृत्ति का अपर पर्याय माना है

इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्य शोकशब्दभाक् । सा० द० ३-१७७ ।

पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा वैक्लव्यास्यश्चित्तवृत्तिविशेष शोक ।

र० ग० पृ० १६१ ।

उपर्युक्त शोक स्थायी भाव ही विभावादिकों से परिपुष्ट होकर करुण रस रूपता को प्राप्त हो जाता है ।

विभाव

अप्रतीकार्य शापादिक कष्टों में निमग्न इष्टजनों का वियोग, विभव-नाश, बध, बन्धन, देश निर्वासन, अग्न्यादि-जन्य मरण, मृगया अथवा द्यूतक्रीडा म सयोगादि करुण रस के विभाव होते हैं

स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविप्रयोगविभवनाशबधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसयोगादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते । ना० शा० तथा अभि० पृ० ३१५ ।

अभिनव ने भरत के सूत्र की व्याख्या करते हुए इष्टजन के विभवनाशादि को शोकभावोद्बोधक विभाव तथा शापादिक कष्टों को विभवनाशादि का कारण माना है और इस प्रकार शापादिक अप्रतीकार्य हेतुओं से उत्पन्न इष्टजनों के विभवनाशादि को उन्होंने करुण रस का विभाव स्वीकार किया है

अशक्यप्रतीकारहेतूपलक्षण शापग्रहणम् । शापक्लेशे त्रितिपनितस्येष्टजनस्य ये विप्रयोगादय । ना० शा० अभि० पृ० ३१८ ।

उनके अनुसार यदि विभवनाशादि का कारण अप्रतीकार्य न हो तो विभव-नाशादि उत्तम प्रकृति मे शोकोद्बोध न करके उत्साह अथवा क्रोधादि का उद्बोध कर सकता है

शापग्रहणेनाप्रतीकार्यत्वे सत्युत्तमप्रकृते शोकोदयस्यानमेतदिति दर्शयति । अन्यथोत्साहक्रोधादिविभावत्व स्यात् । ना० शा० अभि० पृ० ३१० ।

भरत तथा अभिनव न करुण रस के आलम्बन तथा उद्दीपनो का पृथक्-पृथक् उल्लेख नहीं किया है। पडितराजादि ने उनका पृथक् रूप से उल्लेख कर दिया है

करुणस्य बन्धुनाशादय आलम्बनानि, तत्सवन्धिगृहतुरगाभरणदर्शनादयस्त-त्कथाश्रवणादयश्चोद्दीपका । र० ग० पृ० १३६ ।

भरत ने करुण रस के विभावो का निर्देश करने वाली एक आर्या को भी उद्धृत किया है

इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचनस्य सश्रवाद्वापि ।

एभिर्भावविशेषै करुणरसो नाम सभवति ॥ ना० शा० ६-६२ ।

अभिनव न उपयुक्त कारिका की व्याख्या करते हुए दृष्ट तथा श्रुत उभय-विध विभवनाशादिको को करुण रस का विभाव स्वीकार कर लिया है

वधशब्दो वधादेरप्युलक्षणम् । विप्रियमिष्टजनवधादि येन वाक्येनोच्यते तस्य श्रवणात् । तत चेष्टजनस्य विभवनाशादि दृश्यमान श्रूयमाण वा कविभि करुणविभावत्वेनोपनिबन्धनीयमिति तात्पर्यम् । ना० शा० अभि० पृ० ३१८ ।

अभिनव के उपयुक्त कथनो पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने इष्टजन के विभवनाशादि को ही करुण रस का विभाव माना है। अनिष्ट या तटस्थ व्यक्ति के विभवनाशादि को नहीं। रसो की उत्पाद्योत्पादक-भावना से सर्वथा भरत की कारिकाओं की व्याख्या करते हुए अभिनव ने समस्त रसाभासो की हास्यजनकता का प्रतिपादन करते हुए अबन्धुविषयक शोक-जन्य करुण रस को हास्य रस अथात् हास्य रस का जनक स्वीकार किया है

तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्व सर्वेषु मन्तव्यम् । अनौचित्यप्रवृत्तिकृतमेव हि हास्यविभावत्व तच्चानौचित्य सर्वरसाना विभावानुभावादौ सभाव्यते। एव यो यस्य न बन्धुस्तच्छोके करुणोऽपि हास्य एवेति सर्वत्र योज्यम् ।

ना० शा० अभि० पृ० २९६ ।

परन्तु इष्टजन शब्द स्वय ही सकेतात्मक है। अत इष्ट शब्द को पति, पत्नी, सन्तान, माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, परिजन, किसी प्रिय विषय या

वस्तु आदि का बोधक स्वीकार किया जा सकता है।

डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने धनञ्जय की अधोलिखित पंक्ति को आधार बनाकर इष्टनाश तथा अनिष्टाप्ति इन दोनों को करुण रस का विभाव मान लिया है

इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणो नु तम्। द० रु० ४-८१।

धनंजय की इस पंक्ति के आधार पर वे कहते हैं—"इसी कारण धनंजय ने कहा है कि करुण रस या तो इष्टनाश से होता है अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से। अनिष्ट की प्राप्ति का अर्थ यह नहीं है कि इष्ट वस्तु या व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाये अथवा केवल इष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही अनिष्ट हो, अपितु उस वस्तु या व्यक्ति की हानि होने से भी करुण रस की उपस्थिति हो सकती है और उसके सम्बन्धी के स्वयं अनिष्टग्रस्त होने से भी। यही कारण है कि इष्टनाश की बात पृथक् रूप से कही गयी है। अनिष्ट की प्राप्ति में शाप, बन्धन आदि आते हैं।" रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृ० ३५२-३५३।

उपर्युक्त उद्धरण के इस अधोलिखित वाक्यांश पर दृष्टिपात करने से यह निश्चित हो जाता है कि डॉ० दीक्षित इष्टजन-भिन्न-व्यक्ति-विषयक शोक को भी करुण रस स्वीकार करने के पक्ष में हैं

'अनिष्ट की प्राप्ति का यह अर्थ नहीं कि इष्ट वस्तु या व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाय अथवा केवल इष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही अनिष्ट हो।"

इसी प्रकार वे इस सन्दर्भ को समाप्त करते हुए कहते हैं—"किसी व्यक्ति से सम्बन्ध न रखने पर भी आलम्बन का दारुण कष्ट देख कर शोक जन्य करुण रस व्यक्त हो सकता है जैसे निराला जी की विधवा शीर्षक कविता।" वही पृ० ३५८।

डॉ० दीक्षित की उपर्युक्त मान्यता अभिनव विरुद्ध ही नहीं असमुचित भी प्रतीत होती है। क्योंकि इष्टवस्तु या व्यक्ति-विपन्नतादि-विषयक शोक ही करुण रस रूपता को प्राप्त हो सकता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी इष्ट व्यक्ति या विषय के विनाशादि को देखकर ही आश्रयगत शोक चिरस्थायी बन सकता है और स्वसम्बद्ध व्यक्ति की विपन्नतादि को देखकर यदि कोई व्यक्ति बिलखने लगता है तो उसके रुदन में अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविकता प्रतीत होती है। तटस्थ व्यक्ति की विपन्नता तो केवल किसी उदारचेता आश्रय को ही शोक युक्त कर सकती है, सामान्यतया सभी प्रकार के व्यक्तियों को नहीं। और उस प्रकार के उदारचेता व्यक्तियों का कोई अनिष्ट होता ही नहीं।

जहां तक धनंजय के कथन का प्रश्न है धनंजय ने स्वतः यह नहीं स्पष्ट किया है कि वे इष्ट की अनिष्टाप्ति को या तटस्थ की अनिष्टाप्ति को करुण

रस का जनक मानते हैं। डॉ० दीक्षित ने स्वय अपनी ओर से धनजय के मन्तव्य को तटस्थ की अनिष्टाप्ति का द्योतक मानकर अनिष्ट विषयक शोक की करुण स्वरूपता का प्रतिपादन किया है। जबकि धनजय के कथन को इष्टजन की अनिष्टाप्ति का बोधक भी स्वीकार किया जा सकता है। अत यदि इष्टजनो की विपिन्नता को ही करुण रस का विभाव स्वीकार किया जाये तो धनजय के विपरीत उसे नही कहा जा सकता।

डॉ० दीक्षित ने निराला जी की विधवा शीर्षक कविता के आधार पर अपने मन्तव्य को पुष्ट करना चाहा है। परन्तु वस्तुत जिन कविताओ मे किसी आश्रय की योजना ही नहीं की गई होती है वहाँ पर आश्रय आक्षिप्त होता है। और आक्षिप्त आश्रय सवदा विभावो के साक्षात्कार से उदबुद्ध होने वाले स्थायी भावो के अनुरूप होता है। क्योकि यदि ऐसा न हो तो वहाँ रसोद्बोध ही नहीं हो सकता। अत जहाँ पर आश्रय आक्षिप्त हो वहाँ पर उस आश्रय के आलम्बन से सम्बद्ध या असम्बद्ध होने का प्रश्न ही नही उठता। वहाँ पर तो विभावो की विशिष्ट योजना ही आश्रयादि का आक्षेप करा देती है और रसव्यजना हो जाती है जैसा कि निराला जी की विधवा शीपक कविता मे होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इष्टजन के वियोगादि ही करुण रस के उद्बोधक होते हैं। तटस्थ के विभवनाशादि को यदि विभाव बनाकर कहीं पर करुण रस की व्यजना की जाती है तो उसे करुणाभास नाम से ही अभिहित किया जायेगा, न कि करुण रस के नाम से।

आश्रय

करुण रस की व्यजना सामान्यतया सभी प्रकार की प्रकृतियो मे युक्त आश्रयों की शोक वासना की व्यजना कर की जा सकती है। परन्तु करुण रस के उपर्युक्त सभी विभाव प्रत्येक प्रकार की प्रकृति स युक्त आश्रय में समान रूप मे शोक स्थायी भाव का उदय नही कर सकते। भरत के अनुसार व्यसनज शोक स्त्री तथा नीच प्रकृतियो मे ही अधिकतर उत्पन्न होता है

स्त्रीनीचप्रकृतिष्वेप शोको व्यसनसभव। ना० शा० ७-१४।

अभिनव के अनुसार भरत के द्वारा निर्दिष्ट करुण रस के उपर्युक्त विभवनाशादि विभाव यदि स्वात्मगत हों तो वे उत्तम प्रकृति में शोक का उदय न कर मध्यम तथा अधम प्रकृति में ही शोक का उदय कर सकेंगे

विभवनाशादयोऽपि स्वात्मगता नोत्तमप्रकृत शोक कुर्यु। मध्यमाधमप्रकृतीना तु कुर्युरेवेत्यादिग्रहणम्। ना० शा० अभि० पृ० ३१८।

परतु धर्मोपघातज शोक को अभिनव उत्तम प्रकृति के अनुरूप भी

स्वीकार करते है
धर्मोपघानज उत्तमानामपि शोभ (च) न हेतुत्वात्। ना० शा० अभि० पृ० ३३१।

अनुभाव

अश्रुपात, परिदेवन, मुखशोष, वैवर्ण्य, स्रस्तगात्रता, नि श्वास, स्मृतिलोप, स्तम्भ तथा प्रलयादि इसके अनुभाव होते है। ना० शा० पृ० ३१७।

भरत के द्वारा उद्धृत कारिका मे देहायाम तथा अभिघात को भी करुण रस के अनुभावो मे सम्मिलित कर लिया गया है

सस्वनरुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च ।
अभिनेय करुण-रसो देहायासाभिघातैश्च ॥ ना० शा० ६-६३।

अभिनव ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट परिदेवन की व्याख्या करते हुए आत्मोपालम्भ तथा दैवोपालम्भ का परिदेवन स्वीकार किया है

परिदेवनमात्मनो दैवस्यान्यस्य चापालम्भ ।
ना० शा० अभि० पृ० ३१८।

धनजय, विश्वनाथ तथा पडितराज ने उपर्युक्त अनुभावो से भिन्न किसी अन्य अनुभाव का निर्देश नही किया है।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जडता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य तथा मरणादि व्यभिचारी भाव तथा स्तम्भ, वपथु, वैवर्ण्य, अश्रु एव स्वरभेदादि सात्विक भाव करुण रस के परिपोषक होते है। ना० शा० पृ० ३१७।

धनजय तथा विश्वनाथ ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट व्यभिचारियो मे से कुछ व्यभिचारियो का निर्देश करते हुए निद्रा तथा स्मृति को भी करुण रस का पोषक मान लिया है। पडित राज ने किसी नये व्यभिचारी का निर्देश नही किया है। द० रु० ४-८२ तथा सा० द० ३-२२५।

भेद

भरत ने विभावो के आधार पर करुण रस के धर्मोपघानज, अर्थापचयोद्भव तथा शोककृतक नामक तीन भेदो का निर्देश किया है

धर्मोपघातजश्चैव तथार्थापचयोद्भव ।
तथा शोककृतश्चैव करुणस्त्रिविध स्मृत ॥ ना० शा० ६-७८।

भरत के द्वारा निर्दिष्ट करुण रस के उपर्युक्त विभावो को उपर्युक्त करुण रस

भेद परक तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। अभिनव के अनुसार शोक कृतक करुण स्वजननाशादिजन्य होता है

शोकशब्देन स्वजनादिनाशो चैते (शस्च। एते) त्रयो विभावा।

ना० शा० अभि० पृ० ३३१।

भरत ने करुण रस के उपर्युक्त विभावों से प्रत्यक्ष रूप से किसी ऐसे विभाव का निर्देश नहीं किया है जिस विभाव से उद्‌बुद्ध शोक को धर्मोपघातज करुण रस के नाम से अभिहित किया जा सके और धर्मोपघातज नामक करुण रस के एक भेद का निर्देश किया ही है। अत करुण रस के उपर्युक्त विभावों के अतिरिक्त धर्मोपघातादि को भी करुण रस का विभाव स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि धर्मादि उत्तम प्रकृति युक्त व्यक्तियों को इष्ट होते ही हैं। अभिनव ने भी धर्मोपघातज शोक को उत्तम प्रकृति के अनुरूप माना है।

धनंजय विश्वनाथ तथा पण्डितराज में से किसी ने भी करुण रस के भेदों का निर्देश नहीं किया है।

रौद्र रस

स्थायी भाव

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है। प्रज्वलन अथवा तीक्ष्णता नामक चित्तवृत्ति को क्रोध स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया जाता है

प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोध क्रोध इष्यते। सा० द० ३-१७७।

गुरुबन्धुवधादिपरमापराधजन्मा प्रज्वलनाख्य क्रोध।

र० गं० पृ० १३२।

भरत ने क्रोध को सग्राम का कारण माना है (ना० शा० पृ० ३१६)। परन्तु अभिनव के अनुसार क्रोध सग्राम का कारण नहीं होता अपितु क्रोध भरत के द्वारा निर्दिष्ट ताडन, पाटनादि कुत्सित कर्मों का हेतु होता है। उन कुत्सित कर्मों का सम्पादन करने के लिए क्रोध युद्ध का आश्रय तो लेता है। परन्तु क्रोध ताडनादि कुत्सित उद्देश्यों से मुक्त सग्राम का कारण नहीं होता। कुत्सित उद्देश्यों से मुक्त सग्राम का कारण उचित होता है क्रोध नहीं

सग्राम हेतुक इति धायमर्थ —युद्धस्य क्वचिदप्रदश्यमानस्य हेतुक कुत्सित-हेतुधी (नि) रोहित। तस्योचितो हेतुन क्रोध। तथा च प्राधान्येन युद्धेन वीर एव व्यपदेश्यते। ना० शा० अभि० पृ० ३२०।

रौद्र रस के अनुभावों का निर्देश करने वाली भरत के द्वारा उद्धृत कारिकाओं पर प्रकाश डालते हुए भी अभिनव ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि रौद्र रस में शिर कर्तनादि जिन क्रियाओं का वर्णन किया जाता है वीर रस में

उनका वर्णन नहीं किया जाता। इसी प्रकार वीर रस के सन्दर्भ में उन्होंने वीर रसाभिव्यंजक तथा रौद्ररसाभिव्यंजक संग्राम के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए केवल जिघांसा युक्त संग्राम का वीर रसाभिव्यंजक तथा जिघांसा भिन्न अर्थात् मारण शिर कर्तनादि युक्त संग्राम को रौद्र रसाभिव्यंजक माना है

अनुभावानाह—नानेति। मारणप्राधान्य नानाप्रहरणेन दर्शयति। शिर-कर्तनादिहतशरीरस्यापि क्रोधातिशय सूचयन्वीराद्भेदमाह। युद्धवीरेऽपि हि तन्नास्ति। इह तु वक्ष्यते—उग्रकर्मेति। औग्र्याण्यौग्र्यप्रधानानि यानि शिर कर्तना-दीनि तेषां या क्रिया अभिनीति सा आत्मा प्रधान यस्येति।—युद्धवीरे हि संग्राम-सम्प्रहारयोगो रौद्रेऽपीति वीरेऽजिघांसेति।

ना० शा० अभि० पृ० ३२३-३२४।

रौद्र रस के प्रसंग में अभिनव ने जिस उचितत्व को संग्राम का कारण स्वीकार किया है वीर रस के प्रसंग में संग्राम के कारण स्वरूप उस उचितत्व को भी स्पष्ट कर दिया है

यदीय तु चरितमुपदेशार्हं तेषामुचित एवावसरे उत्साहाभिव्यक्ति। उचितत्व च अवसरस्यासंमोहादिसम्पत्तिरिति सैव विभावत्वेनोपदिष्टा।

ना० शा० अभि० पृ० ३२४।

भरत के विभिन्न उल्लेखों के आधार पर प्रस्तुत अभिनव की मान्यता औचित्ययुक्त ही प्रतीत होती है। क्योंकि क्रोध में अविवेक की प्रधानता रहती है। और अविवेकी व्यक्ति शिर कर्तनादि भले ही कर ले वह न तो नयादिका का सम्यक् प्रयोग ही कर सकता है और न सम्यक् रूप में सैन्य संचालनादि ही कर सकता है जिनकी संग्राम में परमावश्यकता होती है। पण्डितराज ने भी क्रोध को परविनाशादि का कारण ही माना है

गुरुबन्धुवधादिपरमापराधजन्मा—क्रोध अयं च परविनाशादि हेतु।

र० गं० पृ० १३२।

विभाव

परकर्तृक क्रोध, आधर्षण, अधिक्षेप अर्थात् देश, जाति, अभिजन, विद्या तथा कर्मादि की निन्दा, अनृत वचन, उपघात, वाक्पारुष्य, अभिद्रोह, मात्सर्य तथा राज्यापहरण आदि रौद्र रस के विभाव होते हैं।

ना० शा० अभि० पृ० ३१६।

धनंजय, विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने भी उपर्युक्त विभावों में से ही कुछ विभावों का निर्देश कर दिया है। किसी नवीन विभाव का निर्देश नहीं किया है। विभाव भेदकों के अनुसार उपर्युक्त क्रोधोद्बोधक व्यापारों के प्रवर्तक को आलम्बन विभाव तथा उनकी चेष्टाओं एवं उपर्युक्त व्यापारों को उद्दीपन

विभाव के नाम से अभिहित किया जायेगा।

रौद्रस्यापकृतप्रमुख्यादिरालम्बनम्, तद्गतोऽपराधादिरुद्दीपकः ।

र० ग० पृ० १३७ ।

आश्रय

भरत के अनुसार रौद्र रस राक्षस, दानव तथा उद्धत मनुष्य-प्रकृति-स्वरूप होता है

अथ रौद्रो नाम क्रोधस्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धतमनुष्यप्रकृतिः संग्राम हेतुकः । ना० शा० पृ० ३१९ ।

परन्तु भरत ने अपने उपर्युक्त मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए बाद में अन्य प्रकृतियों में भी रौद्र रस स्वीकार कर लिया है

अत्राह—यदभिहितं रक्षोदानवादीनां रौद्रो रसः । किमन्येषां नास्ति। उच्यते —अस्त्यन्येषामपि रौद्रो रसः । किन्त्वधिकारोऽत्र गृह्यते। ते हि स्वभावत एव रौद्राः । ना० शा० पृ० ३२१।

भरत ने यद्यपि राक्षसादिकों को स्वभावतः रौद्र-प्रकृतिक स्वीकार किया है। परन्तु स्वभावतः रौद्रप्रकृतिक राक्षसादिकों का क्रोध भी विभाव सान्निध्य से ही प्रदीप्त होता है। स्वतः नहीं। अन्यथा भरत ने रौद्र रस के विभावों का निर्देश ही न किया होता। परन्तु राक्षसादिकों की आकृति, उनकी चेष्टाएँ तथा चित्त के विकार युक्त न होने पर भी उनके व्यापार रौद्र प्रतीत होते हैं। स्वभावतः क्रोधी होने के कारण उनका क्रोध किसी सामान्य कारण से भी अधिक प्रदीप्त हो सकता है। इसीलिए उन्हें रौद्र प्रकृति युक्त स्वीकार किया जाता है। अन्यथा किसी कारण विशेष से तो क्रोधोद्बोध वीर रस के अनुरूप प्रकृति में युक्त अश्वत्थामा तथा परशुराम आदि में भी हो सकता है जैसा कि अभिनव ने स्वीकार किया है

अन्येऽपि तु वीरप्रधाना अश्वत्थामजामदग्न्यादयः । तेषु कारणमहिम्ना भवत्येव क्रोधो रौद्रास्वादयोग्य । ना० शा० अभि० पृ० ३२३ ।

उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि सामान्यतया रौद्र रस की योजना में राक्षस, दानव तथा उद्धत प्रकृति युक्त मनुष्य पात्रों को रौद्र रस का आश्रय बनाना अधिक समुचित होता है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में सभी प्रकार की प्रकृतियों से युक्त पात्रों को रौद्र रस का आश्रय बनाया जा सकता है।

अनुभाव

भरत ने रौद्र रस के कर्मों तथा अनुभावों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है

तस्य च ताडनपाटनपीडनच्छेदनभेदनप्रहरणाहरणशस्त्रसम्पातसम्प्रहाररुधिराकर्षणाद्यानि कर्माणि । पुनश्च रक्तनयनभृकुटीकरणदन्तोष्ठपीडनगण्डस्फुरणहस्ताग्रनिष्पेषादिभिरनुभावैरभिनय प्रयोक्तव्य । ना० शा० पृ० ३२० ।

अभिनव के अनुसार यद्यपि रौद्र रस के उपर्युक्त कर्म तथा अनुभाव दोनो ही अनुभाव होते हैं । परन्तु ताडनादि का रगमच पर अभिनय करना निषिद्ध होता है । अतएव भरत ने उनका पृथक् रूप से उल्लेख कर दिया है

अस्य ताडनादीनि कर्माणि रक्तनयनादयोऽनुभावा इति पृथड्निरूपण तुल्येऽप्यनुभावत्वे विशेषख्यापनार्थम । विशेषस्तु पूर्वेषा वचनमात्रेण व्यावर्णनम् । रगे प्रत्यक्षतोऽप्रदर्शनीयत्वात् । ना० शा० अभि० पृ० ३२० ।

धनजय तथा विश्वनाथ ने भरत के द्वारा प्रत्यक्षरूपेण अनुक्त रौद्र रस के कुछ अनुभावो का भी निर्देश किया है

क्षोभ स्वाधरदशकम्पभ्रुकुटिस्वेदास्यरागैर्युत,
शस्त्रोल्लासविकत्थनासधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै । द० रू० ४-७४ ।
भ्रूविभगोष्ठनिर्दशबाहुस्फोटनतर्जना ।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ॥
उग्रतावेगरोमाचस्वेदवेपथवो मद ।
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसदर्शनादय ॥ सा० द० ३-२२९-२३० ।

व्यभिचारी भाव

भरत ने रौद्र रस पोषक स्थायी भावो, व्यभिचारी भावो तथा सात्विक भावो तीनो का एक सूत्र मे ही भाव नाम से अभिधान कर दिया है

भावाश्चास्यासम्मोहोत्साहावेगामर्षचपलतौग्र्यगर्वस्वेदवेपथुरोमाञ्चगद्गदादय । ना० शा० पृ० ३२१ ।

धनञ्जय तथा विश्वनाथ ने मद, स्मृति व असूया को भी रौद्र रस का पोषक स्वीकार कर लिया है

अत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौग्र्यवेगादय । द० रू० ४-७४ ।
मोहामर्षादयस्तत्र भावा स्युर्व्यभिचारिण । सा० द० ३-२३१ ।

भेद

भरत ने हास्य के समान रौद्र रस को भी अग नेपथ्य तथा वाक्यो के आधार पर तीन भागो मे विभक्त किया है

अगनेपथ्यवाक्यैश्च हास्यरौद्रौ त्रिधा स्मृतौ । ना० शा० ६-७७ ।

परन्तु परवर्ती विवेचको ने रौद्र रस के भेदोपभेदो का निर्देश नही किया है । और न भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त भेदो का उल्लेख ही उन्होने किया है ।

वीर रस

स्थायी भाव

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है। विश्वनाथ ने किसी कार्य को सम्पन्न करने के अवसर पर व्यक्तियों में दृष्टिगत होने वाले स्थिरतर आवेश को उत्साह स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया है। जबकि पण्डितराज ने पर-पराक्रम अथवा दानादि की स्मृति से उत्पन्न औन्नत्य नामक चित्तवृत्ति को उत्साह स्थायी भाव के नाम से अभिहित किया है

कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते। सा० द० ३-१७८।

परपराक्रमदानादिस्मृतिजन्मा औन्नत्याख्य उत्साहः। र० गं० पृ० १३२।

भरत ने उत्साह स्थायी भाव को उत्तमता का सूचक माना है। उनके अनुसार उत्साह उत्तम-प्रकृति-स्वरूप होता है

उत्साहो नाम—उत्तमप्रकृतिः। ना० शा० पृ० ३५३।

विभाव

भरत के अनुसार असमोहाध्यवसायादि वीर रस के विभाव होते हैं

स च असमोहाध्यवसायनयविनयबलपराक्रमशक्तिप्रतापप्रभावादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। ना० शा० पृ ३२४।

अभिनव ने भरत के सांकेतिक शब्दों को स्पष्ट करते हुए मन्त्रणा के उपरान्त वस्तुतत्त्वनिश्चय, सन्ध्यादिगुणों का सम्यक् प्रयोग, इन्द्रिय जय, सेना, शत्रु का घेरा, युद्ध सामर्थ्य, शत्रु को सतप्त करने वाली प्रसिद्धि, अभिजन, धन तथा मन्त्री रूपी संपत्ति तथा यश आदि को वीर रस की विभावरूपता का प्रतिपादन किया है

असमोहाध्यवसायो हि वस्तुतत्त्वनिश्चय इति मन्त्रशक्तिदर्शिता—सन्ध्यादिगुणानां सम्यक् प्रयोगो नयः। इन्द्रियजयो विनयः। बलं हस्त्यश्वरथपादानम्। पराक्रमः परकीयमण्डलाद्याक्रमेणास्कन्दः। युद्धादिके सामर्थ्यं शक्तिः। प्रतापः शत्रुविषये सतापकारिणी प्रसिद्धिः। प्रभावोऽभिजनधनमन्त्रिसंपत्। आदिग्रहणेन यशःप्रभृति। ना० शा० अभि० पृ ३२४-३२५।

अभिनव के अनुसार वीर रस का स्थायी भाव उत्साह जोकि उत्तम प्रकृति-युक्त व्यक्तियों का स्वभाव स्वरूप होता है समुचित अवसर में ही उद्बुद्ध होता है। अतः उन्होंने उपर्युक्त असमोहादिक उत्साहोद्बोधक समस्त हेतुओं की संपत्ति जिसे उन्होंने अवसरौचित्यता का द्योतक माना है को ही वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का उद्बोधक स्वीकार किया है

यदीयं तु चरितमुपदेश्यहं तेषामुचित एवावसरे उत्साहाभिव्यक्तिः।

उचितत्व चावसरस्यासमोहादिसम्पत्तिरिति सैव विभावत्वेनोपदिष्टा ।—एते च संपूर्णस्वभावा एव विभावा भवन्ति । ना० शा० अभि० पृ० ३२४-३२५।
अभिनव ने उपर्युक्त विभावों को चाहे वे नायकगत हों या सचिव या प्रतिनायकगत हो उत्साहाभिव्यंजक स्वीकार किया है

सचिवायत्तसिद्धौ च वत्सराजप्राये नायके यथायोग सचिवगता अप्येते मन्तव्या । प्रतिनायकगता अपि च ते उत्साहव्यंजका इति यथायोग व्यस्तसमस्त-भेदकल्पन कविना कार्यम् । ना० शा० अभि० पृ० ३२५।
धनजय ने वीर रस के विभावों का निर्देश करते हुए मोह तथा विस्मय को भी वीर रस का व्यंजक स्वीकार कर लिया है

वीर प्रतापविनयाध्यवसायसत्व-

मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यै । द० रू० ४-७२।
जबकि भरत के द्वारा उद्धृत आर्या के अनुसार असमोह तथा अविस्मय वीर रस का व्यंजक होता है

उत्साह (होऽ) ध्यवसायादविषादित्वादविस्मयामोहात् ।

विविधादथ विशेषाद्वीररसो नाम सभवति ॥ ना० शा० ६-६७।
इसी प्रकार अभिनव ने भी मोह तथा विस्मय की रौद्र रस म ही प्रधानता स्वीकार की है

रौद्रे तु तम प्राधान्यादशास्त्रीयानुचितवन्धाद्यपीति मोहविस्मय प्राधान्यम् । ना० शा० अभि० पृ० ३२५।
इस प्रकार हम देखते हैं कि धनजय तथा भरत की मान्यतायें परस्पर विरुद्ध है। परन्तु यदि धनजय के द्वारा निर्दिष्ट मोह तथा विस्मय को आलम्बनगत स्वीकार कर लिया जाये तो उपयुक्त विरोध स्वत दूर हो जाता है क्योंकि शत्रुगत मोह तथा विस्मय आश्रयगत उत्साह का परिपोष ही करेगा। भरत ने अपने वीर रस के विभावों म प्रधान रूप से वीर रस के आश्रय की उत्साहोद-बोधक विशेषताओं पर ही ध्यान केंद्रित रखा है। अभिनव ने अपनी व्याख्या में उन्हें यद्यपि प्रतिनायकगत स्वीकार कर लिया है। परन्तु भरत न उनके प्रतिनायक गत होने का स्पष्ट सकेत नहीं किया है। इसी प्रकार भरत के द्वारा उद्धृत कारिका में भी उत्साहोद्बाधक आश्रयगत विशेषताओं का ही उल्लेख किया गया है। आलम्बनगत विशेषताओं का नहीं। जबकि धनजय ने मोह तथा विस्मय का परिगणन कर वीर रस के विभावों म आलम्बनगत हेतुओं का भी समाहार कर लिया है।
विश्वनाथ के अनुसार विजेतव्यादि व्यक्ति वीर रस का आलम्बन होता है तथा उसकी चेष्टादि उद्दीपन विभाव होते है

आलम्बनविभावस्तु विजेतव्यादयो मता ।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।। सा० द० ३-२३३ ।

आश्रय

भरत ने वीर रस को उत्तम-प्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है

अथ वीरो नाम उत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः । ना० शा० पृ० ३२४ ।

अभिनव के अनुसार वीर रस का उत्साह स्थायी भाव चूंकि उत्तम व्यक्तियों का स्वभाव होता है। अतः वीर रस को भी उत्तम-प्रकृति-स्वरूप ही कहा जायेगा

उत्तमानां प्रकृतिः स्वभावो यः उत्साहोऽसौ वीररसोऽपि तथा ।
ना० शा० अभि० पृ० ३२४ ।

विश्वनाथ भी भरत तथा अभिनव के समान वीर रस को उत्तमप्रकृतिस्वरूप स्वीकार करते हैं

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः । सा० द० ३-२३२ ।

अतः उत्तमप्रकृतिस्वरूप होने के कारण उत्तम प्रकृति युक्त पात्रों को वीर रस का आश्रय कहा जायेगा ।

अभिनव के अनुसार यद्यपि सभी व्यक्ति उत्साह युक्त होते हैं। परन्तु उत्साह आस्वाद्य केवल उत्तम-प्रकृति-युक्त व्यक्तियों का ही होता है। इसीलिए सभी प्रकार के नायकों को धीरत्व गुण से युक्त अवश्य रक्खा गया है

उत्तमवर्णानां हि सर्वत्रात्माह आस्वाद्यो भवति । अतएव चतुर्ष्वपि नायकेषु वी (धी) रत्वमनुयायित्वेन वक्ष्यते धीरोदात्त इत्यादि । तत्र सर्वो जन उत्साहवानेव । किन्त्वविषय इत्यनुपदश्यचरितता । ना० शा० अभि० पृ० ३२४ ।

अनुभाव

भरत ने स्थैर्य, धैर्य, शौर्य अर्थात् युद्धादि क्रिया, त्याग अर्थात् दान, तथा वैशारद्य अर्थात् सामादिक उपायों के आवश्यकतानुसार प्रयोग को वीर रस का अनुभाव स्वीकार किया है

तस्य स्थैर्यधैर्यशौर्यत्यागवैशारद्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः ।
ना० शा० पृ० ३२४ ।

विश्वनाथ ने सहायान्वेषण को भी वीर रस का अनुभाव स्वीकार कर लिया है

अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ।। सा० द० ३-२३३ ।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार धृत्यादिक भाव वीर रस का परिपोष करते हैं

भावाश्चास्य धृतिमतिगर्वावेगौग्र्यामर्षस्मृतिरोमाचादय ।
नाο शाο पृο ३२४।

धनजय ने हर्ष तथा धनिक ने वितर्क को भी वीर रस के व्यभिचारियो म परिगणित कर लिया है

वीर—मतिगर्वधृतिप्रहर्षा । दο रूο ४-७२ ।

गर्वधृतिहर्षामर्षस्मृति-मतिवितर्कप्रभृतिभिभावित उत्साह स्थायी स्वदते ।
दο रूο मο वृο ४-७२ ।

भेद

भरत ने वीर रस के दान, धर्म तथा युद्ध नामक तीन भेदो का उल्लेख किया है

दानवीर धर्मवीर युद्धवीर तथैव च ।
रस वीरमपि प्राह ब्रह्मा त्रिविधमेव हि ॥ नाο शाο ६-७९ ।

भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त वीर रस के भेद वीर रस के अनुभावो पर आधारित हैं । भरत ने वीर रस के अनुभावो मे शौर्य अर्थात युद्धादि क्रिया तथा त्याग अर्थात् दान का भी परिगणन किया है और उन्ही वे वीर का भेद भी स्वीकार करते है । इसी प्रकार धनजय ने दया, रण तथा दान के आधार पर वीर रस को तीन भागो मे विभाजित किया है और धनिक उन दयादिको को वीर रस का अनुभाव स्वीकार करते है

उत्साहभू स च दयारणदानयोगात् त्रेधा—॥ दο रूο ४-७२ ।

प्रतापविनयादिभिर्विभावित करुणायुद्धदानाद्यैरनुभावित —उत्साह स्थायी स्वदत । दο रूο मο वृο ४-८२ ।

परन्तु अभिनव न प्रतिनायकगत धर्म को वीर रस का विभाव भी स्वीकार किया है

धर्मशब्देनाग्निष्टोमादिक्रिया । अत एतद्यजनादीनि नि (ननादि नि) यमानुभाव भावात्मकम् । प्रतिनायकगत तु विभावरूपमपि ।
नाο शाο अभिο पृο ३३१ ।

अत धर्मवीर को विभाव तथा अनुभाव दोनो पर आधारित वीर रस के भेद के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है ।

परवर्ती विवेचको ने वीर रस के अनेकानेक भेदो का उल्लेख किया है । धनजय न भरत के द्वारा निर्दिष्ट धर्मवीर के स्थान पर दयावीर का उल्लेख किया है जबकि विश्वनाथ ने दया तथा धर्म दोनो भेदो को स्वीकार कर लिया है

स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ॥ साοदο ३-२३४।

पडितराज ने यद्यपि विश्वनाथ के द्वारा निर्दिष्ट वीर रस के चारो भेदो का उल्लेख किया है । परन्तु उनका निर्देश वे परम्परानुरोध वश ही करत है ।

अन्यथा वे वीर रस के भी शृंगार रस के समान अनेक भेदों की सम्भावना का समर्थन करते हैं

इत्थं वीररसस्य चातुर्विध्यं प्रपञ्चितम्। प्राचामनुरोधात्। वस्तुतस्तु बहवो वीररसस्य शृंगारस्येव प्रकारा निरूपयितुं शक्यन्ते। र० गं० पृ० १६० ।

पण्डितराज ने उदाहरण स्वरूप सत्यवीर, पाण्डित्यवीर, क्षमावीर तथा बलवीरादि का उल्लेख भी किया है। परवर्ती विवेचकों ने तो और भी अनेक वीर रस के भेदों का उल्लेख किया है।

भयानक रस

स्थायी भाव

भयानक रस का स्थायी भाव भय होता है। वैक्लव्य नामक चित्तवृत्ति को भय नाम से अभिहित किया गया है

व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्यापरपर्यायः स भयम्।
र० गं० पृ० १३३।

विभाव

भरत के अनुसार अट्टहासादि शब्द, पिशाचादि का दर्शन, गीदड़, उल्लू, परगत त्रास तथा उद्वेग, शून्यागार, अरण्य गमन, स्वजनवध अथवा बन्धादि का दर्शन, श्रवण अथवा कथनादि के स्मरण आदि भयानक रस के विभाव होते हैं

स च विकृतरवसत्त्वदर्शनशिवोलूकत्रासोद्वेगशून्यागारारण्यगमनस्वजनवध-बन्धदर्शनश्रुतिकथादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। ना० शा० तथा अभि० पृ० ३२६।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने किसी नवीन विभाव की ओर संकेत नहीं किया है। विश्वनाथ ने केवल आलम्बन तथा उद्दीपन के रूप में उनका पृथक्-पृथक् संकेतात्मक निर्देश मात्र कर दिया है

विकृतस्वरसत्वादेर्भयभावो भयानकः। द० रू० पृ० ४-८०।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टाघोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः॥ सा० द० ३-२३६।

आश्रय

भरत ने भयानक रस के स्थायीभाव भय को स्त्री-नीच-प्रकृति-स्वरूप स्वीकार किया है

भयं नाम स्त्रीनीचप्रकृतिकम्। ना० शा० पृ० ३५३।

अतः भयानक रस को भी स्त्रीनीचप्रकृति-स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है।

परन्तु अभिनव के अनुसार गुरुओं तथा राजा से उत्तम तथा मध्यम प्रकृतियुक्त पात्रों को भी भयभीत प्रदर्शित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार वे बालकों में भय की व्यंजना का भी समर्थन करते हैं

भयं तावत् स्त्रीनीचबालादिषु वक्ष्यते। नात्तममाध्यमप्रकृतिषु। तेऽपि तु गुरुभ्यो राज्ञश्च भयं दर्शयेयुः। ना० शा० अभि पृ० ३२६।

विश्वनाथ ने भी भयानक रस की स्त्री-नीच-प्रकृतिसम्पन्नता को स्वीकार किया है

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः॥ सा० द० ३-२३५।

अतः स्त्री, बालकों तथा नीच प्रकृति युक्त पात्रों को भयानक रस का आश्रय स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु गुरु एवं राजा से उत्तम तथा मध्यम प्रकृतियों को भी भयभीत अंकित कर उन्हें भी भयानक रस का आश्रय बनाया जा सकता है।

अनुभाव

हाथ-पैरों का काँपना, नेत्रचंचलता, पुलक, मुखवैवर्ण्य तथा स्वर-भेदादि भयानक रस के अनुभाव होते हैं

तस्य प्रवेपितकरचरणनयनपुलकमुखवैवर्ण्यस्वरभेदादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। ना० शा० पृ० ३२६।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भी उपर्युक्त अनुभावों में से ही कुछ अनुभावों का निर्देश किया है। उन्होंने जिन सात्त्विक भावों का अनुभावों के साथ उल्लेख किया है भरत ने उन्हें व्यभिचारियों के साथ परिगणित किया है

सर्वांगवेपथुस्वेदशोषवैचित्यलक्षणः। द० रू० ४-८०।
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलयस्वेदरोमांचकम्पदिक्प्रेक्षणादयः। सा० द० ३-२३७।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार स्तम्भ, स्वेद, गद्गद, रोमांच, वेपथु, स्वरभेद, वैवर्ण्य, शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चपलता, जड़ता, त्रास, अपस्मार तथा मरणादि सात्त्विक एवं व्यभिचारी भाव भयानक रस के पोषक होते हैं। ना० शा० पृ० ३२६।

धनंजय ने भी उपर्युक्त व्यभिचारी भावों में से ही कुछ व्यभिचारी भावों का निर्देश किया है। जबकि विश्वनाथ ने जुगुप्सा तथा ग्लानि को भी उनमें सम्मिलित कर लिया है

जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः।
शंकापस्मारसंभ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिणः॥ सा० द० ३-२३८।

भेद

भरत ने भयानक रस के व्याज-जन्य, अपराध-जन्य तथा वित्रासितक नामक तीन भेदो का उल्लेख किया है

> व्याजाच्चैवापराधाच्च वित्रासितकमेव च ।
> पुनर्भयानकं चैव विद्यात् त्रिविधमेव हि ॥ ना० शा० ६-८० ।

अभिनव के अनुसार भरत ने गुरुओ तथा राजादि से उत्पन्न उत्तम-मध्यम-प्रकृतिगत कृतक भय का व्याज-जन्य, चौरादिगत अपराध-जन्य भय का अपराधज तथा स्वभावत भीरु स्त्री तथा बालकों के भय को वित्रासितक नाम से अभिहित किया है

व्याजादिति । कृतक इत्यर्थ —अपराध्य तीत्यपराद्धा(धा)दचौरादय । मनु स्वभावतस्तह्रदयाना स्त्रीबालादीना तृणेऽपि कम्पमाने भय तद्वित्रासितकम् । विशेषेण त्रास्यत इति वित्रासितो बालादि । तत्प्रकृतित्वाद्‌भयानक तथोक्तम् ।
ना० शा० अभि० ३३१ ।

भरत के द्वारा उद्धत कारिकाओ मे भयानक रस को स्वभावज तथा कृतक दो भेदो म ही विभक्त किया गया है । इन दोनो मे से गुरु तथा नृपापराधजन्य भयानक को कृतक तथा शेष अन्य विभावो से उत्पन्न भयानक को स्वभावज नाम से अभिहित किया गया है । इन दोनो के अनुभावो का एकत्र निर्देश करने के उपरान्त कारिकाकार ने स्वभावज भय की अपेक्षा कृतक भय का मृदुचेष्टाओ स अभिनय करने का निर्देश दिया है

> विकृतरवसत्त्वदर्शनमग्रामारण्यशून्यगृहगमनात् ।
> गुरुनृपयोरपराधात्कृतकश्च भयानको ज्ञेय ॥
> गात्रमुखदृष्टिभेदैरूरुस्तम्भाभिवीक्षणोद्वेगै ।
> सन्नमुखशोषहृदयस्पन्दनरोमोद्गमैश्च भयम् ॥
> एतत्स्वभावज स्यात्सत्त्वसमुत्थ तथैव कर्तव्यम् ।
> पुनरेभिरेव भावै कृतक मृदुचेष्टितै कार्यम ॥ ना० शा० ६-६९-७१

अभिनव के अनुसार कृतक भय को मृदु चेष्टाओ से यदि अभिनीत किया जाता है तो गुरु आदि उस भय प्रदर्शित करने वाले व्यक्ति को विनम्र तथा उत्तम प्रकृतियुक्त समझते हैं

भये हि प्रदर्शिते गुर्वविनीत जानाति । मृदुचेष्टिततया चाधमप्रकृतिमेन गणयति । ना० शा० अभि० पृ० ३२८ ।

(प्रसगानुसार यहा पर 'एन' तथा 'गणयति' के मध्य मे 'न' का भी प्रयोग होना चाहिए जो नहीं है ।)

उपर्युक्त भरत के द्वारा उद्धृत कारिकाओ मे निर्दिष्ट भयानक रस के भेदो तथा भरत के द्वारा निर्दिष्ट किय गये भेदो मे कोई तात्त्विक अन्तर नही है ।

भरत ने स्वभावज भेद को ही अपराधज तथा वित्रासितक नामक दो भेदो मे विभक्त कर दिया है। हम देख चुके हैं अभिनव के अनुसार चौरादि नीच-प्रकृतिगत भय अपराधज होता है और नीचप्रकृतिगत भय को उन्होने स्वभावज भी माना है

एतावद् भय स्वभावज रजस्तम प्रकृतीना नीचानामित्यथ ।

ना० शा० अभि० पृ० ३२८।

इसी प्रकार हम देख चुके है कि वित्रासितक भय के आश्रयो स्त्री तथा बालको की स्वभावत्रस्त-हृदयता का भी उन्होने प्रतिपादन किया है।

ना० शा० अभि० पृ० ३३१।

धनजय, विश्वनाथ तथा पडितराज ने भयानक रस के भेदो का निर्देश नही किया है। पडितराज ने परमानर्थ विषयक भय को ही स्थायी भाव स्वीकार किया है। यदि भय परमानर्थविषयक न हो तो उसे वे त्रास नामक व्यभिचारी स्वीकार करते है

व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्याख्य स भयम्। परमानर्थ-विषयकत्वाभावे तु स एव त्रासो व्यभिचारी। र० ग० पृ० १३३।

परन्तु उपर्युक्त कृतक भयानक को परमानर्थ-विषयक न होते हुए भी रस के नाम से ही अभिहित किया जायेगा। क्योकि कृतक भय का आश्रय उत्तम तथा मध्यम प्रकृति युक्त व्यक्ति होता है। और अभिनव के अनुसार उनमे विनाश-शकात्मक भय की उत्पत्ति ही नही हो सकती

गुर्वाद्यपराधात्परमार्थतोऽप्युत्तमाना भयावेग इति त्वसत्। भय हि विनाशशकात्मक नोत्तमेषु सभवति। ना० शा० अभि० पृ० ३३१।

इसी प्रकार अभिनव ने कृतक भय की व्यभिचारीभावता का भी खण्डन किया है। उनके अनुसार अनुभावो की सश्लिष्टता तथा चिरकालास्वाद्यमानता उस अस्वाभाविक कृतक भय मे भी रसत्व का आधान कर देती है

अनुभावाश्च तथा श्लिष्टास्तत्र क्रियन्ते लोके येन सत्यत एव भीतोऽयमिति गुर्वादीना प्रतीतिर्भवति। अस्वाभाविकत्वाच्च कृतकत्व बहुतरकालानुवर्तनेनास्वा-द्यत्वाच्च रसत्वम्। न च व्यभिचारित्वम्। ना० शा० अभि० पृ० ६२७।

बीभत्स रस

स्थायी भाव

बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा होता है। विश्वनाथ ने जुगुप्सा को गर्हा तथा पडितराज ने विचिकित्सा नामक चित्तवृत्ति के नाम मे अभिहित किया है

दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा। सा० द० ३-१७९।
कदर्यवस्तुविलोकनजन्मा विचिकित्साम्यरचितवृत्तिविशेषो जुगुप्सा।
र० ग० पृ० १३४।

विभाव

भरत तथा अभिनव के अनुसार अहृद्य अर्थात् स्वभावतः अप्रिय तथा कारणवशात् अप्रिय वस्तु, स्वरूप में अदृष्ट होते हुए भी मतायुपहित वस्तु तथा अनिष्ट वस्तु के श्रवण, दर्शन तथा कीर्तनादि वीभत्स रस के विभाव होते हैं
स चाहृद्याप्रियाचोष्यानिष्टश्रवणदर्शनकीर्तनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।
ना० शा० तथा अभि पृ० ३२८।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने प्राय एक जैसे विभावों का निर्देश किया है। विश्वनाथ ने केवल उन्हे आलम्बन तथा उद्दीपन भेदों में विभक्त कर दिया है तथा धनंजय ने वीभत्स रस के भेदों के पृथक्-पृथक् विभावों का उल्लेख किया है

वीभत्स कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू—
रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभि क्षोभण।
वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणा शुद्ध ॥ द० रू० ४-७३।

विश्वनाथ ने वीभत्स रस के भेदों का निर्देश नहीं किया है और न समन्वित रूप में ही धनंजय द्वारा निर्दिष्ट वीभत्स रस में शुद्ध भेद के विभावों की ओर संकेत किया है

दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम्।
तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ॥ सा० द० ३-२४०।

भरत ने यद्यपि धनंजय के द्वारा निर्दिष्ट शुद्ध वीभत्स रस के विभावों का साक्षात् कथन नहीं किया है। परन्तु उनके संकेतात्मक शब्दों को उनका भी बोधक स्वीकार किया जा सकता है।

आश्रय

भरत के अनुसार जुगुप्सा स्थायी भाव स्त्री-नीच-प्रकृतिक होता है
जुगुप्सा नाम स्त्रीनीचप्रकृतिका। ना० शा० पृ० ३५४।

अत वीभत्स रस को भी स्त्री-नीच-प्रकृति-स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त शुद्ध वीभत्स की व्यंजना स्त्री अथवा नीच-प्रकृति में नहीं प्रदर्शित की जा सकती। उसकी व्यंजना उत्तम प्रकृति में ही की जा सकती है। अत सामान्यतया स्त्री तथा नीच प्रकृति युक्त पात्रों को वीभत्स रस का आश्रय कहा जा सकता है तथा शुद्ध वीभत्स रस के आश्रय को उत्तम-प्रकृति-युक्त स्वीकार किया जा सकता है।

अनुभाव

भरत तथा अभिनव के अनुसार समस्त अंगों का पिण्डीकरण, मुख-संकोच, वमन, निष्ठीवन तथा उद्वेजन अर्थात् गात्रोद्धनन आदि बीभत्स रस के अनुभाव होते हैं

तस्य च सर्वांगसंहारमुखविकूणनोल्लेखननिष्ठीवनोद्वेजनादिभिरनुभावैरभिनय प्रयोक्तव्य । ना० शा० तथा अभि० पृ० ३२८ ।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने भी उपर्युक्त अनुभावों का अभिधान किया है

नासावक्त्रविकूणनादिभि । द० रू० ४-७३ ।

निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादय ।

अनुभावा ॥ सा० द० ३-२४१ ।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि तथा मरणादि भाव बीभत्स रस के पोषक होते हैं

भावाश्चास्यापस्मारोद्वेगावेगमोहव्याधिमरणादय ।

ना० शा० पृ० ३२८ ।

धनंजय ने शंका व्यभिचारी को भी बीभत्स रस का पोषक माना है। जबकि विश्वनाथ ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट व्यभिचारियों को ही स्वीकार कर लिया है

आवेगार्तिशंकादय ॥ द० रू० ४-७३ ।

मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादय । सा० द० ३-२४२ ।

भेद

भरत ने बीभत्स रस के भेदों का भी निर्देश किया है

बीभत्स क्षोभज शुद्ध उद्वेगी स्याद् द्वितीयक ।

विष्ठाकृमिभिरुद्वेगी क्षोभजो रुधिरादिज ॥ ना० शा० ६-८१ ।

अभिनव ने उपर्युक्त कारिका की व्याख्या करते हुये पहले बीभत्स रस के क्षोभज तथा उद्वेगी नामक भेदों की संगति बिठाने का प्रयत्न किया है। परन्तु बाद में वे अपने गुरु का सन्दर्भ देकर बीभत्स रस के तीन भेदों को स्वीकार कर शुद्ध नामक बीभत्स की क्षोभज से पृथक् सत्ता स्वीकार कर लेते हैं

रुधिरादिदर्शनाद्यो बीभत्स क्षोभकरत्वाच्छुद्ध । यस्तु विष्ठादिभ्य स उद्वेगी हृदयं चलयति सोऽशुद्ध । अशुद्धविभावकत्वात्। उपाध्यायास्त्वाहु— बीभत्सस्तावद्विभावविशेषात् । यत्र तु समारब्धनायकरागप्रतिपक्षतया मोक्षसाधनत्वाच्छुद्ध । यदाह शौचात् स्वांगजुगुप्सा इति । तथा वित्तस्वाधने

प्रतिपक्षभावनम् । योग सू० २-४०,३३ । तेन सोऽपि परमार्थतस्त्रिघ एव । द्वितीयक इत्यनेन तस्य दुर्लभत्वेनाप्राचुर्य सूचयति । ना० शा० अभि० पृ० ३३१ ।

हम देख चुके हैं कि धनञ्जय ने उपर्युक्त तीनों भेदों का उल्लेख किया ही है। परन्तु विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने इन भेदों का निर्देश नहीं किया है।

अद्भुत रस

स्थायी भाव

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय होता है। विश्वनाथ ने चित्त के विस्तार तथा पण्डितराज ने विकास नामक चित्तवृत्ति को विस्मय नाम से अभिहित किया है :

विविधेषु पदार्थेषु लोक-सीमातिवर्तिषु ।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत ।। सा० द० ३-१७९-१८० ।
अलौकिकवस्तुदर्शनादिजन्मा विकासाख्यो विस्मय ।।
र० ग० पृ० १३३ ।

विभाव

गन्धर्वादि दिव्यजन दर्शन, सुलभ तथा दुर्लभ इष्ट की प्राप्ति, उपवन तथा देवकुलादि गमन, सभा, विमानादि, स्वप्नपरिकल्पितादिक माया, इन्द्रजाल अर्थात् मन्त्र, द्रव्य, वस्तु अथवा युक्ति के द्वारा असम्भव वस्तु का प्रदर्शनादि विस्मयोद्बोधक विभाव होते हैं

स च दिव्यजनदर्शनेप्सितमनोरथावाप्त्युपवनदेवकुलादिगमनसभाविमानमायेन्द्रजालसम्भावनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते । ना० शा० पृ० ३२९ ।

भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त विभावों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि भरत ने यहाँ पर प्रत्यक्ष दृश्य विभावों की विस्मयजनकता का ही निर्देश किया है। परन्तु उनके द्वारा उद्धृत विस्मय विभाव निर्देशक कारिका मे अतिशयार्थ युक्त वाक्य को भी विस्मयजनक माना गया है

यस्त्वतिशयार्थयुक्त वाक्य शिल्प च कर्म रूप वा ।
तत्सर्वमद्भुतरस विभावरूप हि विज्ञेयम् ।। ना० शा० ६-७५ ।

अत प्रत्यक्ष दृश्य वस्तुओं के समान लोकसीमातिवर्ती श्रुत विषयों को भी विस्मयजनक स्वीकार किया जा सकता है।

धनजय ने समष्टि रूप मे सभी लोकसीमातिवर्ती पदार्थों को विस्मयजनक स्वीकार किया है। और विश्वनाथ ने उन्ही पदार्थों की आलम्बन तथा उद्दीपन विभावता का पृथक्-पृथक् उल्लेख मात्र कर दिया है

अतिलोकै पदार्थै स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुत । द० रू० ४-७८ ।

—वस्तु लोकातिगमालम्बनम् मतम् ।
गुणाना तस्य महिमा भवेदुद्दीपन पुन ॥ सा० द० ३-२४३ ।

आश्रय

भरत ने साक्षात्रूप से अद्‌भुत रस की विशिष्ट-प्रकृति-स्वरूपता का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु अभिनव ने भरत के द्वारा उद्धृत विस्मयानुभाव-परक कारिका की व्याख्या करते हुए सभी अनुभावो मे प्रयुक्त बहु वचन को प्रकृति भेद से प्रकार वैचित्र्यता का सूचक माना है

स्पर्शग्रहोल्लुकसनैर्हाहाकारैश्च साधुवादैश्च ।
वेपथुगदगदवचनै स्वेदाद्यैरभिनयस्तस्य ॥ ना० शा० ६-७६ ।

गात्रस्योर्ध्व साह्लाद धूननमुल्लुकसनम् । बहुवचन प्रकृतिभेदेन प्रकारवैचित्र्य सूचयति । ना० शा० अभि० पृ० ३३० ।

अत सभी प्रकार की प्रकृतियो मे युक्त पात्रो को अद्‌भुत रस का आश्रय स्वीकार किया जा सकता है।

अनुभाव

उपर्युक्त अनुभाव-निर्देश-परक कारिका के पूर्व भरत ने अद्‌भुत रस के अनुभावो का स्वय भी निर्देश किया है। उनके अनुसार नेत्रविस्तार, अनिमेष निरीक्षण, रोमाच, अश्रु, स्वेद, हर्ष, साधुवाद, दानादि का प्रबध, हाहाकार, एव बाहु, वदन, वस्त्र तथा अगुलि भ्रमण आदि अद्‌भुत रस के अनुभाव होते हैं

तस्य नयनविस्तारानिमिषप्रेक्षणरोमाचाश्रुस्वेदहर्षसाधुवाददानप्रबधहाहाकार-बाहुवदनचेलागुलिभ्रमणादिभिरनुभावैरभिनय प्रयोक्तव्य । ना० शा० पृ० ३२६ ।

धनजय तथा विश्वनाथ ने भरतोक्त विस्मयाभिव्यजक अनुभावो के साथ-साथ सात्विक भावो का भी अनुभावो के साथ ही निर्देश किया है। जबकि भरत ने विस्मयाभिव्यजक सात्विको का भावो के साथ निर्देश किया है

कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगदगदा । द० रू० ४-७६ ।
स्तम्भस्वेदोऽथ रोमाचगद्‌गदस्वरसभ्रमा ।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता ॥ सा० द० ३-२४४ ।

व्यभिचारी भाव

भरत के अनुसार स्तम्भ, अश्रु, स्वेद, गद्‌गद, रोमाच, आवेग, सभ्रम, जडता तथा प्रलाप आदि सात्विक तथा व्यभिचारी भाव अद्‌भुत रस के पोषक होते हैं।

भावाश्चास्य स्तम्भाश्रुस्वेदगद्‌गदरोमाचावेगसभ्रमजडताप्रलापादय ।
ना० शा० पृ० ३३० ।

धनंजय तथा विश्वनाथ ने श्रम धृति तथा वितर्क को भी अद्भुत रस के व्यभिचारियों में परिगणित कर लिया है

हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः । द० रू० ४-७६ ।

वितर्कावेगसम्भ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः । सा० द० ३-२४५ ।

भेद

भरत ने अद्भुत रस के दो भेदों का उल्लेख किया है

दिव्यश्चानन्दजश्चैव द्विधा ख्यातोऽद्भुतो रसः ।

दिव्यदर्शनजो दिव्यो हर्षादानन्दजः स्मृतः ॥ ना० शा० ६-८२ ।

अभिनव ने उपर्युक्त कारिका की व्याख्या करते हुए सभाविमानादिजन्य अद्भुत को दिव्य तथा मनोरथावाप्त्यादिजन्य अद्भुत को आनन्दज अद्भुत रस स्वीकार किया है

दिव्य इति । यत्र सभाविमानादयोऽनुभावः । आनन्दयतीत्यानन्दी मनोरथावाप्त्यादिः स एव हर्षयतीति हर्षः । ना० शा० अभि० पृ० ३३२ ।

(उपर्युक्त पाठ में सभाविमानादि को अनुभाव कहा गया है। जबकि अद्भुत रस के विभावों का निर्देश करते हुए भरत तथा अभिनव दोनों ने ही सभाविमानादि को विभाव स्वीकार किया है जोकि समुचित भी है। अतः उपर्युक्त उद्धरणगत 'अनुभावः' पाठ के स्थान पर 'विभावः' पाठ होना चाहिए।)

धनञ्जय विश्वनाथ व पण्डितराज ने अद्भुत रस के भी भेदों का निर्देश नहीं किया है।

शान्त रस

स्थायी भाव

भरत ने उन्चास भावों में शान्त रस के स्थायी भाव का न तो स्पष्ट निर्देश किया है और न उन्होंने इस ओर संकेत ही किया है कि उन्चास भावों में से कौन भाव शान्त रस का स्थायी भाव हो सकता है। अत एव परवर्ती विवेचकों में से अनेक चिन्तकों ने शान्त रस की सत्ता को ही नहीं स्वीकार किया है और जिन लक्षण-ग्रन्थकारों ने शान्त रस को स्वीकार भी कर लिया है उनके द्वारा निर्दिष्ट शान्त रस के स्थायी भाव के बारे में ऐकमत्य नहीं है। वर्तमान नाट्य शास्त्र में निर्दिष्ट शान्त रस के स्वरूप के अनुसार जिसे कुछ विद्वान भरत निर्दिष्ट नहीं स्वीकार करते शान्त रस का स्थायी भाव शम होता है

अथ शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्तकः ।

ना० शा० पृ० ३३२ ।

इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी शम को ही शान्त रस का स्थायी भाव माना है।

शान्त शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मत ॥ सा० द० ३-२४५।

दूसरी ओर मम्मट तथा पंडितराज के अनुसार निर्वेद नामक व्यभिचारी भाव ही शान्त रस का स्थायी भाव होता है

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस । का० प्र० पृ० ४७।

पंडितराज ने निर्वेद को शान्त रस का स्थायी तो स्वीकार किया है परन्तु व निर्वेद-मात्र को शान्त रस का स्थायी नही स्वीकार करते। उन्होंने उसके स्थायी तथा व्यभिचारी दो रूपो की ओर सकेत किया है

नित्यानित्यवस्तुविचारजन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेद । गृहकलहादिजस्तु व्यभिचारी। र० ग० पृ० १३२।

अभिनव ने उपर्युक्त दोनो मतो से भिन्न मार्ग को ग्रहण किया है। उन्होंने शम तथा निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार करने वाले विचारको का खण्डन कर तत्त्वज्ञान को शान्त रस का स्थायी स्वीकार किया है और तत्त्व-ज्ञान तथा आत्मज्ञान को उन्होंने एक माना है

कस्तर्ह्यत्र स्थायी। उच्यते--इह तत्त्वज्ञानमेव तावन्मोक्षसाधनमिति तस्यैव मोक्षे स्थायिता युक्ता। तत्त्वज्ञान च नामात्मज्ञानमेव।

ना० शा० अभि० पृ० ३३६।

तत्त्वज्ञान को शान्त रस का स्थायी स्वीकार करने के उपरान्त अभिनव ने भरत के द्वारा इसका शान्त रस के स्थायी भाव के रूप म पृथक् निर्देश न किए जाने का कारण स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया है

तत्त्वज्ञान तु सकलभावान्तरभित्तिस्थानीय सर्वस्थायिभ्य स्थायितम सर्वा रत्यादिकास्थायिचित्तवृत्तीर्व्यभिचारिभावयत् निसर्गत एव सिद्धस्थायिभावमिति तन्त्रवचनेन (तन्न वचनीयम्)। अतएव पृथगस्य गणना न युक्ता। न हि खण्डमुण्ड-योर्मध्ये तृतीय गोत्वमिति गण्यते। तेनैकोनपञ्चाशदभावा इत्यव्याहतमेव।

ना० शा० अभि० पृ० ३३६।

अभिनव ने यद्यपि शम तथा निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भाव मानने का विरोध किया है। परन्तु उनके अनुसार यदि तत्त्वज्ञान को ही शम तथा निर्वेद शब्दो से अभिहित कर शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार किया गया हो तो वे उसके विपक्ष म भी नहीं हैं। परन्तु शम तथा निर्वेद शब्द चूकि अन्य अर्थों में प्रसिद्ध है। अत वे तत्त्वज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार करना ही समुचित मानते हैं

यदि तु स एव शमशब्देन व्यपदिश्यते निर्वेदशब्देन वा तत्र कश्चिद्भाव (बाध)। केवल शमश्चित्तवृत्त्यन्तरम्। निर्वेदस्तु दोऽपि दारिद्रयादिविभावान्तरो-

त्वान्निर्वेदतुल्यजातीयो न भवति तज्जातीय एव। हेतु भेदेऽपि तद् व्यपदेश्यो रतिभयादिभिरिव। ना० शा० अभि० पृ० ३३७।

उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि अभिनव ने शान्त रस के स्थायी भाव की समस्या अधिक युक्ति पूर्वक सुलझाई है। पण्डितराज ने यद्यपि निर्वेद स्थायी तथा व्यभिचारी भाव के अन्तर पर प्रकाश डालकर शान्त रस के स्थायी भाव स्वरूप निर्वेद का समुचित स्वरूपनिरूपण किया है और उनके द्वारा निरूपित स्थायीभाव स्वरूप निर्वेद तथा अभिनव के तत्त्वज्ञान में कोई विशेष अन्तर भी नहीं प्रतीत होता। परन्तु निर्वेद का व्यभिचारियों में परिगणन होने के कारण समुचित यही प्रतीत होता है कि निर्वेद के स्थान पर किसी अन्य शब्द का शान्त रस के स्थायी भाव के रूप में उल्लेख किया जाय और यह शब्द तत्त्वज्ञान समुचित प्रतीत होता है। यद्यपि तत्त्वज्ञान का भरत ने उनचास भावों में परिगणन नहीं किया है परन्तु अभिनव ने उस अनुपपत्ति का भी निरास कर ही दिया है। भले ही अभिनव के उस प्रयास को उनकी दार्शनिकता का प्रतिफलन स्वीकार किया जाये। परन्तु उनका प्रयास युक्तियुक्त भी नहीं प्रतीत होता।

विभाव

तत्त्वज्ञानजनक विषय, वैराग्य तथा आशय-शुद्धि आदि शान्तरस के विभाव होते हैं

स तु तत्त्वज्ञानवैराग्याशयशुद्ध्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते।

ना० शा० पृ० ३३२।

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरण में तत्त्वज्ञान को विभाव माना गया है। परन्तु तत्त्वज्ञान को स्थायी भाव स्वीकार कर लेने के अनन्तर उसे विभाव नहीं माना जा सकता। अतएव तत्त्व ज्ञान को तत्त्वज्ञानजनक विषयों की विभावरूपता का बोधक स्वीकार किया गया है।

विश्वनाथ तथा पण्डितराज ने शान्त रस के आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों का पृथक् पृथक् उल्लेख किया है

अनित्यत्वादिनाशेषवस्तुनिःसारता तु या।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते॥
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः॥ सा० द० ३-२४६-२४८।

शान्तस्यानित्यत्वेन ज्ञातं जगदालम्बनम्। वेदान्तश्रवणतपोवनतापस-दर्शनाद्युद्दीपनम्। र० ग० पृ० १३६।

आश्रय

शान्त रस का आश्रय उत्तम-प्रकृति-युक्त पात्र ही हो सकता है। क्योंकि तत्त्वज्ञान किसी सामान्य पात्र में नही उत्पन्न हो सकता। जैसा कि विश्वनाथ ने स्वीकार ही किया है। सा० द० ३-२४५।

अनुभाव

यम, नियम, अध्यात्म, ध्यान, धारणा, उपासना, सर्वभूत-दया, रोमाच, विषयारुचि, उदासीनता तथा चेष्टानाशादि शान्त रस के अनुभाव होते हैं

तस्य यमनियमाध्यात्मध्यानधारणोपासनसर्वभूतदयालिंगग्रहणादिभिरनुभावैर-भिनय प्रयोक्तव्य। ना० शा० पृ० ३३२।

रोमाचाद्यानुभावा। सा० द० ३-२४८।

विषयारुचिरात्रुमित्राद्यौदासीन्यचेष्टाहानिनासाग्रदृष्ट्यादयोऽनुभावा।

र० ग० पृ० १३६।

व्यभिचारी भाव

निर्वेद, स्मृति, धृति आदि व्यभिचारी तथा स्तम्भ एव रोमाचादि सात्त्विक भाव शान्त रस के पोषक होते हैं

व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेदस्मृतिधृतिसर्वाश्रमशौचस्तम्भरोमाचादय।

ना० शा० पृ० ३३३।

विश्वनाथ ने हर्ष, मति तथा दयामूलक उत्साह को भी शान्त रस का पोषक माना है

निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादय। सा० द० ३-२४६।

पंडितराज ने उन्माद को भी शान्त रस का पोषक मान लिया है

हर्षोन्मादस्मृतिमत्यादयो व्यभिचारिण। र० ग० पृ० १३६।

जबकि अभिनव के अनुसार सभी स्थायी तथा व्यभिचारी भाव तत्त्वज्ञान के पोषक होते हैं

तत्त्वज्ञानलक्षणस्य च स्थायिन समस्तोऽय लौकिकालौकिकचित्तवृत्तिकलापो व्यभिचारितामभ्येति। ना० शा० अभि० पृ० ३३७।

भावादि

रस पद भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता आदि समस्त असलक्ष्यक्रम ध्वनियो का बोधक होता है तथा इन्हे भी रसो के समान ही आस्वाद्य स्वीकार किया गया है

रसभावतदाभासभावशान्त्यादिरक्रम।

ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थित ॥ ध्व० २-२५ ।
रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।
सन्धि शबलताचेति सर्वेऽपि रसनाद्रसा ॥ सा० द० ३-२५९-२६० ।

अत यदि भावादि योजना पर दृष्टिपात न कर लिया जाये तो यह विवेचन अधूरा ही रह जायेगा ।

भाव स्वरूप तथा सख्या

विभावो तथा अनुभावो के सयोग से भावो की व्यजना होती है । परन्तु भाव सज्ञक अभिव्यजनाओ मे कुछ ऐसी व्यजनाओ को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनकी व्यजना विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के सयोग से होती है । भरत ने उन्चास भावो का उल्लेख किया है तथा उन्हें स्थायी, व्यभिचारी तथा सात्विक नामक तीन भागो मे विभाजित किया है। परन्तु उन्होने सात्विक भावो को अनुभाव स्वरूप भी स्वीकार किया है । इसी प्रकार परवर्ती विवेचको ने भी सात्विक भावो की भाव तथा अनुभाव-स्वरूपता को स्वीकार किया है। परन्तु परवर्ती विवेचको ने उनका विवेचन अनुभावो के अन्तर्गत ही किया है। जबकि भरत ने उनका विवेचन भावो के सन्दर्भ मे किया है । भरत द्वारा स्वीकृत स्थायी तथा व्यभिचारी भावो की भाव स्वरूपता परवर्ती विवेचको को भी स्वीकार है ।

प्रकार

इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत ने तीन प्रकार के भावों का उल्लेख किया है । जिन तीन प्रकारो मे से स्थायी तथा व्यभिचारी नामक भावो को तो परवर्ती विवेचको ने भाव मान लिया है । परन्तु सात्विक भावो को उन्होने अनुभाव स्वीकार कर लिया है । परवर्ती विवेचको के द्वारा स्वीकृत स्थायी तथा व्यभिचारी नामक भावो को भी तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। उनके विवेचन पर दृष्टिपात करने के अनन्तर यह तथ्य स्वत सिद्ध हो जाता है। जैसे मम्मट ने देवादि-विषयक रति तथा व्यक्त व्यभिचारियो को भाव नाम से अभिहित किया है

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित ।
भाव प्रोक्त ॥

आदिशब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादिविषया । कान्ताविषया तु व्यक्ता शृगार ।
का० प्र० पृ० ११८ ।

मम्मट के टीकाकारो ने रति को सभी स्थायी भावो तथा देवादि विषयक रति को अपरिपुष्ट देवादि-विषयक रति का उपलक्षण मानकर कान्तादि-

विषयक अपरिपुष्ट रति, अपरिपुष्ट हासादि स्थायी भावो, देवादि विषयक परिपुष्ट तथा अपरिपुष्ट उभय-विध रति तथा प्राधान्येन व्यक्त व्यभिचारी भावो की भावरूपता का प्रतिपादन किया है

रतिरिति सकलस्थायिभावोपलक्षणम्। देवादिविषयेत्यपि अप्राप्तरसावस्थापलक्षणम्। तथा शब्दश्चार्थे तेन देवादिविषया सवप्रकारा कान्तादिविषयापि अपुष्टा रति, हासादयश्च अप्राप्तरसावस्था विभावादिभि प्राधान्येनाञ्जितो व्यञ्जितो व्यभिचारी च भाव प्रोक्त। भावपदाभिधेय कथित इति सूत्रार्थ। का० प्र० बा० पृ० ११८।

विश्वनाथ ने भी अपने भाव लक्षण मे उपर्युक्त तथ्यो को ही समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है

सचारिण प्रधानानि देवादिविषया रति।

उद्बुद्धमात्र स्थायी च भाव इत्यभिधीयते॥ सा० द० ३-२६०-२६१।

मम्मट के टीकाकारो तथा विश्वनाथ ने अपुष्ट रति तथा स्थायी भावो को भाव स्वीकार किया है। परन्तु अपुष्टता की सीमा का निर्देश करते हुए दोनो ही कुछ आगे बढ गये हैं। मम्मट के टीकाकार अपुष्ट का अर्थ अनुभावादि म अपुष्ट ग्रहण करते हैं जबकि विश्वनाथ विभावादिको मे अपरिपुष्ट रत्यादिका को भाव स्वीकार करते हैं।

व्यक्तेति। प्राधान्येन विभावादिभि पुष्टेत्यथ। तेना गभूताया अनुभावादिभिरपुष्टायाश्च न रसत्वम्। किन्तु भावत्वमेवेति भाव। का० प्र० बा० पृ० ११८।

—विभावादिभिरपरिपुष्टतया रसरूपतामनापद्यमानाश्च स्थायिनो भावा भावशब्दवाच्या। सा० द० पृ० १२८।

परन्तु भरत ने विभाव तथा अनुभाव दोनो के सयोग से भाव व्यजना होने का उल्लेख किया है। अत अपुष्ट का अर्थ विभावादिका मे अपुष्ट ग्रहण करना समीचीन नही प्रतीत होता। क्योकि विभावो तथा अनुभावो के अभाव म तो किसी भाव की व्यजना ही नही हो सकती। अत व्यभिचारी भावो से अपरिपुष्ट स्थायी भाव को भाव स्वीकार करना अधिक समीचीन होगा। परन्तु यदि कही पर विभावादिको मे किसी स्थायीभाव का सम्यक् परिपोष न किया गया हो तो असम्यक रूप से परिपुष्ट होने के कारण स्थायी भावो की अस्थिर तथा दुर्बल प्रतीति को भी भाव नाम से अभिहित किया जा सकता है।

पडितराज ने भी विश्वनाथ की भाति मम्मट को ही भाव विवेचन मे प्रमाण माना है।

विभावादिव्यज्यमानहर्षाद्यन्यतमत्व तत्त्वम्। यदाहु व्यभिचार्यञ्जितो भाव।

र० ग० पृ० २६६।

गुरुदेवनृपपुत्रादिविषयारतिश्चेति चतुस्त्रिंशत्। वही पृ० २९२।

यद्यपि पंडितराज ने मम्मट की भांति अपरिपुष्ट स्थायी भावो की भाव-स्वरूपता का स्पष्ट उल्लेख नही किया है। परन्तु मम्मट के टीकाकारो की भांति पंडितराज के टीकाकार श्री बदरीनाथ जी ने भी अपरिपुष्ट स्थायी भावो को भाव स्वीकार कर लिया है

इह गुर्वादिविषयरतिरिति सामग्रीविरहेणाप्राप्तरसभावानामन्येषामपि स्यायिभावानामुपलक्षणम्। र० गं० स० व्या० पृ० २७२।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मम्मट तथा पंडितराज के द्वारा स्पष्ट रूप से स्थायी भावो की भावस्वरूपता का प्रतिपादन नहीं किया गया था। परन्तु उनके टीकाकारो ने स्थायी भावो को भी भाव स्वीकार कर लिया है। और भरत ने उनकी भावस्वरूपता का स्पष्ट उल्लेख किया ही है।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में भावो का तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—अपरिपुष्ट स्थायी भाव, देवादि विषयक रति तथा प्राधान्येन व्यक्त व्यभिचारी भाव। अपरिपुष्ट स्थायी भाव केवल विभाव तथा अनुभाव से व्यक्त रत्यादि स्थायी भावो को कहा जाता है। देवादि विषयक रति के अन्तर्गत मुनि, गुरु, नृप तथा पुत्रादि विषयक परिपुष्ट तथा अपरिपुष्ट उभय विध रति का समाहार किया जाता है। यद्यपि व्यभिचारी भाव किसी न किसी स्थायी भाव के परिपोषक ही होते हैं। परन्तु यदि कहीं पर व्यभिचारी भावो की प्राधान्येन प्रतीति ही चमत्कार का कारण बन जाती है तो उन प्राधान्येन प्रतीत व्यभिचारियो को भी भाव नाम म अभिहित किया जाता है। जैसा कि अभिनव ने स्वीकार ही किया है

यद्यपि रसेनैव सर्वं जीवति काव्य तथापि तस्य रसस्यैकघनचमत्कारात्मनोऽपि कुतश्चिदशात्प्रयोजकीभूतादधिकोऽसौ चमत्कारो भवति। तत्र यदा कश्चिदुद्रिक्तावस्था प्रतिपन्नो व्यभिचारी चमत्कारातिशयप्रयोजको भवति तदा भावध्वनि। ध्व० लो० पृ० ३७०।

भाव-संज्ञक व्यभिचारी भावो की प्रतीति

व्यभिचारी भावो की प्रतीति क्षणिक होती है। अत किसी उदाहरण विशेष मे किसी एक व्यभिचारी भाव की व्यजना भी नहीं हो सकती। अभिनव ने ऐसे विवेचको का खण्डन किया है जो किसी स्थल विशेष मे किसी एक व्यभिचारी भाव की व्यजना का समर्थन करते हैं

तेन व्यभिचारिषु पृथक्-पृथग्यं कैश्चिदुदाहृत तन्न नात्यायानुपाति। तथा हि—धृतीयदुदाहृत अमभाव्य देवात् इत्यादि तत्रापि हर्षविस्मयगर्वमतिप्रमृतीना च तेनि माम् इति बलितेत्यादिसूचिताना सम्भार एव।

ना० शा० अभि पृ० ३०८।

वस्तुत किसी एक व्यभिचारी भाव की प्रतीति के साथ-साथ दूसरे व्यभिचारी भाव की सत्ता का होना केवल व्यभिचारी भावो की अस्थिरता पर ही नहीं निर्भर करता। अधिकांश व्यभिचारी भावो की व्यजना का हेतु ही कोई अन्य व्यभिचारी हुआ करता है। ऐसी स्थिति मे किसी एक व्यभिचारीभाव की प्रतीति स्वय ही दूसरे व्यभिचारी भाव की प्रतीति का कारण बन जाती है। अत किसी उदाहरण मे किसी एक व्यभिचारी भाव की सत्ता को स्वीकार करना असगत ही होगा। परन्तु किसी काव्यविशेष मे एकमात्र रस की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी अभिनव ने किसी व्यभिचारीभाव की प्राधान्येन व्यजना करने वाले स्थलो को भावध्वनि के नाम से अभिहित ही किया है। अत यदि किसी प्रकरण विशेष मे किसी एक व्यभिचारी भाव की प्राधान्येन प्रतीति हो रही हो तो उस प्रकरण को अन्य गौण व्यभिचारियो मे युक्त होते हुए भी प्राधान्येन प्रतीत व्यभिचारी के नाम से अभिहित किया जा सकता है। जैसा कि पडितराज ने व्यभिचारी भावो की ऐकान्तिकता का प्रतिपादन करते हुए स्वीकार किया है

वस्तुतस्तु—प्रकरणादिवशात प्राधान्यमनुभवति कस्मिंश्चिद्भावे तदीय-सामग्री-व्यग्यत्वेन नान्तरीयकतया तन्निमानमावहतो व्यभिचार्यन्तरस्यागतत्वऽपि न क्षति। र० ग० पृ० २७०।

रसाभास तथा भावाभास

अनौचित्य युक्त रसो तथा भावो को रसाभास तथा भावाभास नाम से अभिहित किया जाता है

तदाभासा अनौचित्य प्रवर्तिता। का० प्र० पृ० १२१।

आभासता का कारण

जब किसी स्थायी तथा व्यभिचारी भाव का सामाजिक तथा नतिक मूल्यो के विरुद्ध उद्बोध अकित कर दिया जाता है तो वे स्थायी तथा व्यभिचारी स्वसबद्ध रसो तथा भावो को आभासता से युक्त कर देते है। अत मूल रूप मे स्थायी भाव तथा व्यभिचारी भाव-गत अनौचित्य ही आभासता का साक्षात् कारण होता है। परन्तु भाव सभी व्यग्य होते हैं। अत भावगत अनौचित्य भावाभिव्यजक विभावादिको के अनौचित्येन सन्निवेश पर निर्भर करता है। अत विभावादिको के अनौचित्येन किये गये सन्निवेश को भी आभासता का हेतु स्वीकार किया जाता है। *अत एव आनन्दवर्धन ने विभाव, भाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो सभी के* समुचित सन्निवेश को रसाभिव्यजक तथा अभिनव ने इनके अनौचित्य-युक्त सन्निवेश को आभासता का हेतु स्वीकार किया है

प्रबन्धोऽपि रसादीना व्यजक इत्युक्तम्, तस्य व्यजकत्वे निबन्धन प्रथम

तावद् विभावभावानुभावसचार्यौचित्यचारुणः कथाशरीरस्य विधिः यथायथं प्रति-
पिपादयिषितरसभावाद्यपेक्षया य उचितो विभावो भावोऽनुभावः सचारी वा,
तदौचित्यचारुणः कथाशरीरस्य विधिर्व्यञ्जकत्वे निबन्धनमेकम्। ध्व० पृ० २६६।

यतो विभावाभासादनुभावाभासाद्व्यभिचार्याभासाद्रत्याभासः प्रतीत चर्वणा-
भासमारः शृंगाराभासः—। ना० शा० अभि० पृ० २८५।

औचित्य तथा अनौचित्य निकष

सामान्यतया लोक व्यवहार में किसी व्यक्ति की प्रवृत्तियों के औचित्य तथा अनौचित्य का निर्धारण सामाजिक तथा नैतिक मान्यताओं के आधार पर किया जाता है। अतः काव्यगत विभावादिकों के औचित्यानौचित्य का निर्धारण भी सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों के आधार पर किया जा सकता है। परन्तु सामाजिक तथा नैतिक मान्यतायें प्रायः युगीन परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित तथा विभिन्न होती रहती हैं। अतः उनके आधार पर विभावादिकों के औचित्य तथा अनौचित्य का निर्धारण यदि किया जाय तो उसमें ननु नच के लिए कुछ गुंजायश बनी रह सकती है। इसीलिए पण्डितराज ने विभावादिकों के औचित्य परीक्षण में लोकबुद्धि का निकष स्वीकार किया है

विभावादावनौचित्यं पुनर्लोकानां व्यवहारतो विज्ञेयम्, यत्र तेषाम् अनुचित-मिति धीरिति—। र० गं० पृ० ३३६।

परन्तु सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों के समान लोकबुद्धि भी परिवर्तनशील होती है। अतः लोकबुद्धि के आधार पर किया गया विभावादिकों के औचित्यानौचित्य का परीक्षण भी कभी-कभी औचित्योल्लंघन कर सकता है। क्योंकि सभी कवियों की अपनी युगीन प्रवृत्तियाँ होती हैं। जिनसे कोई भी कवि सर्वथा असपृक्त नहीं रह सकता। अतः किसी रचना में निहित विभावादिकों का औचित्यानौचित्य परीक्षण यदि लोक बुद्धि के आधार पर किया भी जा सकता है तो उस काव्यकार की समसामयिक लोकबुद्धि के आधार पर ही, समीक्षक की अपनी तत्कालीन प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं। किसी रचयिता के युग की प्रवृत्तियाँ अथवा कवि के अपने कल्पनालोक की प्रवृत्तियाँ जो कि ज्ञात या अज्ञात रूप में उसकी रचना में निहित होती हैं समीक्षक के युग के अनुरूप हैं या नहीं, वे उस युगविशेष के लिए उपयोगी हैं या नहीं इस प्रकार के प्रश्नों के आधार पर किसी रचना का किसी युग विशेष के लिए ही मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई रचना युग विशेष की समस्याओं का समाधान नहीं करती अथवा उसकी प्रवृत्तियों का अनुगमन नहीं करती तो केवल इसीलिए किसी रचना को हेय नहीं घोषित किया जा सकता। क्योंकि कोई कवि वैज्ञानिक तो होता नहीं जो उसकी रचना अकाट्य तथ्यों से युक्त होती हो। इसके साथ-साथ

यह भी हो सकता है कि कवि जान बूझकर किसी के स्वर में स्वर न मिलाकर अपनी अनुभूतियों को ही मुखरित कर रहा हो जैसा कि अनेक महाप्राण सृष्टा किया ही करते हैं। ऐसी स्थिति में उस क्रान्तिकारी स्वरों से युक्त रचना में निहित विभावादिकों के औचित्यानौचित्य का परीक्षण यदि केवल लोकबुद्धि के आधार पर किया जाता है तो भ्रान्ति की और भी अधिक सभावना होती है। यद्यपि सभी विरोधी स्वर सार पूर्ण नहीं होते और अभिनव ने इस प्रकार की प्रसिद्धि-विरुद्ध योजनाओं को प्रतीति-व्याघातक-विघ्न स्वीकार किया है। (ना० शा० अभि० पृ० २८०) परन्तु कुशल काव्यकारों की रचनायें विरोधी स्वर से युक्त होते हुए भी भावप्रवण होती हैं इसमें कोई सदेह नहीं।

आनन्दवर्धन तथा वामन ने भी विभवादिकों के औचित्यानौचित्य-निर्धारण में लोक को प्रमाण माना है। परन्तु उनकी विवेचन प्रणाली से प्रतीत होता है कि उन्होंने लोक की अपेक्षा भरतादिकों के विभिन्न निर्देशों को इस कार्य के लिए अधिक उपयोगी माना है। विश्वनाथ ने तो लोक की चर्चा तक नहीं की है केवल भरतादिकों के उल्लेखों को ही विभावादिकों के औचित्य परीक्षण का आधार मान लिया है

तत्र विभावौचित्य तावत् प्रसिद्धम्। ध्व० पृ० २१६।

अनुभावौचित्य तु भरतादौ प्रसिद्धमेव। वही पृ० ३०८।

अनौचित्य हि शास्त्रलोकातिक्रमात प्रतिषिद्धविषयकत्वादिरूप सामाजिक-सवेद्यम्। का० प्र० बालबो पृ० १२१।

अनौचित्य चात्र रसाना भरतादिप्रणीतलक्षणाना सामग्रीरहितत्वे सत्येकदेशयोगित्वोपलक्षणपरम बोध्यम। सा० द० पृ० १२५।

भरत के विभिन्न उल्लेखों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने नाट्य-शास्त्र में लोकव्यवहार के प्रति सर्वत्र आदर प्रदर्शित किया है और नाट्य-शास्त्र की रचना करते हुए उसमें लोक सम्मत योजनायें ही की है

नानाशीला प्रकृतय शीले नाट्य प्रतिष्ठितम्।

तस्माल्लोक प्रमाण हि विज्ञेय नाट्ययोक्तृभि। ना० शा० २५-१२३।

लोकवृत्तानुकरणम् नाट्यमेतन्मया कृतम्। ना० शा० १-११२।

और परवर्ती काव्यशास्त्रकारों ने अधिकतर भरत का ही अनुगमन किया है। अत भरतादिकों के निर्देशों को आधार बनाकर किसी काव्य में निहित विभावादिकों का औचित्यानौचित्य परीक्षण सरलता तथा औचित्यपूर्ण रीति से किया जा सकता है। किसी आधुनिक काव्य में भरतादि के निर्देशों का भले ही पूर्णतया पालन न किया गया हो परन्तु प्राचीन काव्यकार भरतादि के निर्देशानुसार ही काव्यरचना किया करते थे। अत जिन काव्यों में जिन सिद्धान्तों को आधार बनाकर विभावादिकों की योजना की गई हो उन

काव्यों के विभावादिकों का औचित्य परीक्षण तो उन आधारभूत सिद्धान्तो के आधार पर ही समुचित रूप से किया जा सकता है। क्योंकि काव्यकारो का पथप्रशस्त करने वाले भरतादिको के उल्लेख लोक तथा शास्त्र दोनो के ही अनुरूप हैं। आधुनिक महाकाव्य भी अधिकाश रूप मे भरतादिको का ही अनुगमन किया करते हैं भले ही वे इसे प्रत्यक्ष रूप मे स्वीकार न करते हो। और यदि कहीं पर वे भरतादिको के निर्देशो के विरुद्ध योजनायें करते भी हैं तो वहा पर वे किसी न किसी प्रचलित परम्परा के नियमो के अनुरूप रचना किया करते हैं जो नियम भरत के द्वारा अनिर्दिष्ट होते हुए भी लोकवृद्धि के द्वारा स्वीकार कर लिए गये होते हैं अथवा युगीन परिस्थितिया जिन नियमो के लिए समाज मे अवकाश बना रही होती हैं। अत किसी भी काव्य मे समाहित विभावादिकों का औचित्यानौचित्य निर्धारण चाहे वह काव्य आधुनिक हो या प्राचीन उस काव्य की रचना मे आधार के रूप मे स्वीकार किये गये लोकदृष्टा काव्य ममज्ञो के विभिन्न निर्देशो के आधार पर करना ही समुचित होगा।

प्रकार

सामान्यतया सभी रस तथा भाव आभासता से युक्त हो सकते हैं। अत रसो तथा भावो के समान रसाभासो तथा भावाभासो के भी अनेक प्रकार हो सकते हैं। जिस प्रकार एक रस के अनेक भेदोपभेद होते हैं उसी प्रकार एक रसाभास के भी विभिन्न भेद हो सकते हैं। पडितराज ने शृगाराभास के सम्भोग तथा विप्रलम्भ नामक भेदो का उल्लेख भी किया है

तत्र शृगाररस इव शृगाररसाभासोऽपि द्विविध—सयोगविप्रलम्भभेदात्।
र० ग० पृ० ३४२।

परन्तु रसाभासो तथा भावाभासो के विभिन्न भेदोपभेदो का निर्देश करने मे समीक्षको ने विशेष रुचि नहीं प्रदर्शित की है। रसो को आभासता प्रदान कर देने वाले कारणो का निर्देश करते हुए विभिन्न रसाभासो का उल्लेख भर कर दिया है

उपनायकसस्थाया मुनिगुरुपत्नीगतया च।
बहुनायकविषयाया रतौ तथानुभयनिष्ठायाम्।
प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वदधमपात्रतिर्यगादिगते।
शृगारेऽनौचित्य रौद्रे गुर्वादिगतकोपे॥
शान्ते च हीननिष्ठे गुर्वाद्यालम्बने हास्ये।
ब्रह्मवधाद्युत्साहेऽधमपात्रगत तथा वीरे॥
उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेवमन्यत्र। सा० द० ३-२६३-२६६।
भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषये स्यात्॥ वही

पंडितराज ने उपर्युक्त कारिकाओं में से प्रथम कारिका में निर्दिष्ट शृंगाराभासों का ही उल्लेख किया है। द्वितीय कारिका में निहित शृंगाराभासों का न तो उन्होंने उल्लेख किया है और न खण्डन ही। इसी प्रकार उन्होंने उपर्युक्त कारिकाओं में निर्दिष्ट विभिन्न रसाभासों के अतिरिक्त आभासतायुक्त अन्य प्रकरणों की ओर भी संकेत किया है। शृंगाराभासता-सूचक उपर्युक्त कारिका को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं

एवं कलहशीलकुपुत्राद्यालम्बनतया वीतरागादिनिष्ठतया च वर्ण्यमानः शोक, ब्रह्मविद्यानधिकारिचाण्डालादिगतत्वेन च निर्वेद, कदर्यकातरादिगतत्वेन पित्राद्यालम्बनत्वेन वा क्रोधोत्साहौ, ऐन्द्रजालिकाद्यालम्बनत्वेन च विस्मय, गुर्वाद्यालम्बनतया च हास, महावीरगतत्वेन भयम् यज्ञीयपशुवसाद्यालम्बनतया वर्ण्यमाना जुगुप्सा रसाभासा। र० ग० पृ० ३४४।

विश्वनाथ तथा पंडितराज के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त स्थलों को भरतादि के विभिन्न उल्लेखों के आधार पर ही रसाभास स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि उपर्युक्त स्थलों में विभिन्न भावों की व्यंजना करने वाले जिन विभावादिकों का निर्देश किया गया है वे भरतादिकों के निर्देशों के विरुद्ध हैं। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि युगीन प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। और आभासता का निर्धारण करने में इन प्रवृत्तियों को भी आधार बनाया जाता है। अतः भरतादि के युग की प्रवृत्तियों से आंशिक रूप में भिन्न प्रवृत्तियों वाले इस युग में उपर्युक्त स्थलों में से अनेक स्थलों को रसाभासात्मक न स्वीकार कर रसात्मक ही स्वीकार किया जायेगा। प्राचीन पद्धति के काव्य ममज्ञ सुधासागरकार को ही उपर्युक्त रसाभासों में कुछ परिवर्तन तथा परिवर्धन की आवश्यकता प्रतीत होती है

सुधासागरे तु—तिर्यगादौ तु अनौचित्याभावाद्रस एव न तदाभास। अतएव वृत्तिकारो ग्रीवाभंगाभिरामम्० इत्यादौ तिर्यग्विषयतया भयानक मित्रे-क्वापिगते० इत्यादौ तिर्यग्विषयतया विप्रलम्भं चोदाजहार। अत एव अयत्रानेककामुकविषयकरतेराभासत्वेऽपि पाण्डवेषु द्रौपद्या न तथा। स्वकान्तायामपि शोकाद्यवस्थायां रतिवर्णनमाभासरूपमेव अनौचित्येन प्रवर्तितत्वादित्यवमेयम्—इत्येव व्याख्यातम्। का० प्र० वामनी पृ० १२१।

भावशान्त्यादि

किसी भाव की शान्ति तथा उदय को भवशान्ति तथा भावोदय नाम से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार विभिन्न भावों की सन्धि तथा मिश्रण को भावसन्धि तथा भावशबलता के नाम से अभिहित किया जाता है।

भावस्य शान्तावुदये सन्धिर्मिश्रितयो: क्रमात्।
भावस्य शान्तिरुदय: सन्धि: शबलता मता॥ सा० द० ३-२६७।

भावशान्त्यादि भी भावों के समान कभी-कभी अंगिता को प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु जिस प्रकार पर्यन्त में भावों का रस में पर्यवसान हो जाता है। उसी प्रकार भावशान्त्यादिकों का भी पर्यन्त में रस में पर्यवसान हो जाता है

मुख्ये रसेऽपि तेऽङ्गित्वं प्राप्नुवन्ति कदाचन। का० प्र० सू० ५१।
ते भावशान्त्यादय: । अङ्गित्व राजानुगतविवाहप्रवृत्तभृत्यवत्।(वही)
रससम्पर्केणोदभवस्य भावशान्त्यादेरापातन एव चमत्कारित्वम्। पर्यन्ते तु रस-स्यैवेति बोध्यम्। का० प्र० वामनी पृ० १२७।

यद्यपि भावशान्त्यादिकों में किसी न किसी भाव की ही प्राधान्येन प्रतीति होती है। परन्तु प्रतीत भाव चूंकि शान्त्यादिक अवस्थाओं से युक्त होता है तथा चमत्कार की प्रधानता भी शान्त्यादिक अवस्था से युक्त भाव में ही होती है, इसीलिए उन प्रतीत भावों का भावशान्त्यादि के नामों से अभिहित किया जाता है।

शान्ति तथा उदय किसी भाव का ही होता है। अतएव काव्यविवेचकों ने भावों की शान्त्यादिक विधाओं का ही उल्लेख किया है। पंडितराज के अनुसार तो रस की शान्त्यादिक अवस्थाएं हो ही नहीं सकतीं और यदि कहीं पर उनको उपस्थित करने का प्रयत्न भी किया जाये तो उनमें चमत्कार प्रतीति नहीं होगी

रसस्य तु स्थायिमूलकत्वात् प्रशमादेरसम्भव, सम्भवे वा न चमत्कार इति न स विचार्यते। र० गं० पृ० ३६०।

परन्तु अभिनव के अनुसार यदि रसों की प्रशमादिक अवस्थाओं की गवेषणा करनी ही हो तो वह भी की जा सकती है

एवम्मिन् शयने परांमुखतया—। इति अत्र तत् प्रशम इत्युक्त । अत्र चेर्ष्याविप्रलम्भस्य रसस्यापि प्रशम इति शक्य योजयितुम्। ध्व० लो० पृ०२७३।

अभिनव के उपर्युक्त कथन से केवल यही प्रतीत होता है कि रसों की प्रशमादिक अवस्थाओं का अन्वेषण यत्र-तत्र किया जा सकता है। परन्तु उनके कथन से यह नहीं प्रतीत होता कि वे रसों की प्रशमादिक अवस्थाओं की योजना को प्रोत्साहन दे रहे हैं। परवर्ती विवेचकों ने भी रसों की प्रशमादिक अव-स्थाओं का विवेचन करने में रुचि नहीं प्रदर्शित की है।

काव्य में रसादिकों की योजना से सम्बन्धित इस विवेचन के सन्दर्भ में अग्रिम अध्यायों में नैषधीयचरितगत रस योजना पर दृष्टिपात करने का विनम्र प्रयास किया जाएगा।

नैषधीयचरित-समीक्षा

द्वितीय अध्याय

शृंगार-योजना

नैषधीयचरित में रस-योजना

नैषधीयचरित एक महाकाव्य है। महाकाव्य में शृंगार, वीर तथा शान्त रसों में से एक रस की प्रधान रूप से तथा अन्य रसों की अंग रूप से योजना करना कवि के लिए आवश्यक होता है

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।

अंगानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धय ॥ सा० द० ६-३१७।

श्रीहर्ष की निम्नलिखित अभिव्यक्तियों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने नैषध में शृंगार रस को प्रधान रूप से तथा अन्य सभी रसों को अंग रूप से योजना करने का प्रयास किया है

तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृंगारभंग्या महा-

काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिगत ॥ नै० १-१४५।

शृंगारामृतशीतगावयमगादेकादशस्तन्महा-

काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल ॥ नै० ११ १३०।

स्वादूत्पादभृति त्रयोदशतयादेश्यस्तदीये महा-

काव्येऽत्र व्यरमन्नलस्य चरिते सर्गो रसाम्भोनिधि ॥ नै० १३-५६।

यात पञ्चदश कृतररसस्वादादविहाय महा-

काव्ये तस्य कृतौ नलीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल ॥ नै० १५-९३।

अन्याक्षुण्णरसप्रमेयभणितौ विंशस्तदीये महा-

काव्येऽत्र व्यगलन्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल ॥ नै० २०-१६२।

नैषधगत रस योजना पर प्रकाश डालते हुए अग्रिम अध्यायों में श्रीहर्ष की उपर्युक्त अभिव्यक्तियों की अन्वयता अथवा अतात्त्विकता की समीक्षा करने का विनम्र प्रयास किया जाएगा।

शृंगार-योजना

श्रीहर्ष की उपर्युक्त अभिव्यक्तियों के अनुसार नैषध शृंगार प्रधान महाकाव्य है। अतः यहाँ पर सर्वप्रथम नैषधगत अंगी शृंगार रस योजना पर विचार किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने नैषध के पूर्वभाग में विप्रलम्भ तथा उत्तर भाग में सम्भोग शृंगार की प्रधान रूप से योजना की है। फिर भी उसके पूर्वभाग में सम्भोग तथा उत्तर भाग में विप्रलम्भ भेदों की यत्र-तत्र मनोरम झलक मिल जाती है। रस परिपोष की दृष्टि से उनके द्वारा की गई इस सकरता को नैषधगत शृंगार-योजना में वैचित्र्य तथा प्रभविष्णुता का आधायक कहा जाएगा।

तेन विरहेण वृत्त सुष्ठुतमा प्रो (पाँ) पित इति दर्शयन् मुनिरनेन विना शृंगारो न प्रयोगे न काव्ये हृद्यतामवलम्बत इति दर्शयति।

तथा हि—सभोगेऽप्यक्षघनसकरास्वादस्थानीयतार्पिहाराय वैदग्ध्य गोत्रस्खलितस्पर्धामिन्यद्वा क्वचिद्विप्रलम्भहेतुभूत कवयो निबध्नन्ति। वामो हि काम — (का० सू० २-१) इति वात्स्यायनादिभिरभिहितम्। मुनिनापि वक्ष्यते यद्वामाभिनिवेशित्वम् इति। ना० शा० अभि० पृ० ३०८।

न विना विप्रलम्भेन सभोग पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान्रागो विवर्धते॥ सा० द० पृ० ११४।

विप्रलम्भ शृंगार

शृंगार रस का प्रथम भेद सभोग होता है। परन्तु श्रीहर्ष ने नैषध का प्रारम्भ विप्रलम्भ योजना से किया है। और नैषध के पूर्वभाग में बाहुल्य भी उसका ही है। अतः नैषधगत सभोग योजना के पूर्व विप्रलम्भ योजना पर पहले दृष्टिपात किया जाएगा।

पूर्वराग

शृंगार रस के भेदापभेदों का निर्देश करते हुए पूर्वराग को शृंगार रस के विप्रलम्भ भेद का सर्वप्रथम उपभेद स्वीकार किया गया है। परस्पर गुण-श्रवणादि से अनुराग-युक्त होते हुए भी परतन्त्रता आदि के कारण इष्ट का समागम न प्राप्त कर पाने वाले नायक-नायिकाओं की समागम-पूर्वकालीन कामदशाओं के समाहार को पूर्वराग नाम से अभिहित किया गया है। गुण श्रवणादि से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओं में सर्वप्रथम अभिलाष अवस्था की उत्पत्ति होती है। यह अवस्था इष्ट का समागम न प्राप्त कर पाने से

उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है। इस अभिलाष दशा के उत्तरोत्तर विकास के साथ साथ नायक-नायिकाओं के शारीरिक तथा मानसिक व्यापारों में भी परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों को ही आधार बनाकर नायक-नायिकाओं की कामावस्था को अभिलाष आदि दश भेदों में विभक्त किया गया है।

अभिलाष अवस्था

काम्य व्यक्ति के गुणश्रवणादि से उत्पन्न स्पृहा का अभिलाष नाम से अभिहित किया गया है

अभिलाष स्पृहा तत्र कान्ते सर्वांगसुन्दरे।
दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसा ।। द० रू० ४-५३१।

यद्यपि गुणश्रवणादि से काम्य व्यक्ति के ज्ञान के अनन्तर ही आश्रय की चित्तवृत्ति में उसका समागम प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। परन्तु उसका सम्यक् उद्रेक तब होता है जब कि आश्रय काम्य व्यक्ति के समागम को प्राप्त करने की इच्छा से युक्त हो जाने के साथ-साथ उसको प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प हो जाता है। अभिलाष अवस्था के उत्पन्न हो जाने पर आश्रय इष्ट व्यक्ति का समागम प्राप्त कराने वाले उपायों का भी चिन्तन करने लगता है

व्यवसायात्समारब्धः संकल्पेच्छासमुद्भवः।
समागमोपायकृतः सोऽभिलाषः प्रकीर्तितः ।। ना० शा० २२-१७३।

व्यवसायादिति काम्यजनज्ञानं तत्संकल्पपूर्वकेच्छा तद् उद्भव उद्रिक्तत्वमस्येति समागमोपायस्य तद्विषयस्य चिन्ता विषयस्य द्वितीयावस्थात्मनः कृत करण यतो अस्यति हि केनोपायेन सम्प्राप्यत इति चिन्तनीयाद्यवस्थासहचरित कार्यम्। वही अभि० पृ० २००।

भरत ने अभिलाष अवस्था-सूचक व्यापारों का भी निर्देश किया है

निर्याति विशति च मुहुः करोति चाकारमेव मदनस्य।
तिष्ठति च दर्शनपथे प्रथमस्थाने स्थिता कामे।। ना० शा० २२-१७४।

परन्तु भरत के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त व्यापारों की उत्पत्ति उन आश्रयों में ही हो सकती है जिनका काम्य साक्षात् उपस्थित हो। यदि काम्य व्यक्ति भिन्न देश में स्थित हो तो जिस स्थान पर काम्यजन-विषयक चर्चा हो रही हो उस स्थान पर आश्रय के पुनः-पुनः उपस्थित होने आदि को भी अभिलाष अवस्था का द्योतक कहा जाएगा।

श्रीहर्ष ने उपर्युक्त स्वरूप अभिलाष अवस्था का प्रदर्शन नल-दमयन्ती दोनों

मे किया है। उन्होंने नैषध मे सर्वप्रथम नल-गुण-श्रवण-जन्य दमयन्तीगत अभिलाष अवस्था की योजना की है। नै० १-३३-३६।

विश्वनाथ के अनुसार श्रीहर्ष ने इस प्राथमिकता द्वारा अर्थात् नलगत दमयन्ती-विषयक अभिलाष अवस्था की योजना करने से पहले दमयन्तीगत अभिलाष अवस्था की योजना कर उसे हृदयावर्जक बनाने का प्रशस्य प्रयास किया है

आदौ वाच्य स्त्रिया राग पुंस पश्चात्तदिंगितैः। सा० द० ३-१९५।

आदौ पुरुषानुरागे सभवत्यप्येवमधिक हृदयगम भवति। वही पृ० १०९।
दमयन्तीगत अभिलाष अवस्था की उत्पत्ति नलगुणश्रवण से होती है। जब वह नल के गुणों का बार-बार सुनकर नल को अपने योग्य जान लेती है तो उसके मन में नल की अभिलाषा उत्पन्न होती है। और अभिलाषोत्पत्ति के साथ ही वह उसका चिन्तन करने लगती है

नृपेऽनुरूपे निजरूपसपदा दिदेश तस्मिन् बहुश श्रुति गते।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशवद मन ॥ नै० १-३३।

दमयन्ती नल के जिन अलोक-सामान्य गुणो को सुन कर उसमें अनुरक्त हो गई थी श्रीहर्ष ने उनका वर्णन नैषध में पहले ही कर दिया है। नै० १-१-३०। एक बार नल मे अनुरक्त हो जाने के उपरान्त वह नल की चर्चा सुनने के लिए उत्सुक रहने लगती है। पिता की सेवा मे वह अवश्य पहले से जाती होगी। परन्तु अब वह पिता की सेवा मे ऐसे अवसर पर जाने लगती है जब उसे नल गुण वर्णन सुनने को वहा मिलता है।

उपासनामेत्य पितु स्म रज्यते दिने दिने सावसरेषु वन्दिनाम्।
पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनल विनिद्ररोमाजनि शृण्वती नलम् ॥ नै० १-३४।

इसी प्रकार सखियों के मुख से यदि वह किसी प्रसग मे नल का नाम सुन लेती है तो चौंक-सी पड़ती है तथा अन्य कार्यों को छोड़कर सखियो की बात सुनने के लिए तत्पर हो जाती है

कथाप्रसगेषु मिथ सखीमुखात् तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते।
द्रुत विधूयान्यदभूयतानया मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया ॥ नै० १-३५।

यहा तक कि चाहे जो प्रसग हो वह घुमा-फिरा कर वन्दियो से नल की चर्चा कराने लगती है

स्मरात् परासोरनिमेषलोचनाद्बिभेमि तद्भिन्नमुदाहरेति सा।
जनेन यून स्तुवता तदास्पदे निदर्शन नैषधमभ्यषेचयत् ॥ नै० १-३६।

दमयन्ती के उपर्युक्त सभी व्यापार तद्गत अभिलाष अवस्था के सूचक हैं। प्रस्तुत प्रसग में अनेकश श्रुत नल आलम्बन विभाव है। वन्दियो तथा चारणो के द्वारा किया गया नल के अलोक-सामान्य गुणो का वर्णन तथा दमयन्ती का अपना

सौंदर्य उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती का नलचिन्तन करना, वन्दियों के समय मे पिता की सेवा मे जाना, नल गुण वर्णन सुनकर रोमांचित हो जाना, सखियों के मुख से नल का नाम सुनकर अन्य कार्यों का परित्याग कर देना तथा सखियों का वार्तालाप सुनने के लिए तत्पर हो जाना एवं बन्दियों को नल की चर्चा करने के लिए विवश बना देना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, औत्सुक्य, हर्ष, आवेग तथा वितर्क आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। दमयन्तीगत यह रति स्थायी भाव चूकि नल की समागम प्राप्ति से पूर्ववर्ती एवं वियोग-कालिक है तथा रति-स्थायी-भावाभिव्यजक दमयन्ती के उपर्युक्त व्यापार जैसे नल के गुणों को सुनकर उसका चिन्तन करने लगना बन्दियों के अवसर पर पिता की सेवा मे जाना तथा नल की चर्चा सुनने के लिए सर्वदा उत्सुक रहना आदि तद्गत अभिलाष कामदशा के सूचक है। अतः दमयन्तीगत रतिस्थायी भाव का अभिलाषात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत अनुराग का अकन करने के अव्यवहित अनन्तर म ही नलगत दमयन्ती समागमाभिलाषा की योजना की है। नै० १-४२-४८।

यदि श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत अनुराग की व्यजना करने के अव्यवहित अनन्तर मे ही नलगत अनुराग की व्यजना न कर दी होती तो अभिनव के अनुसार दमयन्तीगत अनुराग को शृगाराभास कहा जा सकता था

पश्चादुभयनिष्ठत्वेऽपि प्रथममेकनिष्ठत्वे रतेराभासत्वम् इति श्रीमल्लोचनकारा। सा० द० पृ० १२६।

नलगत अभिलाष अवस्था भी दमयन्ती की भांति गुण-श्रवण से उत्पन्न होती है। दमयन्ती-गुण-श्रवण करते ही काम नल के धीर मन को अपने वश मे करने का प्रयत्न करने लगता है और अन्त में वह अपने इस प्रयत्न मे सफल भी हो जाता है

स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रज श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।
कदाचिदस्या युवधैर्यलोपिन नलोऽपि लोकादशृणोद् गुणोत्करम्॥
तमेव लब्ध्वावसर तत स्मर शरीरशोभाजयजातमत्सर।
अमोघशक्त्या निजयेव मूर्तया तया विनिर्जेतुमियेष नैषधम्॥
अनेन भैमी घटयिष्यतस्तया विधेरवन्ध्येच्छतया व्यलासि तत्।
अभेदि तत्तादृगनगमार्गणैर्यदस्य पौष्पैरपि धैर्यकचुकम्॥ नै० १-४२-४६।

भला पितामह तक जिस काम की आज्ञा का उल्लघन न कर सके थे नल उसकी अवहेलना कब तक कर सकता था। शनै-शनै दमयन्ती के समागम का प्राप्त करने की अभिलाषा उसके अन्तस्तल मे अपना स्थान बना लेती है। और अब लज्जा भी उसकी अभिलाषा को रोक रखने में असमर्थ हो जाती है

विस्मयदद्यापि यदस्त्रतापित पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो।
स्मर तनुच्छायतया तमात्मन शशाक शके स न लघितु नल ॥
उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भित नवोपहारेण वयस्कृतेन किम्।
त्रपासरिद्दुर्गमपि प्रतीय सा नलस्य तन्वी हृदय विवेश तत् ॥

नै० १-४७-४८।

यहाँ पर श्रुत दमयन्ती आलम्बन विभाव है। युवकों के धैर्य को लुप्त कर देने वाले उसके गुण उद्दीपन विभाव हैं। नलगत अधैर्य तथा दमयन्ती चिन्तनादि अनुभाव है। चपलता, औत्सुक्य तथा चिन्तादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। नलगत इस रति स्थायी भाव को अभिलाषात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ के नाम से अभिहित किया जाएगा। क्योंकि नल ने अभी तक दमयन्ती के गुणों को ही सुना था। चाहते हुए भी अभी दमयन्ती का समागम उसे नहीं प्राप्त हो सका था। इसके साथ-साथ वह समागमपूर्वकालीन अभिलाष दशा के सूचक अधैर्य तथा दमयन्ती-चिन्तनादि व्यापारों से भी युक्त था जो कि तद्गत रति स्थायी भाव के प्रधान व्यजक हैं।

चिन्ता अवस्था

काम्य व्यक्ति का समागम किस प्रकार प्राप्त हो अथवा वह मेरा किस प्रकार बने इस प्रकार के दूती निवेदित या स्वसकल्पित मनोरथ चिन्तावस्था के सूचक होते हैं

केनापायेन सप्राप्ति कथ वास्यो भवेन्मम।
दूतीनिवदितैर्भावैरिति चिन्ता निदर्शयेत् ॥ ना० शा० २२-१७५।
दूतीनिवेदितैर्भावै मनोरथैरित्युपलक्षणम् स्वकल्पितैरपीत्यर्थ ।

वही० अभि० पृ० २००।

भरत ने चिन्तावस्था सूचक निम्नलिखित व्यापारों का निर्देश किया है

आकेकरार्धविप्रेक्षितानि वलयरशनापरामश ।
नीवीनाभ्यो सस्पर्शन च कार्य द्वितीये तु ॥ ना० शा० २२-१७६।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत चिन्तावस्था की योजना अभिलाष अवस्था के साथ में ही की है। हम देख चुके हैं कि अभिनव ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट अभिलाप लक्षण की व्याख्या करते हुए अभिलाप अवस्था के साथ चिन्ता अवस्था की योजना करने का समर्थन भी किया है।

दमयन्ती किसी न किसी व्याज से निषध देश से आए हुए दूतादिकों के द्वारा नल-गुण-वर्णन कराया करती थी। परन्तु उसे सुनकर वह विमनस्क हो जाती थी तथा चिरकाल तक एक स्थान पर बैठी रहती थी

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान् मिषेण दूतद्विजवन्दिचारणा ।
निपीय तत्कीर्तिकथामथानया चिराय तस्थे विमनायमानया ।। नै० १-३७ ।
इसी प्रकार भित्तिचित्रो का निर्माण कराकर वह अपनी तथा नल की सरूपता का अवलोकन किया करती थी

प्रिय प्रिया च त्रिजगज्जयिश्रियौ लिखाधिलीलागृहभित्ति कावपि ।
इति स्म सा कारवरेण लेखित नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ।।
नै० १-३८ ।

यहाँ पर भी श्रुत नल आलम्बन विभाव है। दूतादिकों के द्वारा किया गया नल-गुण-वर्णन तथा भित्तिचित्र आदि उद्दीपन विभाव है । दमयन्ती की विमनस्कता, उसका चिरकाल तक एक स्थान पर बैठे रहना तथा भित्तिचित्रो मे अपनी तथा नल की समानता देखना आदि अनुभाव है। औत्सुक्य, चिन्ता तथा जडता आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट रति स्थायी भाव व्यग्य है। व्यक्त रति स्थायी भाव की आश्रय दमयन्ती को अभी तक नल का समागम नहीं प्राप्त हो सका था तथा वह चिन्ता नामक कामदशा के सूचक नलसमागम-प्राप्त्युपाय-चिन्तनजन्य विमनस्कता तथा भित्तिचित्रो मे अपने तथा नल के रूपसाम्यावलोकनादिक व्यापारो से भी युक्त थी जोकि तद्गतरति भाव के प्रधान व्यजक हैं। अत उपर्युक्त प्रकरणगत व्यक्त रति स्थायी भाव को चिता-वस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने नलगत चिन्तावस्था की योजना भी अभिलाष अवस्था के अव्यवहित अनन्तर मे की है। दमयन्ती समागम की अभिलाषा जाग्रत् हो जाने के उपरान्त नल अहर्निश दमयन्ती चिन्तन मे लीन रहने लगता है। फलत उसका धैर्य नष्ट हो जाता है और वह रात्रि मे सो पाने तक मे असमर्थ हो जाता है

अमुष्य धीरस्य जयाय साहसी तदा खलु ज्यां विशिखै सनाथयन् ।
अबोधि तज्जागरदु खसाक्षिणी निशा च शय्या च शशाङ्ककोमला ।।
नै० १-४६ ।

यद्यपि नल को दमयन्ती के समागम का प्राप्त करने की अभिलाषा अत्यधिक सतप्त किया करती थी तथा वह उसको प्राप्त करने के लिए किसी न किसी उपाय की तलाश मे भी रहा करता था। परन्तु स्वाभिमानवश वह भीम से उसकी याचना नहीं कर पाता

स्मरोपतप्तोऽपि भृश न स प्रभुर्विदर्भराज तनयामयाचत ।
त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वर त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ।।
नै० १-५० ।

इस प्रकरण मे भी श्रुत दमयन्ती आलम्बन विभाव है। उसके गुण उद्दीपन विभाव है। नलगत अधैर्य, निशाजागरण, सताप तथा दमयन्ती को प्राप्त कराने

वाले उपायों का चिन्तनादि अनुभाव है। औत्सुक्य, चिन्ता तथा गर्व आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव व्यग्य है। नलगत यह रति स्थायी भाव समागम पूर्ववर्ती एवं वियोग कालीन है तथा रति व्यंजक नल के अधैर्य, निशाजागरण तथा दमयन्ती को प्राप्त करने के उपायों का चिन्तन आदि व्यापार तद्गत चिन्ता कामदशा के सूचक हैं। अत व्यक्त रति स्थायी भाव को चिन्तावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

स्मृति अवस्था

स्मृति अवस्था युक्त व्यक्ति बार-बार उच्छ्वासें लेता है, अपने मनोरथों का चिन्तन करता है, अन्य कार्यों से द्वेष करने लगता है, बैठने तथा शयन करने आदि में उसे शान्ति नहीं मिलती तथा वह स्वकार्य सपादन में असमर्थ हो जाता है

मुहुर्मुहुनि श्वसितैर्मनोरथविचिन्तनै ।
प्रद्वेषाच्चान्यकार्याणामनुस्मृतिरुदाहृता ॥
नैशमने न शयने धृतिमुपलभते स्वकर्मणि विहस्ता ।
तच्चिन्तापगतत्वात् तृतीयमेव प्रयुञ्जीत ॥ ना० शा० २२-१७७-१७८ ।
विहस्तेति अशक्ता। वही अभि० पृ० २०१।

भरत की उपर्युक्त अन्तिम पंक्ति के अनुसार स्मृति अवस्था में चिन्तावस्था का भी सम्मिश्रण बना रहता है। हम देख चुके हैं कि अभिनव ने अभिलाष अवस्था को चिन्तनीयादि अवस्था के साथ योजना करने का निर्देश दिया है। अत यह स्पष्ट हो जाता है कि स्मृति अवस्था की योजना भी अभिलाष अवस्था के साथ की जा सकती है।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत अभिलाष तथा चिन्तावस्था का प्रवन करने के साथ-साथ ही तद्गत स्मृति अवस्था की भी योजना की है। नल का प्राप्त करने का सकल्प कर लेने के उपरान्त उसका अनवरत चिन्तन करते रहने से दमयन्ती को स्वप्न में भी उसके दर्शन होने लगते हैं

मनोरथेन स्वपतीकृत नल निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति ।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम् ॥ नै० १-३९ ।

अहर्निश नल की स्मृति में लीन रहने से उसकी इन्द्रियाँ अपने व्यापारों से विरत हो जाती हैं तथा वह इतना अधिक अशान्त रहने लगती है कि शीतकालीन रात्रियों तथा ग्रीष्मकालीन दिनों तक को व्यतीत कर पाना उसे दूभर हो जाता है

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् ।
अदर्शि सगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्या स महन्महीपति ॥

अहो अहोभिमहिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति ता स्मरादिताम्।
तपर्तुपूर्तावपि भेदमा भरा विभावरीभिर्विभराबभूविरे ॥ नै० १-४०-४१।

इस प्रकरण में भी नल आलम्बन विभाव है। उसके श्रुत गुण उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती का नल को अपना पति बनाने का सकल्प कर लेना, स्वप्न मे नल दर्शन करना, उसकी इन्द्रियों का विरत व्यापार हो जाना, नल चिन्तन तथा निशा-जागरणादि अनुभाव है। औत्सुक्य, चिन्ता, सुप्त जड़ता तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव व्यग्य है। व्यग्य रति स्थायी भाव के समागम पूर्ववर्ती एव वियोगकालीन होने के कारण तथा उसके आश्रय नल में रति-स्थायी-भावाभिव्यजक स्वप्न, इन्द्रियो की विरतव्यापारता, अधृति तथा निशाज-गरणादिक स्मृति कामदशा सूचक लक्षणों से युक्त होने के कारण उसे स्मृत्यवस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने नल-गत स्मृति अवस्था की योजना भी तद्गत अभिलाष तथा चिन्ता अवस्था का अकन करने के अव्यवहित अनन्तर मे ही की है। दमयन्ती वियोग से अत्यधिक सतप्त रहने के कारण नल की श्वास गति तीव्र हो जाती है तथा उसकी आकृति पीत-वर्ण की हो जाती है। वह समाज मे ही अलीक दमयन्ती से बातें करने लगता है तथा वीणा को सुनकर तो वह मूर्छित ही हो जाता है

मृषाविषादाभिनयादयं क्वचिज्जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम्।
विलेपनस्याधिकचन्द्रभागताविभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ॥
शशाक निह्नोतुमनेन तत्प्रियामयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम्।
समाजं एवालपितासु वैणिकैर्मुमूर्छ यत्पचममूर्च्छनासु च ॥
नै० १-५१-५२।

यद्यपि नल ने अपने उपर्युक्त विकारों को किसी न किसी प्रकार छिपा लिया था। परन्तु जब उसका कामविकार सभा में ही प्रकट हो जाता है तो वह अत्यधिक लज्जित होता है। और जब वह देखता है कि उसका विवेक उसकी चपलता पर नियन्त्रण रखने मे असमर्थ हो गया है तो वह उपवन सेवन के व्याज से निर्जन सेवन करने का निश्चय कर लेता है

अवाप सापत्रपतां स भूपतिर्जितेन्द्रियाणां धुरि कीर्तितस्थितिः।
असमवरे शवरवैरिविक्रमे क्रमेण तत्र स्फुटतामुपेयुषि ॥
अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन्गुणा विवेकप्रमुखा न चापलम्।
स्मर स रत्यामनिरुद्धमेव यत्सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ॥
अनगचिह्न स विना शशाक नो यदासितुं ससदि यत्नवानपि।
क्षणं तदारामविहारकैतवान्निषेवितुं देशमियेष निर्जनम् ॥
नै० १-५३-५५।

इस समस्त प्रकरण में दमयन्ती आलम्बन है। उपवनगत वृक्ष, लताएँ, फल, पुष्प, भ्रमरगुंजार, कोकिल कूजन आदि उद्दीपन विभाव हैं। नल के द्वारा कल्पित लतापुष्पादिकों के कार्य तथा उन कार्यों के लिए नल के द्वारा की गई उनकी निन्दा, तद्गत सन्ताप, अधृति, कम्प, नेत्र निमीलन, तथा इतस्ततः भ्रमणादि अनुभाव हैं। भय, जुगुप्सा, स्मृति, औत्सुक्य, विषाद तथा उन्मादादि भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव व्यंग्य है। व्यक्त रति स्थायी भाव चूँकि समागम पूर्ववर्ती एवं वियोगकालीन है तथा रति स्थायी भावाभिव्यंजक नलगत अधृति, सन्ताप तथा उसके राजकार्य-परित्याग आदि व्यापार तद्गत स्मृति कामदशा के सूचक हैं। अतः उपर्युक्त रति स्थायी भाव का स्मृत्यवस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

गुणकीर्तन अवस्था

'अमरादिकों से उसकी समानता कोई नहीं कर सकता' इस प्रकार के वाक्यों से अपने इष्ट का गुणानुवाद करना, दूती आदि के सामने इष्ट के गुणों का वर्णन करते हुए शरीर का कम्पित करना, तथा स्वेदादि का अपमार्जन आदि लक्षण गुणकीर्तन अवस्था के द्योतक होते हैं

अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टाहसितेक्षितैः ।
नास्त्यन्यः सदृशस्तेनेत्येतत् स्याद्गुणकीर्तनम् ॥
गुणकीर्तनानुकथनैरश्रुस्वेदापमार्जनैश्चापि ।
दूतीविस्रम्भकथनैरभिनययोगश्चतुर्थे तु ॥ ना० शा० २२-१७६-१८८ ।

नाट्यशास्त्र में 'अनुकथनैः' के स्थान पर 'उत्कथनैः' इस पाठभेद को भी उद्धृत किया गया है। इस पाठ भेद के अनुसार प्रार्थनागत उत्कण्ठापरक उसके वाक्यों को भी गुणकथनावस्था का द्योतक कहा जाएगा।

श्रीहर्ष ने क्रम-प्राप्त दमयन्तीगत गुणकथनावस्था की संक्षेप में ही योजना की है। दमयन्ती हंस के बार-बार आग्रह करने पर भी लज्जा का परित्याग कर अपने अभीष्ट को स्पष्ट शब्दों में नहीं कहती। परन्तु हंस के द्वारा आशंकित किसी अन्य व्यक्ति के साथ उसके पाणिग्रहण की सम्भावना उसे लज्जा का परित्याग करने के लिए विवश कर देती है। वह पहले तो हंस के द्वारा आशंकित नल-भिन्न व्यक्ति के साथ अपने परिणय की सम्भावना का निरास करती है। तदनन्तर अपने काम्य नल के अनुपम गुणों की ओर संकेत करते हुए उसके प्रति अपने सबन्ध को प्रकट कर देती है

तदेकलुब्धे हृदि मेऽस्ति लब्धुं चिन्ता न चिन्तामणिमप्यनर्घम् ।
चित्ते ममैकः सकलत्रिलोकीसारो निधिः पद्ममुखः स एव ॥
नै० ३-८१ ।

नल के अप्रतिम सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए दमयन्ती के द्वारा हंस के सम्मुख किया गया अपनी उत्कण्ठा का निवेदन तद्गत गुणकथनावस्था का द्योतक है। यहाँ पर नल आलम्बन विभाव है। हंस के द्वारा कीर्तित नल के गुण तथा हंस की आशंका उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती के द्वारा किया गया अपनी अभिलाषा का निवेदन तथा नलगुण-संकीर्तन आदि अनुभाव है। औत्सुक्य, धृति तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। जिसे दमयन्ती के गुणकथनावस्था से युक्त होने के कारण गुणकथनावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने नलगत गुणकीर्तनावस्था की भी संक्षेप में ही योजना की है। हंस के मुख से दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन सुनने के अनन्तर जब नल देखता है कि हंस दमयन्ती की प्राप्ति में सहायता करने के लिए भी सन्नद्ध है तो वह दमयन्ती के अलौकिक सौंदर्य के बारे में अपनी अभिज्ञता का निवेदन करते हुए उसके सामने अपनी वियोग व्यथा को प्रकट करने लगता है

शतशः श्रुतिमागतैव सा त्रिजगन्मोहमहौषधिर्मम।
अमुना तव शंसितेन तु स्वदृशैवाधिगतामवैमि ताम्॥
अमितं मधु तत्कथा मम श्रवणप्राघुणकीकृता जनैः।
मदनानलबोधने भवत् खग धाय्या धिगधैर्यधारिणः॥ नै० २-५४, ५६।

यहाँ पर दमयन्ती आलम्बन विभाव है। हंस के द्वारा कीर्तित दमयन्ती गुण तथा नल से दमयन्ती की प्राप्ति कराने के लिए कहे गए उसके पूर्ववर्ती वचन उद्दीपन विभाव हैं। नल का दमयन्ती के गुणों की ओर संकेत करना तथा अपनी वियोग व्यथा का निवेदन करने लगना अनुभाव हैं। औत्सुक्य तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव व्यंग्य है। रति स्थायी भाव का आश्रय नल रतिभाव के प्राधान्य व्यंजक तथा कामदशा सूचक दमयन्ती-गुण-वर्णन तथा वियोग-व्यथा-निवेदनादि से युक्त है। अतः दमयन्ती वियोग कालीन तद्गत रति स्थायी भाव का गुणकथनावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

उद्वेग अवस्था

उद्वेगावस्था युक्त व्यक्ति अशान्त रहने के कारण बैठने तथा सोने में भी सन्तोष नहीं अनुभव करता। वह सर्वदा अभिलषित व्यक्ति का समागम प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है तथा सर्वदा चिंता, निःश्वास, खिन्नता, सन्ताप एवं रुदनादि से ग्रस्त रहता है

आसने शयने चापि न तुष्यति न तिष्ठति।
नित्यमेवोन्मुका च स्यादुद्वेगस्थानमाश्रिता॥

चिन्तानि श्वासखेदेन हृद्‌दाहाभिनयेन च ।
कुर्यात्तदेवमत्यन्तमुद्वेगाभिनयेन च ॥ ना० शा० २२-१८१-१८२ ।

श्रीहर्ष ने क्रम प्राप्त उद्वेगावस्था की ओर भी केवल सकेत मात्र कर दिया है। हस को अपनी वियोग व्यथा से परिचित कराने के लिए दमयन्ती के द्वारा ही उन्होंने तद्‌गत उद्वेगावस्था की ओर सकेत करा दिया है

श्रुतश्च दृष्टश्च हरित्सु मोहाद्ध्यातश्च नीरन्ध्रितबुद्धिधारम्।
ममाद्य तत्प्राप्तिरसुव्ययो वा हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेष ॥ नै० ३-८२ ।

दमयन्ती के द्वारा निवेदित तद्‌गत मोह एव चिन्तनादि उद्वेगावस्था के द्योतक हैं। यहाँ पर नल विभाव है। दमयन्ती का निवेदन अनुभाव है। औत्सुक्य, चिन्ता तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट दमयन्ती-गत वियोग-कालीन रतिस्थायी भाव व्यग्य है। दमयन्ती के उद्वेगावस्था से युक्त होने के कारण तद्‌गत रति स्थायी भाव को उद्वेगावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

नलगत उद्वेगवस्था का भी श्रीहर्ष ने नल के द्वारा सक्षेप में निवेदन करा दिया है। हस के सम्मुख अपनी वियोग व्यथा का निवेदन करते हुए वह स्वगत उद्वेगावस्था को प्रकट कर देता है

विषमो मलयाहिमण्डलीविषफूत्कारमयो मयोहित ।
खग ! कालवलत्रदिग्भव पवनस्तद्विरहानलैधसा ॥
प्रतिमासमसौ निशापति खग ! सगच्छति यद्दिनाधिपम ।
किमुतीव्रतरैस्तत करैमम दाहाय स धैर्यतस्करै ॥ नै० २-५७-५८ ।

यहाँ पर नल के द्वारा निवेदित तद्‌गत सतप्तता, अधैर्य तथा औत्सुक्य आदि उद्वेगावस्था के सूचक है और वे ही नलगत रति स्थायी भाव के प्रधान व्यजक हैं। अत दमयन्ती वियोगकालीन उपर्युक्त प्रकरणगत रति स्थायी भाव को उद्वेगावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

प्रलाप अवस्था

प्रलापावस्था युक्त व्यक्ति अपने इष्ट से सम्बन्धित बाते करता है। औत्सुक्य-वश अत्यधिक उद्विग्न होकर अधैर्य से विलाप करने लगता है तथा इधर-उधर भ्रमण करने लगता है

इह स्थित इहासीन इह चोपगतो मया।
इति तैस्तैर्विलपितैर्विलाप सप्रयोजयेत् ।
उद्विग्नात्यर्थमौत्सुक्यादधृतया च विलापिनी ।
ततस्ततश्च भ्रमति विलापस्थानमाश्रिता ॥ ना० शा० २२-१८३-१८४ ॥

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत प्रलापावस्था की विशद योजना की है। दमयन्ती हस के

सम्मुख अपने अनुराग तथा स्वगत वियोग व्यथा का निवेदन कर देने के उपरान्त हंस से प्रार्थना करने लगती कि वह नल की प्राप्ति में उसका सहायक बन जाए। दमयन्ती की यह प्रार्थना, उसकी दीनता, उद्विग्नता, उत्कण्ठा, अधृति तथा नल-विषयक चर्चा आदि सभी प्रलापावस्था सूचक लक्षणों से युक्त है। हंस को मौन देखकर वह व्याकुल भी हो जाती है और हंस को येन-केन प्रकारेण नल के पास सन्देश ले जाने के लिए तैयार कर लेना चाहती है। नै० ३-८२-६१। अन्त में वह हंस को उस अवसर का ज्ञान कराना भी नहीं भूलती जब वह नल के सम्मुख उसकी चर्चा चलाकर नल को उसकी ओर आकृष्ट कर सकता था।
नै० ३-६२-६६।

उपर्युक्त प्रकरण में नल आलम्बन विभाव है। हंस के द्वारा किया गया नल-गुण-श्रवणादि उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती का प्रलाप अनुभाव है। औत्सुक्य, स्मृति तथा उन्मादादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट वियोगकालीन दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। इस रति स्थायी भाव का प्रधान व्यंजक दमयन्ती का प्रलाप है। अतः तद्गत रति स्थायी भाव को प्रलापावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

श्रीहर्ष ने नलगत प्रलापावस्था की योजना भी की है। नल हंस के सम्मुख दमयन्ती-वियोगजन्य दुर्दशा का निवेदन करते हुए हंस से प्रार्थना करने लगता है कि वह उसे उस व्यथा से मुक्तकर अनुगृहीत करे

कुसुमानि यदि स्मरेषवो न तु वज्रं विषवल्लिजानि तत्।
हृदयं यदमूमुहन्नमूमम यच्चातितरामतीतपन्॥
तदिहानवधौ निमज्जतो मम कन्दर्पशराधिनीरधौ।
भव पोत इवावलम्बनं विधिनाकस्मिकसृष्टसंनिधि॥ नै० २-५१-६०।

नल का उपर्युक्त रीति से अपनी वियोग व्यथा का निवेदन करना तथा हंस की प्रार्थना करने लगना तद्गत प्रलापावस्था का द्योतक है। नलगत यह प्रलाप काम-दशा ही उपर्युक्त प्रकरण गत रति स्थायी भाव की प्रधान व्यंजक है। अतः उसे प्रलापावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा। यहां पर दमयन्ती आलम्बन विभाव है। हंस के द्वारा किया गया उसका गुण-वर्णनादि उद्दीपन विभाव है। नल का वियोग-व्यथा-निवेदन तथा हंस की प्रार्थना करना अनुभाव है। औत्सुक्य, स्मृति तथा दैन्य आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट वियोग-कालीन नलगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है।

उन्माद अवस्था

उन्माद अवस्था-युक्त व्यक्ति सभी अवस्थाओं में अपने इष्ट से सम्बन्धित वार्ता करता रहता है। उसे अन्य व्यक्तियों से अरुचि हो जाती है। वह जहां कहीं भी

बैठता है निर्निमेष दृष्टि से देखा करता है। लम्बी-लम्बी श्वासें लेता है। इष्ट का चिन्तन करता है तथा क्रीडोचित काल में भी रुदन किया करता है

तन्मथिता कथा युक्ते सर्वावस्थागतापि हि।
पुम पद्रेष्टि चाप्यन्यान्नुन्माद संप्रकीर्तित ॥
निःश्वसितनिमिषदृष्टिर्दीर्घं नि श्वसिति गच्छति ध्यानम्।
गदिति विहारकाले नाट्यमिद स्यात्तथोन्मादे ॥ ना०शा० २२-१८४-१८६।

सर्वावस्थागतापीति गुरुजनसंनिधावपीति, अनेनोन्मादस्य स्फुटयति। विहारकाल इति क्रीडोचितेषु कालेषु रोदितीत्यर्थ। वही अभि० पृ० २०२।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत उन्मादावस्था की विशद योजना की है। दमयन्ती के सामने नल के सौन्दर्य तथा उसकी दमयन्ती-अनुराग-जन्य दुर्दशा का निवेदन कर जब हंस पुन नल के पास वापस चला जाता है तो दमयन्ती की नल समागमाभिलाषा उन्मत्तता में परिणत हो जाती है। श्रीहर्ष ने दमयन्ती की इस उन्मत्तता को प्रकट करने में समस्त चतुर्थ सर्ग का उपयोग किया है।

हंस के द्वारा कीर्तित नल के गुणों तथा उसकी दारुण वियोग-व्यथा को सुनकर दमयन्ती पूर्णतया कामाधीन हो जाती है। उसने नल के गुणों का वर्णन जितने प्रेम से सुना था उसकी परिणति उतनी ही अधिक दु सह हो जाती है और हंस के उड़कर चले जाने पर वह अपना धीरज खो बैठती है (नै० ४-१-३)। उसका मुख स्मित-शून्य हो जाता है तथा उसकी दृष्टि जड़ बन जाती है (४)। नल का निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण उसका मुख म्लान होने लगता है तथा हृदय में दाह उत्पन्न हो जाता है और वह दाह शनै -शनै उसके ऊरुओं, बाहुओं तथा स्तनों तक को आक्रान्त कर लेता है (५-१०)। नल की स्मृति उसे क्षण-भर भी चैन की साँस नहीं लेने देती। उसकी स्मृति में लीन रहने के कारण वह पास में रक्खी हुई वस्तुओं को भी देख सकने में अशक्त हो जाती है (११-१२)। उसके नत मुख से प्रवाहित होने वाला अश्रु-प्रवाह उसके हृदय तक को क्लिन्न करने लगता है (१३)। काम-व्यथा से अत्यधिक सतप्त रहने के कारण उसके श्वासों में भी तीव्रता आ जाती है, उसका शरीर पाण्डुवर्ण हो जाता है और वह भ्रम में चारों दिशाओं में नल को देखने लगती है (१४-१५)। शनै -शनै उसके श्वासों में इतनी अधिक तीव्रता आ जाती है कि उसके वक्ष का वस्त्र भी उसमें हिलने लगता है और काम से सतप्त होने के कारण उसके हाथ, पैर, मुख तथा नेत्रों में उष्णता-सी निकलने लगती है। उसके अश्रु-प्रवाह को देखकर तो उसकी सखियाँ तक उसके दारुण वियोग से परिचित हो जाती हैं (१६-१८)। हृदयस्थ नल का अहर्निश चिन्तन करते रहने के कारण उसकी व्यथा और भी अधिक बढ़ जाती है और वह सर्वदा सतप्त रहने लगती है (१९-२०)। सताप को दूर करने के लिए वह हृदय पर कमल रखती है फिर भी

उसका संताप शान्त नहीं होता। अतः वह उस दुःख से मुक्ति पाने के लिए अपनी मृत्यु तक की कामना करने लगती है (२१-२२)। उसके कोमल हृदय को कामदेव तो संतप्त कर ही रहा था चन्द्रकिरणें भी उसके भवन के झरोखों से घुसकर उसे संतप्त करने लगती हैं (२३-२४)। अब उसका मुख सर्वदा अश्रुपूर्ण रहने लगता है तथा उसका वर्ण पीत हो जाता है (२५-२६)। संताप को दूर करने के लिए उसके द्वारा किया गया चन्दन-रज का लेप तथा मृणाल-धारण भी उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा पाता (२७-३०)। शनैः-शनैः उसका शरीर संताप से झुलसकर पाण्डु-वर्ण हो जाता है तथा उसका सौंदर्य म्लान-सा होने लगता है (३१-३४)। संताप को दूर करने के लिए उसके द्वारा धारण किया गया शैवाल उसके श्वासों से प्रकम्पित होने लगता है (३५)। चन्द्रमा का उदय होता हुआ देखकर तो वह रुदन करने लगती है (३६)। काम-व्यथा उसका अन्त करने पर तुली हुई थी। चन्द्रिका को चारों ओर फैला हुआ देखकर उसके अश्रुओं का प्रवाह निर्बाध हो जाता है। मेघों को देखकर तो वह अपने श्वासों के वेग को रोक रखने में असमर्थ हो जाती है। दक्षिण-पवन-जन्य संताप को वह तब तक सहन नहीं कर पाती जब तक मृणाल धारण न कर ले (३७-४०)। यद्यपि वियोग-व्यथा ने उसके जीवन को असह्य बना दिया था परन्तु कामदेव अभी तक उसे पीड़ित किए जा रहा था (४१-४२)। इस प्रकार दमयन्ती जब मौन रहकर कामपीड़ा को सहन करते रहने में असमर्थ हो जाती है तो वह चन्द्रमा आदि को कोसती हुई प्रलाप करने लगती है (४३)।

दमयन्ती के इस प्रलाप पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि समयाति-क्रमण उसके लिए असह्य हो गया था तथा अग्नि की दाहकता से भी अधिक तीव्रतर उसकी वियोग-व्यथा चन्द्रोदय से और भी अधिक अभिवृद्ध हो गई थी। अतः अब वह उस अनर्थकारी चन्द्रमा की ही निन्दा करने लगती है (४४-४६)। वह अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि चन्द्रमा विरहियों का वध करने वाली कलाओं को धारण कर अपनी दुर्विनीतता को प्रकट कर रहा है। न जाने इसने विरहियों को जलाने वाली विद्या कहां से सीखी है (४७-४८)। इसी प्रकार चन्द्रमा के कुकृत्यों की ओर संकेत करती हुई दमयन्ती अन्त में चन्द्रमा को नष्ट कर देने वाले उपायों की कल्पना करने लगती तथा उसके विनाश की कामना करने लगती है (४९-६०)। इसी प्रसंग में उसे चन्द्रमा को ग्रस्त करने वाले राहु की स्मृति आ जाती है और वह सोचने लगती है कि राहु के द्वारा ग्रस्त कर लिए जाने पर भी चन्द्रमा अब तक क्यों बना हुआ है (६४-६५)। परन्तु उसकी शिरःहीनता का स्मरण कर वह उसके सिर को पुनः जोड़ देने वाले उपायों की खोज करने लगती है ताकि राहु के द्वारा ग्रस्त कर लिए जाने पर चन्द्रमा फिर राहु के उदर से बाहर न निकल सके तथा उसी में गल

जाए (६७-६६)। इसी प्रकार पुन चन्द्रमा की निन्दा करते हुए उसकी बुद्धि मे एक यह विचार आता है कि दूरस्थ चन्द्रमा की निन्दा करना व्यर्थ है। अतएव वह हृदयस्थ कामदेव की निन्दा करने लगती है ८०-७४।

वह पहले तो कामदेव से यह पूछती है कि वह उसे क्यों जला रहा है और अपने इस प्रश्न के अनन्तर वह कामदेव की निन्दा प्रारम्भ कर देती है (८४-६७)। कामदेव की निन्दा दमयन्ती ने यो ही की हो ऐसी बात नही। भला जो व्यक्ति दूसरो का अपकार करने के लिए अपना जीवन तक का उत्सर्ग कर सकता हो उसकी निन्दा कौन नही करेगा (६८)। कामदेव जैसे अपकारी का भस्म कर देने के कारण वह शकर जी के उत्साह की ता दाद देती है। परन्तु उसकी समझ मे यह नही आता कि विष्णु ने मधु (वसन्त) जैसे अपकारी को छोडकर मधु नामक दैत्य का विनाश क्या कर किया (६६)। अन्त मे कामदेव को उपालम्भ देते-देते उसका मुख शुष्क हो जाता है तथा वह अधिक बोलने म असमर्थ हो जाती है। अब वह वियोग व्यथा का सहन करने के लिए सखियो के द्वारा दी गई सम्मतियो का केवल सक्षिप्त उत्तरमात्र दे पाने म ही समर्थ रह जाती है (१००-१०६)।

श्रीहर्ष के द्वारा व्यजनात्मक शैली मे अकित दमय ती की उपर्युक्त दुरवस्था तथा दमयन्ती के द्वारा किया गया चन्द्र तथा मदनोपालम्भ दमयन्तीगत उन्माद अवस्था के सूचक हैं। दमयन्ती की उपर्युक्त उन्मत्तता का उद्वेग तथा प्रलाप अवस्था से सयुक्त कर श्रीहर्ष ने उसे साकार बना दिया है। दमयन्तीगत यह उन्मादा-वस्था ही उपयुक्त प्रकरणगत रति स्थायी भाव की प्राधान्येन व्यजना करती है। अत इस प्रकरण को उन्मादावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार का व्यजक कहा जाएगा। यहाँ पर नल आलम्बन विभाव है। हस के द्वारा कीर्तित उसके गुण आदि उद्दीपन विभाव हैं। दमयन्तीगत अधैर्य, सताप, रुदन, निश्वास, भ्रान्ति, चिन्तन, विलाप, उन्माद, परिदेवन, चन्द्र तथा मदनोपालम्भादि अनुभाव हैं। चिन्ता, निर्वेद, ग्लानि, औत्सुक्य, उन्माद, अपस्मार, जाड्य, चपलता, मरण तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट दमयन्तीगत वियोग-कालीन रति स्थायी भाव व्यग्य है।

श्रीहर्ष ने क्रम-प्राप्त नलगत उन्मादावस्था की भी सक्षेप मे योजना की है। दमयन्ती के पास से जाकर हस नल को वही पर विलाप करता हुआ पुन-पाता है जहाँ पर वह उसे छोडकर गया था

सरसि नृपमपश्यद्यत्र तत्तीरभाज स्मरतरलमशोकानोकहस्योपमूलम्।
किसलयदलतल्पम्लापिन प्राप त स ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिपुष्पर्धिमीने ॥

परवति दमयति त्वा न किचिद्वदामि
द्रुतमुपनम कि मामाह मा शस हस !

इति वदति नलेऽस्मै तन्द्धशमोपनम्र

प्रियमनुमुक्ताचस्वम्पृहाया विनम्य ॥ नै० ३-१३३-१३४।

हंस के मुख से दमयन्ती की बातों को सुनकर नल की उत्कण्ठा चरम सीमा पर पहुँच जाती है। और वह दमयन्ती के वचनों का हंस से बार-बार सुनकर पुन स्वय भी उनकी आवृत्ति करने लगता है

कथितमपि नरेन्द्र शमयामास हस

किमिति किमिति पृच्छन् भाषित स प्रियाया ।

अधिगतमथमान्द्रानन्दमान्वीकमस्त

स्वयमपि शतकृत्वस्तत्तथान्वाचचक्षे ॥ नै० ३-१३५ ।

नल का उपर्युक्त उन्मत्त प्रलाप, उनकी अवस्था तथा दमयन्ती के वचनों की आवृत्ति आदि नलगत उन्मादावस्था के सूचक हैं। यहाँ पर दमयन्ती आलम्बन विभाव है। हंस के द्वारा वितरित दमयन्ती-सन्देश आदि उद्दीपन विभाव हैं। नलगत अधृति तथा प्रलापादि अनुभाव हैं। चिन्ता, उन्माद, औत्सुक्य तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट समागम-पूर्वकालीन नलगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। नलगत इस रति स्थायी भाव का प्रधान व्यंजक उसका उन्माद है। अत उसे उन्मादावस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

व्याधि अवस्था

उन्मादावस्था प्राप्त हो जाने के उपरान्त भी यदि इष्ट का समागम नहीं प्राप्त होता तथा उनकी प्राप्ति के लिए किए गए सभी प्रयास निष्फल हो जाते हैं तो व्याधि अवस्था उत्पन्न हो जाती है। मूर्छा, हृदय की अस्थिरता, तीव्र शिर-वेदना तथा अधृति आदि इसके लक्षण होते हैं

सामदानायसनार्गे कार्म्ये सप्रेषणैरपि ।

सर्वैर्निराकृतैः पश्चादव्याधि समुपजायते ॥

मुह्यति हृदयं क्वापि प्रयाति शिरसश्च वेदना तीव्रा ।

न धृति चाप्युपलभते ह्यष्टमेव प्रयुञ्जीत ॥

ना० शा० २२-१८७-१८८ ।

श्रीहर्ष ने क्रम-प्राप्त दमयन्तीगत व्याधि अवस्था की योजना भी की है। एक सखी की इस चेतावनी को सुनकर कि उसका हृदय अनलकुल हो गया है दमयन्ती यह समझ लेती है कि उसका प्रिय नल उसके हृदय से दूर हो गया है। इस विचार के आते ही उसका प्राणबन्ध छिन्न-भिन्न हो जाता है और वह मूर्छित हो जाती है

स्फुटति हारमणौ मदनोष्मणा हृदयमप्यनलङ्कृतमद्यते।
सखि हतास्मि तदा यदि हृद्यपि प्रियतम स मम व्यपधापित ॥
इदमुदीर्य तदैव मुमूर्छ सा मनसि मूर्छितमन्मथपावका।
क्व सहतामवलम्बनवच्छिदामनुपपत्तिमतीमतिदु खिता ॥

नै० ४-१०९-११०।

दमयन्ती की उपर्युक्त मूर्छा तद्गत व्याधि कामदशा को सूचित करती है। यहाँ पर भी नल आलम्बन विभाव है। सखी की चेतावनी उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती का भ्रम तथा उसकी मूर्छा आदि अनुभाव हैं। निर्वेद, ग्लानि, औत्सुक्य, मोह तथा आवेग आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट समागम-पूर्वकालीन दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे व्याधि-कामदशा-जन्य होने के कारण व्याध्यवस्थात्मक पूर्वराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

शेष अन्य-अवस्थाएँ

श्रीहर्ष ने व्याधि अवस्था की उत्तरवर्ती जडता तथा मरण नामक काम-दशाओ का प्रदर्शन दमयन्ती मे नही किया है। क्यो कि हम देख चुके हैं कि व्याधि आदि अवस्थाओ का प्रदर्शन तभी किया जाता है जब कि समागम प्राप्ति के लिए किए गए सभी उपाय निष्फल हो गए हो। परन्तु व्याधि अवस्था से युक्त हो जाने के उपरान्त पिता के आशीर्वाद को सुनकर उसे यह आशा हो जाती है कि वह शीघ्र ही अपने प्रिय को प्राप्त कर लेगी

व्यतरदथ पिताशिष सुतायै नतशिरसे सहमोन्नमय्य मौलिम्।
दयितमभिमत स्वयवरे त्व गुणमयमाप्नुहि वासरै कियद्भि ॥

नै० ४-११६।

और पिता के इस आशीर्वाद को वह कुछ दिन मे ही प्राप्त कर लेती है। अत उसमे जडता तथा मरण नामक अवस्थाओ को प्रदर्शित करने के लिए आवश्यकता ही नही रहती। इसके साथ-साथ यह अवस्थाएँ होती भी उत्कृष्टतम हैं। अत हो सकता है कि श्रीहर्ष ने जान-बूझकर दमयन्ती मे इन अवस्थाओ का प्रदर्शन न किया हो।

श्रीहर्ष ने नल मे जडता तथा मरण ही नहीं अपितु व्याधि अवस्था का भी प्रदर्शन नही किया है। क्यो कि नल को हस के द्वारा दमयन्ती के अनुराग का ज्ञान तो हो ही चुका था और कुछ समय मे ही उसे दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जाता है। अत उसमे भी व्याधि आदि अवस्थाओ को प्रदर्शित करने की आवश्यकता शेष नही रह जाती। यद्यपि दमयन्ती को भी हस के द्वारा नल के अनुराग का ज्ञान हो चुका था परन्तु उसे नल की प्राप्ति केवल नल

के अनुराग का ज्ञान हो जाने से ही नहीं हो सकती थी उसे तो नल समागम स्वयंवरादि के उपरान्त ही प्राप्त हो सकता था। अतः जब तक उसे यह ज्ञान नहीं हो जाता कि उसका स्वयंवर शीघ्र ही संपन्न होने वाला है तब तक उसकी वियोग व्यथा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। और व्याधि अवस्था से युक्त हो जाने के उपरान्त उसे इस तथ्य का ज्ञान हो पाता है। अतएव श्रीहर्ष ने उसमें व्याधि अवस्था का भी प्रदर्शन कर दिया है।

हम देख चुके हैं कि पुरुष को नायिका की प्राप्ति जितनी सरलता से हो जाती है नायिका को उतनी सरलता से नहीं। अतएव काम दशाओं की जितनी प्रबलता नायिकाओं में प्रदर्शित की जा सकती है उतनी नायकों में नहीं। इस स्वाभाविकता से परिचित होने के कारण श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत कामदशाओं को जितना अधिक उभारकर प्रस्तुत किया है नलगत कामदशाओं को उतना नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध में समागम पूर्वकालीन कामदशाओं की नल तथा दमयन्ती दोनों में ही औचित्य पूर्ण योजना की है।

पूर्वराग-भेद

नलदमयन्ती-गत अन्योन्यानुराग का नैषध में पूर्ण स्पष्टता के साथ अंकन किया गया है तथा उनका यह अनुराग स्थिर भी है। अतः उसे विश्वनाथ के द्वारा प्रदर्शित पूर्वराग के तीन प्रकारों में से मंजिष्ठा राग के नाम से अभिहित किया जाएगा

मंजिष्ठारागमाहुस्तद् यन्नापैत्यतिशोभते ॥ सा० द० ३-१९७।

रति-रहस्य-सम्मत कामदशाएँ

रतिरहस्यकार के अनुसार कामदशाएँ निम्नलिखित होती हैं

नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ संकल्पः।
निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः ॥
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः ॥ इत्याहु।

सा० द० पृ० १०६।

श्रीहर्ष ने नैषध में इन कामदशाओं की भी योजना की है। हम दमयन्ती को नल की वियोग-व्यथा से परिचित कराने के लिए नलगत उपर्युक्त कामदशाओं का ही वर्णन करते हैं। जैसे—

नयन-प्रीति लिपि दृशा भित्तिविभूषणं त्वा नृप पिबन्त्यादरनिर्निमेषम्।
चक्षुर्भरैरर्पितमात्मचक्षूराग स धत्ते रचितं त्वया नु ॥

चित्तासंग त्वं हृद्गतः मैमि बहिर्गतापि प्राणायिता नासिकयास्यगत्या।
न चित्तमात्रामति तत्र चित्रमेतन्मनो यद्भवदेकवृत्ति ॥

सकल्प — अजसभारोहमि दूरदीर्घा सकल्पसोपानततिं तदीयाम्।
श्वासान्स वषत्यधिक पुनर्यद्ध्यानात्तव त्वन्मयतामवाप्य॥

निद्राच्छेद तथा विषयनिवृत्ति
स्मितस्य रात्रावधिगम्य शय्या मोहे मनस्तन्य निमज्जयन्ती।
श्रालिगय या चुम्बति लोचने सा निद्राधुना न त्वदृतेऽङ्गना वा॥

तनुता — स्मरेण निम्नस्य वृथैव बाणैर्लावण्यशेषा कृशतामनायि।
अनगतामप्ययमाप्यमान स्पर्धा न साधँ विजहाति तेन॥

त्रपानाश — त्वत्प्राणतात्मस्थिति नैनमोऽपि न्वय्येव दास्यऽपि न लज्जते मत्।
स्मरेण बाणैरतितक्ष्य तीक्ष्णैर्लून स्वभावोऽपि कियान्किमस्य॥

उन्माद — बिभेति रुष्टासि किलेत्यकस्मात्स त्वा किलोपेत्य हसत्यकाण्डे।
यान्तीमिव त्वामनुयात्यहेतारुक्तस्त्वयेव प्रतिवक्ति मोघम्॥

मूर्छा — भवद्वियोगाभिदुरार्तिधारायमस्वसुर्मज्जति निःशरण्य।
मूर्च्छामयद्वीपमहान्धपङ्के हा हा महीभृद्भटकुञ्जरोऽयम्॥

मृति — सन्धायसन्यत्यजनाद्विरक्ते पञ्चेषुबाणै पृथगर्जितासु।
दशासु शेषा खलु तद्दशा या तया नभ पुष्प्यतु कोरकेण॥

नै० ३-१०३-११८।

नलगत रतिवासनाभिव्यजक नल की उपर्युक्त दृश के द्वारा वर्णित वियोग-व्यथा का भी पूवराग विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा। क्योकि नलगत उपर्युक्त वियोग-व्यथा समागम-पूर्ववर्ती होने के साथ-साथ नलगत रतिवासनाभिव्यक्ति मे प्रधान हेतु है। और समागम-पूर्ववर्ती कामदशाओ की पूवरागात्मकता पर हम विचार कर ही चुके है।

समागमोत्तर कालीन विप्रलम्भ-भेद

समागमोत्तर-कालीन विप्रलम्भ-भेदो को हम नायक-नायिकाओ के अवस्थान के आधार पर चार भागो मे विभाजित कर चुके हैं। जिनमे से एक देशा-वस्थान-कालीन विभाग मे विरह तथा मान नामक विप्रलम्भ भेदो को स्थान दिया गया है। श्रीहष ने नैषध मे इन दोनो भेदो की योजना की है।

विरह

एक बार नायक-नायिकाओ का समागम हो जाने के उपरात एक स्थान पर उन दोनो के स्थित होते हुए भी परतन्त्रता, दैवप्रतिकूलता अथवा गुरुजनो की लज्जा आदि के कारण उन दोनो का जहा पर पुन समागम नही हो पाता वहा पर विरह विप्रलम्भ शृगार होता है।

दमयन्ती अपनी माता को प्रणाम कर अपने भवन को जा रही थी। और

दूत रूप नल अन्तर्हित अवस्था में दमयन्ती को खोजता हुआ भीम के अन्तःपुर में भ्रमण कर रहा था। संयोग वश नल तथा दमयन्ती दोनों का ही समागम हो जाता है। दमयन्ती भ्रान्ति में देखे गए नल के कण्ठ में माला डाल देती है जो सच्चे नल के कण्ठ में गिर जाती है तथा भ्रम में ही दोनों एक-दूसरे के आलिंगन पाश में भी आबद्ध हो जाते हैं

असुप्रसादादपि गता प्रसूनमाला नलस्य भ्रमवीक्षितस्य ।
क्षिप्तापि कण्ठाय तयोपकण्ठे स्थितं तमालम्बत सत्यमेव ॥
अन्योन्यमन्यत्र यदीक्षमाणौ परस्परेणा युषितेऽपि देशे ।
आलिङ्गितालीकपरस्परान्तस्तथ्य मिथस्तौ परिरम्भणानि ॥ नै० ६-४८, ४९ ।

यद्यपि नल तथा दमयन्ती दोनों ही परस्पर आलिंगन-बद्ध हो गए हैं। परन्तु दमयन्ती का भ्रम तथा नल का स्तम्भ उन दोनों को पुनः एक-दूसरे से पृथक् कर देता है

स्पर्शं तमस्याधिगतापि भैमी मेने पुनर्भ्रान्तिमदर्शनेन ।
नृपस्तु पश्यन्नपि तामुपैतस्तम्भान्न धर्तुं सहसा शशाक ॥ नै० ६-५० ।

एक-दूसरे के आलिंगन से छूट जाने के उपरान्त वे दोनों पुनः आलिंगन-बद्ध हो जाने के लिए प्रयत्न तो करते रहते हैं परन्तु भ्रम उन्हें भ्रमित ही करता रहता है

स्पर्शानिहर्षान्निजमभ्यसन्तौ प्रवृत्त मिथ्याप्रतिरम्भणावा ।
पुनर्मिथस्तथ्यमपि स्पृशन्तौ न श्रद्दधाते पथि तौ विमुग्धौ ॥
सर्वत्र सम्भाव्यमवाप्यमाना स्पर्शं प्रियालिङ्गनकारि परं तौ ।
न शेकतुः केलिगृहाद्विलङ्घ्य सतीकरमालोकनपरम्परं तु ॥ नै० ६-५२, ५३ ।

नल-दमयन्ती दोनों वियुक्त तो थे ही यह आलिंगन-जन्य सुख उनकी वियोग व्यथा को और अधिक प्रदीप्त कर देता है

परस्परस्पर्शरसोर्मिसेकात्तयोः क्षणं चेतसि विप्रलम्भः ।
स्नेहातिदानादिव दीपिकार्चिर्निमिषत्त्य द्विगुण विदीप ॥ नै० ६-५५ ।

इस प्रकार अनेक बार आलिंगन-जन्य सुख का अनुभव करने के उपरान्त पुनः उसे न प्राप्त होता हुआ देखकर दमयन्ती तो मन-रंज प्रांगण अपने भवन को चली जाती है। परन्तु नल वहीं पर चिरकाल तक चक्कर लगाता रहता है

तस्मात् सा वैदर्भिवियोगयोगादितोऽत्र साङ्गण सुहृदालीना ।
पुनः पुनस्तत्र पुरे स पश्यन् विश्राम तां शुश्रुसुरभ्रमण ॥ नै० ६-५६ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त प्रसंग में श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती दोनों को ही एक-दूसरे के आलिंगन-जन्य सुख की प्राप्ति कराकर पुनः-पुनः उन्हें एक-दूसरे से पृथक् कर दिया है। और पृथक् हो जाने के उपरान्त दोनों को ही पुनः-पुनः आलिंगनादि प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठा प्रदर्शित किया है। नल-दमयन्ती की यह उत्कण्ठा एक देश में ही स्थित होते हुए भी दैव-प्रतिबन्धकता-वश पूर्ण

नही हो पाती और नल तथा दमयन्ती दोनो ही अपने को एक-दूसरे से वियुक्त अनुभव करते रहते हैं। अत एक स्थान पर स्थित होते हुए भी दैव-प्रतिबन्धकता-वश एक-दूसरे का समागम न प्राप्त कर पाने के कारण परस्पर वियुक्त-बुद्धि-युक्त नल-दमयन्ती उभयगत रति वासना को जो कि उपर्युक्त प्रकरण मे अभिव्यक्त होती है विरह विप्रलम्भ शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

यहा पर नल-दमयन्ती दोनो ही आलम्बन विभाव हैं। दोनो के परस्परालिगनादि उद्दीपन विभाव हैं। नलदमयन्तीगत भ्रम, उत्कण्ठा तथा आलिगन को प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा की गई चेष्टाएँ अनुभाव हैं। औत्सुक्य, चपलता, मोह तथा निर्वेद आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट नल-दमयन्ती उभयगत रति स्थायी भाव व्यग्य है।

प्रणय मान

मान विप्रलम्भ शृगार का एकादेशावस्थान-कालीन द्वितीय भेद होता है। प्रणय तथा ईर्ष्या-जन्य कोप को मान विप्रलम्भ के नाम से अभिहित किया गया है

मान कोप स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्या समुद्भव । सा० द० ३-१९८।

कोप के हेतु-भूत उपर्युक्त प्रणय तथा ईर्ष्या को आधार मानकर इसको दो भागो मे विभाजित कर दिया गया है। इन दोनो भागो मे से प्रणय मान नायकगत, नायिकागत तथा उभयगत तीन प्रकार का होता है

द्वयो प्रणयमान स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि ॥ सा० द० ३-१९८।

विश्वनाथ के अनुसार प्रणयमान-कालीन कोप किसी कारण पर नही आधारित होता

प्रेम्ण कुटिलगामित्वात्कोपो य कारण विना। सा० द० ३-१९९।

परन्तु वस्तुत प्रणय-कालीन कोप भी किसी न किसी सामान्य कारण पर अवश्य आधारित होता है। पूर्णतया अकारण-जन्य वह नहीं होता। क्यो कि किसी कारण के बिना कोप उत्पन्न कैसे हो सकता है।

श्रीहर्ष ने नैषध मे उपर्युक्त तीन प्रकार के प्रणय मानो मे से केवल नायिकागत प्रणय मान की ही योजना की है। नल प्रात कालीन भ्रमण करने के उपरान्त जब अपने भवन मे पहुँचता है तो दमयन्ती प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करती है। यद्यपि नल ने देखा कि दमयन्ती के मुख पर उसका स्वागत करने के चिह्न स्पष्ट लक्षित हो रहे हैं

स दूरमादर तस्या वदने मदनैकदृक्।

दृष्टमन्दाकिनीहेमारविन्दश्रीरविन्दत ॥ नै० २०-३।

परन्तु वह उसके उस स्वागत की ओर ध्यान न देकर उसी समय शेष दैनिक

विधियों को सम्पन्न करने के लिए दमयन्ती से अनुमति माँगने लगता है

प्रेयसावादि मा तन्वि त्वदालिंगनविघ्नकृत्।

समाप्यता विधि शेष क्लेशश्चेतसि चेन्न ते ॥ नै० २०-६।

दमयन्ती नल के इस प्रस्ताव का कोई उत्तर न देकर रुष्ट हो जाती है और वह अपमानित-सी होकर अपनी एक सखी के पास चली जाती है

कर्वेतावन्नर्ममर्माविद्विद्यते विधिन्द्य ते।

इति त मनसा रोषादवाचद्वचसा न सा ॥

सावज्ञेवाथ सा राज्ञः सखी पद्ममुखीमगात्।

लक्ष्मी कुमुदकेदारादारादम्भोजिनीमिव ॥ नै० २०-७, ८।

प्रातःकालीन विधियों को पूर्ण कर नल जब वापस जाता है तो वह दमयन्ती की आँखों को पीछे से बन्द कर लेता है। दमयन्ती किसी सखी की सम्भावना से उस सखी को पहचान लेने का निवेदन करने जा ही रही थी कि वह नल के स्पर्श को पहचान जाती है। अतएव वह अपने वाक्य को न पूर्ण कर मौन हो जाती है तथा नल के हाथों को अपने नेत्रों पर से हटा देती है

क्रिया प्राह्णेतनी कृत्वा निषेधन् पाणिना सखीम्।

कराभ्या पृष्ठगस्तस्या न्यमीमिलदसौ दृशौ ॥

तर्कितालि त्वमित्यर्धवाणीका पाणिमोचनात्।

ज्ञातस्पर्शान्तरा मौनमानशे मानमेविनी ॥ नै० २०-११, १३।

नल के प्रस्ताव को सुनकर दमयन्ती का मन में रुष्ट हो जाना, नल के पास से अपनी सखी के पास चला जाना, नल के हाथों को अपने नेत्रों पर से हटा देना तथा उसका मौन हो जाना तद्गत कोप के सूचक लक्षण है। नल दमयन्ती की उत्सुकता की ओर ध्यान न देकर सन्ध्योपासनादि के लिए चला गया था। इसीलिए दमयन्ती उस पर कुपित हो गई थी। अतएव दमयन्ती का यह कोप किसी विशेष कारण पर आधारित न होकर सामान्य कारण जन्य ही था।

विश्वनाथ के अनुसार यदि प्रणय मान अनुनय के पूर्व ही शान्त हो जाता है तो उसे मान विप्रलम्भ के नाम से नहीं अभिहित किया जा सकता

अनुनयपर्यन्तामहत्वे त्वस्य न विप्रलम्भभेदता, किंतु सभोगसचार्याख्यभावत्वम्।
सा० द० पृ० ११०।

विश्वनाथ की इस टिप्पणी के अनुसार प्रणय मान तथा उस मान को शान्त करने के लिए किए गए उपाय इन दोनों की समन्वित योजना को ही प्रणय मान के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

मान को शान्त करनेवाले निम्नलिखित उपाय होते हैं

साम चोपप्रदान च भेदो दण्डस्तथैव च।

उपेक्षा चैव कर्तव्या नारीणा विषयं प्रति ॥ ना० शा० २३-६५।

विश्वनाथ ने रसान्तर नामक एक अन्य उपाय का भी निर्देश किया है। धनजय ने भी रसान्तर उपाय का स्वीकार किया है। सा० द० ३-२०१, द० रू० ४-६१।

यह सभी उपाय सभी प्रकार के मान को शान्त करने के लिए व्यवहार मे नही लाए जाते। भरत के अनुसार नायिकाओं के अनुराग तथा विराग का जानकर ही इन उपायो का अवलम्ब लेना चाहिए। उपेक्षा उपाय का प्रयोग तो तब तक नही करना चाहिए जब तक कि सभी सामादिक उपाय निष्फल न हो गए हो।

भावाभावौ विदित्वाथ तत्र तैस्तैरुपक्रमैः।
पुमानुपचरेन्नारीं कामतन्त्र समीक्ष्य तु॥
सामादीना प्रयोगे तु परिक्षीणे यथाक्रमम्।
न स्यादा च समापन्ना तामुपेक्षेत बुद्धिमान्॥ ना० शा० २३-६८, ७२।

भरत के अनुसार जिस नायिका का कोप बहुत अधिक तीव्र न हो अर्थात् जो कुछ-कुछ स्नेह कर रही हो उस नायिका के कोप को साम उपाय के द्वारा शान्त करना चाहिए

मध्यस्था मानयेत्साम्ना——। ना० शा० २३-६६।

चतुर्णामुपायाना स्व स्व विषयमाह मध्यस्थामिति किंचित् स्निह्यतीमित्यर्थः। वही अभि० पृ० २८५।

इसी प्रकार हम देख चुके है कि विश्वनाथ ने भी साम अर्थात् अनुनय के द्वारा प्रणय मान को शान्त करने का अप्रत्यक्ष रूप से निर्देश दिया है। क्योकि अनुनय को उन्होने प्रणयमान का अनिवार्य अग जो मान लिया है।

विश्वनाथ के अनुसार प्रिय वचनो को साम उपाय के नाम से अभिहित किया जाता है

तत्र प्रियवचः साम——। सा० द० ३-२०२।

भरत ने उन प्रियवचनो के स्वरूप की ओर भी सक्षेप मे सकेत कर दिया है

तवास्मि मम चैवासि दासोऽह त्व च मे प्रिया।
आत्मोपक्षेपणकृत यत्तत्सामेति कीर्तितम्॥ ना० शा० २३-६६।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत मान की योजना करने के अव्यवहित अनन्तर मे ही उपर्युक्त स्वरूप साम उपाय के द्वारा उसके कोप को शान्त कराने का प्रयत्न किया है। नल को यह ज्ञात था कि दमयन्ती के रोष का कारण क्या है। अत वह दमयन्ती से स्पष्ट कह देता है कि जिस तपस्या के बल पर उसने उसे प्राप्त किया है उस तपस्या को वह कैसे परित्याग कर सकता है

मा वादि मुतनुस्तेन कोपस्ते तायमौचिती।
त्वा प्राप यत्प्रसादेन प्रिये तन्नाद्रिये तप ॥ नै० २०-१८।

परन्तु यदि दमयन्ती इसलिए रुष्ट हो गई हो कि समग्र रात्रि दास बने रहने के

उपरान्त प्रात काल उसने उसकी वन्दना नही की तो उसके लिए यह तत्काल ही तैयार हो जाता है

निशि दास्य गतोऽपि त्वा स्नात्वा यन्नाभ्यवीवदम्।
त प्रवृत्तास्मि मन्तु चेन्मन्तु तद्वद वचमे ॥ नै० २०-१५।

नल इतना कहकर अपने हाथो को दमयन्ती के पैरो के पास ले जा ही रहा था कि दमयन्ती उसे रोककर कटाक्षो से मोह लेती है

इत्येतस्या पदास्तये पत्येप प्रेरितौ करौ।
रुद्ध्वा सकोप सातक त कटाक्षैरमूमुहत ॥ नै० २०-१६।

दमयन्ती के कटाक्ष से मोहित नल उसके कटाक्ष, राग, मुख तथा वाणी आदि की प्रशसा करने लगता है और शय्या पर स्वय बैठकर तथा दमयन्ती को अपनी अकपाली मे बिठाकर वियोग-जन्य खेद का दूर करने के लिए दमयन्ती का आलिंगन करने लगता है। दमयन्ती का क्रोध तो नल के प्रणाम करने के लिए उद्यत हो जाने से ही दूर हो गया था। परन्तु नल का आलिंगन उसे सस्मित तक बना देता है और अब वह नल का चुम्बन करने तक से मना नही करती

पूर्वपर्वतमाश्लिष्टचन्द्रिकश्चन्द्रमा इव।
अलचक्रे स पर्यकमकसक्रमितप्रिय ॥
प्रावृडारम्भणाम्भोद स्निग्धा द्यामिव स प्रियाम्।
परिरभ्य चिरायास विश्लेषायासमुक्तये ॥
चुचुम्बास्यमसौ तस्या रभसस्न श्रितस्मितम्।
नभोमणिरिवाम्भोज मधुमध्यानुबिम्बित ॥ नै० २०-२३-२५।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीहर्ष ने उपर्युक्त प्रसग मे दमयन्तीगत मान के अव्यवहित अनन्तर मे उसके मान को शान्त करने के लिए नल के द्वारा साम उपाय का प्रयोग कराकर तथा नल के अनुनय-विनय के उपरान्त दमयन्ती के मान को शान्तकर दमयन्ती के कोप को प्रणयमान विप्रलम्भ का स्वरूप प्रदान कर दिया है।

मान के अवसर पर नायक तथा नायिका दोनो ही अपने को वियुक्त अनुभव किया करते है। जब तक नायिका या नायक मान युक्त रहते है तब तक वे अपने को वियुक्त अनुभव करते है परन्तु जब मान का आलम्बन मान को शान्त करने के लिए प्रयत्न करने लगता है तो शनै-शनै उनका यह अनुभव परिवर्तित होने लगता है और मान के शान्त हो जाने पर तो वियुक्त बुद्धि सयोगानुभूति मे परिणत हो जाती है। इसीलिए जब तक दमयन्ती मान-युक्त रहती है तब तक तो वह खिन्न-सी रहती है। परन्तु नल के अनुनय-विनय करने पर वह नल के आलिंगन पाश मे ही नही बध जाती अपितु स्मित युक्त तक हो जाती है।

उपर्युक्त प्रकरण मे नल आलम्बन विभाव है। नल का दमयन्ती की उत्सुकता

की अवहेलना कर देना तथा सन्ध्योपासनादि के लिए दमयन्ती के पास से चला जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। दमयन्ती का मन से रुष्ट हो जाना, मौन धारण कर लेना, अपमानित-सी होकर अपनी सखियों के पास चला जाना तथा अपने नेत्रों पर से नल के हाथों को हटा देना आदि अनुभाव है। असूया, गर्व तथा अमर्ष आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट समागमोत्तर-कालीन वियुक्त-बुद्धि-युक्त दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यङ्ग्य है। जिसे दमयन्ती के प्रणय मान से प्राधान्येन अभिव्यक्त होने के कारण प्रणय मान विप्रलम्भ शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

ईर्ष्यामान

ईर्ष्या मान केवल नायिकागत होता है। इसकी उत्पत्ति का कारण नायक का किसी अन्य नायिका के प्रति लगाव होना है

पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमिते श्रुते।
ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणाम्—॥ सा० द० ३-१९९-२००।

श्रीहर्ष ने यद्यपि नैषध में दमयन्ती के अतिरिक्त नल की अन्य पत्नियों की ओर भी यत्र-तत्र संकेत किया है। परन्तु नल की उन पत्नियों को उन्होंने नैषध की पृष्ठभूमि में नहीं अवतरित किया है। अतएव ईर्ष्यामान के लिए नैषध में अवकाश ही नहीं बन पाया है। फिर भी बीस सर्ग में नल के द्वारा किए गए सुरत-रहस्य-भेदन में दमयन्तीगत ईर्ष्या की ओर भी संकेत किया गया है

त्वयान्या क्रीडयन् सत्येमधुगोष्ठि स्वपेक्षित।
वेत्सि तासां पुरो मूर्ना त्वत्पादे यत्किरास्त्वयम्॥
भुजानस्य नव निम्ब परिवेविषती मयो।
सपत्नीष्वपि मे राग सम्भाव्य स्वस्य स्मरे॥ नै० २०-८०, ६०।

उपर्युक्त श्लोकों में नल की अन्यासक्ति के दर्शन तथा अनुमान से दमयन्तीगत ईर्ष्योत्पत्ति का अङ्कन किया गया है। यहां पर अपराधी नल विभाव है। दमयन्ती का सरोष निरीक्षणादि अनुभाव हैं। असूया तथा अमर्ष आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यङ्ग्य है। दमयन्तीगत इस रति की व्यंजना का प्रधान हेतु दमयन्ती की ईर्ष्या है। अतः उसे ईर्ष्या मान के नाम से अभिहित किया जाएगा। पर्यन्त में दमयन्ती का यह ईर्ष्या मान नल के द्वारा सत्यापित की जाने वाली उसकी नल-स्वम्पता रूप वस्तु का अंग बन जाता है।

विप्रलम्भ शृंगार के अन्य भेद

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त अन्य प्रवास, शाप, तथा करुण नामक विप्रलम्भ भेदों की योजना नहीं की है। उन्होंने नल-दमयन्ती

मे से किसी को न तो प्रवासी बनाया है और न उन्हे कोई नैषध मे शापित ही करना है। नल-दमयन्ती मे मे किसी की मृत्यु की ओर भी उन्होंने सकेत नही किया है। अत विप्रलम्भशृगार के उपयुक्त प्रवासादि भेदो के सद्भाव का नैषध मे प्रश्न ही नही उठता।

श्रीहर्ष की विप्रलम्भ-योजना

नैषधगत विप्रलम्भ-शृगारात्मक उपर्युक्त प्रसगो पर दृष्टिपात करने के अनन्तर इस तथ्य को बिना किसी सकोच के ही स्वीकार किया जा सकता है कि श्रीहर्ष विप्रलम्भ शृगार की योजना करने मे पूर्ण दक्ष हैं। नैषधगत उपर्युक्त विप्रलम्भ-शृगारात्मक प्रकरण विलम्भानुभूति का जाग्रत करने मे पूर्णतया समर्थ हैं। कोई भी सवेदनशील पाठक उपर्युक्त प्रकरणो का अध्ययन कर आत्मविभोर हुए बिना नही रह सकता।

सभोग शृगार

सभोग शृगार के दर्शनादि पाच प्रकारो का उल्लेख किया गया है। सभोग शृगारात्मक सभी स्थलो मे नायक-नायिका दोनो के ही सभोगाभिव्यजक व्यापारो का यत्किंचित् समावेश अवश्य किया जाता है। क्यो कि नायक-नायिका दोनो के ही सयुक्त-बुद्धियुक्त तथा आनन्दोपभोग के लिए उन्मुख होने पर ही व्यक्त रति भाव को शृगार रस के नाम से अभिहित किया जा सकता है। केवल नायक या नायिकागत रति स्थायी भाव का भले ही वह सभोग शृगार के दर्शनादिक प्रकारो की कुछ विशेषताओ से युक्त क्यो न हो शृगाराभास के नाम से ही अभिहित किया जाता है।

यद्यपि सभोग शृगार के दर्शनादिक पाचो प्रकारो की अपनी अपनी कुछ विशेषताएँ होती है जो उन्हे एक दूसरे से भिन्न सिद्ध करती हैं। और कवियो ने इन सभोग भेदो की पृथक्-पृथक् रूप से योजना भी की है। परन्तु ऐसे उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो जाते है जहा पर कवियो ने दर्शनादि पाँचो प्रकारो मे से दो या तीन प्रकारो की समन्वित रुप से योजना की है। नैषध भी इस तथ्य का अपवाद नही है। हम देखेगे कि श्रीहर्ष ने सभोगशृगार के दर्शनादि प्रकारो की पृथक्-पृथक् तथा समन्वित रूप मे दोनो प्रकार मे योजना की है। महाकवियो के द्वारा की गई सभोग-शृगार-प्रकारो की इस उभय-विध योजना को वात्स्यायन मुनि के अनुसार समुचित ही कहा जाएगा

> शास्त्राणा विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नरा ।
> रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रम ॥

कामसूत्र अधि० २ अध्याय २ ३१।

दर्शन

जहाँ पर नायक-नायिकाओं के द्वारा एक-दूसरे के अंगों का स्पर्श न करते हुए प्रेमपूर्वक अन्योन्यावलोकन मात्र से ही संभोग सुख का अनुभव किया जा रहा हो वहाँ पर दर्शन संभोग शृंगार होता है।

श्रीहर्ष ने नैषध में उपर्युक्त स्वरूप दर्शन संभोग शृंगार की विशद योजना की है। देवताओं के अधिपति इन्द्र के द्वारा प्रदान की गई अन्तर्धान सिद्धि से युक्त नल जब दमयन्ती के पास पहुंच जाता है तो वह दमयन्ती के अलौकिक सौंदर्य का दर्शनकर चिरकाल तक मन में उसकी सराहना करता रहता है तथा उसके सौंदर्य के बारे में विभिन्न कल्पनाएँ करता हुआ आनन्द अनुभव करता रहता है। श्रीहर्ष ने नल की उस आनन्दानुभूति का अंकन करने में समस्त सप्तम सर्ग का उपयोग किया है।

अन्तर्हित अवस्था में ही चिरकाल तक दमयन्ती का दर्शन करते रहने के उपरान्त जब नल दमयन्ती के सामने प्रकट हो जाता है तो दमयन्ती को भी नलदर्शन-जन्य सुखानुभव करने के लिए अवसर प्राप्त हो जाता है

अथाद्भुतेनास्तनिमेषमुद्रमुन्निद्ररोमाणमसुं युवानम्।

ददर्श पपुस्ता सुदृशः समस्ताः सुता च भीमस्य महीमघोनः ॥ नै० ८-१।

यद्यपि दमयन्ती को यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं था कि उसके सामने उपस्थित व्यक्ति नल ही है। परन्तु उस व्यक्ति को वह नल जैसा अवश्य देख रही थी। अतएव नल को देखते ही दमयन्ती कामदेव के बाणों का लक्ष्य बन जाती है और इसी प्रकार नल भी उसी समय कामाधीन हो जाता है

अपाङ्गमप्याप दृशोन रुद्धिमनन्तरस्य भैमीमभिलप्य यावत्।

स्मरशुगः सुभ्रुवि तावदस्या प्रत्यङ्गमापुङ्खमिव ममज्ज॥

यदक्रमं विक्रमशक्तिसाम्यादुपाचरद्द्वावपि पञ्चबाणः।

चक्रे न वैमत्यममुष्य चक्रे शरैरतर्धविभागभाग्भिः ॥ नै० ८-३-४।

यद्यपि नल तथा दमयन्ती दोनों अपने मन को समझा-बुझाकर येन केनापि प्रकारेण संयत करने का प्रयत्न करते हैं

तस्मिन् ननास्माविति सान्त्वरज्यतः क्षणं क्षणं क्वेह स इत्युदास्त।

पुरः स्म तस्या वलतेऽस्य चितं दूरादनर्हाय पुनर्न्यवर्ति॥ नै० ८-५।

परन्तु दमयन्ती को देखने से नल को जिस प्रकार अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई थी नल-दर्शन-जन्य दमयन्ती का आनन्द भी उससे कुछ कम नहीं था

अथ प्रियासादनशीतनाडी मनोरथः पल्लवितश्चिराय।

विलोकनेनैव स राजपुत्र्या पत्या भुवः पूर्णशशस्यमापि॥ नै० ८-१।

स्वच्छन्दस्यन्दानन्दपरम्पराणां भैमी तमालोक्य किमप्यवाप।

महारयं निर्झरिणीव वारामासाद्य धाराधरकेलिकालम्॥ नै० ८-८।

नल की दृष्टि दमयन्ती के अवयवों के सौंदर्य का पान कर यदि आन्तरिक आनन्द के समुद्र में निमज्जित हो गई थी तो दमयन्ती के नेत्र नल के जिस अवयव को देख लेते हैं उसको देखने में ही विस्मृत हो जाते हैं

'प्रतिप्रतीकं प्रथमं प्रियायामथान्तरानन्दसुधासमुद्रे ।
ततः प्रमादाश्रुपरम्पराया ममज्जतुस्तस्य दृशौ नृपस्य ॥ ७-२ ।
तत्रैव मग्ना यदपश्यदग्रे नास्या दृगस्यागमयाम्यदङ्गम् ।
नादाम्यदस्यै यदि बुद्धिधारा विच्छिद्य विच्छिद्य चिरान्निमेषः ॥
दृशापि सालिङ्गितमङ्गमस्य अग्राह्य नाग्रावगतागहर्ये ।
अङ्गान्तरेऽनङ्गनिमीलिते तु निवृत्य सस्मार न पूर्वदृष्टम् ॥ नै० ८-९-१० ।

नल को दमयन्ती के दर्शन से ब्रह्म में लीन होने जाने के समान आनन्द की प्राप्ति हुई थी। इसी प्रकार दमयन्ती का आनन्द भी तब तक कुछ वैसा ही बना रहता है जब तक वह नल को नल समझती रहती है

ब्रह्माद्वयस्यावभवत् प्रमोदं रोमाग्र एवाग्रनिरीक्षितेऽस्याः ।
यथोचितीत्थं तदशेषदृष्टावथ स्मराद्वैतमुदं तथासौ ॥ नै० ७-३ ।
तत्कालमानन्दमयी भवन्ती भवत्तरानिर्वचनीयमोहा ।
सा मुक्तसंसारिदशारसाभ्यां द्विस्वादमुल्लासमभुक्त मृष्टम् ॥ नै० ८-१५ ।

नल की दृष्टि दमयन्ती के जिस अवयव की ओर जाती है उसी पर टिकी रह जाती है और कभी-कभी तो वह अनेक अंगों पर भ्रमित-सी होने लगती है

वेलामतिक्रम्य पृथु मुखेन्दारालोकपीयूषरसेन तस्याः ।
नलस्य रागाम्बुनिधौ विवृद्धे तुङ्गौ कुचावाश्रयतः स्म दृष्टी ॥
मग्ना सुधायां किमु तन्मुखेन्दोर्लग्ना स्थिता तत्कुचयोः किमु ते ।
चिरेण तन्मध्यममुं चतास्य दृष्टिः कृशीयः स्खलनाद्भिया नु ॥
प्रियाङ्गपान्था कुचयोर्निवृत्य निवृत्य लोला नलदृग्भ्रमन्ती ।
अभौनमास्तन्मृगनाभिलेपतमः समासादितदिग्भ्रमेव ॥
विश्रम्य तच्चारुनितम्बचक्रे दूतस्य दृक् तस्य खलु स्खलन्ती ।
स्थिरा चिरादास्त तदूरुरम्भास्तम्भावुपाश्लिष्य करेण गाढम् ॥
नै० ७-४-७ ।

उसी प्रकार दमयन्ती की दृष्टि भी नल के जिस अंग को देख लेती है उसी में उलझी रह जाती है तथा कभी-कभी अनेक अंगों पर बार बार आने जाने लगती है

ह्रियैकमस्यापघनं विशन्ती तद्दृष्टिरङ्गान्तरभुक्तिसीमाम् ।
चिरं चकारोभयनाभलोभात् स्वभावलोला गतमागतं च ॥
निरीक्षितं चाङ्गमवीक्षितं च दृशा पिबन्ती रभसेन तस्य ।
समानमानन्दमियं दधाना विवेद भेदं न विदर्भसुभ्रूः ॥

गृध्नो घन नैषधेशपाणी निपत्य निष्पन्दतरीभवद्भ्याम् ।
तस्यानुव ध न विमाव गन्तुमपारि तत्ताचनरजनाभ्याम् ॥
भृ गारभ गुर्मुखपाणिपादस्मै परीरम्भमवाप्य तस्य ।
दमस्वसुद् ष्टिस्मरराजराजिश्चिर न तत्याज सब गुणम् ॥ नै० ८-११-१४ ।
नन दमयन्ती के सौंदय का अवलोकन मन म उसके सौंदर्य का वर्णन करने लगा था

दृशाश्रयासामसथापह्नत्य स प्रेयसीमातिथ्य च तस्या ।
इद प्रमादादभुतसम्भृतेन महीमहेन्द्रामनसा जगाद ॥ नै० ७-६ ।
नल के द्वारा वर्णित दमयन्ती का यह सौंदय सप्तम सग का मुख्य विषय है।

इसी प्रकार दमयन्ती भी नल के दशनतर अपने भावों को छिपा रखने में असमथ हो जाती है

मानीकरस्य मदनान्मशिल्पुयथाप शालीनतया न मौनम् ।
तथैव तस्यऽपि नले न नैभे मुग्धेन्दु क गरसमुपादिनेव ॥
व्यर्थीभवद्भावपिधानयत्ना स्वरेण गाय दनयगद्गदेन ।
गतीनन सा जगदद्भवाचि स्मय तमूचे नमदाननेन्दु ॥
नै० ८-१८-१९ ।

दमयन्ती पहले तो नल से आतिथ्य योग्य वचन कहती रहती है (नै० ८-२०-३०)। परन्तु शीघ्र ही उसके यह वचन नल सौंदय-वणन की ओर उन्मुख हो जाते है

भूयाऽपि तावा नलमुन्न त मत्तामर रश्मिजनाश्रियधात् ।
प्रातिथ्यजाद्यप्रदिश्य तस्या श्रिय प्रियस्यास्तुत परतुत सा ॥ नै० ८-३१ ।
नल ने दमयन्ती सौंदय-वणन अपने मन में किया था। उसके द्वारा किए गए सौन्य-वणन को दमयन्ती ने नहीं सुना था। अत नल के द्वारा वर्णित दमयन्ती-सौंदय को दशन सभोग-शृगार के नाम से ही अभिहित किया जाएगा। परन्तु दमयन्ती के द्वारा किए गए नल-सौंदय-वणन को नल सुन रहा था। अत यह सम्भाषण का रूप ले लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नल तथा दमयन्ती दोनों ही एक दूसरे को देखकर आनन्दित हो जाते हैं। नल ने यदि दमयन्ती के दशनतर अपने सभी मनोरथों को पूर्ण मान लिया था तो दमयन्ती का आनन्द भी उससे कुछ कम नहीं था। नल तथा दमयन्ती दोनों ही एक-दूसरे को देखकर काम-विकार-युक्त भी हो जाते हैं। इसके साथ-साथ उपर्युक्त प्रसग में नल तथा दमयन्ती के केवल अन्योन्यावलोकन-मात्र का ही अकन किया गया है न कि गात्र-स्पर्शादि का भी। अत उपर्युक्त प्रकरण को दशन-सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा। यद्यपि नल तिरस्कार का ओढे ही दमयन्ती के दशन करता रहता है

और उस अवसर पर केवल दमयन्ती-दर्शन-जन्य नल के मानसिक संकल्प-विकल्प ही पाठक के सम्मुख उभरकर आते रहते हैं। दमयन्ती चूंकि नल को देख ही नहीं रही थी। अतः नल को देखने से उत्पन्न उसके कामविकारों की ओर संकेत नहीं किया गया है। परन्तु नल के प्रकट हो जाने पर दमयन्ती के वैसे व्यापारों का अंकन किया ही गया है तथा पाठक दमयन्ती के नल-विषयक अनुराग से पहले से भी परिचित रहता है। अतः नल के द्वारा चिरकाल तक किए गए दमयन्ती दर्शन को एक पक्षीय नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त दमयन्ती-दर्शन-परक सप्तम सर्ग में दमयन्ती आलम्बन विभाव है। उसका सौंदर्य तथा नल का अन्तर्हित होना उद्दीपन विभाव हैं। नलगत आनन्द, अश्रु, निर्निमेष निरीक्षण तथा नल के द्वारा किया गया दमयन्ती सौंदर्य का मानसिक वर्णन आदि अनुभाव हैं। विस्मय, हर्ष, जड़ता, औत्सुक्य आवेग, मति तथा वितर्क आदि भावों से परिपुष्ट संयुक्त-बुद्धि-युक्त नलगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। नलगत इस रति भाव की व्यंजना का प्रधान हेतु नल के द्वारा किया गया दमयन्ती-दर्शन है। अतः उसे दर्शन-संभोग-शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जाएगा।

नल दर्शन-परक अष्टम सर्ग में नल आलम्बन विभाव हैं। उसका सौंदर्य उद्दीपन विभाव है। दमयन्तीगत चपलता आनन्द, काम-विकार तथा उसके द्वारा किया गया नल-सौंदर्य का निरीक्षण आदि अनुभाव हैं। विस्मय, हर्ष, स्मृति, आवेग, औत्सुक्य तथा मति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट संयुक्त-बुद्धि-युक्त दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। दमयन्तीगत इस रति भाव की व्यंजना का भी प्रधान हेतु नल-दर्शन है। अतः इसे भी दर्शन संभोग शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जाएगा।

कुछ समालोचकों के अनुसार नल के द्वारा किया गया दमयन्ती सौंदर्य-वर्णन विस्तृत अधिक है। परन्तु श्रीहर्ष की अपनी धारणा इस विषय में कुछ और ही है

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।
खलत्वमल्पीयसि जल्पितेऽपि तदस्तु वन्दिभ्रमभूमितैव ॥ नै० ८-३२।

इसी प्रकार नल के द्वारा अन्तर्हित अवस्था में दमयन्ती-सौंदर्य का वर्णन किया जाना भी कुछ लोगों को समुचित नहीं प्रतीत होता। परन्तु वस्तुस्थिति पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि नल के द्वारा दमयन्ती का सौंदर्य-पान तथा उसका वर्णन अन्तर्हित अवस्था में ही कराया जा सकता था। क्योंकि नल के प्रकट हो जाने से दमयन्ती तथा उसकी सखियां संभ्रान्त हो उठती थीं जैसा कि वे नल के प्रकट हो जाने के उपरान्त हो ही जाती हैं

वस्त्व वृत्तो वेति न जातु दोकृस्त प्रष्टुमप्यप्रतिभातिभारान्।
उतप्युरम्युतिथितिवान्छयेव निजामनान्नैव मा वृत्ताय ॥ नै० ८-७।

और ऐसी स्थिति में नल दमयन्ती के स्वतन्त्रतापूर्वक न तो दर्शन ही कर सकता था और न उसके सौंदर्य की वह प्रशंसा ही कर सकता था। यदि वह वैसा करता तो वह अपने दौत्य कार्य को उतनी सफलता के साथ नहीं निभा पाता जितना कि उसने निभाया है। यदि देवताओं का दौत्य कार्य स्वीकार कर नल दमयन्ती की ओर से पूर्णतया विरक्त हो गया होता तो सम्कृत साहित्य के अधिकांश पात्रों की भाँति नल अतिमानव तो बन जाता परन्तु वह मानव नहीं रहता जैसा कि वह है। और वैसी स्थिति में नैषध का रूप भी कुछ और ही होता।

इसी प्रकार नल के द्वारा किए गए दमयन्ती-सौंदर्य-वर्णन को वासनात्मक विवरण-मात्र कह दिया गया है। परन्तु अभिनव के अनुसार नायिकाओं के सात्विक अलंकारों का जिनमें नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों का सौंदर्य-वर्णन भी आ जाता है काव्य में अपना विशेष महत्त्व होता है

एतदुक्तं भट्टतोतेन—न चालङ्कृतीनामत्र लक्षणं महदाश्चर्यमिति—ते च दृष्टा-सन्त उत्तमेव शृंगाररसममुचितेति विभावादिसुविवेकहीन व्यभिचारिरूपदशा-न्तरसम्पर्शशून्य विशेषविरहितमेव सामान्यरूप शृंगारमभिनयति (न्ति)—किं च यत्किंचिदंगनानां शृंगारोचित चेष्टितमभिनीयते तत्रैव चेष्टालंकारा अवश्यम-भिनेया इति सामान्यवत्सर्वावस्थानुयायित्वनाभिनीयत इति।

ना० शा० अभि० अध्याय २२ पृ० १५३।

इसी प्रकार आधुनिक समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी शिख-नख सौंदर्य-वर्णन को सुखानुभूति का अभिवर्धक माना है

"नख-शिख में केवल नायिका के रूप का वर्णन होता है। पर उसमें भी रूप-चित्रण का कोई प्रयास हम नहीं पाते। केवल विलक्षण उत्प्रेक्षाओं और उपमानों की भरमार पाते हैं। इन उपमानों के योग द्वारा अंगों की सौंदर्य भावना से उत्पन्न सुखानुभूति में अवश्य अभिवृद्धि होती है। पर रूप नहीं निर्दिष्ट होता। काव्य में मुख, नेत्र और अधर आदि के साथ चन्द्र, कमल और विद्रुम आदि के लाने का मुख्य उद्देश्य वर्ण, आकृति आदि का ज्ञान कराना नहीं बल्कि कल्पना में इन्हें भी रखकर सौंदर्यगत आनन्द के अनुभव को तीव्र करना है।"

रसमीमांसा पृ० ११५-११६।

यदि उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखकर नैषध के सप्तम सर्ग पर दृष्टिपात किया जाए तो श्री एस० एन० दासगुप्त तथा श्री एस० के० दे के द्वारा नैषध के सप्तम सर्ग के बारे में की गई टिप्पणियों का औचित्य संदेह-शून्य नहीं रह जाता

श्रीहर्ष इज केयरफुल, हाउएवर, टु सी दैट हिज नर्वस प्रीअक्यूपेशन्स इन

नो वे रेण्डर्ड हिम अनफिट फार टीलिंग विद दी रिफाइनमेन्टम् आफ दी एरोटिक आर्ट। वन हाल कैन्टा (७) फार ट्वन्टेन्स, आफ मोर दैन ए हन्ड्रेड स्टैन्ज़ाज़ इम्पीड्स दी प्राग्रेस आफ दी नरेटिव बाई ए माइन्यूट ऐण्ड फ्रैंकली सेन्सुअस इन्वेन्टरी आफ दमयन्तीज़ बियुटी आफ लिम्ब्स, कमेन्सिंग फ्राम दी हेयर आफ दी हेड एण्ड एण्डिंग विद दी टो नेल्स आफ हर फीट, बट ह्वाट इज़ इण्डिकेटिव आफ सिंगुलर लैक आफ टस्ट इज़ दैट दी डिस्क्रिप्शन कम्स फ्राम नल हिमसेल्फ टू ब्यूज़ हर फ्राम ऐन इनविज़िबुल डिस्टन्स। हि० आ० स० लि० पृ० ३२८।

सम्भाषण

जहा पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओ के द्वारा प्रेम-पूर्ण सम्भाषण-मात्र के द्वारा सभोग-सुख का अनुभव किया जा रहा हो वहा पर सम्भाषण सभोग शृगार होता है। प्रेम-पूर्ण वार्तालाप के समान ही अपने प्रिय के गुणो का उसके सन्मुख वर्णन करना तथा अपने गुणो का प्रिय के मुख से श्रवण करना भी कम सुखकर नही होता और इस प्रकार किए गए गुण वर्णन भी सम्भाषण-स्वरूप ही होते हैं। अत सम्भाषण को वार्तालाप-स्वरूप तथा गुणवर्णन-स्वरूप इन दो प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है। सम्भाषण के इन दोनो प्रकारो को नायक-नायिकाओ के पारस्परिक प्रेमालाप तथा गुण-स्तुति की सज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है।

श्रीहर्ष ने नैषध मे उपर्युक्त उभय-विध सम्भाषणो की योजना की है। परन्तु उन्होने नल-दमयन्ती के पारस्परिक प्रेमालाप की अपेक्षा उन दोनो मे से किसी एक के द्वारा दूसरे के लिए प्रेम-पूर्ण वचनो का प्रयोग अधिकतर कराया है। वस्तुत नायक-नायिका दोनो मे पारस्परिक प्रेमालाप तभी कराया जा सकता है जब कि नायिका ने लज्जा का बन्धन शिथिल कर दिया हो। परन्तु श्रीहर्ष ने दमयन्ती को मुग्धा नायिका का स्वरूप प्रदान किया है जो समधिक लज्जावती होती है। इसीलिए उन्होने नल-दमयन्ती के पारस्परिक प्रेमालाप की योजना कम की है। परन्तु जब दमयन्ती का नल से घनिष्ट सपर्क हो जाता है तो वह प्रेम-पूर्ण वचनो मे नल को भी मात दे देती है।

चिरकाल तक स्वय चन्द्रोदय-वर्णन करने के उपरान्त नल चाहता है कि दमयन्ती भी चन्द्र-वर्णन करे। अत वह चुटकी लेता हुआ दमयन्ती को चन्द्रमा का वर्णन करने के लिए प्रेरित करने लगता है

> त्वदुक्तिरोधे स वधू बभाषे सूक्तिस्थलासक्तिनिबद्धमौनाम्।
> मुखाभ्यसूयानुशयादिवेन्दौ केय तव प्रेयसि मूकमुद्रा॥
> शृगारभगारमुखाकरेण वर्णस्त्वयानूपय कर्णपूरौ।
> त्वच्चारुवाणीरसवेणितीरतृणानुकार खलु कोषकार ॥ नै० २२-५६-५७।

नल के इन प्रशंसा-परक प्रेम-पूर्ण वचनों को सुनकर भी यदि दमयन्ती चन्द्र-वर्णन न करती और मौन बनी रहती तो वह नल की इस आशंका को स्वयं सत्यापित कर देती कि उसका मुख चन्द्रमा से स्पर्धा करता है। अत एव वह चन्द्र-वर्णन करने लगती है

अत्रैव वाणीमधुना तवापि श्रोतुं समीहे मधुनः समानाम्।
इति प्रिय-प्रेरितया तयाऽथ प्रस्तावमारम्भि शशि-प्रशस्तिः ॥

नै० २२-५८।

दमयन्ती के द्वारा किए गए चन्द्र-वर्णन को सुनकर हर्ष तथा विस्मय-युक्त नल सुमधुर वाणी के श्रवण-स्वरूप दमयन्ती के मुख की प्रशंसा करते हुए उसके मुख का चुम्बन कर लेता है

वाणीभिराभिः परिपक्त्रिमाभिरमन्दमानन्दजडं चकार।
मुहूर्तमाश्चर्यरसेन सैषा निमीलितदृष्टिः स्तिमितं च तं सा ॥
इत्थं मुखादुद्गिरमाविरासीत् पीयूषधारामधुरेति जल्पन्।
अचुम्बदस्याः स मुखेन्दुबिम्बं सवादवदश्रियमम्बुजानाम् ॥

नै० २२-१०१-१०२।

नल के मुख से अपनी वाणी की प्रशंसा सुनकर दमयन्ती स्मितयुक्त तो हो जाती है। परन्तु इस प्रशंसा को सुनकर वह विह्वल नहीं हो जाती। अपितु नल ने जिस उक्ति का आश्रय लेकर उसे चन्द्र-वर्णन करने के लिए विवश कर दिया था अवसर पाते ही दमयन्ती उस उक्ति से भी अधिक प्रेरक वचनावली का प्रयोग करने से नहीं चूकती।

प्रियेण साथ प्रियमेवमुक्ता विदर्भभूमीपतिवंशमुक्ता।
स्मिताङ्कुजातं वितताऽऽर तारा दिव स्फुरन्तीव कृताऽवतारा ॥
स्ववर्णना न स्वयमर्हतीति नियुज्य मां स्वामुखमिन्दुरूपम्।
स्थानेऽस्तु दास्ये नियतेन प्रशास्तौ परागुरागाहमिति स्म साह ॥

नै० २२-१०३-१०४।

दमयन्ती की वचन-भंगिमा को सुनकर नल को भी चन्द्र-वर्णन प्रारम्भ कर देना पड़ता है

तवेरितं प्राणसम सुमुख्या गिरः परीहासरसोर्मिराशेः।
भूलोकसारः स्मितवाक् सुधाम्भः भणिष्यन् सुभगो बभाण ॥

नै० २२-१०५।

नल-दमयन्ती के उपयुक्त प्रेमपूर्ण पारस्परिक सम्भाषण में नल तथा दमयन्ती दोनों ही आलम्बन विभाव हैं। दोनों की चेष्टाएँ तथा काव्य एवं चन्द्रोदयादि उद्दीपन विभाव हैं। दोनों के एक-दूसरे के प्रति प्रयुक्त प्रेम-पूर्ण वचन तथा दोनों की प्रसन्नता आदि अनुभाव हैं। हर्ष, विस्मय तथा वितर्कादि व्यभिचारी भावों में

परिपुष्ट संयुक्त-बुद्धि-युक्त नल-दमयन्ती उभयगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है। नल-दमयन्ती-गत इस रति स्थायी भाव की व्यंजना प्रधान-रूप से उनके पारस्परिक सम्भाषण से होती है। अत उसे सम्भाषण सम्भोग शृंगार रस के नाम से अभिहित किया जाएगा।

यद्यपि यहाँ पर नल के द्वारा किए गए दमयन्ती-मुख-चुम्बन का भी उल्लेख किया गया है। परन्तु नल-दमयन्तीगत रति वासना की प्राधान्येन व्यंजना उनके पारस्परिक सम्भाषण से ही होती है। मुख-चुम्बन का प्रयोग तो मधुर वाणी के उद्गम-स्वरूप मुख की उत्कृष्टता को प्रकट करने के लिए किया गया है। लोक-व्यवहार में भी यह देखा जाता है कि लोग अच्छी वस्तु को चूम लेना चाहते हैं। अत उपर्युक्त प्रकरण को मुख्त सभाग व्यंजक नहीं कहा जा सकता।

नल-दमयन्ती में से किसी एक के द्वारा दूसरे के लिए प्रेमपूर्ण वचनों का प्रयोग श्रीहर्ष ने अनेक स्थानों पर कराया है। दमयन्ती के द्वारा नल के आतिथ्य में प्रयुक्त प्रिय-वचनों की ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है। काम-विकार से युक्त दमयन्ती के यह वचन यद्यपि आतिथ्य-योग्य वचनों से प्रारम्भ होते हैं। परन्तु शीघ्र ही वे आतिथ्य के व्याज से नल के सौंदर्य-वर्णन की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

दमयन्ती को वह अतिथि अर्थात् नल साक्षात् कामदेव प्रतीत हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था नल ने पुरूरवा तथा अश्विनी कुमारों की शोभा को तथा कामदेव के दर्प को तिरस्कृत कर दिया हो। उसे नल की सौंदर्य-कीर्ति हंसों से भी अधिक उज्ज्वल तथा उसकी श्री कामदेव से भी कहीं अधिक प्रतीत होती है। अत एव वह वन्दी की भूमिका को हँसी-खुशी से अपनाकर नल की प्रशंसा करने लगती है। नै० ८-३२-३६।

नल का समग्र सौंदर्य ही नहीं अपितु उसके अवयवों में निहित सौंदर्य भी दमयन्ती को अलोक-सामान्य प्रतीत होता है। अत एव वह उसके मुख की चन्द्रमा से, नेत्रों की कृष्णसार मृग के नेत्रों से, भ्रुकुटियों की कामदेव के चाप से तथा केशों की चामर-गुच्छ से तुलना करते हुए उन अवयवों में निहित सौंदर्य की स्तुति तो करने लगती है। परन्तु उसके वचन-विन्यास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि विभिन्न उत्तमोत्तम उपमानों का सन्दर्भ देते हुए भी वह नल के सौंदर्य को अपनी इच्छा के अनुसार नहीं स्थापित कर पाती।

नै० ८-३७-४०।

नल किस लोक में उत्पन्न हुआ था इसे तो वह नहीं जान पाती। परन्तु उसके विचार से वह लोक जिसमें उसने जन्म लिया होगा तथा वह व्यक्ति जिस के कारण नल पृथ्वी पर गमन कर रहा था निश्चित रूप से प्रशंसा करने योग्य थे। उसे उसके समान सौंदर्य-सम्पन्न यदि कोई प्रतीत होता है तो केवल नल

ही। अन्त में वह उसके अप्रतिम सौंदर्य को साक्षात् रूप में अपनी इच्छानुसार देख लेने के कारण अपने नेत्रों को सफल मानती हुई नल की वाणी सुनने के लिए उत्सुक हो जाती है। नै० ८-८८-८६।

उपर्युक्त प्रकरण में केवल दमयन्ती ने ही नल के लिए प्रिय वचनों का प्रयोग किया है। नल दमयन्ती के उन वचनों के अनुरूप उसे कोई उत्तर न देकर मन में ही आनन्दित होता रहता है

इत्य मधूत्थ रसमुद्गिरन्ती तदोष्ठबन्धूकधनुर्विसृष्टा।
कर्णात् प्रसूनाशुगपञ्चबाणी वाणीमिषेणास्य मनो विवेश॥
आमज्जदाकण्ठमसौ सुधासु प्रिय प्रियाया वचन निपीय।
द्विषन् मुखेऽपि स्वदते स्तुतिर्या तन्मिष्टता नेष्टमुखे त्वमेया॥

नै० ८-९०-९१।

दमयन्ती के द्वारा की गई नल की गुणस्तुति में नल आलम्बन विभाव है। उसका सौंदर्य उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती के द्वारा की गई नल-गुण-स्तुति अनुभाव है। हर्ष मति वितर्क, स्मृति तथा विस्मयादि भावों से परिपुष्ट सयुक्त-बुद्धियुक्त दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे नल-गुणस्तुति-स्वरूप सभाषण से प्रत्यक्ष अभिव्यक्त होने के कारण सम्भाषण सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

दमयन्ती के द्वारा किए गए नलगुण-वर्णन के उपरान्त दमयन्ती आलम्बन विभाव का रूप ले लेती है। उसके द्वारा किया गया नल-गुण-वर्णन उद्दीपन विभाव बन जाता है और वे नलगत रतिवासना के उद्बोधक बन जाते हैं। जिसमें नलगत काम-विकार तथा आनन्दादि अनुभावो एव हर्षादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट तद्गत रति भाव की व्यजना होती है। नलगत इस रति स्थायी भाव को भी सभाषण-स्वरूप गुणवर्णनादि में उद्बुद्ध होने के कारण सम्भाषण सभोग शृगार के नाम से ही अभिहित किया जाएगा।

नैषध में नल ने दमयन्ती के लिए प्रिय वचनों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है। दमयन्ती ने उपर्युक्त नल-गुण-स्तुति ऐसे अवसर पर की है जब वह अपने सम्मुख उपस्थित व्यक्ति से पूर्णतया परिचित नहीं थी। अत उसने आतिथ्य के व्याज से नल की प्रशसा निसकोच होकर कर ली थी। परतु नल से परिचित हो जाने के उपरान्त वह उसके सामने उसके गुणों की फिर कभी भी स्तुति नहीं करती। क्योंकि वह मुग्धा जो थी। परन्तु नल के सामने वैसी कोई बाधा नहीं थी। अत उसे जहाँ कहीं भी अवसर मिलता है दमयन्ती की स्तुति करने लगता है।

दूत-रूप नल देवताओं का सदेश निवेदित करते हुए यथासभव वे सभी प्रयत्न करता है जिनमें वह दमयन्ती को देवताओं में से किसी एक देवता का वरण

करने के लिए तैयार कर सकता था। परन्तु उसके इन प्रयत्नों का सचालन उस की कर्तव्य भावना कर रही थी। मन से वह दमयन्ती को दूर नहीं कर सका था। अत एव वह दमयन्ती के करुण क्रन्दन को सुनकर उद्भ्रांत हो जाता है और अपने कर्तव्य को भूलकर दमयन्ती के सन्मुख अपना प्रणय-निवेदन करने लगता है

इति प्रियाकाकुभिरुन्मिषद् भृशं दिगीशदूत्येन हृदि स्थिरीकृत ।
नृप स योगेऽपि वियोगमन्मथ क्षण तमुद्भ्रान्तमजीजनत् पुन ॥
महेन्द्रदूत्यादि समस्तमात्मनस्तत स विस्मृत्य मनारथस्थितै ।
क्रिया प्रियाया ललितै करम्बिता वितर्कयन्नित्थमलीकमालपत् ॥
नै० ९-१०१-१०२।

नल की इन प्रलापोक्तियों में उसका दमयन्ती-विषयक-अनुराग जिसे उसने अभी तक मथन कर रक्खा था उद्दाम वेग से प्रवाहित होने लगता है। उसके प्रथम उद्गार में ही यह प्रतीत होता है कि जैसे वह अपने उस अनुराग-प्रवाह में दमयन्ती को आत्मसात्-सा कर लेना चाहता है

अयि प्रिये! कस्य कृते विलप्यते विलिप्यते हा मुखमश्रुबिन्दुभि ।
पुरस्त्वयालोकि नमन्नयं न किं तिरश्चलल्लोचनलीलया नल ॥ नै० ९-१०३।

श्रीहर्ष जैसे दार्शनिक का नल जैसा पात्र केवल दमयन्ती के अश्रुबिन्दुओं को गिरता हुआ देखकर ससार को ससार मानने लगता है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि दमयन्ती के अविरल अश्रुबिन्दुओं को प्रवाहित होता हुआ देखकर उसका हृदय भी द्रवित-सा होने लगता है

चकास्ति बिन्दुच्युतकातिचातुरी घनाश्रुबिन्दुस्रुतिकैतवात् तव ।
ससारतारक्षि समास्मात्मना ततोऽपि ससारमसशय यत ॥
अपाम्तपाथोऽहि शायिनि करे करोषि लीलाकमल किमाननम् ।
ततोऽपि हार क्रियदश्रुण सवैरदापनिर्वासितभूषणे हृदि ॥
नै० ९-१०४-१०५।

इस प्रकार अपने अनुराग का निवेदन कर देने के उपरान्त भी नल जब देखता है कि दमयन्ती अभी प्रसन्न नहीं हो रही है तो वह सोचता है कि कदाचित् दमयन्ती उस पर रुष्ट हो गई है। परन्तु मान को शान्त कर लेने में वह कुछ कम माहिर तो था नहीं। देखिए वह दमयन्ती के मान को शान्त करने के लिए क्या-क्या कर सकता है

दृशोरमगल्यमिदं मिलज्जल करेण तावत् परिमार्जयामि ते ।
अथापराधं भवदङ्घ्रिपङ्कजद्वयीरजोभि सममात्ममौलिना ॥
मम त्वदच्छाच्छनखामृतद्युते किरिटमाणिक्यमयूखमञ्जरी ।
उपासनामस्य करोतु रोहिणी त्यज त्यजाकारणरोषणे रुषम् ॥

तनोपि मान मयि चेन्मनागपि त्वयि श्रये तद्बहुमानमानत ।
विनम्य वक्त्र यदि वतमे क्रियन्नमामि ते चण्डि । तदा पदावधि ॥
नै० ९-१०६-१०८ ।

इन उपायों का अवलम्ब ले लेने के उपरान्त भी जब दमयन्ती को वह नहीं प्रसन्न कर पाता तो वह दमयन्ती को उलाहना देने लगता है। परन्तु उसका उलाहना कितना मधुर है

प्रभुत्वमभ्यनुगृहाण वा न वा प्रमाणमात्राधिगमेऽपि क श्रम ।
क्व याचना कल्पनामि मा प्रति क्व दृष्टिदान तव बद्धमुष्टिना ॥
नै० ९-१०९ ।

उसे आश्चर्य होता है कि एक वह है जो कामदेव के बाणों से जर्जरित हो गया है। परन्तु दमयन्ती पर वे बाण असर ही नहीं करते

स्मरेषुबाधा सहसे मृदु कथ हृदि द्रढीय कुचमवृते तव ।
निपत्य वैसारिणकेतनस्य वा व्रजन्ति बाणा विमुखात्पतिण्णताम् ॥
नै० ९-११० ।

यदि दमयन्ती का हृदय कठोर नहीं था तो कम से कम अब तो उसे प्रसन्न हो जाना चाहिए था। और यदि दमयन्ती को अपनी प्रसन्नता प्रकट करना न आता हो तो लीजिए दमयन्ती को वह ऐसे उपाय भी बता देता है। वह अपने स्मित, कटाक्ष तथा मधुर वाणी में से किसी भी उपाय का अवलम्ब लेकर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर सकती थी

स्मितस्य सभावय सृक्वणा कणान् विधेहि लीलाचलमचल भ्रुव ।
अपाङ्गरथ्यापथिकी च हेलया प्रसह्य सन्धेहि दृश मर्मोपरि ॥
समापय प्रावृषमश्रुविप्रुषा स्मितेन विश्राणय कौमुदीमुद ।
दृशाविति सेलतु खञ्जनद्वयी विलासि पङ्केरुहमस्तु ते मुखम् ॥
सुधारसाद्वेलन केलिमश्ररम्जा सृजान्नमर्म कर्णकूपयो ।
दृशो मदीय मदिराक्षि कारय स्मितश्रिया पायमपारणाविधिम् ॥
नै० ९-१११-११३ ।

यदि दमयन्ती इन उपायों के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय के द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट करना चाहती हो तो वह उसे और भी अधिक प्रसन्नता को प्रकट करने वाले उपाय बताने को तैयार है जो दमयन्ती के अनुरूप भी थे

ममासनार्धे भव मण्डन न न प्रिय ! मदुत्सगविभूषण भव ।
अह भ्रमादालपमग मृष्यता विना ममोर क्वतमत्त्वमासनम् ॥
अधीतपत्राशुगवाणवचने स्थिता मदन्तर्बहिरेपि चेदुर ।
स्मराशुगेभ्यो हृदय बिभेतु न प्रविश्य तत्त्वन्मयसम्पुटे मम ॥

परिष्वजस्वानवकाशदाणता स्मरस्य लग्ने हृदयद्वयेऽस्तु नौ।
दृढा मम त्वत्कुचयो कठोरयोरुरस्तटीय परिचारिकाचिता॥
तवाधराय स्पृहयामि यन्मधुस्रवै श्रव माक्षिकमाक्षिका गिर।
अधित्यकासु स्तनयोस्तनोतु ते ममेन्दुलेखाभ्युदयाद्भुत नख॥
नै० ६-११४-११७।

इसी प्रकार दमयन्ती की चाटुकारिता करता हुआ नल दमयन्ती से कृपा करने की प्राथना कर ही रहा था कि दमयन्ती प्रकृतिस्थ हो जाती है। और दमयन्ती को प्रकृतिस्थ देखकर वह भी होश म आ जाता ह

गिरानुकम्पस्व दयस्व चुम्बनै प्रसीद शुश्रूषयितु मया कुचौ।
निशेव चान्द्रस्य करात्करस्य य मम त्वमेवासि नरस्य जीवितम्॥
मुनिययात्मानमथ प्रबोधवान् प्रकाशयन्त स्वमसाववुध्यत।
अपि प्रपन्ना प्रकृति विलोक्य तामवाप्तसम्कारनयामृजुर्दृगि॥
नै० ६-१२०-१२१।

नल के उपर्युक्त प्रणय-निवेदन मे दमयन्ती आलम्बन विभाव है। उसके गाद-नादि उद्दीपन विभाव है। नल का प्रणय-निवेदन अनुभाव है। हष, आवेग, औत्सुक्य तथा मति आदि व्यभिचारी-भावो से परिपुष्ट सयुक्त बुद्धि-युक्त नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे सभाषण-स्वरूप नल के प्रणय-निवेदन से प्राधान्येन अभिव्यक्त होने के कारण सभाषण सभाग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

चिरकाल तक सुरत-जन्य आनन्दोपभोग करने के उपरान्त नल-दमयन्ती दोनो शयन करने के लिए शय्या पर लेट जाते है और नल दमयन्ती से प्रिय भाषण करने लगता है

सुममाप शयनीययोस्तया स्वैरमास्यत वच प्रिया प्रिय। नै० १८-१४२।

नल ने देवताओं का दूत बनकर दमयन्ती का बहुत कष्ट दिया था। परन्तु उसके कथनानुसार उसने यह कष्ट इच्छा से न देकर धर्म के भय से दिया था। परन्तु अब वह उसका परिमार्जन करने के लिए जीवन पर्यन्त दमयन्ती का दास बना रहना चाहता है

देवदूत्यमुपगत्य निर्दय धर्मभीतिकृततावदागस।
अस्तु मेयमपराधमार्जना जीवितावधि नलस्य दस्यता॥ नै० १८-१४३।

नल के वचनो पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्रिय-वचनो के प्रयोग मे वह बहुत ही कुशल है। देखिए वह दमयन्ती के दर्शन करने उसको प्रसन्न करने तथा उसका आलिगन करने को कितना गौरव प्रदान करता है

स क्षण सुमुखि यत्त्वदीक्षण तच्च राज्यमुर येन रज्यसि।
तन्नरस्य सुधयाभिषेचन यत्त्वदगपरिरम्भविभ्रम॥ नै० १८-१४४।

वह दमयन्ती के सम्भोग को चाहता है। परन्तु क्यों ? ताकि वह विष्णु तथा शङ्कर जी के समान सुख प्राप्त कर सके। इसी प्रकार वह अपने को तो दमयन्ती का क्रीतदास मानता है

> श्रम किं हृदि हरे प्रियार्पण किं शिवार्धघटन शिवस्य वा।
> कामये नव महेषु तन्वि तन्नवय सरिदुदन्वदन्वयम् ॥
> दीयतां मयि दृशा ममेति धीर्वक्तुमैवमवकाश एव कः।
> यद्विहाय तृणवद्दिवस्पतिं क्रीतवत्यसि दयार्पणेन माम् ॥
>
> नै० १८-१४५-१४६।

इसी प्रकार प्रिय वचनों का प्रयोग करते हुए नल अन्त में दमयन्ती को शयन करने के लिए प्रेरित करने लगता है और दमयन्ती प्रसन्नता से अपने नेत्र बन्द कर लेती है

> मम मध्य विरहेऽस्मि जीविका यैव वामथ रताय तत्क्षणम्।
> हन्त दन्त इति स्म्ट्यावयोर्निद्रयापि किमु नोपपद्यते ॥
> ईदृश निगदति प्रिये दश सम्मदात् कियदिय न्यमीलयत्।
> प्रातरात्मपति कोकिले कल जागरादिव निशा कुमुद्वती ॥
>
> नै० १८-१५०-१५१।

यहाँ पर भी दमयन्ती आलम्बन है। शयनागारादि उद्दीपन विभाव हैं। नल के प्रिय वचन अनुभाव हैं। हर्ष, स्मृति तथा मति आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट सहृदय बुद्धि-युक्त नलगत रति स्थायीभाव व्यङ्ग्य है। जिसे नल के प्रिय-वचनों से प्राधान्येन अभिव्यक्त होने के कारण सम्भाषण सम्भोग शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

इसी प्रकार दमयन्ती के मान को शान्त करने के लिए नल उसकी प्रिय वचनों से स्तुति करने लगता है। नल को प्रणाम करने के लिए उद्यत देखकर दमयन्ती अपने कटाक्षों से उसे देख रही थी तथा हाथों से उसके हाथों को रोक रही थी। नल उसके कटाक्षों को देखकर मोहित-सा हो जाता है और उसकी स्तुति करने लगता है

> अथ वाचन ततस्तन्वी निषधानामधीश्वर।
> तदपाङ्गचलनारम्भलताकरवणीकृत ॥ नै० २०-१७।

पहले तो वह उसके कटाक्षों की प्रशंसा करता है। उसके उपरान्त उसके रोष की दाद देने लगता है

> कटाक्षकपटारब्धदूरन्यस्तरहस्या।
> दृशा भीतया निवृत्त ते कर्णकूप निरुप्य किम् ॥
> सरोषापि सरोजाक्षि ! त्वमुदेषि मुदे मम।
> तप्तापि शतपत्रस्य सौरभायैव सौरभा ॥ नै० २०-१८-१९।

अन्त मे वह उसके मुख व वाणी की स्तुति भी करने लगता है

जेतुमिन्दो भवद्वक्त्रबिम्बविभ्रमविभ्रमम् ।
शके शशाक्मानके भिन्नभिन्नविधिर्विधि ॥
ताम्रपर्णीनटोत्पन्नैर्मौक्तिकैरिन्दुकुक्षिजैं ।
बद्धस्पधतरा वर्णा प्रसन्ना स्वादवस्तव ॥
त्वद्गिर क्षीरपाथोधे मुधयैव सहास्थिता ।
अद्य यावदहा धावद्दुग्धलेपलवस्मिता ॥ नै० २०-२०-२२ ।

यहा पर भी दमयन्ती आलम्बन विभाव ह। उसका रोष आदि उद्दीपन विभाव है। नल के प्रिय वचन अनुभाव है। हर्ष, मति तथा वितर्क आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट सयुक्त-बुद्धि-युक्त नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे नल के प्रिय वचनो से प्राधान्येन अभिव्यक्त होने के कारण सभाषण सम्भोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी श्रीहर्ष ने नल के द्वारा दमयन्ती के लिए प्रिय वचनो का प्रयोग कराकर सम्भाषण सभोग शृगार की आस्वाद्य व्यजना की है।

सुरत तथा उसके भेद

जहा पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका विभिन्न प्रकार के सुरत व्यापारो को सम्पन्न कर सभोग सुख का अनुभव करते ह वहाँ सुरत सभोग शृगार होता है। सुरत पद आलिगनादि चतु षष्टि का बोधक होता है। कामशास्त्र के आचार्यो ने आलिगनादि चतु षष्टि को सप्रयोग का अग माना है

सप्रयोगाग चतु षष्टिरित्याचक्षते— । का० सू० पृ० २१६ ।

आलिगनादि चतु षष्टि के निर्देशक बाभ्रव्य मतानुयायी ह। उनके अनुसार सुरत के आलिगनादि आठ अग होते ह और इन आठो अगो के आठ-आठ प्रकार होने है

आलिगनचुम्बननखच्छेद्यदशनच्छेद्यसवेशनसीत्कृतपुरुषायितौपरिष्टकानामष्टानामष्टविकल्पभेदादष्टावष्टकाश्चतु षष्टिरिति बाभ्रवीया ।का०सू०पृ० २२०।

परन्तु वात्स्यायन मुनि ने बाभ्रव्य सम्मत चतु षष्टि को प्रायोवाद के रूप मे स्वीकार किया है। उनके अनुसार सुरत के आलिगनादि अगो के बारे मे यह नही कहा जा सकता कि प्रत्येक अग के आठ-आठ प्रकार ही होते ह। इसी प्रकार उन्होने आलिगनादि से भिन्न प्रहणनादि को भी सुरत का अग माना है

विकल्पवर्गाणामष्टाना न्यूनाधिकत्वदर्शनात् प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्ररतादीनामन्येषामपि वर्गाणामिह प्रवेशनात्प्रायोवादोऽयम्। यथा सप्तपर्णो वृक्ष पञ्चपर्णो बलिरिति वात्स्यायन ।का० सू० पृ० २२० ।

कामसूत्र पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि इसमें आलिंगनादि के विभिन्न प्रकारों का निर्देश विभिन्न अवस्थाओं, आचार्यों के विभिन्न मतों तथा अनेक देशों की भिन्न-भिन्न प्रथाओं आदि के आधार पर किया गया है। और अवस्थाएं, विद्वानों के मत तथा देशीय प्रथाएँ अनन्त होती हैं। अतः सुरत के विभिन्न अंगों तथा उन अंगों के विभिन्न प्रकारों के बारे में वात्स्यायन का अभिमत समुचित ही प्रतीत होता है।

वात्स्यायन के उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने सुरत के आलिंगनादि में भिन्न ग्रहणनादि अंगों का निर्देश करते हुए भी बाभ्रव्य सम्मत आलिंगनादि अंगों को स्वीकार कर लिया है। परन्तु वे आलिंगनादि अंगों के आठ-आठ प्रकारों की इयत्ता से असहमत हैं। आलिंगनादि के कितने प्रकारों का स्वीकार करना चाहिए कितनों को नहीं इस तथ्य का निर्णय करना हमारे लिए आवश्यक नहीं है। क्योंकि आलिंगनादिकों के प्रकार चाहे जितने ही क्यों न होते हों वे आलिंगनादि स्वरूप अवश्य होंगे। अतः नैषधगत सुरत-व्यापारों पर प्रकाश डालते हुए यदि हम नैषधगत सुरत के आलिंगनादि अंगों पर ही विचार कर लें तो हमारा लक्ष्य पूर्ण हो सकता है। अतः हम यहाँ पर केवल नैषधगत सुरत के आलिंगनादि अंगों की योजना तक ही अपने विवेचन को सीमित रखेंगे।

श्रीहर्ष ने नैषध में सुरत के विभिन्न अंगों की विशद योजना की है। अष्टादश सर्ग तो नल-दमयन्ती के द्वारा सम्पादित विभिन्न प्रकार की सुरत क्रीडाओं से ही भरपूर है। नल-दमयन्ती के द्वारा सम्पादित विभिन्न प्रकार के सुरत व्यापारों के बारे में श्रीहर्ष का कहना है कि वे महाकवियों की सूक्ष्म बुद्धि तथा पांसुलाओं के बहु-विध अभ्यासों से भी परे थे

तत्र सौरसुरभूरुरे तयोरागविरामुरय कामकेलय।

ये महाकविभिरप्यवीक्षिता पांसुलाभिरपि ये न शिक्षिता॥ नै० १८-२१।

श्रीहर्ष का उपर्युक्त कथन दर्पोक्ति-मात्र नहीं है। उन्होंने अपने इस कथन को अन्वर्थ करने का प्रयास भी किया है और इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रयास में वे सफल भी हुए हैं। कामसूत्र में निर्दिष्ट विभिन्न उपकरणों से सुसज्जित नैषध का नव निर्मित भवन नल-दमयन्ती के कामुक आचरणों तथा उन दोनों के द्वारा सम्पादित विभिन्न प्रकार की काम-केलियों के कारण कामसूत्र की अभ्यास-शाला-सा बन गया है।

सुरत के उपर्युक्त विभिन्न प्रकारों की काव्य में समन्वित रूप से तथा एकांत रूप से उभय-विध योजना की जा सकती है। क्या कि कामोन्मत्त नायक-नायिका एक समय में ही आलिंगनादि अनेक व्यापारों में भी प्रवृत्त हो सकते हैं तथा किसी एक व्यापार में भी। परन्तु सुरत के विभिन्न प्रकारों की समन्वित योजना में भी

यदि किसी एक प्रकार की प्रधानता प्रतीत हो रही हो तो उस स्थल को उस विशिष्ट सुरत प्रकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है। श्रीहर्ष ने नैषध में सुरत के उपर्युक्त प्रकारों की समन्वित तथा एकांत उभय-विध योजना की है। उदाहरण स्वरूप अधोलिखित संदर्भों को उद्धृत किया जा सकता है

आलिंगन

नल-दमयन्ती को परस्परालिंगन करने का अवसर तो परिणय के पूर्व ही प्राप्त हो गया था

अन्योन्यमन्यत्रवदीक्षमाणौ परस्परेणाध्युषितेऽपि देशे।
आलिंगितालीकपरस्परान्तस्तत्त्य मिथस्तौ परिषस्वजाते ॥ नै० ६-५१।

परन्तु उसकी खुली छूट उन्हें परिणय के बाद ही मिल पाती है। देखिए नल किस प्रकार दमयन्ती को अपने पास लाता है

सन्निपातवपि निजे निवेशितामालिभिः कुसुमशस्त्रशास्त्रवित्।
आनयद्व्यवधिमानिव प्रियामङ्कपालिवलयेन संनिधिम् ॥ नै० १८-४०।

नायक-नायिकाओं में से यदि एक आलिंगन कर रहा हो तथा दूसरा निश्चेष्ट हो तो आलिंगन में उतना माधुर्य नहीं आता जितना कि दोनों के सचेष्ट होने पर। और यदि कहीं दोनों की चेष्टाएँ एक-दूसरे के विपरीत हों तो फिर क्या कहना

वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम्।
एककर्दिचरमरौत्सि बालया तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया॥ नै० १८-४३।

कृत्रिम बाधा के समान प्राकृतिक बाधा भी आलिंगन में विघ्न बन सकती है। परन्तु क्या वह भी कृत्रिम बाधा के समान ही सुखद होती है या नहीं? देखिए

सा नताङ्गि परिरम्भदायिनी गाढ़ितुं हृदुर प्रियस्य न।
चक्षमे न च न नगुरभुवस्तुङ्गपीनकुचदूरता गतम्॥ नै० १८-६५।

नल-दमयन्ती के आलिंगन की उपर्युक्त झलक यदि आलिंगन-कालीन उनके अवयवों की शोभा पर दृष्टिपात न कर लिया जाए तो अधूरी ही रह जाएगी। देखिए श्रीहर्ष का आलिंगन में आबद्ध नल दमयन्ती की बाहुएँ तथा वक्ष कैसे प्रतीत होते हैं

बाहुवल्लिरपरिरम्भणच्छलौ या परस्परमपीडयत् तयोः।
आस्त हननविनिर्मृणालजः पाश एव हृदयेशयस्य सः॥
वल्लभेन परिरम्भपीडितौ प्रेयसीहृदि कुचाववापतुः।
केतकीमदनयाप्याश्रय तत्र वृत्तमिलितोपधानताम्॥ नै० १८-६६-६७।

चुम्बन

आलिंगन के समान ही चुम्बन की भी श्रीहर्ष ने मनोरम योजना की है।

देखिए नल किस प्रकार दमयन्ती को धोखा देकर उसके मुख का चुम्बन करके प्रसन्न होता है

प्रागचुम्बदलिके ह्रियानता ता क्रमादुन्नता कपोलयो ।
तेन विश्वसितमानसा भटित्याननं म परिचुम्ब्य सिष्मिये ॥ नै० १८-४१ ।

ललाट, केश, कपोल, नेत्र, वक्ष, स्तन, ओष्ठ तथा अन्तर्मुख यह चुम्बन के स्थान होते हैं

ललाटालककपोलनयनवक्ष स्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम् । का० सू० २-३-४ ।

इन सभी स्थानो म से ओष्ठ-चुम्बन को और दोनो ओष्ठो में से अधरोष्ठ चुम्बन को कामी सुरत का सर्वस्व समझते है। और देखिए नल इसी रति सर्वस्व का पान करने के लिए किस प्रकार दमयन्ती का राजी कर रहा है

अर्थयदस्मि भवती न याचिता वाग्मिकमधरं पयामि ते।
इत्यमिस्वददुपांशुकाकुवाक्मोपमदहठवृत्तिरेव तम् ॥ नै० १८-४६ ।

नल-दमयन्ती की चुम्बन-कालीन शोभा का प्रकट करने में भी श्रीहर्ष ने अपनी कल्पना का कौशल प्रदर्शित किया है। चुम्बन करते हुए नल-मुख को चन्द्र-बिम्ब के समान कल्पनाकर उन्होंने तत्कालीन सौंदर्य का पूर्ण बिम्ब उपस्थित कर दिया है

अम्बुधे कियदनुत्थित विधु स्वानुबिम्बमिलित व्यडम्बयत् ।
चुम्बदम्बुजमुखीमुख तदा नैषधस्य वदनेन्दुमण्डलम् ॥
चुम्बनाय कलित प्रियाकुच वीरसेनसुतवक्त्रमण्डलम्।
प्राप भर्तु ममृत सुधाशुना मत्तहाटकघटेन मित्रताम् ॥ नै० १८-१०२,१०५।

नखच्छेद्य

नखक्षत का भी सुरत म अपना विशेष महत्त्व होता है। अत नल दमयन्ती को इस सुख मे कैसे वचित रख सकता था। देखिए वह दमयन्ती के उरुओ तथा वक्ष को नखो से किस प्रकार अलकृत कर देता है।

भीमजोरुयुगुल नलार्पित पाणिजस्य मदुभि पदैर्बभौ।
तत्रनास्ति रतिकामयार्जयस्तम्भयुग्ममिव शातकुम्भजम् ॥
यौ कुरगमदकुकुमाचितौ नीललोहितरुचौ वधूकुचौ।
स प्रियोरसि तयो स्वयभुवारारचार नखकिंशुकार्चनम् ॥
नै० १८-८८, १०१।

नखक्षत मे पीडा न होती हो ऐसी बात नही। परन्तु वह पीडा ऐसी नहीं होती कि माधुर्य मे कमी आ जाए। देखिए दमयन्ती किस प्रकार नखक्षतो को देख-देख-कर भाव-विभोर होती है

वीक्ष्य वीक्ष्य करजस्य विभ्रम प्रेयसार्जितमुरोजयोरियम् ।
कान्तमैक्षत ह मस्पृह कियत् कोपसकुचितनेत्रनाचना ॥ नै० १८-१३० ।
नखक्षत करना ही सुखद होता हो ऐसी बात नहीं। देखिए नल दमयन्ती स नखक्षत कराकर भी प्रसन्न हो रहा है

याचनान्न ददती नखक्षत ता विधाय कथयाथचेतमम् ।
वक्षसि न्यमितुमात्ततत्कर स्व विभिद्य मुमुदे म तन्नखै ॥ नै० १८-७२ ।
नल का यह कार्य केवल इमीलिए उमे प्रसन्न नही कर रहा था कि उसने दमयन्ती का भुलावा देकर नखक्षत करा लिया था। अपितु उसके इस कार्य का कुछ और भी उद्देश्य था। वात्स्यायन ने उसके इस काय के महत्त्व की ओर सकेत किया है

पुरुषस्च प्रदेशेषु नखचिह्न र्विचिह्नित ।
चित्त स्थिरमपि प्रायश्चलयत्येव योषित ॥ का० सू० २-४-३० ।
नायकगत नखक्षतो के ममान ही वात्स्यायन ने नायिकागत नखक्षतो की भी महत्ता पर प्रकाश डाला है

नखक्षतानि पश्यन्त्या गूढस्थानेषु योषित ।
चिरोत्सृष्टाप्यभिनवा प्रीतिभवति पगला ॥ का० सू० २-४-२७ ।
नखक्षत परक सदर्भों का नैषध में अपना विशिष्ट स्थान है।

दन्तच्छेद्य

नखक्षतो के ममान दन्तक्षत भी राग-वर्धक होते हैं जैसा कि वात्स्यायन ने स्वीकार किया है

नान्यत्पटुतर किंचिदस्ति रागविवधनम् ।
नखदन्तसमुत्थाना कमणा गतयो यथा ॥ का० सू० २-४-३१ ।
श्रीहर्ष ने नैषध में दन्तक्षतो की भी मनोरम योजना की है। देखिए दन्तक्षत-कालीन दमयन्ती की मुद्रा का कितना स्वाभाविक रूप उन्होंने अकित किया है

ईक्षितोपदिशतीव नर्तितु तत्क्षणोदितमुद मनोभुवम ।
कान्तद तपरिपीडिताधरा पाणिधूननमिय वितन्वती ॥ नै० १८-९४ ।
और एक चित्र यह भी देखिए। दन्तक्षत हो जाता है परन्तु उसे पता तक नहीं चल पाता

सूनसायकनिदेशविभ्रमैरप्रतीतचरवेदनादयम् ।
दन्तदशमधरेऽधिगामुका सास्पृहान्मृदु चमत्चकार च ॥ नै० १८-१२६ ।

सवेशन

श्रीहर्ष ने नैषध म सवेशन सुरत-भेद की भी निर्बन्ध योजना की है। देखिए

नल किस प्रकार दमयन्ती को सुरत के लिए तैयार न होता हुआ देखकर अपने जाल में फसाता है

पीततावकमुखासवोऽधुना भृत्य एष निजकृत्यमर्हति।
तत्करोमि भवदूरुमित्यसौ तत्र सन्यधित पाणिपल्लवम् ॥
चुम्बनादिषु बभूव नाम किं तद्वृथा भियमिहापि मा कृथा ।
इत्युदीर्य रसनावलिव्यय निर्ममे मृगदृशोऽयमादिमम् ॥
अस्तिवाम्यभरमस्तिकौतुकं सास्तिघर्मजलमस्ति वेपथुम् ।
अस्तिभीति रतमस्तिवाञ्छितं प्रापदस्तिसुखमस्तिपीडनम् ॥
नै० १८-६०-६२।

श्रीहर्ष न केवल नल-दमयन्ती सहवास की ओर सकेत ही किया हो ऐसी बात नहीं। उन्होंने उसकी स्पष्ट योजना भी की है। उदाहरण-स्वरूप अधो-लिखित श्लोकों को उद्धृत किया जा सकता है

वीक्ष्य भावमधिगन्तुमुत्सुका पूर्वमन्द्धमणिकुट्टिमे मृदुम् ।
कोऽयमित्युदितसम्भ्रमीकृता स्वानुबिम्बमददर्शतैव ताम् ॥
तत्क्षणावहितभावभावितद्वादशात्मसितदीधितिस्थिति ।
त्वा प्रियामभिमतक्षणादया भावलाभलघुता नुनोद स ॥
स्वन भाविजनने स तु प्रिया बाहुमूलकुचनाभिचुम्बनै ।
निर्ममे रतरहः समापनाद्यामसारसमसविभागिनीम् ॥
विश्लथै रवयवैर्निमीलया लोमभिर्द्रुतमितैर्विनिद्रताम् ।
सूचितं श्वमितसीत्कृतैश्च तौ भावमङ्गमकमध्यगच्छताम् ॥
नै० १८-११४-११७।

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने अन्य स्थानों पर भी सवेशन सुरत-भेद की उन्मुक्त योजना की है।

सीत्कृत

सीत्कृतों की उत्पत्ति वात्स्यायन के द्वारा निर्दिष्ट प्रहणन नामक सुरत-भेद से होती है

तदुद्भवं च सीत्कृतम्। तस्यार्तिरूपत्वात्। का० सू० २-७-४।
तदुद्भवं प्रहणनाद् भवतीति। वही जयमंगला टीका।

और वात्स्यायन के द्वारा निर्दिष्ट प्रहणन नामक सुरत-भेद की योजना श्रीहर्ष ने नैषध में की ही नहीं है। अत नैषध में प्रहणन-जन्य सीत्कृतों के सद्भाव का भी प्रश्न नहीं उठता।

पुरुषायित

विपरीत रति को पुरुषायित नाम से अभिहित किया जाता है। श्रीहर्ष ने नैषध में यत्र-तत्र पुरुषायित सुरत-भेद की भी संकेतात्मक योजना की है। दमयन्ती इस कार्य में भले ही पहले से कम कुशल रही हो। परन्तु नल के साथ कुछ समय तक विहार कर लेने के उपरान्त वह लज्जा पर विजय पा लेती है और नल के साथ विपरीत रति भी करने लगती है। उसकी इस कुशलता का रहस्य-भेदन स्वयं नल ने ही किया है

लज्जितानि जितान्येव मयि व्रीडितयानया।
प्रत्यावृत्तानि तत्तानि पृच्छ सम्प्रति कं प्रति॥ नै० २०-५६।

नल के इस रहस्य-भेदन को सुनकर कला नामक सखी के द्वारा दमयन्ती के प्रति कहे गए रोष-पूर्ण वचनों से तो प्रतीत होता है कि दमयन्ती ने इस पुरुषायित सुरत-भेद की विधिवत् शिक्षा भी ग्रहण की थी

स्मरशास्त्रमधीयाना शिक्षतासि मयैव यत्।
अगोपि सोऽपि कृत्वा किं दाम्पत्यव्यत्ययस्त्वया॥ नै० २०-६४।

इसी प्रकार कला के धूर्तता-पूर्ण वचनों पर विश्वास कर दमयन्ती-सभाग-सम्बन्धी रहस्यों को प्रकट करते हुए भी नल ने उसके इस कौशल का उल्लेख किया है

कमपि स्मर-केलि त स्मर यत्र भवन्निति।
मया विहितसबुद्धिर्व्रीडिता स्मितवत्यसि॥
नीलमाचिबुकं यत्र मदाक्तेन श्रमाम्बुना।
स्मरहारमणी दृष्ट स्वमास्यं तत्क्षणाचितम॥ नै० २०-६३-६४।

औपरिष्टक

औपरिष्टक सुरत भेद की योजना श्रीहर्ष ने नैषध में नहीं की है और न शायद किसी अन्य शिष्ट कवि ने ही इस भेद की योजना कर शृंगार रस की व्यंजना की होगी।

प्रहणन

हम देख चुके हैं कि वात्स्यायन मुनि ने बाभ्रव्य सम्मत उपर्युक्त सुरत-भेदों के अतिरिक्त प्रहणन, विरत, पुरुषोपसृत, चित्ररतादिकों को भी सुरत का भेद स्वीकार कर लिया है। श्रीहर्ष ने इन भेदों में से प्रहणन के अतिरिक्त अन्य सभी सुरत-भेदों की नैषध में योजना की है। वात्स्यायन मुनि ने स्वयं भी प्रहणन के सार्वत्रिक प्रयोग का निषेध किया है

न सर्वदा न सर्वासु प्रयोगा साम्प्रयोगिका।
स्थाने देशे च काले च योग एषां विधीयते॥ का० सू० २-७-३५।

और वात्स्यायन ने जिस प्रकार की स्त्रियों पर प्रहणन के प्रयोग का निर्देश दिया है दमयन्ती उस श्रेणी में नहीं आती। अतएव नैषध में प्रहणन सुरत-भेद की योजना करने के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता।

विरुत

वात्स्यायन ने विरुतों का संग्रह सीत्कृतों के साथ ही किया है। परन्तु तात्त्विक रूप में विरुत तथा सीत्कृतों में अन्तर होता है। विरुत ध्वनि-स्वरूप होते हैं। अतएव ध्वनि-स्वरूप सीत्कृतों के प्रकरण में वात्स्यायन ने विरुतों का निर्देश कर दिया है। परन्तु सीत्कृत ध्वनि-स्वरूप होते हुए भी प्रहणन-जन्य होते हैं जब कि विरुत रति-जन्य होते हैं

विरुतानि तानि मूलवर्गेण संगृहीतानि सीत्कृतप्रकरण एव ध्वनिस्वभावत्वादुक्तानि। तेषां च रतिजन्यत्वात्प्रहणने चाप्रहणने च मनोज्ञत्वात्प्रयोग। सीत्कृतस्य तु प्रहणन एवेति विशेष। का० सू० जयमंगला टीका पृ० १२८।

श्रीहर्ष ने रति-जन्य विरुतों की योजना अनेक स्थानों पर की है। उदाहरण-स्वरूप कुछ चित्रों को उपस्थित कर देना ही पर्याप्त होगा। देखिए सुरतवामा दमयन्ती का विरोध किस प्रकार विरुतों से संपुटित है

चुम्ब्यसेऽयमयमक्षमे नखैं श्लिष्यसेऽयमयमप्यसे हृदि।

नो पुनर्न करवाणि ते गिरं त्यज-त्यज तवास्मि किंकरा॥ नै० १८-९०।

और नल के ऊपर उसकी हुंकृतियों का क्या प्रभाव होता है उसे भी देखिए

यद्भ्रुवौ कुटिलिते तया रते मन्मथेन तदनामि कार्मुकम्।

यत्तु हूंमिति मा तदा व्यधात् तन् स्मरस्य शरमुक्तिहुंकृतम्॥ नै० १८-९३।

इसी प्रकार उसकी चुम्बन-कालीन मुद्रा भी कम मनोज्ञ नहीं है

आह नाथवदनस्य चुम्बत सा स्म शीतकरतामनक्षरम्।

सीत्कृतानि सुदती वितन्वती सत्त्वदत्तपृथुवेपथुस्तदा॥ नै० १८-१०४।

इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी श्रीहर्ष ने अनेक-रूप विरुतों की योजना की है।

पुरुषोपसृप्त

वात्स्यायन के अनुसार पुरुषोपसृप्त नामक सुरत-भेद भी बाभ्रव्य सम्मत सुरत-भेदों से भिन्न सुरत-भेद होता है। उन्होंने बाह्य तथा अन्त नामक दो प्रकार के पुरुषोपसृप्तों का निर्देश किया है। श्रीहर्ष ने इस सुरत-भेद के बाह्य भेद की नैषध में योजना की है। वात्स्यायन के अनुसार पुरुष को चाहिए कि वह बातों में उलझाकर नायिका का नीवी-विस्रंसनादि करे तथा उसमें विवाद करने पर वह उसे चुम्बनादि से व्याकुल करे

पुरुष शयनस्थाया योषितस्तद्वचोभ्याक्षिप्तचित्ताया इव नीवीं विश्लेषयेत्।

त्र विवदमाना कपोलचुम्बनेन पर्याकुलयेत् । का० सू० २-८-८।

नल चूंकि कुसुमशास्त्रवित् था। अत वह वात्स्यायन के निर्देश पूरी सावधानी के साथ पालन करता हुआ सर्वत्र दृष्टिगत होता है। देखिए उपसर्पण में भी वह किस प्रकार वात्स्यायन का अनुगमन कर रहा है

तत्करोमि परमभ्युपैषि यन्मा ह्रिय व्रज भिय परित्यज।
आलिवर्ग इव ते ह मैत्यमू दास्वदास्वसनमूचिवान्नल ॥
येन तन्मदनवह्निना स्थित ह्रीमहौषधिनिरुद्धशक्तिना।
सिद्धिमद्भिरुदतेजि तैं पुन म प्रियप्रियवचोऽभिमन्त्रणै ॥
यद्विधूय दयितार्पित कर दाढ्येन पिदधे कुचौ दृढम्।
पार्श्वग प्रियमपास्य सा ह्रिया त हृदिस्थितमिवालिलिंग तत् ॥
अन्यदस्मिभवती न याचिता वाग्मेकमधर धयामि ते।
इत्यमिम्वददुपाशु काकुवाक्मोपमदहठवृत्तिरेव तम् ॥ नै० १८-५६-५६।

चित्ररत

वात्स्यायन ने विभिन्न प्रकार से किए जाने वाले रतो को चित्ररत नाम से अभिहित किया है और इन विचित्र प्रकार से किए जाने वाले सुरतो को पृथक्-सुरत-भेद स्वीकार किया है। श्रीहर्ष ने यद्यपि नैषध मे नल दमयन्ती के द्वारा आचरित चित्ररतो का विशद अकन नही किया है। परन्तु उन्होंने इस तथ्य की ओर सकेत अवश्य कर दिया है

पत्युरागिरिशमातरक्रमात् स्वस्य चागिरिजमानत वपु।
तस्य चार्हमखिल पतिव्रता क्रीडति स्म तपसा विधाय सा ॥
न स्थली न जलधिर्न कानन नाद्रिभूर्न विषया न विष्टपम्।
क्रीडिता न सह यत्र तेन सा सा विधैव न यया यया न वा ॥

नै० १८-८३-८४।

इसी प्रकार उन्होने नल-दमयन्ती के द्वारा सपादित कामकेलियो की विचित्रता की ओर इसके पहले भी सकेत कर दिया है। नै० १८-२६।

रतारम्भ तथा रतावसानिक

वात्स्यायन के अनुसार सुरत के समान सुरतारम्भ तथा सुरतावसान-कालीन कृत्य भी रति-जनक होते हैं

तत्रैतद्भवति—
अवसानेऽपि च प्रीतिरुपचारैरुपस्कृता।
सविस्रम्भकथायोगै रति जनयते पराम् ॥ का० स० २-१०-१०।

तत्रैत्यारम्भेऽस्माने वोभयत्राप्येतद्वक्ष्यमाणक भवति । अवसानेऽपीति अपिशब्दादारम्भेऽपीति । वही जयमंगला टीका ।

श्रीहर्ष ने रतारम्भ तथा रतावसान-कालीन कृत्यों की भी रतिवासनोद्बोधक योजना की है । वात्स्यायन के अनुसार पुरुष को चाहिए कि वह प्रसाधित भवन में सब प्रथम सान्त्वना देते हुए ही किसी स्त्री के साथ सम्पर्क प्रारम्भ करे । का० सू० २-१०-१ । हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती के आनन्दोपभोग के लिए एक प्रसाधित भवन की व्यवस्था की ही है । और हम आगे देखेंगे कि नल दमयन्ती के विश्वास को प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्नशील रहता है । अनुरक्त हो जाने पर नायिका के परिजनों को किसी व्याज से अपने पास से हटा देना यह एक सामान्य परम्परा है । वात्स्यायन ने भी इस परम्परा का पालन करने के लिए निर्देश दिया है

जातानुरागायां कुसुमानुलेपन-ताम्बूलादानेन च शेषजनविसृष्टिः । विजने च यथोक्तैर्गालिंगनादिभिरेनामुद्धर्षयेत् । कामसूत्र २-१०-५ ।

नल वात्स्यायन के इन निर्देशों के प्रति पूर्ण सावधान दृष्टिगत होता है

ह्रीभराद्विमुखया तया भिय सज्जितामननुरागशङ्किनि ।
स स्वचेतसि लुलोप सम्मरन् दूरयकालवलित तदाशयम् ॥
पार्श्वमागमि निज सहालिभिस्तेन पूर्वमथ सा तयैकया ।
क्वापि तामपि नियुज्य मायिना स्वात्ममात्रसचिवावशेषिता ॥

नै० १८-३८-३६ ।

उस एक-मात्र सखी को भेजकर नल वात्स्यायन के द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को भी प्रारम्भ कर देता है । नै० १८-४०-४२ ।

वात्स्यायन के अनुसार स्त्रियाँ अत्यधिक कोमल स्वभाव वाली होती हैं । अत उनका विश्वास प्राप्त करने के उपरान्त ही सुरतारम्भ करना चाहिए

कुसुमसधर्माणो हि योषित सुकुमारोपक्रमा । तास्त्वनधिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणा सम्प्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति । तस्मात्साम्नैवोपचरेत् ।

का० सू० ३-२-६ ।

वात्स्यायन ने यह विचार कन्याओं के बारे में प्रकट किए हैं । दमयन्ती भी कन्या ही थी । श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती का सम्भोग वर्णन करने के पूर्व ही उसकी वय सन्धि की ओर सकेत कर दिया है

पौरुष दधति यामिना नले स्वामिनि श्रितनदीयभावया ।
यूनिशैशवमतीतया कियत् प्रापि भीमसुतया न साध्वसम् ॥ नै० १८-३० ।

तथा उसकी अवस्था के अनुरूप उन्होंने दमयन्तीगत लज्जा का प्रदर्शन भी विशद रूप में किया है । देखिए वह किस प्रकार नल के भवन में पहुँचकर किंकर्तव्य-विमूढ-सी बन जाती है तथा उस नल को देखने में भी किस प्रकार कठिनाई

अनुभव होती है

दृत्यसगतिगत यदात्मन प्रागशिश्रयदिय प्रिय गिर ।
त विचिन्त्य विनयव्यय ह्रिया न स्म वेद करवाणि कीदृशम् ॥
यत्तया सदसि नैषध स्वय प्रावृत सपदि वीतलज्जया।
तन्निज मनसि कृत्य चापल सा शशाक न विलोकितु नलम् ॥
नै० १८-३१-३२।

नल जिस दशा मे बैठा था वह उस ओर देखती तक नही। इसी प्रकार नल के बार-बार बुलाने पर भी वह अनसुनी कर जाती है

आसने मणिमरीचिमासले या दिश स परिरभ्य तस्थिवान्।
तामसूयितवतीव मानिनी न व्यलोकयदिय मनागपि ॥
ह्रीसरित्निजनिमज्जनोचित मौलिदूरनमन दधानया।
द्वारि चित्रयुवतिश्रिया तया भर्तृहूतिशतमश्रुतीकृतम् ॥ नै० १८-३३-३४।

और सखियो के द्वारा बरबस नल के कमरे मे ढकेल दिए जाने पर देखिए वह क्या करती है

वेश्मपत्युरविशन्न साध्वसाद् वेशितापि शयन न साभजत ।
भाजितापि सविध न सास्वपत् स्वापितापि न च सम्मुखाभवत् ॥
नै० १८-३५।

नल कामशास्त्र-निष्णात तो था ही। अत वह दमयन्ती के सुकुमार स्वभाव के अनुरूप ही उसके साथ व्यवहार करता है। वात्स्यायन के अनुसार इस प्रकार की सुकुमार स्त्रियो का सर्वप्रथम आलिगन करना चाहिए

तत्प्रियेणालिगनेनाचरितेन नातिकालत्वात। का० सू० ३-२-८।

नल सखियो को अपन पास मे भेजकर सर्वप्रथम दमयन्ती का करता भी आलिगन ही है। नै० १८-४०। इसी प्रकार वात्स्यायन के अनुसार स्त्रियो के सर्वप्रथम शरीर के पूर्वभाग का ही स्पर्शादि भी करना चाहिए

पूर्वकायण चापक्रमेत्। विसह्यत्वात्। का० सू० ३-२६।

और देखिए नल किस प्रकार व्याज से दमयन्ती के शरीर के पूर्वभाग का स्पर्श करता है

हारचारिमविलोकने मृषाकौतुक किमपि नाटयन्नयम्।
कण्ठमूलमदमीयमस्पृशत् पाणिनोपकुचधाविना धव ॥
यत्त्वयास्मि सदसि स्रजाचितस्तन्मयापि भवदर्हणार्हति।
इत्युदीय निजहारमपयन्नस्पृशत् स तदुरोजकोरकौ॥ नै०१८-४४-४५।

इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी नल दमयन्ती के विश्वास को प्राप्त करने के उपरान्त ही उसके साथ सुरतारम्भ करता है, वैसे नही।

श्रीहर्ष ने सुरतारम्भ के समान ही सुरतावसान-कालीन दृश्यो की भी मनो-

हारी योजना की है। देखिए सुरत के उपरान्त दमयन्ती की स्थिति कैसी हो जाती है और नल उसकी उस अवस्था को देखकर किस प्रकार प्रसन्न होता है

अर्धमीलितविलोलतारके सा दृशौ निधुवनक्लमालसा ।
यन्मुहूर्तमवहन्न तत् पुनस्तृप्तिरास्त दयितस्य पश्यत ॥
स्वेदबिन्दुकितनासिकाशिखं तन्मुखं सुखयति स्म नैषधम् ।
प्रोषिताधरदयालुयावकं सामिलुप्तपुलकं कपोलयो ॥

नै० १८-११६, १२१ ।

और केशो का सयत करने मे लगी हुई दमयन्ती के बाहुमूलो को देखकर तो वह आनन्द समुद्र मे डूबने लगता है

वीतमाल्यकचहस्तसयमन्यस्तहस्तयुगया स्फुटीकृतम् ।
बाहुमूलमनया तदुज्ज्वलं वीक्ष्य सौख्यजलधौ ममज्ज स ॥ नै०१८-१२४।

नल ही दमयन्ती को देख-देखकर आनन्दित हो रहा हो ऐसी बात नही। दमयन्ती भी नल के अधरो को देखकर मस्मित हो रही थी

वीक्ष्य पत्युरधरं कृशोदरी बन्धुजीवमिव भृङ्गसङ्गतम् ।
मञ्जुलं नयनकज्जलैर्निजै सवरीतुमशकत् स्मितं न सा ॥ नै० १८-१२५ ।

और नल की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए देखिए किस प्रकार वह नल के हाथ मे दर्पण दे देती है

ता विलोक्य विमुखश्रितस्मितां पृच्छतो हसितहेतुमीशितु ।
ह्रीमती व्यतरदुत्तरं वधू पाणिपङ्कजहि दर्पणार्पणम् ॥ नै० १८-१२६ ।

सुरत-कालीन अन्य व्यापार

उपर्युक्त सुरत भेदो तथा रसावसान एव रसारम्भ-कालीन व्यापारो के समान ही अन्य अनेक व्यापार भी रति-वासनाभिव्यञ्जक होते हैं। श्रीहर्ष ने ऐसे अनेक रतिवासना-व्यञ्जक व्यापारो की नैषध मे योजना की है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित प्रसगो को उद्धृत किया जा सकता है

सस्कृत साहित्य मे नायिका की सखियो का अपना एक विशिष्ट स्थान है। दमयन्ती की सखियाँ भी इसका अपवाद नही है। देखिए वे किस प्रकार दमयन्ती के मनोभावो को ताडने मे कुशल हैं

याचतेऽस्म परिधापिका सखी सा स्वनीविनिबिडत्रिया यदा।
अन्वमिन्वत तदा विहस्य ता वृत्तमत्र पतिपाणिचापलम् ॥

नै० १८-५१ ।

देवताओ के द्वारा दिए गए वर भी नल को सुखोपभोग का किसी न किसी प्रकार अवसर प्रदान करते रहते हैं

ता मिथोऽभिदधती सखी प्रियस्यात्मनश्च स निशावचेष्टितम् ।
पादयोः मुखरात् पिधा दधद् दृश्यता श्रुतकथो हसन् गत ॥
नै० १८-६८ ।

इसी प्रकार अग्नि के वरदान के फलस्वरूप नल-दमयन्ती के द्वारा बुझाए गए दीपों को सुरत-काल मे बार-बार जलाकर उसके साथ खिलवाड करता रहता है। नै० १८-८५-८६ ।

कभी न समाप्त होने वाली दमयन्ती की सुरत-वामता भी कुछ कम मनाज्ञ नही है

नीविसीम्नि निबिड पुरारणत पाणिनाथ शिथिलेन तत्करम ।
सा क्रमेण न न नेतिवादिनी विघ्नमाचरदमुष्य केवलम् ॥

स्वागमर्पयितुमेत्यवामता रोषिनि प्रियमथानुनीय सा ।
आतदीयहठमबुभुक्षतो नान्वमन्यत पुनस्तमर्थिनम् ॥ नै० १८-७८,८१ ।

इसी प्रकार नल-दमयन्ती की शयन-कालीन विशेष अवस्था भी रतिवामनाभि-व्यजक है

मिश्रितोरु मिलिताधर मिथ स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम् ।
तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटे पीडना विदधतौ निदद्रतु ॥ नै० १८-१५२ ।

उपर्युक्त सभी सदर्भो मे सुरतकालीन विभिन्न व्यापारो की योजना कर सभाग शृगार की विशद व्यजना की गई है। इन प्रकरणो मे नल-दमयन्ती दानो ही आलम्बन विभाव है। दानो की चेष्टाएँ, नल-भवन तथा उस भवन मे उपस्थित उपकरणादि उद्दीपन विभाव हैं। नल तथा दमयन्ती दोनो के द्वारा सपादित विभिन्न सुरत-व्यापार तथा उनकी चेष्टाएँ आदि अनुभाव है। विस्मय, हर्ष, औत्सुक्य, धृति, व्रीडा, आवेग अवहित्था तथा स्मृति आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट नल-दमयन्ती उभयगत सयोग-कालीन रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसकी व्यजना के प्रधान हेतु नल-दमयन्ती के चुम्बनालिंगनादि सुरत व्यापार हैं। अत उस व्यक्त रति स्थायी भाव को सुरत सम्भोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

सुरत के विरूप चित्रो को साहित्य मे भले ही अनीप्सित माना जाता हो परन्तु श्रीहर्ष ने सुरत के विभिन्न भेदो की स्पष्ट योजना करते हुए भी उन्हे इस प्रकार से उपस्थित किया है कि वे अनीप्सित नही प्रतीत होते। और सुरत के सवेशन तथा चित्र-रतादि जो भेद प्राय अश्लील होते हैं। श्रीहर्ष ने या तो उनकी अस्पष्ट योजना की है या सकेतात्मक। अत नैषधगत सुरत शृगार को अमर्यादित अथवा अश्लील कहना असमुचित ही होगा।

विहरण

जहाँ पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओं के द्वारा उपवनादि का सेवन कर सम्भोग सुख का अनुभव किया जा रहा हो वहाँ पर विहरण सम्भोग शृंगार होता है। हम देख चुके हैं कि भरत ने उपवन-गमन को ही नहीं अपितु उसके अनुभवन, श्रवण तथा दर्शनादि को भी शृंगार रस का विभाव माना है। अतः उपवन में भ्रमण करने के समान ही भवन में स्थित रहकर उपवनादि के श्रवण तथा सकल्पादि को भी सम्भोग शृंगार का विभाव स्वीकार किया जा सकता है। जैसा कि अभिनव ने स्वीकार किया है

उपवनस्योद्यानस्यानुभवनं श्रवणं वा प (व) रभवनस्यस्यापि। एनत्मकल्पादेरप्युपलक्षणम्। ना० शा० अभि० पृ ३०४।

इसी प्रकार प्रकृति के विभिन्न प्रतीकों जैसे प्रातः तथा सन्ध्याकाल, सूर्योदय तथा सूर्यास्त, चन्द्रोदय तथा चन्द्रास्त आदि के सेवन को भी आनन्ददायक कहा जा सकता है। विश्वनाथ ने तो इन्हें सम्भोग शृंगार के अन्तर्गत स्वीकार ही किया है। सा० द० ३-२१२।

श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती का प्रभात, सन्ध्या, चन्द्रोदय तथा चन्द्रमा आदि के सेवन में ही सलग्न किया है। उन्होंने नल-दमयन्ती को उपवन में विहार करने आदि के लिए नहीं भेजा है। प्रथम सर्ग में नल के लिए वैसी व्यवस्था की गई है। परन्तु उस समय पर नल वियुक्त था। अतः वह उपवन-विहार नल की वियोगाग्नि को ही प्रदीप्त करता है। उसे सुख नहीं प्रदान कर पाता। परन्तु उपवन में विहार करने की व्यवस्था न करते हुए भी श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती को प्रकृति नटी के जिन स्वरूपों का अवलोकन करने का अवसर प्रदान किया है। वे भी उनकी सुखानुभूति में यथेष्ट अभिवृद्धि करने में समर्थ हैं।

श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती का परिणय हो जाने के उपरान्त उन्हें सर्वप्रथम जिस प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुभव करने का अवसर प्रदान किया है वह है प्रातःकालीन सुषमा। प्रातःकालीन वेला का यह वर्णन उन्होंने वैतालिकों के द्वारा कराया है। प्रभात-वर्णन पर समग्र रूप से दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह उषा-कालीन वेला से प्रारम्भ होकर क्रमशः सूर्योदय-कालीन प्रकाश की ओर अग्रसर होता रहा है। अतः इस प्रभात-वर्णन को क्रमशः प्रातःकालीन सन्ध्या, सूर्योदय तथा सूर्य-वर्णन नामक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

इस वर्णन की अवतारणा दमयन्ती के पास शयन करते हुए नल को जगाने के उद्देश्य से की गई है। प्रातःकालीन वेला को रूपायित करने वाली विभिन्न कल्पनाओं के मध्य में वैतालिक अपने इस उद्देश्य की ओर बराबर सकेत करते

रहते हैं। फलत यह प्रभात-वर्णन प्रात कालीन बेला का मनोरम स्वरूप स्पष्ट करने के साथ-साथ शय्या पर शयन करते हुए नल-दमयन्ती को भी कल्पनाओं मे ओभल नही होने देता। इसके साथ-साथ समस्त प्रभात-वर्णन विभिन्न शृगारिक कल्पनाओं मे भी सम्पुटित है। कोई भी श्रोता उन कल्पनाओं का श्रवण-कर भाव-शून्य नहीं रह सकता।

यद्यपि इस समस्त सर्ग मे प्रधान रूप से प्रकृति के विभिन्न प्रतीको का ही वर्णन किया गया है। परन्तु उसे आलम्बन विभाव के नाम से नही अभिहित किया जा सकता। आलम्बन इस सर्ग मे नल-दमयन्ती ही हैं। प्रकृति के विभिन्न-रूप उद्दीपन विभाव हैं। क्योकि सर्वत्र विप्रलम्भ-सम्भोग-शृगार-परक प्रकरणो मे यद्यपि विहार-परक उपकरण प्राधान्येन चर्चित होते हैं। परन्तु वे होते रति वासना के उद्दीपक ही है। इस समस्त सर्ग मे अनुभावो की योजना कही पर भी नहीं की गई है। विभिन्न कल्पनाओं के मध्य मे यद्यपि अनुभाव-स्वरूप कुछ क्रिया-कलापो की ओर सकेत किया गया है। परन्तु वे कल्पनाएँ समस्त सर्ग की अग-मात्र ही हैं। उनका स्वतन्त्र स्थान नही हैं। और समस्त कल्पनाओं के आश्रय-स्वरूप नल-दमयन्ती की किन्ही चेष्टाओं का इस सर्ग मे कही भवन नही किया गया है। केवल यत्र-तत्र वैतालिक के कथनो से यह प्रतीत होता रहता है कि नल-दमयन्ती दोनो ही शयन कर रहे है। जिन्हे जगाने का वह प्रयत्न कर रहा है। यद्यपि अन्त मे यह प्रतीति भी मिथ्या सिद्ध हो जाती है। क्योकि नल तो उन वैतालिको के आने से पहले ही शयन का परित्याग कर भवन से बाहर चला गया था। नै० १६-६६। अतः केवल दमयन्ती ही उन वैतालिको के प्रभात-वर्णन से प्रसन्न होकर उन्हे आभरणादि भेजती है। नै० १६-६५। दमयन्ती के इस आभरण प्रदान को अनुभाव नाम से अभिहित किया जा सकता है। परन्तु केवल विभावादिको की प्रधान-रूप से की गई योजना को भी रसाभिव्यजक माना गया है। ऐसे प्रकरणो मे अनुभावादिको के आक्षेप का निर्देश दिया गया है। अतः इस एकोनविंश-सर्ग-गत प्रभात-वर्णन को विप्रलम्भ सम्भोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा। क्योकि इस प्रभात वर्णन मे सुखोपभोग-जनक प्रात कालीन बेला का वर्णन किया गया है।

श्रीहर्ष ने बाइसवे सर्ग मे विप्रलम्भ सम्भोग शृगार की विशद व्यजना की है। इस समस्त सर्ग मे नल-दमयन्ती के द्वारा सायकालीन बेला का क्रमिक वर्णन कराकर उन दोनो के द्वारा अनुभूयमान आनन्द की व्यजना की गई है। श्रीहर्ष ने पहले नल के द्वारा सन्ध्या वर्णन कराया है। नै० २२-३-१५। सन्ध्याकालीन लालिमा को देखकर नल को दमयन्ती के अधर की स्मृति आ जाती है और वह सन्ध्योपासन से निवृत्त होकर दमयन्ती से सुशोभित राज-भवन के सप्तम भूमिभाग पर पहुँच जाता है

उपास्य सान्ध्यं विधिमन्तिमाशारागेण कान्ताधरचुम्बिचेता ।
अवाप्तवान् सप्तमभूमिभागे भैमीधरः सौधमसौ धरेन्द्रः ॥ नै० २२-१ ।
और दमयन्ती को अंकपाली में बिठाकर दमयन्ती के अधर को स्मृति में लाने वाली सन्ध्या का वर्णन करने लगता है

प्रत्युद्‌व्रजन्त्या प्रियया विमुक्तः पर्यंकमंकस्थितसज्जशय्यम् ।
अध्यास्य तामप्यधिवास्य साऽयं सन्ध्यामुपश्लाघयति स्म मायम् ॥
नै०-२२-२ ।

नल सन्ध्या-वर्णन के मध्य में दमयन्ती को उस सन्ध्या के विभिन्न रूपों का अवलोकन करने के लिए भी प्रेरित करता है। अतएव नल के अंक में बैठी हुई दमयन्ती की स्मृति भी सन्ध्या के विभिन्न रूपों की अनुभूति के साथ बनी रहती है।

सन्ध्याकालीन वेला को समाप्त होता हुआ देखकर नल ताराओं तथा अंधकार से आच्छन्न आकाश का वर्णन करने लगता है। नै० २३-१६-३८। सन्ध्या-वर्णन करते हुए नल ने उसके स्वरूप पर ही विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित रखा है। परन्तु सन्ध्या-काल के समाप्त होते ही उसकी कल्पनाओं में शृंगारिकता का पुट आने लगता है। अंधकाराच्छन्न आकाश तथा ताराओं आदि के बारे में उसके द्वारा की गई कल्पनाएं शृंगारिक कल्पनाओं से अनुस्यूत है। जैसे ताराओं का समूह उसे देवताओं तथा अप्सराओं को मोहित करने के लिए निर्मुक्त पुष्पशर प्रतीत होता है। नै० २२-१८। इसी प्रकार विशाखा नक्षत्र उसे कामदेव का विजय-घोष करने वाला शंख प्रतीत होता है। नै० २२-२१। और अंधकार-वश उसकी ओर आकृष्ट होती हुई-सी प्रतीत होने वाली दिशाएँ उसे अभिसारिकाओं के समान दिखाई देने लगती हैं। नै० २२-३२।

अंधकारादि के स्वरूप को स्थापित करने वाली कल्पनाओं के मध्य में यदा-कदा नल दमयन्ती को काम-शरासनभ्रु, भैमि, तन्वि तथा वामोरु आदि आख्याओं से सम्बोधित कर उसे अन्धकारादि के स्वरूप का अवलोकन करने के लिए प्रेरित करता रहता है। फलतः नल के द्वारा किया गया यह सन्ध्या तथा अंधकारादि का वर्णन वर्णन-मात्र न प्रतीत होकर सन्ध्या तथा अन्धकारादि के स्वरूप को देखकर नल को जो आनन्दानुभूति हुई थी उसका व्यंजक तथा दमयन्ती का उसके मनोरम स्वरूप का अवलोकन कर आनन्दानुभव करने के लिए प्रेरक बन जाता है।

नल अन्धकार का वर्णन कर ही रहा था कि उसकी दृष्टि उदीयमान चन्द्रमा की ओर जाती है और वह चन्द्रोदय का वर्णन करने लगता है। नै० २२-३६-५४। नल चन्द्रोदय का वर्णन करते हुए उसका अवलोकन करने के लिए दमयन्ती को प्रेरित करने में भी सर्वदा संलग्न रहा है। अतएव यह वर्णन भी

पूर्ववर्ती वर्णनो के समान नल के द्वारा अनुभूत आनन्द का व्यजक तथा दमयन्ती को उस आनन्द का अनुभव करने के लिए प्रेरक बन जाता है। नूतन कल्पनाओ के धनी श्रीहर्ष ने इस चन्द्रोदय-वर्णन के मध्य मे अपनी मनोरम कल्पनाओ के विलास का खुलकर प्रदर्शन किया है। जैसे मानवी अभिसारिकाओ की बात तो अनेक कवियो ने की है। परन्तु नल की दृष्टि प्रकृतिगत अभिसारिकाओ को भी खोज निकालती है

> ध्वान्ते द्रुमान्तानभिसारिकास्त्व शकस्व सकेतनिकेतमाप्ता।
> छायाच्छलादुज्झितनीलचेला ज्योत्स्नानुकूलैश्चरिता दुकूलैः ॥

नै० २२-४१।

उदय-कालीन चन्द्रबिम्ब की लालिमा का रहस्य भी श्रीहर्ष ने खोज निकालने का श्लाघ्य प्रयत्न किया किया है

> यत्प्रीतिमद्भिर्वदनै स्वसाम्यादचुम्बि नाकाधिपनायिकानाम्।
> तत्रस्तदीयाधरयावयोगादुदेति बिम्बारुणबिम्ब एष ॥

नै० २२-४५।

इसी प्रकार आधुनिकाओ से भी दो कदम आगे दिगगनाओ का चित्र भी देखिए

> कश्मीरजै रश्मिभिरौपसन्ध्यैर्मृष्ट घृतध्वान्तकुरगनाभि।
> चन्द्राशुना चन्दनचारुणाग क्रमात् समालम्भि दिगगनाभि ॥ नै० २२-५८।

श्रीहर्ष ने किसी सचित राशि मे किसी वस्तु का निर्माण करने की कल्पना का अनेक स्थानो पर प्रयोग किया है। दमयन्ती के विभिन्न अगो के निर्माण मे उन्होने इस सचय का सर्वाधिक प्रयोग किया है। परन्तु नल की सूक्ष्म दृष्टि इस काट-छाँट से निर्मित चन्द्रिका-पूर्ण रात्रियो को पहचानने मे भी भूल नही करती

> विधिस्तुषारतु दिनानि कर्तं कर्तं विनिर्माति तदन्तभित्तैः।
> ज्यौत्स्नीर्न चेत् तत्प्रतिमा इमा वा कथ कथ तानि च वामनानि ॥

नै० २२-५५।

उपर्युक्त समस्त सन्ध्यादिको के वर्णनो मे दमयन्ती आलम्बन विभाव है। सन्ध्या आदि का आकर्षक स्वरूप तथा नल-भवनादि उद्दीपन विभाव है। नल के द्वारा सन्ध्या आदि के स्वरूप का वर्णन किया जाना तथा दमयन्ती का सन्ध्या आदि के स्वरूप का अवलोकन करने के लिए बार-बार प्रेरित किया जाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, औत्सुक्य, स्मृति, मति तथा वितर्कादि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट सयोग-कालीन नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। नलगत इस रति स्थायी भाव का प्रधान व्यजक उसके द्वारा अनुभूत सन्ध्या आदि का स्वरूप है। अत तद्गत रति स्थायी भाव को विहरण सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

नल स्वय चन्द्रोदय का वर्णन करने के उपरान्त दमयन्ती को भी चन्द्रमा

का वर्णन करने के लिए प्रेरित करता है। फलत दमयन्ती भी चन्द्रमा का वर्णन करने लगती है। नै० २२-५८-१००।

दमयन्ती के द्वारा किए गए इस चन्द्रवर्णन में भी मनोरम कल्पनाओं का अभाव नहीं है। जो दमयन्ती नल का समागम प्राप्त होने के पहले चन्द्रमा की निन्दा करते-करते थक गई थी। वही दमयन्ती नल का समागम प्राप्त हो जाने के बाद उसकी स्तुति करने से नही थकती। उस समय चन्द्रमा उसे वियोगियो का वध करने वाला प्रतीत होता था

अयमयोगिवधूवधपातकैर्भ्रमिमवाप्य दिव खलु पात्यते। नै० ४-४६।

परन्तु अब वही चन्द्रमा उसे कल्पद्रुम का भाई प्रतीत होने लगता है

त्विष चकोराय सुधा सुराय कलामपि स्वावयव हराय।

ददज्जयत्येष समस्तमस्य कल्पद्रुमभ्रातुरयाल्पमेतत् ॥ नै० २२-६३।

चन्द्रमा की कालिमा के बारे मे श्रीहर्ष ने अनेक कल्पनाएँ की है। दमयन्ती की प्रतीति भी इस विषय मे सुरुचि-पूर्ण है

अस्मिन् शशो न स्थित एव रकुर्यूनि प्रियाभिर्विहितोपदायम्।

आरण्यसदेश दुर्वौषधीभिरवे स शके विधुना न्यधायि ॥ नै० २२-७६।

दमयन्ती के द्वारा किए गए इस चन्द्रवर्णन के अवसर पर नल आलम्बन विभाव है। चन्द्रमा तथा शून्य निशामुख आदि उद्दीपन विभाव हैं। दमयन्ती के द्वारा किया गया चन्द्रवर्णन अनुभाव है। हर्ष, मति, औत्सुक्य तथा वितर्क आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट दमयन्तीगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे चन्द्र-दर्शन से प्राधान्येन उद्बुद्ध होने के कारण विहरण सभाग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

दमयन्ती के द्वारा किए गए चन्द्रवर्णन को सुनकर नल अत्यधिक आनन्दित हो जाता है और दमयन्ती के प्रेरित करने पर वह पुन दमयन्ती के मुख-चन्द्र तथा आकाशस्थ चन्द्र का युगपद् वर्णन करने लगता है। नै० २२-१०१-१४८।

श्रीहर्ष के द्वारा किया गया दमयन्ती के मुख आदि का तथा चन्द्रमा का यह युगपद् वर्णन भी नलगत रति वासना को व्यक्त करने मे पूर्णतया समर्थ है। चन्द्रवर्णन करता हुआ नल अन्त मे आकाश को तारागो से आच्छान्न देखकर दमयन्ती से कामदेव की पूजा करने का निवेदन करने लगता है

उपनतमुडुपुष्पजातमास्ते भवतु जन परिचारकस्तवायम्।

तिलनिनव्तिरपर्टाभमिन्दु वितर निवेद्यमुपास्व पचबाणम् ॥

नै० २२-१४७।

और चन्द्रदेव से आनन्द की कामना करने के उपरान्त नल के द्वारा किया गया यह चन्द्र-वर्णन दूसरे शब्दो मे यह ग्रन्थ ही समाप्त हो जाता है

स्वर्भानुप्रतिवारपारणमिलद्दन्तौघयन्त्रोद्भव-
श्वभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुषारद्युति ।
पुष्पेष्वासनतत्प्रियापरिणयानन्दाभिषेकोत्सवे
देव प्राप्तसहस्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये ।। नै० २२-१४८ ।

उपर्युक्त प्रकरण मे दमयन्ती आलम्बन विभाव है। चन्द्रमा, दमयन्ती के द्वारा किया गया चन्द्रवर्णन तथा निशामुख आदि उद्दीपन विभाव है। नल के द्वारा की गई दमयन्ती के मुख आदि की स्तुति चन्द्र-प्रशस्ति एव अन्तिम मगल-कामना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, औत्सुक्य, मति तथा वितर्क आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे विहार-स्वरूप चन्द्र-वर्णनादि-जन्य होने के कारण विहरण सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

क्रीडा

अभिनव ने आनन्दवर्धन के आदि पद के आधार पर विभिन्न प्रकार की क्रीडाओ को भी सभोग शृगार का प्रकार विशेष स्वीकार कर लिया है। और भरत ने भी क्रीडा को सभोग शृगार का विभाव स्वीकार किया है। अत जहाँ पर परस्पर अनुरक्त नायक-नायिकाओ के द्वारा विभिन्न प्रकार की क्रीडाओ का आयोजन कर सभोग-सुख का अनुभव किया जा रहा हो वहाँ पर व्यक्त रति स्थायी भाव को क्रीडा सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

श्रीहर्ष ने अभिनव निर्दिष्ट जलक्रीडादिको की योजना तो नैषध मे नही की है। परन्तु नर्मगोष्ठी का आयोजन कर उन्होने क्रीडा सभोग शृगार से नैषध को असप्रक्त नही रहने दिया है। नमसज्ञक हास्य जिसे क्रीडाओ मे ही स्थान दिया जाता है अन्य शृगारिक क्रीडाओ से कम सुखद नही होता

क्रीडार्थं विहित यत्तु हास्य नर्मेति तत् स्मृतम्। ना० शा० १९-७८ ।

नर्म तीन प्रकार का होता है—ईर्ष्यानुविद्ध, उपालम्भानुविद्ध तथा आक्षेप-गर्भित

आस्थापितशृगार विशुद्धकरण निवृत्तवीररसम्।
हास्यप्रवचनबहुल नर्म त्रिविध विजानीयात् ।।
ईर्ष्याक्रोधप्रायम् सोपालम्भकरणानुविद्ध च।
आत्मोपक्षेपकृत सविप्रलम्भ स्मृत नर्म ।। ना० शा० २०-५७-५८ ।

श्रीहर्ष ने नैषध मे अन्तिम दो प्रकार के नर्मो की योजना की है।

उपालम्भानुविद्ध नर्म

भरत की उपर्युक्त नमभेदक कारिका के अनुसार नम की योजना विप्रलम्भ शृगार के साथ की जाती है। श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत मान की योजना करने के अनन्तर ही उपालम्भनुविद्ध नम की योजना की है। नल मानिनी दमयन्ती को प्रसन्न करने के अनन्तर दमयन्ती की सखी कला को बुलाकर नम-गोष्ठी प्रारम्भ कर देता है

अथाहूय कला नाम पाणिना स प्रियासखीम्।
पुरस्ताद्वेगितामूचे वक्तुं नर्मणि मक्षिणीम्॥ नै० २०-२६।

नल को दमयन्ती से अनेक शिकायतें थी। अत वह उसके दोषों को उद्घाटित करने लगता है। यद्यपि दमयन्ती की सखी नल के उपालम्भों को मिथ्या सिद्ध कर देती है। परन्तु उसका यह प्रयास भी परिहास-गर्भित है।

नल के कथनानुसार दमयन्ती अपनी सखियों से तो प्रेम करती थी। परन्तु उससे प्रेम नहीं करती। परन्तु कला का कहना है कि नए-पुराने प्रेम मे यह हुआ ही करता है

कस्मादस्माकमेतस्या वयस्या दयते न ते।
आसक्ता भवतीष्वेव मन्ये न बहु मन्यते॥
भावितेय त्वया साधु नवरागा खलु त्वयि।
चिरन्तनानुरागार्हं वर्तते न सखी प्रति॥ नै० २०-२७, ३८।

नल का दमयन्ती की यह बात भी पसद नहीं आती कि वह मिथ्या भाषण करे। परन्तु कला नल के इस उपालम्भ से भी सहमत नहीं होती

अन्वग्राहि मया प्रेयान् निशि स्वोपनयादिति।
न विप्रलभते तावदालीरियमलीकवाक्॥
स्मरशास्त्रविदा सेय नवोढा नस्त्वया सखी।
कथ सम्भुज्यते बालाकथमस्मासु भाषताम्॥ नै० २०-२८, ३६।

नल को दमयन्ती से एक यह भी शिकायत है कि दमयन्ती उसके अलावा कामदेव का भी चिन्तन करती है। परन्तु कला नल की इस शिकायत को भी यह कहकर टालने का प्रयत्न करती है कि कामदेव तो आप स्वय है। अत वह आपका चिन्तन कैसे छोड सकती है

आह स्मैषा नलादन्य न जुषे मनसेति यत्।
यौवनानुमितेनास्यास्तन्मृषाभून्मनोभुवा॥
मनोभूरस्ति चित्तेऽस्या किं नु देव! त्वमेव स।
त्वदवस्थितिभूयस्मात्मन सस्या दिवानिशम्॥ नै० २०-२६, ४१।

अवनत-मुखी दमयन्ती नल को अपना मुख तक न देखने दे और उसे देखे भी नेत्रो

के प्रान्त भाग से फिर भी नल सहन करने यह कैसे हो सकता था। परन्तु कला के कथनानुसार एकबार धोखा खाने के उपरान्त दमयन्ती यदि वैसा न करे तो और क्या करे

आस्यमौदयमेतस्या शृणुमो यदि भाषसे।
तद्धि लज्जानमन्मौले परोक्षमधुनापि न ॥
पूर्णयैव द्विलोचया सैषालीरवलोकते।
द्रागदृगन्ताणुना मा तु मन्तुमन्तमिवेक्षते ॥ नै० २०-३०-३१।
त्वयि न्यस्तस्य चित्तस्य दुराकर्षत्वदर्शनात्।
शङ्कया पङ्कजाक्षी त्वा दृगशेन स्पृशत्यसौ। नै० २०-४४।

इसी प्रकार कला नल के इस उपालम्भ को भी सही नहीं मानती कि दमयन्ती अब उसे भूल गई है तथा उसके प्रति अपनत्व नहीं प्रकट करती। क्योंकि कला के पास इसका स्पष्ट प्रमाण था कि दमयन्ती इन उपालम्भों के योग्य न थी -

न लोकत यथेदानी मामिय तेन कल्पये।
योऽद्य दूत्येऽनया दृष्ट सोऽपि व्यस्मारिषीदृशा॥
राग दर्शयते सैषा वयस्या सूनृतामृतं।
मम त्वमिति वक्तु मा मौनिनी मानिनी पुन ॥ नै० २०-३२-३३।
विलोकनात्प्रभृत्यस्या लग्न एवासि चक्षुषा।
स्वेनालोक्य शङ्का चेत् प्रत्यय परवाचि क ॥
परीरम्भेऽनयारम्य कुचकुङ्कुमसङ्क्रमम्।
त्वयि मे हृदयस्येव राग इत्युदितैव वाक्॥ नै० २०-४५-४६।

नल के कथनानुसार दमयन्ती सखियों का तो नाम लेती थी। परन्तु उसका कभी नाम नहीं लेती। परन्तु कला का कहना है कि दमयन्ती तो सदैव नल-नाम का जप किया करती है

का नामन्त्रयते नाम नामग्राहमिय सखी।
कले! नलेमि नास्माकी स्पृशत्याह्वा नु जिह्वया॥ नै० २०-३४।
मनसाय भवन्नामकाममूकजपव्रती।
अक्षसूत्र सखीकण्ठस्चुम्बत्येकावलिच्छलात्॥ नै० २०-६१।

नल उलाहना देता है कि दमयन्ती के पास उसके लिए अन्दर या बाहर कहीं पर भी स्थान नहीं है। परन्तु कला को नल की इस शिकायत में तो जरा-सा भी वजन नहीं दिखाई देता

अस्या पीनस्तनव्याप्ते हृदयेऽस्मासु निर्दये।
अवकाशलवोऽप्यस्ति नात्र कुत्र बिभर्तु न ॥ नै० २०-३५।
अध्यासिने वयस्याया भवता महता हृदि।
स्तनावन्तरसम्मान्तौ निष्क्रान्तौ ब्रूमहे बहि ॥ नै० २०-४८।

दमयन्ती का हृदय कठोर था इस बारे मे नल को कोई सन्देह नही था। क्योकि इसका प्रमाण सर्वदा उसके सामने जो रहता था। परन्तु कला के अनुसार नल का वह प्रमाण ही सत्य न होकर भ्रम था -

अविगलद्वैदृगनस्या हृदय मृदुतामुचो ।
प्रतीम एव वैमुख्य कुचयोर्युवनवृत्तयो ॥ नै० २०-३६ ।
कुचौ दोषोज्झितावस्या पीडितौ व्रणितौ त्वया ।
कथ दशयतामाम्य वृत्तावावृतौ ह्रिया ॥ नै० २०-४६ ।

कला के द्वारा किये गये अपने उपालम्भो का निराकरण सुनकर नल दमयन्ती के मुख को अपने हाथ से ऊपर उठाकर कला के वचनो का सत्यापन कराना चाहता है। परन्तु दमयन्ती नल को कोई वाचिक उत्तर न देकर अपने स्मित की मुहर लगाकर उसको सत्यापित कर देती है

इत्यसौ कलया सूक्तै सिक्त पीयूषवर्षिभि ।
ईदृगेवेति पप्रच्छ प्रियामुन्नमिताननाम् ॥ नै० २०-५० ।
ह्रीणा च स्मयमाना च नमय ती पुनर्मुखम् ।
दमय ती मुद पत्युरुच्चैरप्यभवत्तदा ॥ नै० २०-५२ ।

इस प्रसग म दमयन्ती आलम्बन विभाव है। दमय ती का स्मित तथा तद्गत लज्जा, नमद्युति स्वरूप कला के वचन तथा नल-भवनादि उद्दीपन विभाव हैं। नल का उपालम्भ देना, दमय ती के मुख को हाथ से उठाना तथा आनन्दित होना आदि अनुभाव हैं। हास, हर्ष, मति, वितर्क तथा अवहित्था आदि भावों से परिपुष्ट नलगत रति स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे हास्यगर्भित नर्म तथा नर्म-द्युति-स्वरूप उपालम्भ युक्त वचनो तथा उपालम्भ-निरासपरक वचनो से प्रधा येन अभिव्यक्त होने के कारण उपालम्भानुविद्ध नर्म-क्रीडा सभोग शृगार के नाम से अभिहित किया जायेगा।

आक्षेप गर्भित नर्म

नल कला के परिहासगर्भित मधुर वचनो को सुनकर तथा दमयन्ती के सस्मित मुख को देखकर आनन्दित होने के उपरात दमयन्ती पर पुन आक्षेप करने लगता है। देखिए उसके यह आक्षेप भी किस प्रकार मधुर हैं। नल का पहला आक्षेप यह है कि दमयन्ती रात मे कुछ और तथा दिन मे कुछ और रहती है। ऐसा क्यो ?

क्षन्तु मन्तु दिनस्यास्य वयस्येय व्यवस्यतात् ।
निशीव निशिघात्वयं यदाचरति नात्र न ॥
लज्जितानि जितान्येव मयि क्रीडितयानया ।
प्रत्यावृत्तानि तत्तानि पृच्छ सम्प्रति क प्रति ? ॥ नै० २०-५४-५६ ।

नल अपना दूसरा उलाहना भी न्यायोचित मानता है क्योंकि दमयन्ती को इतना तो स्वयं ही ध्यान रखना चाहिए कि किस पर तथा क्यों क्रोध करना चाहिए

निशि दष्टाधरायापि सैषा मह्यं न रुष्यतु ।
क्व फलं दशते बिम्बीलता कीराय कुप्यति ॥
सृणीपदसुचिह्ना श्रीश्चोरिता कुम्भिकुम्भयो ।
पश्यैतस्या कुचाभ्या नन्नृपस्तौ पीडयानि न ॥ नै० २०-५७-५८ ।

अपराध कोई और करे तथा रोष किसी और पर किया जाए दमयन्ती की यह नीति भी नल को नहीं भाती

अधरामृतपानेन ममास्यमपराध्यतु ।
मूर्ध्ना किमपराद्ध य पादौ नाप्नोति चुम्बितुम् ॥ नै० २० ५९ ।

मधुर वाणी को कौन सुनना पसन्द नहीं करता ? परन्तु दमयन्ती नल पर उस मधुर वाणी को सुनने के कारण ही रुष्ट हो गई थी

अपराद्ध भवद्वाणीश्राविणा पृच्छ किं मया ।
वीणाह परुष यन्मा कलकण्ठी च निष्ठुरम ॥ नै० २०-६० ।

दमयन्ती सखियों से बातें करे उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। परन्तु कम से कम उसे बिलकुल भूल तो न जाए

सेयमालिजने स्वस्य त्वयि विश्वस्य भाषताम् ।
ममतानुमतास्मासु पुन प्रस्मयने कुत ॥ नै० २०-६१ ।

नल के इन आक्षेपपूर्ण वचनों में भी दमयन्ती आलम्बन है । उसका मौन उद्दीपन विभाव है । नल के परिहास-गर्भित आक्षेपपूर्ण वचन अनुभाव हैं । हर्ष तथा अवहित्था आदि भावों से परिपुष्ट नलगत रति स्थायी भाव व्यंग्य है । जिसे आक्षेपगर्भित नर्म-स्वरूप वचनों से प्राधान्येन अभिव्यक्त होने के कारण आक्षेप-गर्भित नर्म-क्रीडा सभोग शृंगार के नाम से अभिहित किया जाएगा ।

श्रीहर्ष की सभोग-शृंगार-योजना

नैषधगत सभोगशृंगारपरक उपर्युक्त प्रकरणों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष विप्रलम्भ शृंगार के समान सभोग शृंगार की योजना करने में भी पूर्णतया सफल रहे हैं । सभोग शृंगार के विभिन्न रूपों की योजनाकर नैषध में उन्होंने जो अपनी नव-नवोन्मेषशालिनी बुद्धि का प्रदर्शन किया है वह असहृदयों में भी *सहृदयता का आधान करने तथा उन्हें भी* रसस्नान करा सकने में पूर्णतया समर्थ है । सभोग शृंगार की नैषध-जैसी छटा संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र ही दृष्टिगत होगी । नैषधगत विप्रलम्भ तथा सभोग योजना-एक-दूसरे के समान ही रुचिकर है ।

शृंगार-रसांगिता

हम देख चुके हैं कि काव्य मे सर्वप्रथम उपनिबद्ध तथा अन्त तक पुन-पुनः अनुसंधीयमान होने के कारण स्थायी-रूप मे प्रतीत होने वाले अन्य रसादिकों से परिपुष्ट प्रधान रस को अंगीरस के नाम से अभिहित किया जाता है। नैषधीयचरितगत शृंगार-रसपरक पूर्वोद्धृत प्रकरणों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष ने अपनी योजना के अनुरूप नैषध का प्रारम्भ शृंगार-रस-स्वरूप नल-दमयन्तीगत अन्योन्याभिलाष योजना से तथा अवसान उस अभिलाषा की सुखद पूर्ति की योजनाकर किया है। इसी प्रकार नैषध के मध्य भाग मे शृंगार रस का पुन-पुन अनुसंधानकर उन्होंने उसे स्थायित्व भी प्रदानकर दिया है। अग्रिम अध्यायो मे हम देखेंगे कि श्रीहर्ष ने नैषध मे शृंगार रस से भिन्न जिन रसादिको की योजना की है उन्हे शृंगार रस का अग बनाए रखने के प्रति भी वे सवदा सजग रहे हैं। अत नैषधीयचरित का प्रत्येक पाठक बिना किसी आयास के यह स्वत अनुभव करने लगेगा कि नैषधीयचरित शृंगार प्रधान महाकाव्य है और विवेचकों को इस तथ्य को स्वीकार करने मे भी कोई सकोच नही होगा कि श्रीहर्ष अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप नैषध को शृंगार प्रधान महाकाव्य बनाने मे पूर्ण सफल रहे हैं।

तृतीय अध्याय

अंग-रस-योजना

नैषधीयचरितगत अग-रस

महाकाव्य मे अप्राधान्येन विनियोजित रसो को अग रस के नाम से अभिहित किया जाता है। अग-रस चमत्कार-पयवसायी होते हुए भी प्राधान्येन विनियोजित रस का पयन्त मे परिपाप किया करत है। जिस प्रकार अगहीन व्यक्ति का सौदय अपूर्ण होता है उसी प्रकार अग-रसो से हीन काव्य भी हृदयावर्जक नही हाता। इसीलिए लक्षण-ग्रन्थकारो ने अग-रस के साथ-साथ समस्त अग रसो से युक्त काव्य को ही महाकाव्यत्व का अधिकारी माना है, द० रू० ६-३१७।

श्रीहर्ष ने नैषध मे प्रधान-रूप से शृगार रस की योजना करने के साथ-साथ अग-स्वरूप अन्य रसो की भी यत्र-तत्र योजना की है। इस अध्याय मे श्रीहर्ष की उस अग रस-योजना पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

हास्य-रस

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे हास्य-रस के अनेक भेदा की योजना की है। श्रीहर्ष की यह हास्य-रस-योजना स्वतन्त्र-रूप से चवणास्पद होते हुए भी नैषधगत शृगार रस की पोषक है।

हास्य-रस के आत्मस्थ तथा परस्थ नामक जो भेद स्वीकार किए गए हैं उनमे से आत्मस्थ हास्य के अनेक भेदो का नैषध मे सम्यक् निर्वाह हुआ है। परस्थ हास्य केवल एक स्थान पर ही विनियोजित है।

आत्मस्थ हास्य स्मित

जिस हास्य मे कपोल कुछ विकसित हो जाएँ, कटाक्षो म सौष्ठव बना

रहे तथा दन्तपंक्ति दृष्टिगोचर न हो रही हो वह स्मित हास्य होता है। यह हास्य उत्तम-प्रकृति-युक्त व्यक्तियों में उत्पन्न होता है

ईषद्विकसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः ।

अलक्षितद्विजं धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत् ॥ ना० शा० ६-५६ ।

श्रीहर्ष ने उपर्युक्त-स्वरूप स्मित हास्य की योजना अनेक स्थानों पर की है। परन्तु स्मित के द्वारा उन्होंने अधिकतर सम्भोग शृंगार का ही परिपोष किया है। अत हास्य-चर्वणा-पर्यवसायी स्मित-हास्याभिव्यञ्जक स्थल नैषध में कम ही हैं।

इन्द्रादि देवता दमयन्ती-स्वयंवर से वापस जा रहे थे। परन्तु मार्ग में जब वे देखते हैं कि दमयन्ती-स्वयंवर सम्पन्न हो जाने के उपरान्त कलि वहां जाने के लिए व्यग्र हो रहा है तो वे स्मित-युक्त हो जाते हैं

स्वयंवरस्थेऽ भैमीवरणाय त्वरामहे ।

तदस्मानमनुमन्यध्वमध्वने तत्र धाविने ॥

तेऽवज्ञाय तमस्पोच्चैरहंकारमधान्यम् ।

उचिरेऽतिचिरे यैनस्मित्वादृष्टमुखा मिथः ॥ नै० १७-११४-११५ ।

यहाँ पर कलि आलम्बन है। कलि की त्वरा तथा उसका गर्व उद्दीपन विभाव हैं। इन्द्रादि देवताओं का एक-दूसरे का मुंह देखकर मुस्कराने लगना तथा कलि के अहंकार की अवहेलना करना अनुभाव हैं। असूयादि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से इन्द्रादि-देवगत स्मित-हास्य-जनक हास स्थायी भाव की व्यंजना होती है। क्योंकि देवताओं का हास्य उत्तम प्रकृति के अनुरूप स्मित-मात्र ही रहता है।

पर्यन्त में उपर्युक्त हास्य नल के प्रतिस्पर्धी कलि की उपहास्यता तथा नल की उत्तमता की व्यञ्जनाकर नैषधगत अंगी शृंगार रस का अंग बन जाता है।

विहसित

जिस हास्य में आंखें तथा कपोल सिकुड़ जाएँ, जो मधुर-स्वन-युक्त हो तथा जिसमें मुख का वर्ण अरुण हो जाए उस सामयिक हास्य को विहसित हास्य कहा जाता है

आकुंचिताक्षिगण्डं यत्सस्वनं मधुरं तथा ।

कालागतं सास्यरागं तद्वै विहसितं भवेत् ॥ ना० शा० ६-५६ ।

श्रीहर्ष ने विहसित हास्य की योजना अन्य सभी हास्यों की अपेक्षा अधिक की है। और विहसित हास्याभिव्यञ्जक उनकी यह योजनाएँ हास्य चर्वणापर्यवसायी भी हैं।

दमयन्ती स्वर्ण हंस को पकड़ना चाहती थी। परन्तु हंस जब तक देखता

है कि दमयन्ती उससे कुछ दूर है तब तक तो वह उडता नही। परन्तु निकट पहुचकर जैसे ही दमयन्ती उसे पकडना चाहती है वह उड़कर दमयन्ती के प्रयत्न को निष्फल कर देता है। सखिया दमयन्ती के प्रयत्न की निष्फलता को देखकर हँसने लगती हैं

तामिगितैरप्यनुमाय मायामय न भैम्या वियदुत्पपात।
तत्पाणिमात्मोपरिपातुक तु मोघ वितेने प्लुतिलाघवेन॥
व्यर्थीकृत पत्ररथेन तेन तथावसाय व्यवसायमस्या।
परस्परामर्पितहस्ततालं तत्कालमालीभिरहस्यतालम॥ नै० ३-५-६।

यहाँ पर दमयन्ती आलम्बन है। हस को पकडने के लिए की गई उसकी चेष्टाए उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती की सखियो का तालिया बजाकर हँसने लगना अनुभाव है। असूया व्यभिचारी से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यग्य है। सखियो के इस हास को विहसित हास्य के नाम से ही अभिहित किया जायेगा क्योकि सखियो का यह हास्य स्थान पर ही उत्पन्न हुआ है।

पर्यन्त मे सखियो का यह हास्य दमयन्ती की मुग्धता की व्यजनाकर नैषध मे प्राधान्येन व्यक्त दमयन्तीगत रति वासना का अग बन जाता है।

सरस्वती पाण्ड्य-नरेश का वैभव-वणन कर रही थी। उसी समय दमयन्ती के अभिप्राय को जानने वाली एक दासी कहने लगती है कि स्वामिनि! राज-महल के ऊपर फहराने वाली पताका को देखिये। एक कौआ उस चचल पताका पर भी बैठना चाहता है। दासी के इस अप्रस्तुत भाषण से अन्य राजा हँसने लगते हैं

शशस दासीगितविद्विदभजामितो ननु स्वामिनि! पश्य कौतुकम्।
यदप सौधाग्रनटे पटाचले चलेऽपि काकस्य पदार्पणग्रह॥
ततस्तदप्रस्तुतभाषितोत्थितै सदस्तदश्वेति हसै सद सदाम्।
स्फुटाजनि म्लानिरनोऽस्य भूपते सिते हि जायेत शिते सुलक्ष्मता॥
नै० १२-२१-२२।

यहाँ पर पाण्ड्य-राजा आलम्बन है। दासी का अप्रस्तुत भाषण तथा पाण्ड्य नरेश की मुख-मलिनता आदि उद्दीपन विभाव हैं। दासी का अप्रस्तुत भाषण तथा सभासदो का हँसना अनुभाव हैं। असूया व अवहित्था आदि व्यभि-चारियो से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यग्य है। दासी का अप्रस्तुत भाषण स्वगत हास-जन्य अनुभाव है। परन्तु सभासदो के लिए वह उद्दीपन विभाव बन जाता है। दासी का यह अप्रस्तुत भाषण तद्गत अवहित्था भाव का व्यजक भी है। दासी तथा सभासदों के इस हास्य को विहसित नाम से ही अभिहित किया जायेगा। क्योकि उनके हास्य की उत्पत्ति समुचित अवसर मे ही होती है। दमयन्ती तो पाण्ड्य-नरेश का वरण नही करना चाहती थी। परन्तु

यह स्वयं इसके लिए इच्छुक था।

इसी प्रकार नेपाल-नरेश का वर्णन करते हुए सरस्वती को मध्य में ही रोककर एक दासी यह कहने लगती है कि सरस्वती जी, आप इस राजा के गुणों का वर्णन कहाँ तक करेंगी। आप सीधे यह क्यों नहीं कह देती कि इतना विस्तीर्ण संसार होते हुए भी गुण समूह इसमें निवास कर निवास-संकीर्णता-जन्य कष्ट उठा रहा है

दमस्वसुश्चित्तमवेत्य हासिका जगाद देवीं कियदस्य वक्ष्यसि।
भण प्रभूते जगति स्थिते गुणैरिहाप्यते सवटवाससंकटम् ॥

नै० १२-५०।

यहाँ पर नेपाल देश का राजा विभाव है। दासी की व्यङ्ग्योक्ति अनुभाव है। अवहित्था तथा असूया से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। दासीगत हास चूँकि स्थानजन्य है। दमयन्ती जिसका वरण नहीं करना चाहती थी वह उसका वरण करने के लिए लालायित था। अतः दासी के उपर्युक्त हास्य को विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा।

इसी प्रकार जब सरस्वती मलय पर्वत के राजा का वर्णन कर रही थी उस समय पर दमयन्ती की एक सखी के द्वारा अन्य राजाओं की ओर सरस्वती का ध्यान आकृष्ट किया जाना भी परिहास पूर्ण है

अयमयोग्यतयिदा दमस्वसुः स्मितविकस्याभिदधेऽथ भारती।
इत परामपि पश्य याचनां भवन्मुखेन स्वनिवेदनस्पृहाम् ॥ नै० १२-५६।

यहाँ पर मलय पवन का राजा विभाव है। सखी का कथन अनुभाव है। अवहित्था व्यभिचारी से परिपुष्ट सखीगत हास स्थायी भाव व्यंग्य है। स्थान-जन्य होने के कारण उसे भी विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा।

श्रीहर्ष ने हास्य रस की सर्वाधिक योजना सोलहवें सर्ग में की है। नल के बारातियों को भोजन कराने का दायित्व दम पर था। और दम पर रस भोजन के साथ साथ बारातियों को सामने परिहास-मिश्रित शृंगार-रस का आस्वादन कराने की भूमिका स्वयं बाँध देता है। अत एव सभी सेविकायें इस ओर सावधान हो जाती हैं कि कहीं कोई बाराती इस रस का आस्वादन करने से वंचित न रह जाये। दूसरी ओर बाराती भी कुछ कम नहीं थे। ज्ञात होता है कि वे भी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर क्या था कभी कोई बाराती और कभी कोई सेविका उस सारे रस की क्रीड़ा-स्थली बनने लगती है।

एक परिचारिका किसी बाराती से यह अनुमति मांगती है कि क्या दूसरा बाराती उसके सामने बैठ जाये। बाराती उस परिचारिका के शब्द-विन्यास की ओर ध्यान न देकर अपनी स्वीकृति दे देता है और परिचारिका को हँसने का अवसर मिल जाता है

मुखेन तेऽत्रोपविशत्वसाविति प्रयाच्यमृष्टानुमति खलाहसत् ।
वरांगभागं स्वमुखं मनोऽधुना स हि स्फुटं येन किलोपवेश्यते ॥
नै० १६-५० ।

यहाँ पर बाराती आलम्बन है। उसके द्वारा स्वीकृत किसी अन्य व्यक्ति का स्वमुखोपवेशन उद्दीपन विभाव है। अवहित्था व्यभिचारी भाव से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। परिचारिका का हास्य असवरजन्य होने के कारण विहसित नाम से ही अभिहित किया जायेगा। यद्यपि यहां पर परिचारिका ने अश्लीलता-युक्त श्लिष्ट अर्थ के आधार पर बाराती का उपहास किया है। परन्तु बारातियों के भोज के अवसर पर इस प्रकार के वचन तथा व्यवहार भारतीय रीति रिवाजों के अंग से बन गये है। अतः परिचारिका के उपर्युक्त हास्य को तथा इसी प्रकार के हास्याभिव्यंजक इस प्रकरण के अन्य संदर्भों को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

एक बाराती तो परिहास का पात्र बन ही चुका था। दूसरी ओर एक अन्य मनचला बाराती दो परिचारिकाओं को अपनी प्रियतमा कह देता है। फिर क्या था दोनों परिचारिकायें उसके शब्दों को सुनकर बेचारे को बकरा ही बना डालती है। एक परिचारिका उसके गले में अपनी माला डाल देती है और दूसरी उस माला को खींचने लगती है

युवामिमे मे स्मितमे इतीरिणा गले तयोक्ता निजगुन्छमेकिका ।
न भाम्यदस्तुच्छगलो वदन्निति न्यधत्त जन्यस्य तत पराकृषत् ॥ नै० १६-५१।

यहां पर भी बाराती आलम्बन है। मानव प्रकृति के विपरीत बाराती के शब्दों की ध्वनि उद्दीपन विभाव है। परिचारिका के द्वारा बाराती के गले में माला का डाला जाना तथा उस माला का खींचा जाना अनुभाव है। असूया तथा अवहित्था भाव से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। परिचारिका के हास को अवसरोचित होने के कारण विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा।

दासियों ने बारातियों का ही उपहास किया हो ऐसी बात नहीं। वे स्वपक्ष की एक दासी को भी नहीं बख्शती। बेचारी सीधे स्वभाव से नल के ऊपर पखा कर रही थी। उसी समय एक दासी ने आकर उसके पैरों के पास एक गिरगिट छोड दिया। गिरगिट भी उस दासी के हाथों से छूटकर और कहीं को न भागकर उस व्यजन करने वाली परिचारिका के पैरों के ऊपर की ओर चढ जाता है। फिर क्या था वह बेचारी तो भय से अपने कपडे उतारकर फेंक देती है और नागबाग उसपर हसने लगते हैं

नलाय बालव्यजनं विधुन्वती दमस्य दास्या निभृतं पदेऽर्पितात् ।
अहासि लोकै सरटात् पटोज्झिनी भयेन जघायनिलघिरहस ॥
नै० १६-५२ ।

यहाँ पर व्यजन करने वाली दासी आलम्बन है। उसका वस्त्रों को उतारकर फेंक देना उद्दीपन विभाव है। लोगों का हँसना अनुभाव है। अवहित्था भाव से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है।

परिहास के इस दौर में एक दासी एक सीधे-सादे ब्राह्मण देवता पर भी हाथ फेर देती है। वह मृगचर्मादि के किसी आसन को उलटा अर्थात् पृष्ठ को सामने करके बिछा देती है और जब कोई बारात का सीधा-सादा ब्राह्मण उस पर बैठ जाता है तो वह अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन करते हुए उस ब्राह्मण को उठाकर उस आसन को ठीक कर देती है और हँसने लगती है :

पुरस्सलाङ्गूलमदात् खला बृसीमुपाविशत् तत्र ऋजुर्वरद्विजः ।
पुनस्तदुत्थाप्य निजाङ्कनैर्व्यदात्सचच पश्चात् कृतपुच्छमम्बरा ॥
नै० १६-५३।

यहाँ पर ब्राह्मण आलम्बन है। उसका आसन पर बिना कुछ देखे-भाले बैठ जाना उद्दीपन विभाव है। दासी का हँसना अनुभाव है। असूया तथा अवहित्था से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। उपर्युक्त दोनों दासियों के हास्य को अवसरोचित होने के कारण विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा।

दासियों ने ही बारातियों का उपहास किया हो ऐसी बात नहीं। परन्तु उपहास करने में बारातियों की अपेक्षा वे आगे अवश्य रही हैं। क्योंकि परिचारिकाओं का अपना घर जो वहाँ था। बाराती तो बेचारे बाहर से आये थे। और प्रथा भी कुछ ऐसी ही है कि बाराती ही इस अवसर पर अधिकतर बेवकूफ बनाये जाते हैं। परन्तु नल के बारातियों में एक ऐसा आदमी भी था जो अपने भद्दे उपहास से परिचारिकाओं को भी मात दे देता है। वह स्वयं तो एक परिचारिका का कानों में लगा लेता है और अपने किसी मित्र के द्वारा उसके पैरों के बीच में दर्पण रखवा देता है तथा दर्पण को देखकर हँसने लगता है :

स्वयं कयाभिर्वरपक्षपुरुषः स्थितिर्विवृतायाः पदद्वयमन्तरा ।
परेण पश्चान्निभृतं न्यधापयद्दर्शं चादर्शतलं हसन् स तु ॥ नै० १६-५४।

यहाँ पर वर पक्ष की सुन्दरी आलम्बन है। उसकी असावधानता उद्दीपन विभाव है। बाराती का दर्पण देखकर हँसना अनुभाव है। अवहित्था भाव से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। स्थानजन्य होने के कारण बाराती के हास्य को भी विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा।

दम ने बारातियों को पत्थर की थालियों में भोजन परोसवाया था। परन्तु हरे रंग की उन थालियों में रखे हुए भोजन पदार्थों को कच्चा समझकर जब बाराती रुष्ट होने लगते हैं तो उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराना पड़ता है :

हरिन्मणेर्भोजनभाजनेऽर्पिते गता प्रकोप किल वारयात्रिका ।
भृत न शाकं प्रवितीर्णमस्ति वस्त्विपेदमेव हरितेति वोधिता ॥

नं० १६-६६ ।

यहाँ पर भी बाराती आलम्बन है । उनका अकारण रोष उद्दीपन विभाव है । कन्यापक्ष के लोगो का बारातियो को वास्तविकता का समझाना अनुभाव है । यद्यपि यहाँ पर किसी कन्यापक्ष के व्यक्ति मे स्पष्ट-रूप से हास्य का प्रदर्शन नही किया गया है । परन्तु क्या बारातियो की अज्ञानता पर वे मन ही मन नही हँसे होगे ? अत उनके हास्य को आक्षिप्त कहा जायेगा । और अवसरोचित होने के कारण उसे भी विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा ।

इसी प्रकार भोजन-समाप्ति के उपरान्त जब बारातियो ने पान खाया तो उसमें मसाले का बना हुआ बिच्छू रक्खा था । बारातियो ने उस बिच्छू को सच्चा समझकर जब पान थूक दिया तो कन्यापक्ष के लोग क्या न हँसने लगते

मुखे निधाय क्रमुक नलानुगैरथौज्झि पर्णालिरवक्ष्य वृश्चिकम् ।
दलार्पितान्तर्मुखवासनिर्मित भयाविलै स्वभ्रमहासिताखिलै ॥

नं ०१६-१०६ ।

यहाँ पर भी बाराती आलम्बन हैं । उनका मिथ्या सकल्प उद्दीपन विभाव है । कन्यापक्ष के लोगो का हँसना अनुभाव है । असूया तथा अवहित्या भावों से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यग्य है । अवसरोचित होने के कारण उपर्युक्त हास्य को भी विहसित नाम से अभिहित किया जायेगा ।

नैषध के बारहवें तथा सोलहवें सर्ग के उपर्युक्त हास्याभिव्यजक समस्त प्रसग पर्यन्त मे दमयन्ती की सखियो की कुशलता स्वयवर मण्डप मे उपस्थित दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए उत्सुक राजाओ की उपहासास्पदता, दमयन्ती के पिता की दासियो की चतुरता तथा कन्यापक्ष के अन्य लोगो की दक्षता की व्यजना कर दमयन्ती के उत्कर्ष की भी व्यजना करते है । जिससे नैषध मे अनेक स्थानो पर व्यक्त दमयन्तीगत रतिवासना का भी अप्रत्यक्ष रूप से परिपोष होता है । क्योंकि उत्तम-प्रकृति-युक्त व्यक्ति की रति वासना ही शृगार रस-स्वरूपता को प्राप्त होती है । अत किसी व्यक्ति की उत्तमता को व्यक्त करने वाले तत्त्व अप्रत्यक्ष-रूप से तद्गत रतिवासना के भी पोषक होते हैं ।

श्रीहर्ष ने बीसवें सर्ग मे भी विहसित हास्य की मनोरम योजना की है । कला की चालो मे फमकर जब नल अपने तथा दमयन्ती के गुप्त रहस्यो को प्रकट करने लगता है तो दमयन्ती कला के कानो को बन्द कर लेती है । फिर भी कला ने उसके कुछ रहस्यो को तो सुन ही लिया था । जिन रहस्य की बातों को वह दमयन्ती के द्वारा कानो के बन्द कर दिये जाने से नही सुन सकी थी उन रहस्यो को वह एक दूसरी सखी के साथ श्रुत रहस्यो का विनिमय कर

जान लेती है और उस सखी के साथ मिलकर हँसने लगती है

कर्णे कर्णे तत सख्यौ श्रुतमाचख्यतुर्मिथ ।
मुहुर्विस्मयमाने च स्मयमाने च ते वहू ॥ नै० २०-१२० ।

यहाँ पर नल-दमयन्ती आलम्बन हैं। उनके गुप्त रहस्यों का भेद उद्दीपन विभाव है। सखियो का हँसना अनुभाव है। अवहित्थ भाव मे परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यग्य है।

कला स्मित-मात्र से ही सन्तुष्ट होने वाली नही थी। अब वह मीठी चुटकियां लेकर दमयन्ती को चिढ़ाने लगती है

अथाल्यायि कलासख्या कुप्य मे दमयन्ति ! मा।
कर्णाद् द्वितीयतोऽप्यस्या सखोप्येव यदश्रवम् ॥ नै० २०-१२१।

जब कला के इस कथन को सुनकर नल दमयन्ती को आगाह करने लगता है कि वह भविष्य मे अपनी धोखा देने वाली उन सखियो का विश्वास न करे तो कला नल पर भी एक फुरहरी छोडने से बाज़ नही आती

प्रिय प्रियामथाचष्ट दृष्ट कपटपाटवम् ।
वयस्ययोरिद त्वेऽस्मा मा सखोष्वेव विश्वसी ॥
आलापि कलयापीय पतिर्नालपति क्वचित् ।
वयस्येऽमो रहस्य तत्सख्ये विस्रम्भमीदृशी ॥ नै० २०-१२२-१२३ ।

जब कला के इस कटाक्ष को सुनकर नल खीझ जाता है और दमयन्ती से उन सखियो को वहाँ से निकाल बाहर करने की अनुमति माँगकर उन्हें पानी से भिगो देता है जिससे वे वहा से चले जाने के लिए विवश हो जाती हैं तो वे बाहर जाते-जाते भी नल-दमयन्ती पर छींटा कसती जाती हैं

इतिश्रुतिष्ठमानाया तस्यामूचे नल प्रियाम् ।
भण भैमि ! वहि कुर्वे दुर्विनीते ! गृहादमू ॥
शिर कम्पानुमत्याथ मुदत्या प्रीणित प्रिय ।
चुलुक तुच्छमुत्सर्प्य सख्यो सलिलमाक्षिपत् ॥
ते निरीक्ष्य निजावस्था ह्रीणे निर्ययतुस्तत ।
तयोर्वीक्षारसान् सख्य सर्वा निश्चक्रमु क्रमात् ॥
ते सख्यावाचचक्षाते न किंचिद् ब्रूवहे वहू ।
कस्यावस्तत्पर यस्मै सर्वा निर्वासिता वयम् ॥
नै० २०-१२४-१२५ १३२, १३३।

यहा पर नल तथा दमयन्ती आलम्बन हैं। दमयन्ती का मौन तथा नल की खीझ उद्दीपन विभाव हैं। सखियो का हँसना तथा उनकी व्यग्योक्तियाँ अनुभाव हैं। असूया तथा अवहित्था व्यभिचारियो मे परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यग्य है। सखियों के इस हास को स्थानजन्य होने के कारण विहसित नाम से

अभिहित किया जायेगा ।

पर्यन्त मे सखियो का उपर्युक्त हास्य नैषधगत पूववर्ती तथा उत्तरवर्ती शृगार रस के मध्य मे रुचिवैचित्र्य का आधान करने के साथ-साथ नल-दमयन्ती की उत्तमता की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का अङ्ग बन जाता है ।

अपहसित

श्रीहर्ष श्लिष्ट प्रयोगो के धनी है । हास्य रस की व्यजना करते हुए भी उन्होने अपने इस कौशल से लाभ उठाया है । इन्द्रादि देवता कलि को नल के साथ द्वेष न करने के लिए समभाना बुझाना चाहते हैं । परन्तु कलि देवताओ की बातो की ओर ध्यान ही नहीं देता । फलत कलि तथा देवताओ मे नोक-भोक होने लगती है

कलि प्रति कलि देवा देवान् प्रत्येकश कलि ।
सोपहास समैर्वर्णैरित्थ व्यरचयन्मिथ ।। नै० १७-१५३ ।

कलि दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने के लिए जा रहा था । जबकि दमयन्ती का स्वयवर सपन्न हो चुका था । अत इन्द्र उसके वहाँ जाने तथा अपने विमान को शीघ्रता से दौडाने का उपहास करते हैं । परन्तु कलि उन्ही के शब्दो मे इन्द्र के दमयन्ती-स्वयवर से अपना-सा मुँह लेकर लौट आने तथा आन्तरिक उद्वेग का उपहास करने लगता है

तवागमनमेवार्ह वैरमेनो तया वृते ।
उद्वेगेन विमानेन किमनेनापि धावता ।। नै० १७-१५४ ।

अग्नि कलि का इसलिए उपहास करने लगता है क्योकि कलि जिसको प्राप्त करना चाहता था उसने अन्य किसी का वरण कर लिया था । परन्तु अग्नि की भी तो वही स्थिति थी । अत कलि उनके शब्दो को उनके ऊपर ही ढाल देता है

पुरा यासि वरीतु यामग्र एव तया वृते ।
अन्यस्मिन् भवतो हास्य वृत्तमेतन् त्रपाकरम् ।। नै० १७-१५५ ।

यम भी कलि के प्रयासो की निरथकता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हैं । क्योकि जो होना था वह तो हो ही चुका था । परन्तु कलि के कथनानुसार यम से बढकर नीच तथा पौरुषहीन और कौन हो सकता था । क्योकि यम जिसका वरण करने के लिए दौडते हुए गये थे उसन यम के सामने ही किसी अन्य पुरुष का वरण कर लिया

पत्यौ तया वृतऽन्यस्मिन् यदर्थं गतवानसि ।
भवत कोपरोध स्तादसमस्य वृथारुष ।। नै० १७-१५६ ।

वरुण के कथनानुसार कलि का इतना अधिक बन-ठनकर कोसों दौड़ते चले जाना मूर्खता तथा निर्लज्जता का परिचायक था। वरुण का स्वर अन्य देवताओं का उपहास सुनकर कुछ तीखा हो गया था। परन्तु कलि वरुण की उस तीक्ष्णता की परवाह करने वाला नहीं था। वह वरुण के स्वर में स्वर मिलाता हुआ कहता है कि हम तो उसे खुद आनी चाहिए क्योंकि वह बन-ठन कर ही तो दमयन्ती स्वयंवर को गया था

यासि स्मरन्न जयन् वाग्म्या योजनौघं महावेता।
समूढस्न वृतेऽस्यस्मिन् किं न ह्रीस्तेऽत्र पामर [1]॥ नै० १७-१५७।

उपर्युक्त देवताओं तथा कलि की नोंक-झोंक में कलि तथा इन्द्रादि देवता दोनों ही आलम्बन हैं। दोनों का दमयन्ती को प्राप्त कर पाने में असफल रह जाना उद्दीपन विभाव है। कलि तथा इन्द्रादि देवताओं की परिहास-पूर्ण व्यंग्योक्तियाँ अनुभाव हैं। असूया तथा अमर्ष व अवहित्था भावों से परिपुष्ट हास स्थायी भाव व्यंग्य है। परन्तु देवगत हास्य को स्मित तथा कलि के हास्य को अपहसित नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योंकि देवताओं का हास्य अवसरोचित तथा उत्तम-प्रकृतिगत है जब कि कलिगत हास्य अनवसरोचित तथा अधम-प्रकृतिगत है। दमयन्ती ने नल का वरण देवताओं की अनुमति प्राप्त कर लिया था। अत नल का वरण कर लिए जाने से इन्द्रादि देवताओं का उपहास किया जाना असमुचित ही था। और कलि दमयन्ती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए तब जा रहा था जब कि वह स्वयंवर ही सम्पन्न हो चुका था। अत स्वयंवर सम्पन्न होने के उपरान्त उसमें भाग लेने के लिए भागते हुए कलि पर हँसी आना स्वाभाविक ही था।

पर्यन्त में नल को वंचित करने के लिए प्रयत्न करने वाले इन्द्रादि देवताओं तथा कलि के द्वारा किया गया उपर्युक्त प्रसंगगत एक-दूसरे का उपहास नल की उत्तमता की व्यंजना कर नैषधगत अंगी शृंगार रस का अंग बन जाता है।

परस्थ हास्य

श्रीहर्ष ने परस्थ हास्य की भी एक स्थान पर योजना की है। दमयन्ती जब यह देखती है कि नल ने कला की बातों में आकर अनेक गुप्त रहस्यों को प्रकट कर दिया है। और अब वह उन बातों को भी कहने जा रहा है जो नहीं कहनी चाहिए तो वह लज्जित होकर उन गुप्त रहस्यों को सुनने वाली पास में ही बैठी हुई कला के कान बन्द कर लेती है

इति तस्या रहस्यानि प्रिये शसति सातरा।
पाणिभ्यां पिदधे सख्या श्रवसी ह्रीवशीकृता॥ नै० २०-९७।

दमयन्ती के इस व्यापार को देखकर नल हँसने लगता है। दमयन्ती की अन्य सखियाँ भी कुछ दूर पर बैठी थी। वे यद्यपि नल के हँसने का कारण नही जान पाती परन्तु नल को हँसता हुआ देखकर वे भी हँसने लगती हैं

तमालोक्य प्रियाकेलिं नले सोत्प्रासमहासिनि।
आरात् तत्त्वमबुद्ध्वापि सख्य सिष्मियिरेऽपरा ॥
दम्पत्योरुपरि प्रीत्या ता घराप्सरसस्तयो।
ववृषु स्मितपुष्पाणि सुरभीणि मुखानिलैः ॥
तदस्य हसिताज्जात स्मितमासामभासत।
आलोकादिव शीताशो कुमुदश्रेणिजृम्भणम् ॥ नैं० २०-१००-१०२।

यहाँ पर नलगत हास्य दमयन्ती के द्वारा कला के कानो के बन्द करने से उत्पन्न हुआ है। अत नलगत हास्य के प्रति उसे विभाव कहा जायेगा। परन्तु सखियों का हास्य किसी विभाव-साक्षात्कार से नही उद्बुद्ध होता है। वह नलगत हास्य को देखने से उत्पन्न होता है। श्रीहर्ष ने स्वय ही इस तथ्य को प्रकट कर दिया है (तदस्य हसिताज्जातम्०)। अत सखियो के हास्य को परस्थ हास्य के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योकि किसी को हँसता हुआ देखकर जिस हास्य की उत्पत्ति होती है उसे परस्थ हास्य कहा जाता है। दमयन्ती की सखिया भी अनुत्तम प्रकृति से युक्त नही थी। अत उनके इस हास्य को परस्थ हास्य के तीन प्रकारो मे से हसित नाम से अभिहित किया जायगा। श्रीहर्ष ने स्वय भी उसे स्मित नाम से सबोधित किया है और उनके इस हास्य की प्रशसा भी की है। अत उसे उत्तम कोटि का स्वीकार करना ही समुचित है।

नल तथा सखियो का उपर्युक्त हास्य भी पयन्त मे अगी शृगार रस के मध्य मे रुचिवैचित्र्य का आधान करते हुए शृगार रस का अग बन जाता है।

नैषधगत हास्य-रसाभिव्यजक उपर्युक्त प्रकरणो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष ने हास्य रस की व्यजना स्त्री पात्रो म अधिकतर की है। और भरत न स्त्रियो मे उसकी प्राधान्येन योजना करने का निर्देश भी दिया ही है। इसके साथ-साथ उन्होने शृगार की अपेक्षा उसकी योजना भी न्यून-मात्रा मे ही की है और जहाँ कही पर उन्होने हास्य रस की योजना की है उसे शृगार-रस-पर्यवसायी बनाने का भी प्रयास किया है।

करुण-रस

श्रीहर्ष ने नैषध मे करुण रस के लिए कम अवसर प्रदान किया है। परन्तु जहाँ कही भी उन्होने करुण रस की योजना की है उसे शृगार रस के समान ही हृदयग्राह्य बना दिया है। करुण रस के धर्मोपघातज तथा शोककृतक

नामक दो भेदों की योजना ही नैषध में उपलब्ध होती है।

धर्मोपघातज करुण

दमयन्ती का करुण विलाप सुनकर नल जब उद्भ्रान्त हो जाता है तो वह उस उन्मत्त अवस्था में दमयन्ती के सम्मुख अपना परिचय प्रकट कर देता है। नल की उस प्रेममिश्रित करुणायुक्त वाणी को सुनकर दमयन्ती तो प्रकृतिस्थ हो जाती है। परन्तु दमयन्ती को प्रकृतिस्थ देखकर नल की मोह-निद्रा भी टूट जाती है और वह आत्मनिन्दा करने लगता है

मुनिर्यथात्मानमथ प्रबोधवान् प्रकाशयन्तं स्वमसावबुध्यत।
अपि प्रपन्नां प्रकृतिं विलोक्य तामवाप्तसंस्कारतयामृजद्गिरः ॥

नै० ६-१२१।

नल ने देवताओं का दौत्य कार्य स्वीकार किया था। और वह इस बात से भली भाँति परिचित था कि वह उस कार्य को सुचारु-रूप से तभी सम्पादित कर सकता था जब कि वह अपना परिचय दमयन्ती को न बताता। परन्तु जब वह देखता है कि उसने स्वयं ही अपना परिचय दमयन्ती के सम्मुख प्रकट कर दिया है तो वह आत्मग्लानि से भर जाता है और इन्द्रादि देवताओं के सम्मुख अपना सिर लज्जा के कारण ऊपर न कर सकने की कल्पना कर खिन्न होने लगता है

अये ममात्मा किमनिह्नुतीकृत विमत्र गन्ता स नु मा मतत्रत्।
पुरः स्वभक्त्याथ नमन् ह्रियाविनो विलोकिताहे न तदिगितान्यपि॥

नै० ६-१२२।

नल सोचता है कि हनुमानादि ने भी दौत्य कार्य स्वीकार किया था। और उन्होंने उस कार्य का सम्यक्-रूप से सम्पादन कर यशोपार्जन किया था; परन्तु उसने दौत्य कार्य को स्वीकार करने के उपरान्त स्वयं ही उस कार्य का विघात कर शत्रुओं को हँसने के लिए अवसर प्रदान कर दिया है। इस विचार से उसका मन पश्चात्ताप से भर जाता है

स्वनाम यन्नाम मुधाभ्यधामहो महेन्द्रकार्यं महदेतदुज्झितम्।

हनूमदाद्यैर्यशसा मया पुनर्द्विषां हसैर्दूतपथः सितीकृतः ॥ नै० ६-१२३।

यद्यपि नल जानता था कि उसने इन्द्रादि देवताओं का कार्य सम्पादन करने में कोई कसर नहीं रखी थी। उन्मत्तता ने ही उसके करे-धरे पर पानी फेर दिया था। परन्तु इससे दुनियाँ के मुँह को तो नहीं बन्द किया जा सकता था

धियात्मनस्तावदचारु नाचरं परस्तु तद्वेद न यद्वदिष्यति।

जनावनायोद्यमिनं जनार्दनं क्षयं जगज्जीवपिब शिवं वदन् ॥ नै० ६-१२४।

इस प्रकार दुःखी होकर वह अपने हृदय के विदीर्ण हो जाने की कामना करने लगता है जिससे देवताओं को तो कम से कम उसकी शुद्धता का ज्ञान हो

सकता था

स्फुटत्यदः किं हृदय त्रपाभराद्यदस्य शुद्धिर्विबुधैर्विबुध्यताम्।
विदन्तु ते तत्त्वमिदं तु दन्तुर जनानने कः करमर्पयिष्यति ।। नै० ६-१२५।
आत्मनिन्दा करने के उपरान्त वह दैवनिन्दा भी करता है। क्योंकि उस दैव ने ही उसकी चेतना का अपहरण कर उसके श्रम को निष्फल कर दिया था

मम श्रमश्चेतनयानया फली बलीयसाऽलाभि च मैव वेधसा।
न वस्तु दैवस्वरसाद्विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः ।। नै० ६-१२६।

यहाँ पर नल के द्वारा स्वीकृत दौत्य का विनाश आलम्बन विभाव है। लोकापवाद तथा नल का अपना यश आदि उद्दीपन विभाव हैं। नल का पश्चात्ताप करना, आत्मनिन्दा तथा दैव-विगर्हणा करना आदि अनुभाव है। निर्वेद, ग्लानि, शंका, चिन्ता, व्रीडा तथा विषादादि व्यभिचारियों से परिपुष्ट नलगत शोक स्थायी भाव व्यंग्य है। नलगत उस शोक स्थायी भाव को धर्मोपघातज करुण रस के नाम से अभिहित किया जायगा। क्योंकि महापुरुष स्वीकृत कार्य का सम्पादन करना अपना धर्म मानते हैं। और यह धर्म उनका इष्टतम होता है। परन्तु नल महानतासूचक गुणों से युक्त होते हुए भी स्वीकृत कार्य का सम्पादन पर्यन्त तक नहीं कर पाता। अत एव धर्मोपघात से उसका शोकयुक्त हो जाना स्वाभाविक था। नल ने देवताओं का दौत्य कार्य सम्पादन करने में कोई कसर नहीं रखी थी। दमयन्ती बार-बार नल से आग्रह करती रही थी कि वह देवताओं की चर्चा अब और अधिक न करे। परन्तु नल दमयन्ती के दीन वचनों से मर्माहत होते हुए भी देवताओं में से किसी एक का वरण कर लेने के लिए दमयन्ती को प्रेरता रहता है। उसने दमयन्ती को देवताओं का वरण करने के लिए केवल समझाया-बुझाया ही नहीं अपितु उसने दमयन्ती को देवताओं की उन शक्तियों से भी परिचित कराने का प्रयास किया था जिनके सामने दमयन्ती को विवश होकर देवताओं में से किसी एक का वरण तो करना ही पड़ता। और नल की वे सब विभीषिकायें वास्तविक होते हुए भी कल्पना-प्रसूत थीं। अतः इतना अधिक प्रयत्न करने के उपरान्त भी जब नल देखता है कि उसकी उन्मत्तता ने उसके कार्य का विनाश कर दिया है तो वह शोकयुक्त हो जाता है। श्रीहर्ष ने स्वयं ही नल के उपर्युक्त परिवेदन को शोक करने की संज्ञा से अभिहित कर उसकी शोक-व्यञ्जना का प्रतिपादन कर दिया है

इति स्वयं मोहमहोर्मिनिर्मितं प्रकाशनं शोचति नैषधे निजम्।
नै० ६-१२७।

नल का उन्माद में अपने परिचय को प्रकट कर देने के उपरान्त शोक-युक्त हो जाना तथा आत्मनिन्दा करने लगना उसकी सदाशयता तथा उत्तमता का

परिचायक है। इस प्रकार यह प्रसंग नल की उत्तमता की व्यंजना कर नैषधगत शृंगार रस का अंग बन जाता है।

शोकाकुल हंस का करुण क्रंदन

नल के द्वारा गृहीत हंस अनेक प्रयत्न करने पर भी जब नल के हाथों से अपनी मुक्ति नहीं करा पाता है तो वह विधाता की निर्दयता का स्मरण कर करुण विलाप करने लगता है क्योंकि वही उसकी अनन्य सहाया वृद्धा माँ तथा नव प्रसूता तपस्विनी हंसिनी के अवलम्ब स्वरूप उस हंस का विनष्ट करने पर तुला हुआ था

मदेक पुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे! त्वां करुणा रुणद्धि न ॥ नै० १-१३५।

अपने मित्रों की स्मृति उसे अधिक कष्ट नहीं पहुँचाती। क्योंकि मित्र लोग तो क्षण-भर रोने-धोने के उपरान्त शान्त हो जाते हैं। परन्तु अपनी असहाय माँ की स्मृति उसके हृदय को विगलित करने लगती है। क्योंकि उसके लिए पुत्रवियोग-जन्य शोक असह्य तथा निरवधि था

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम।

निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः सुतशोकसागरः ॥ नै० १-१३६।

यह निश्चित था कि अन्य हंस उसके नाश से उद्धार उसकी हंसिनी के पास जायेंगे। परन्तु उसकी हंसिनी जब अन्य हंसों में उसे नहीं देखेगी तो उनसे उसके न आने का कारण पूछेगी। परन्तु जब वे हंस उसकी हंसिनी का कोई उत्तर नहीं देंगे और वह उन्हें केवल रोता हुआ देखेगी तो वह क्षण उसकी हंसिनी के लिए किस प्रकार वज्रपात के समान प्रतीत होगा। यह कल्पना उस राजहंस हंस को उन्मत्त बना देती है और वह दुर्दैव के द्वारा अपनी हंसिनी पर ढहाये गये इस वज्रनिपात की कठोरता की कल्पना करता हुआ सोचता है कि जब उसकी हंसिनी को अन्य हंस इस अनर्थ वार्ता से अवगत करा देंगे तो उसके लिए दशों दिशायें शून्य हो जायेंगी

मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते।

विलोकयन्त्या रुदितोऽथ पक्षिणः प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः।

वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा ॥

अयि स्वयूथ्यैरशनिक्षताद्भुतं समाप्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता।

मुखानि लोलाक्षि! दिशामसंशयं दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥

नै० १-१३७-१३९।

अपनी हंसिनी की दुर्दशाओं की कल्पना करते हुए वह सोचता है कि यदि कहीं

उसकी हंसिनी शोक को न सहन कर सकने के कारण विपन्न हो गई तो उसके नवजात शिशुओं का क्या होगा ? वे भी असहाय होने के कारण नहीं जी सकेंगे

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विचित्रागि ! विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हत स्फुट यतस्ते शिशव परासव ॥
नै० १-१४० ।

हंसिनी के विरह में क्षुधाकुल, कोटर मे लोट-लोटकर क्षण-भर मे ही विपन्न हो जाने वाले, चिरकाल के उपरान्त उत्पन्न अपने नवजात शिशुओं की दुर्दशा की कल्पना करता हुआ हंस अन्त मे मूर्च्छित हो जाता है। और उसे चेतना तब आती है जबकि नल के अश्रु उसे क्लिन्न कर देते हैं

तवापि हा हा विरहात् क्षुधाकुला कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते ।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैंगता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ॥
सुता कमाहूय चिराय चूत्कृतैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि क प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य स स्रुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाश्रुण ॥
नै० १-१४१-१४२ ।

यहा पर हंस के द्वारा सकल्पित वृद्धा माँ, हंसिनी तथा नवजात शिशुओं की दुर्दशा आलम्बन विभाव है। मा की वृद्धावस्था, अनन्यपुत्रता, हंसिनी की तपस्विता तथा नव-प्रसूतता, शिशुओं की नवजातता तथा उनकी बालसुलभ क्रीडाएँ आदि उद्दीपन विभाव हैं। नलकरपजरस्थ हंस का करुण विलाप, दैवोपालम्भ तथा मूर्च्छित हो जाना आदि अनुभाव है। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता मोह, विषाद आदि व्यभिचारी भावो से परिपुष्ट हंसगत शोक स्थायी भाव व्यग्य है। हंसगत इस शोक को शोककृतक करुण रस के नाम से अभिहित किया जाएगा। क्योकि हंसगत शोक अप्रतीकाय तथा सकल्पित स्वजननाशादिजन्य है।

यद्यपि तिर्यक्-योनिगत स्थायी भावो की रस-स्वरूपता पर्याप्त विवाद का विषय रही है। कुछ विवेचको ने तिर्यक् योनिगत स्थायी भावो को रस स्वीकार किया है तो कुछ अन्य विवेचको ने उन्हे आभास कोटि मे स्थान दिया है। परन्तु अधिकाश चिन्तक उन्हें रस स्वीकार करने के पक्ष में ही हैं।

अभिनव तथा मम्मट ने भी तिर्यग्गत स्थायी भावो को रस नाम से अभिहित किया है

तस्य व ग्रीवाभगाभिरामम् ० । इति—भयानको रस ।
ना० शा० अभि० पृ० २७६ ।

तिर्यगादौ तु अनौचित्याभावाद्रस एव न तदाभास । अत एव वृत्तिकारो ग्रीवाभगाभिरामम्० इत्यादौ तिर्यग्विषयतया भयानक मित्रे क्वापि गत० इत्यादौ तिर्यग्विषयतया विप्रलम्भ चोदाजहार । का० प्र० बामनी पृ० १२१ ।

वस्तुत किसी युग मे कुछ विशिष्ट चिन्तको ने तिर्यग्विषयक स्थायी भावो

को अस्वाभाविकता आदि के कारण भले ही अनौचित्य-युक्त स्वीकार कर लिया हो, परन्तु तिर्यक् अथवा जड़-प्रकृतिगत स्थायी भावों की व्यंजना प्राचीनकाल से आज तक कवियों का अभीष्ट विषय रही है। आधुनिक पाठक तथा समालोचक के लिए तो यह सर्वथा सामान्य बन चुकी है। इसके साथ-साथ अभी प्राचीन चिन्तकों ने भी इनकी औचित्यपूर्ण व्यंजना को अनौचित्य-युक्त नहीं स्वीकार किया है। अतः उपर्युक्त हंसगत शोक स्थायी भाव को तिर्यक् हंसगत होते हुए भी करुण रस के नाम से अभिहित करना न तो सर्वथा अशास्त्रीय है और न असमीचीन ही है। श्रीहर्ष के अनुसार भी हंस का उपर्युक्त परिदेवन करुण रस से ही सिक्त है

इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः ।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः ॥ नै० १-१३४ ।

इस प्रकार यह शोक नल की उत्तमता का परिचायक भी है। क्योंकि हंस का करुण परिदेवन नल को दयाद्रवित कर देता है। नल हंस के इस रुदन तथा परिदेवन से प्रभावित होकर स्वयं भी रुदन करने लगता है। जिस नल ने पहले उड़ने के लिए बार-बार प्रयत्न करने पर भी हंस को नहीं छोड़ा था, यहाँ तक कि हंस के द्वारा हाथों में काट लिए जाने तथा निन्दा किए जाने पर भी नहीं छोड़ा था वही नल हंस की करुण वाणी को सुनकर स्वयं उसे छोड़ देता है

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयावनिपालः ।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥ नै० १-१४३ ।

इस प्रकार हंसगत उपर्युक्त शोक नलगत दयालुता का उद्भावक बनकर उसकी उत्तमता का व्यंजक बन जाता है। और उसे शृंगार रस के अनुरूप उत्तम प्रकृति से युक्त कर नैषधगत अंगी शृंगार रस का अंग बन जाता है। यद्यपि करुण तथा शृंगार रस परस्पर विरुद्ध होते हैं परन्तु उपर्युक्त प्रकरणगत करुण रस अंग के रूप में उपनिबद्ध होने के कारण नैषधीयचरितगत अंगी शृंगार रस की प्रतीति का व्याघातक न होकर उसका उल्लासक ही है।

श्रीहर्ष ने करुण रस की सर्वाधिक मार्मिक व्यंजना दमयन्तीगत शोक की व्यंजना कर की है। अनेक उपायों के उपरान्त भी जब नल दमयन्ती को किसी देवता का वरण करने के लिए तैयार नहीं कर पाता तो वह दमयन्ती को देवताओं की शक्ति से परिचित कराते हुए कहता है कि यदि देवता विघ्न करने पर उतर आए तो ऐसा कौन व्यक्ति है जो हाथ में रखी हुई वस्तु को भी प्राप्त कर सकता है ?

इदं महत्तेऽभिहितं हितं मया विहाय मोहं दमयन्ति ! चिन्तय ।
सुरेषु विघ्नैकपरेषु को नरः करस्थमप्यर्थमवाप्तुमीश्वरः ? ॥ नै० ९-८३ ।

नल का उपर्युक्त कथन दमयन्ती के मस्तिष्क में गूँजने लगता है। और जब उसे नल के कथन की सत्यता पर विश्वास हो जाता है तो उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है

इमा गिरस्तस्य विचिन्त्य चेतसा तथेति सप्रत्ययमाससाद सा।
निवारितावग्रहनीरनिर्झरे नभोनभस्यत्वमलम्भयद्दृशौ।। नै० ९-८४।

जब उसे अपने प्रिय नल की प्राप्ति न हो सकने का पूर्णरूप से निश्चय हो जाता है तो अधैर्य, सम्भ्रम, अरति तथा किंकर्तव्य-विमूढ़ता से युक्त दमयन्ती उद्भ्रान्त होती हुई तथा रुदन करती हुई विलाप करने लगती है

अथोदभ्रमन्ती रुदती गतक्षमा ससम्भ्रमा लुप्तरति स्खलन्मति।
व्यधात् प्रियप्राप्तिविघातनिश्चयान्मृदूनि दूना परिदेवितानि सा।।
नै० ९-८७।

सर्वप्रथम वह कामदेव तथा विधाता का अपना जीवनान्त करने के लिए आवाहन करती है। क्योंकि यह दोनों ही कभी किसी को सुखी देखना नहीं पसंद करते। इन दोनों ने ही उसे अपना जीवनान्त कर देने के लिए विवश किया था। अतः वह इनका आवाहन भी आक्रोश-मिश्रित स्वर में करती है

स्मरास्य पञ्चषुहुताशनात्मनस्तनुष्व मत्कर्ममयं यशश्चयम्।
विधे! परेहाफलभक्षणव्रती फलाद्य तृप्यन्नसुभिर्ममाकलैः।। नै० ९-८८।

अपने जीवित की निन्दा करने लगना करुण रस का अंग होता है। दमयन्ती को भी अपने हृदय के विदीर्ण न होने तथा अपने जीवित के अवशेष रह जाने पर तरस आने लगता है

भव वियोगानलतप्यमान किं विलीयसे न त्वमयोमयं यदि।
स्मरेषुभिर्भेद्य न वज्रमप्यसि ब्रवीषि न स्यात्! कथं न दीर्यसे।।
विलम्बसे जीवित! किं द्रव द्रुतं ज्वलत्यदस्ते हृदयं निकेतनम्।
जहासि नाद्यापि मया सुखासिकामपूर्वमालस्यमिदं तवेदृशम्।।
नै० ९-८९-९०।

कालिदास के अनुसार आशाबन्ध जीवनतन्तु को विच्छिन्न नहीं होने देता। दारुण वियोग में वियुक्त व्यक्तियों का वही अवलम्ब होता है। और स्त्रियों का तो वह विशेष रूप से जीवनाधार होता है

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।। पूर्वमेघ—१०

परन्तु दमयन्ती को तो अब यह भी आशा नहीं रही थी कि वह अपने प्रिय के दर्शन तक कभी प्राप्त कर सकेगी। मनोरथों ने उसके नेत्रों को नल-दर्शन की जो आशा दिलाई थी वह अब सैकड़ों वर्षों तक अश्रुधारा बहाने पर भी पूरी होने वाली नहीं थी

दृशौ ! मृषा पातकिनौ मनोरथं क्व पृथू वामपि विप्रनेनिरे ।
प्रिय-प्रिय प्रेक्षण-घाति-पातकं स्वमश्रुभि क्षालयत शत समा ।।
नै० ६-६११

उसने यह निश्चय कर लिया था कि वह अब प्रिय-वियोग में जीवित नहीं रहेगी। परन्तु इस निश्चय से युक्त हो जाने पर भी उसकी यह कामना बनी रहती है कि उसकी भस्म ही उसके प्रिय के पास पहुँच जाती। और अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए वह अपने शत्रु दक्षिण पवन से याचना करने तक का निश्चय कर लेती है

न काकुवाक्यैरनिदानमाज द्विषन्तु याचे पवन नु दक्षिणम्।
दिशापि मद्भस्म किरत्वय तया प्रियो यया वैरविधिर्वधावधि ॥
नै० ६-६३।

जायसी की नागमती की अभिलाषा भी कुछ दमयन्ती जैसी ही थी

यह तनु जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग उडि परै कन्त धरै जहँ पाउ।।
पद्मावत—नागमती वियोग खण्ड-१२।

दमयन्ती एक अजीब छटपटाहट में पड़ी हुई थी। उसकी तड़पन का अन्त नहीं हो रहा था। समय व्यतीत करना उसे दुस्सह हो गया था। परन्तु मृत्यु उसके निकट नहीं आ रही थी

अमूनि गच्छन्ति युगानि न क्षण कियत् सहिष्ये न हि मृत्युरस्ति मे।
स मा न कान्त स्फुटमन्तरुज्झिता न त मनस्तच्च न कायवायव ॥
नै० ६-६४।

देवता दयानिधि होते हैं। परन्तु दमयन्ती के दुर्भाग्य ने देवताओं के उस दया-समुद्र को शुष्क बना दिया था। एक बार वह देवताओं का स्मरण कर दीन वाणी से उनकी कृपा पाने के लिए प्रार्थना भी करना चाहती है। परन्तु वह तत्काल ही यह अनुभव करने लगती है कि मेरी यह प्रार्थना व्यर्थ ही रहेगी

मदुग्रतापव्ययशक्तशीकर सुरा स व केन पपे कृपार्णव ।
उदेति कोटिन मुदे मदुन्नमा किमाशु सकल्पयपश्रमेण व ।।
ममैव वार्हदिनमधुर्दिनं प्रसह्य वर्णासु स्नी प्रसजिते ।
क्व नु शृण्वन्तु सुपुप्त देवता भवस्वरागैरदित न मे गिर ।।
नै० ६-६५-६६।

देवताओं की ओर से निराश होकर दमयन्ती नल का स्मरण कर विलाप करने लगती है। उसे यह विश्वास था कि यदि उसके प्रिय नल को उसकी दुर्दशा का समाचार ज्ञात हो जाता तो वह निश्चित रूप से उसपर दया कर देता। परन्तु उसके पास उसकी दुर्दशा का समाचार पहुँचे भी तो कैसे ? स्वय वह उसकी

दुर्दशा को जान नही सकता था और हम जिसके द्वारा वह अपनी खबर नल तक भेज सकती थी विधाता के द्वारा लुप्त कर दिया गया था

इय न ते नैषध ! दृक्पथातिथिस्त्वदेकतानस्य जनस्य यातना ।
हृदे हृदे हा न कियद्गवेपित स वेत्रसागोपि खगोऽपि वक्ति य ॥
ममापि किं नो दयसे दयाघन ! त्वदघ्रिमग्न यदि वेत्थ मे मन ।
निमज्जयन् सतमसे पराशय विधिस्तु वाच्य क्व तवागम कथा ? ॥

नै० ६-६७-६८ ।

प्रेमी की अभिलाषा की भी कोई क्या समानता कर सकता है। दमयन्ती की अब केवल एक अभिलाषा ही शेष रह जाती है कि कम से कम मृत्यु के बाद उसका प्रिय यह सोचकर ही कि दमयन्ती उसके कारण मर मिटी थी उस पर दया के कुछ कणो की भेट चढा दे

कथावशेष तव सा कृते गतत्युपैष्यति श्रोत्रपथ कथ न ते ।
दयाणुना मा समनुग्रहीष्य तदापि तावद्यदि नाथ ? नाधुना ॥ नै० ६-६६ ।

जब वह यह देखती है कि अब उसका हृदय विदीर्ण होने वाला है तो उस समय पर भी उसे चिन्ता केवल इस बात की होती है कि कही हृदय के विदीर्ण हो जाने से द्वार पाकर उसका प्रिय उसके हृदय से बाहर न निकल जाये। अत अर्थिकल्पद्रुम नल से वह यह याचना करती है कि वह उसकी एक छोटी-सी इस प्रार्थना को स्वीकार कर ले कि वह उसके विदीर्ण होने वाले हृदय से द्वार पाकर बाहर मत चला जाये

ममादरीद विदरीतुमान्तर तदर्थिकल्पद्रुम ! किंचिदर्थये ।
भिदा हृदि द्वारमवाप्य मा स मे हतासुभि प्राणसम सम गम ॥

नै० ६-१०० ।

यहाँ पर नल-वियोग विभाव है। प्रिय नल का समागम प्राप्त न हो पाने का निश्चय, देवताओ की दमयन्ती को प्राप्त करने की इच्छा, दमयन्ती के चिरकाल से इच्छित मनोरथो का विनाश आदि उद्दीपन विभाव हैं। दमयन्तीगत अश्रु सताप, सभ्रम, उद्भ्रान्ति, अधैर्य, किंकर्तव्य-विमूढता तथा उसके द्वारा किया गया परिदेवन आदि अनुभाव है। निर्वेद, ग्लानि चिन्ता, औत्सुक्य, शका, दैन्य, मोह, आवेग, विषाद, उन्माद आदि व्यभिचारियो से परिपुष्ट दमयन्तीगत शोक स्थायी भाव व्यग्य है। जिसे अशक्यप्रतीकार देवताओ की इच्छा से उपस्थित प्रिय-नल वियोग-जन्य होने के कारण शोककृतक करुण रस के नाम से अभिहित किया जायेगा।

श्रीहर्ष ने दमयन्ती के उपर्युक्त परिदेवन का अकन करने के पूर्व अश्रुओ को अविरल रूप से प्रवाहित करने के कारण उसे शोक-स्थायीभाव-जन्य करुण रस की सरसी के नाम से अभिहित किया था

कुलानलस्नानविनीतिसूनाशुचौ शुचिस्त्वद्वातीन् नरसीं रसस्य सा।
स्याय बद्धादरमश्रु-नाम्ना सतारतीर्णोत्पलनीरसौचना ॥

नै० ६-८६।

मल्लिनाथ ने उपर्युक्त श्लोक की टीका में इसे करुण रस की सरणी न स्वीकार कर शृंगार रस की सरणी स्वीकार कर लिया है :

सैषी नदा शुचे रसस्य शृंगारस्य सदर्भिति प्रन्थस शुचिर्मीन्स्य सम्बन्धिनि कार्यदिनि भाव । ग्रीष्मशृंगारयो शुचिरित्यभिधानात् रसस्य जलस्य सरणी सर आसीत । नै० जीवातु टीका ६-८६ ।

प्रकाश-व्याख्याकार ने यद्यपि अनेक अर्थों की गवेषणा में अभिरुचि प्रदर्शित करते हुए दमयन्ती का शोक की सरणी स्वीकार किया है। परन्तु साथ ही साथ उन्होंने इसे विप्रलम्भ शृंगार की सरणी भी अभिहित किया है

एव सुता नदी नदा शुचे रसस्य विप्रलम्भशृंगाररसस्य सरणी आसीत् ।
—अथ च शापविडितस्याच्छुचे शाकस्य रसस्य नदी बभूव ।—प्रकाश व्याख्या।

जीवातु तथा प्रकाश व्याख्या के उपर्युक्त उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि मल्लिनाथ के अनुसार दमयन्ती का उपर्युक्त परिदेवन शृंगार-रसाभिव्यञ्जक है तथा नारायण के अनुसार शृंगार तथा करुण इन दोनों का व्यञ्जक है। नारायण की व्याख्या में सर्वत्र अनेक अर्थों को निर्दिष्ट करने का आग्रह स्पष्ट दृष्टिगत होता है। यहा पर भी यही स्थिति है वस्तुत दमयन्ती शोक तथा शृंगार दोनों की एक साथ ही सरणी नहीं हो सकती थी। यदि उपर्युक्त प्रकाशकृत अर्थों को सम्भावनात्मक स्वीकार कर लिया जाए तो भी अग्रिम श्लोक की प्रकाश व्याख्या पर दृष्टिपात करने से यह निश्चित हो जाता है कि प्रकाशकार के अनुसार भी दमयन्ती का उपर्युक्त परिदेवन विप्रलम्भ-शृंगाराभिव्यञ्जक है

अथ सा भैमी मृदूनि श्रोतृ करुणोत्पादकानि परिदेवनानि विलापवचनानि व्यतनात—विप्रलम्भाख्यशृंगाररसस्य पोषक वचनमुदाचिकार्य ।

नै० प्रकाश व्याख्या ६-८७।

परन्तु दमयन्ती के उपर्युक्त परिदेवन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वह विप्रलम्भ-शृंगाराभिव्यञ्जक न होकर करुण-रसाभिव्यञ्जक है। दमयन्ती को यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि अब वह नल को नहीं प्राप्त कर सकेगी। और इस निश्चय के फलस्वरूप ही वह परिदेवन करने लगी थी

व्यतानि प्रियप्राप्ति-विधानानिश्चया मृदूनि दूना परिदेवितानि सा ॥

नै० ६-८७।

भरत ने शृंगार तथा करुण रस के अन्तर को स्पष्ट करते हुए करुण रस को निरपेक्ष भाव तथा शृंगार रस को सापेक्ष भाव नाम से अभिहित किया है:

करणम्नु सापक्षेतराविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभाव । औत्सुक्यचिन्तासमुत्थ सापेक्षभावो विप्रलम्भकृत । ना० शा० पृ० ३०९ ।

अभिनव ने सापेक्षता तथा निरपेक्षता की व्याख्या करते हुए बन्धुजनादि-विषयक अपेक्षा-युक्त रति भाव की शृगार-स्वरूपता तथा रति-विपरीत बन्धु-जनादि-विषयक अपेक्षाशून्य शोक भाव की करुण स्वरूपता का प्रतिपादन किया है

रतिविपरीत शोक करुणे स्थायी । अत एवाह निरपेक्ष । बन्धुजनादि-विषये यापेक्षा रताविवानम्बनम । यथोक्तम्—आशाबन्ध कुसुमसदृशप्रायम् इति मेघ० १-१० । ततो निष्क्रान्तो भाव शोकाख्यो यस्मिन ।

ना० शा० अभि० पृ० ३१० ।

और हम देख चुके हैं कि दमयन्तीगत शोक की उत्पत्ति का कारण ही नलसमागम प्राप्त न हो सकने का निश्चय था । कालिदास ने वियुक्त स्त्रियो के लिए जिस आशातन्तु को जीवन का आधार बताया है तथा अभिनव ने जिस आशातन्तु को सापेक्षता का प्रतिरूप स्वीकार किया है दमयन्ती का वह आशा-बन्ध छिन्न-भिन्न हो चुका था । अब उसे नल का दर्शन तक प्राप्त होने की सभावना नही थी । अत अपने जीवन की निन्दा से भरपूर उसके करुण परि-देवन को करुण-रसाभिव्यजक ही कहा जायेगा । विप्रलम्भशृगाराभिव्यजक नही । अभिनव के अनुसार दमयन्ती की उपर्युक्त स्वजीवन-निन्दात्मिकावस्था को तो कथमपि विप्रलम्भशृगार के नाम से नही अभिहित किया जा सकता । क्योकि शृगार रस मे उन्मादादिको के सन्निवेश-प्रकार का निर्देश करते हुए उन्होने स्वीकार किया है कि उन्मादादिको की स्वजीवितनिन्दात्मिक अवस्था मे देहोपभोग सार-स्वरूप रत्यात्मक अवस्था ही विच्छिन्न हो जाती है

उन्मादापस्मारव्याधीना या नात्यन्त कुत्सिता दशा सा काव्ये प्रयोग च दर्शनीया कुत्सिता तु सम्भवेऽपि नेति वृद्धा । वय तु ब्रूम । तादृश्या दशाया स्वजीवितनिन्दात्मिकाया तद्देहोपभोगसाररत्यात्मकावस्थाप्रबन्धोऽपि विच्छिद्यत एवेति । ना० शा० अभि० पृ० ३०७ ।

पद्यत्य मे करुण-रसाभिव्यजक दमयन्ती का उपर्युक्त परिदेवन दमयन्तीगत नलविषयक अनुराग की दृढता तथा उत्तमता की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है । नल का उन्मत्त प्रलाप भी दमयन्ती-परि-देवनजन्य ही है । अत नलगत रति वासना का उद्बोधक होने के कारण भी वह शृगार रस का पोषक है ।

नैषधगत करुण-रसाभिव्यजक उपर्युक्त सदर्भो पर दृष्टिपात करने से यह अनायास ही स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि श्रीहर्ष ने नैषध मे प्रधान रूप से शृगार रस की योजना की है परन्तु अन्य रसो की योजना करने मे भी

अश्रुवर्षण आदि अनुभाव हैं। असूया, चपलता, अमर्ष तथा उग्रता आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट नलगत क्रोध व्यंग्य है।

पण्डितराज ने परविनाशादि के हेतुभूत क्रोध को ही रौद्र रस का स्थायी भाव स्वीकार किया है। परुष वचन तथा असम्भाषण के हेतुभूत क्रोध को वे अमर्ष व्यभिचारी के नाम से अभिहित करते हैं

गुरुबन्धुवधादिरूपापराधजन्मा प्रज्वलनाख्यः क्रोधः। स च परविनाशादि-हेतुः। अज्ञानापराधजन्मा तु परुषवचनासम्भाषणादि-हेतुः। अयमेवामर्षाख्यो व्यभिचारीति विवेकः। र० गं० पृ० १३२।

यद्यपि नलगत उपर्युक्त क्रोध की व्यंजना कठोर वचनों से ही होती है। और नल के यह कठोर वचन भी लघन हैं। परन्तु नलगत क्रोध अज्ञानापराधजन्य न होकर ज्ञानापराधजन्य ही था। क्योंकि देवताओं ने अपने कपटपूर्ण निवेदन के द्वारा नल को वंचित करने में कोई कसर नहीं रखी थी। देवताओं की याचना को यदि नल पूर्ण करना स्वीकार कर लेता तो वह देखता था कि दमयन्ती जो कि उसको प्राणों से भी अधिक प्रिय थी उसके हाथों से जा रही थी और यदि वह देवताओं की याचना को पूर्ण करने से मुकर जाता तो उसके यश पर कलंक आता था। इस प्रकार देवताओं ने अपनी याचना के द्वारा नल के प्रति कोई सामान्य अपराध न करके विशेष अपराध ही किया था। अतः नल के उपर्युक्त क्रोध को अमर्ष व्यभिचारीभाव के नाम से कथमपि नहीं अभिहित किया जा सकता।

परज्ञानापराधजन्य होने हुए भी नल का क्रोध परविनाशादि का कारण नहीं बनता इसका भी विशेष कारण है। भरत ने पाँच प्रकार के क्रोधों में से गुरुज क्रोध को विनियन्त्रित रखने का निर्देश दिया है -

रिपुजो गुरुजश्चैव प्रणयिप्रभवस्तथा।
भृत्यजः कृतकश्चेति क्रोधः पञ्चविधः स्मृतः॥
किंचिदवाङ्मुखदृष्टि सास्वेदापमार्जनपरश्च।
अव्यक्तोल्बणचेष्टो गुरौ नियन्त्रितो रोषः॥ ना० शा० ७-१५, १७।

अतः श्रीहर्ष के द्वारा विनयनियन्त्रित स्वरों में व्यक्त नलगत क्रोध को औचित्य-युक्त ही कहा जायेगा। क्योंकि देवता भी गुरुओं के समान आदरणीय होते हैं।

नलगत उपर्युक्त प्रकरणगत क्रोध को इन्द्रादि देवताओं के अनृतवचनों से उद्बुद्ध होने के कारण अनृत-वचनजन्य रौद्र रस के नाम से अभिहित किया गया है। भरत के द्वारा निर्दिष्ट भेदों के अनुसार इसे वाक्य-रौद्र के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योंकि नलगत क्रोध की व्यंजना उसके वाक्यों से होती है।

पर्यन्त मे रौद्र-रसाभिव्यजक यह समस्त प्रकरण नलगत दमयन्ती-विषयक अनुराग की स्थिरता तथा नल की उत्तमता की व्यजना कर नैषध म प्राधान्येन विनियोजित अगी शृगार रस का अग बन जाता है।

अधिक्षेपजन्य रौद्र

श्रीहर्ष ने अधिक्षेपजन्य रौद्र रस की योजना विशेषरूप से की है। इन्द्रादि देवता दमयन्ती-स्वयवर सम्पन्न हो जाने के उपरान्त स्वर्ग को जा रहे थे। माग मे उन्हे उनकी ओर बढता हुआ एक जन-समूह दृष्टिगत होता है। यह जन-समूह कलि की सेना थी। कुछ और आगे बढने पर उन्हे किसी के कर्ण-कर्कश शब्द सुनाई देने लगते है। श्रीहर्ष ने देश, जाति, अभिजन, विद्या तथा सत्कर्म आदि के निन्दापरक उन कर्ण कर्कश शब्दो का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। नै० १७-३६-८३।

परमाधिक्षेपपूर्ण उन दुर्वर्णों को सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो जाते हैं और उच्च स्वर मे उस प्रलापी को ललकारते हुए तथा उसे अपने बल एव प्रताप की याद दिलाते हुए धमकाने लगते है

इत्थमाकर्ण्य दुवर्ण शत्र सक्रोधता दधे।
अवोचदुच्चै कस्कोऽय धममर्माणि कृन्तति ॥
लोकत्रयी त्रयीनेत्रा वज्रवीर्यस्फुरत्करे।
क इत्थ भाषते पाकशासने मयि शासति ? ॥ नै० १७-८४-८५।

इस प्रकार उस अनर्गल प्रलापी को तर्जित करने के उपरान्त इन्द्र वर्ण शुद्धता तथा पितृयोनि की सत्यता आदि के साधक प्रमाणो को उपन्यस्त करते हुए उसकी भर्त्सना भी करते है। नै० १७-८६-९१। क्योकि उस प्रलापी ने प्रधान रूप मे वर्ण-शुद्धता आदि का उपहास किया था।

इन्द्र उस प्रलापी को धमका ही रहे थे और वह प्रलापी इन्द्र के वचनो का कोई उत्तर भी नही दे पाया था। उसी समय अग्नि ने क्रोध से जलते हुए उसे घुडकना प्रारम्भ कर दिया

जज्वाल ज्वलन क्रोधादाचख्यौ चाक्षिपन्नमुम्।
किमात्थ रे किमात्थेदमस्मदग्रे निरर्गलम् ॥ नै० १७-९२।

अग्नि उसे धमकाने के उपरान्त उसको वृत्तियो के वृतो तथा यज्ञो के फलो का प्रत्यक्ष उदाहरण देकर उसका मुँह बन्द करने का प्रयत्न भी करते हैं

नै० १७-९३-९४।

अग्नि का क्रोध शान्त भी नहीं हो पाया था कि विदीर्ण-हृदय यम ने आकाश मे दण्ड घुमाना प्रारम्भ कर दिया। उनकी ललकार मे तो यह प्रतीत होने लगता है कि वे अपने कथनानुसार वस्तुत उस प्रलापी के कण्ठोष्ठ को

कुण्ठित ही करने जा रहे हो

दण्डताण्डवनं कुर्वन् स्फुलिगालिगित नभ ।
निर्ममेऽय गिरामूर्मीभिन्नमर्मेव धर्मराट् ॥
तिष्ठ भोस्तिष्ठ कण्ठोऽठ कुण्ठयामि हठादयम् ।
अपष्ठु पठन पाठ्यमयिगोष्ठि शठम्य ते ॥ नै० १७-९५-९६ ।

परतु व्यवहार मे वैसा न करते हुए भी वे उसे परलोक तथा धर्म मे विश्वास रखने के लिए आग्रह अवश्य कर देते हैं। (नै० १७-९७-१०१।) क्योंकि उसने अपने प्रलाप मे इनका भी उपहास किया था।

वरुण का प्रचण्ड पाश उनके पास ही था। अत वे भी उस प्रलापी के अनर्गल प्रलाप को चुपचाप कैसे सहन कर सकते थे ? उन्होंने भी उस प्रलापी को धमकाते हुए तथा वेदादिकों की निन्दा न करने के लिए सावधान करते हुए ललकारा

बभाण वरुण क्रोधादरुण करुणोज्झितम् ।
किं न प्रचडान् पापण्डपाश ! पाशाद्विभेषि न ॥ नै० १७-१०२ ।

वरुण ने कुछ प्रमाणो के आधार पर उसे वैदिक मार्ग की सत्यता पर विश्वास न करने के कारण धिक्कारा भी। नै० १७-१०३-१०६।

इस प्रकरण मे अनर्गल प्रलापी कलि का चारण आलम्बन विभाव है। उसके अधिक्षेपपूर्ण वचन उद्दीपन विभाव हैं। इन्द्रादि देवताओं का क्रुद्ध होकर उसकी भर्त्सना करना अपने प्रताप का कथन करना अपने अस्त्रों को दिखाकर उस प्रलापी को भयभीत करना, अस्त्रो को घुमाना तथा उस प्रलापी के द्वारा उपहसित विषयों की सत्यता का प्रतिपादनादि अनुभाव हैं। उत्साह, असूया, मद चपलता, आवेग उग्रता तथा अमर्षादि भावो से परिपुष्ट इन्द्रादि-देवगत क्रोध स्थायी भाव व्यग्य है।

इन्द्रादि-देवगत यह क्रोध स्थायीभावाभिव्यजक प्रकरण पर्यन्त मे श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित आचरणों की ग्राह्यता की व्यजना करते हुए उन आचरणों के प्रति अटूट निष्ठा रखने वाले नल की उत्तमता को प्रकट करता है। इस प्रकार यह समग्र प्रकरण नल की उत्तमता की व्यजना मे सहायक होने के कारण *नैषधगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है।*

वस्तुत उत्तम-प्रकृति-युक्त नायकगत रति स्थायी भाव को ही शृगार रस के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार किसी नायक की उत्तमता को *व्यक्त करने वाले प्रकरणों का नायक के रति स्थायी भाव को व्यक्त करने मे* भी योगदान रहता है। अत उपर्युक्त प्रकरण को भी नलगत उत्तमता की व्यजना करने के कारण नलगत रति स्थायी भाव का जिसकी नैषध मे प्राधान्येन व्यजना की गई है अग कहा जाएगा।

कलि दमयन्ती-स्वयवर में भाग लेने के लिए जा रहा था। जब वह अपने इस निश्चय को देवताओं के सम्मुख निवेदन करता है तो इन्द्रादि देवता उसके इस निश्चय की निन्दा करते हैं और उसको दमयन्ती-स्वयवर की सम्पन्नता से भी अवगत करा देते है

स्वयवरमहे भैमीवरणाय त्वरामहे।
तदस्मानन्मन्यध्वमध्वनीन्द्र धाविने ॥
तेऽवज्ञाय तमस्योच्चैरहकारमकारणम्।
ऊचिरेऽतिचिरेणैन स्मित्वा दृष्टमुख मिथ ॥
पुनवक्ष्यसि मा मैव कथमुद्वक्ष्यसे तु स ।
सृष्टवान् परमेष्ठी य नैष्ठिकब्रह्मचारिणम् ॥
द्रोहिण द्रुहिणो वेत्तु त्वामाकर्ण्यावकीर्णिनम्।
त्वज्जनैरपि वा धातु सेतुर्लंघ्यस्त्वया न किम् ? ॥
आतिवृत्त स वृत्तान्तस्त्रिजगद्युवगर्वनुत्।
आगच्छतामपादान स स्वयवर एव न ॥
नागेषु सानुरागेषु पश्यत्सु दिविषत्सु च।
भूमिपाल नल भैमी वर सावबरद्वरम् ॥
भुजगेशानमद्वेषान् न वानरानितरान् नरान्।
अमरान् पामरान भैमी नल वेद गुणोज्जवलम् ॥ नै० १७-११४-१२०।

कलि इन्द्रादि देवताओं के मुख से अपनी निन्दा तथा दमयन्ती का स्वयवर सम्पन्न हो जाने का समाचार सुनकर क्रोध से अन्धा हो जाता है और वह ब्रह्मा तथा उनके द्वारा स्थापित मर्यादाओं की दुहाई देने वाले इन्द्रादि देवताओं के कुत्सित कार्यों की ओर सकेत करता हुआ उन पर अपनी आग उगलने लगता है

इति श्रुत्वा स रोषान्ध परमस्वरमम् युगम्।
जगन्नानिशारद्रमुद्रस्तानुक्तवानद ॥
कयापि क्रीडनु ब्रह्मा दिव्या स्त्रीर्दीव्यन स्वयम।
कलिस्तु चरतु ब्रह्म प्रैतु वातिप्रियाय व ॥
चर्यैव कतमेय व परस्मै धर्मदर्शिनाम्।
स्वय तत्कुवता सर्व श्रोतु यद्बिभित श्रुती ॥ नै० १७-१२१-१२३।

इन्द्रादि देवताओं ने कलि के मुख से स्वयवर मे सम्मिलित होने की बात सुनकर मुस्करा दिया था। अत कलि भी स्वयवर से निराश लौटने वाले देवताओं का उपहास करने से नहीं चूकता। परन्तु कलि के द्वारा किया गया देवताओं का यह उपहास सामान्य उपहास मात्र न होकर उसके जले भुने हृदय की फुफकार-सा प्रतीत होता है

तत्र हास्यपरैरेवमभिभूय धीनैषधेरसौ ।
जगता ह्रीस्तु मुखानिलैरभिभूयाभ एव च ॥
दूरात् प्रेक्ष्य गौरमाक्षी पुनरत्र रक्तवक्त्रणा ।
नजरैवागमर्थोक्ता मुखमरमावमीक्षितुम् ॥ नै० १७-१२४-१२५ ।

इस प्रकार अपनी निन्दा तथा उपहास करने के कारण देवताओ पर क्रोध प्रकट कर चुकने के उपरान्त कलि दमयन्ती पर अपना रोष प्रकट करने लगता है । क्योंकि उसने देवताओ के सामने नल का वरण कर लिया था और अब उसे उसको प्राप्त कर पाने का मार्ग अवरुद्ध प्रतीत होने लगा था । परन्तु दमयन्ती उसके सम्मुख तो थी नही जो उस पर वह अपना क्रोध उगलता । अत वह देवताओ पर ही अपना क्रोध प्रकट करने लगता है । क्योंकि देवताओ ने दमयन्ती को नल का वरण करने में यदि विघ्न डाल दिया होता तो उसके विचार से दमयन्ती नल का कदापि वरण नही कर पाती

स्थित भवद्भि पश्यद्भि कथ आस्तदसाम्प्रतम् ।
दिदृक्षया दुर्विदग्धा कि ना दृशा न ज्वलद्रुषा ?॥
महारण्यानराद्दर महात्समनिलाद्वा ।
स्त्रीवधार वधकारमहो सा तरस नलम् ॥
भवाद्दृर्गैदिग्गामीतम् रमणी मृगक्षणाम् ।
स्त्रीकुर्वाण कर गाढ कृपरीक्षरतृण नल ॥
दाम्न कूटमाश्रित्य निशी साक्षीभवन्नपि ।
नावहत रि तदुद्वाह कूटसाक्षीक्रियाभयम् ॥
अहो महमहायाता सम्भूता भवतामपि ।
धर्मवाक्ये कारयाय देवरयवासृतस्तुत ॥ नै० १७-१२६-१३० ।

अन्त में कलि दमयन्ती को छलपूर्वक नल के पास से हरण करने के लिए तत्पर हो जाता है और देवताओ से भी सहयोग करने का निवेदन करता है

सा पत्र्ये य समुन्मूलय महावीरोज्जित स्थ किम् ? ।
कृताग सचरन्नस्माज्यमानाच्छिन्दाधि ताम् ॥
मतार नहरन् मा पाञ्चाली पाण्डवैरिव ।
नापि पराभिरम्मासि मविभक्तैव भुज्यताम् ॥ नै० १८-१३१-१३२ ।

यहाँ पर इन्द्रादि देवता, ब्रह्मा तथा दमयन्ती आलम्बन है । ब्रह्मा की मर्यादा, इन्द्रादि देवताओ के द्वारा ब्रह्मा की मर्यादा का किया गया निवेदन तथा दमयन्ती का नल वरण आदि उद्दीपन विभाव है । कलि का ब्रह्मा तथा देवताओ के कार्यों के प्रति अपनी घृणा प्रकट करना, देवताओ का उपहास करना, दमयन्ती-स्वयवर मे विघ्न न डालने के कारण देवताओ को धिक्कारना तथा दमयन्ती को भ्रष्ट करने की योजना बनाना आदि अनुभाव है । जुगुप्सा, हास,

विस्मय, असूया, अमर्ष तथा गर्वादि भावों से परिपुष्ट कलिगत क्रोध स्थायी भाव व्यंग्य है।

कलिगत यह क्रोध इन्द्रादि देवताओं के अधिक्षेपपूर्ण वचनों तथा दमयन्ती-स्वयंवर-सम्पन्नतादि से उद्बुद्ध हुआ है। जब कि इन्द्रादि-देवगत पूर्वोद्धृत-प्रकरण-गत क्रोध केवल कलि-चारण के अधिक्षेपपूर्ण वचनों में ही उद्बुद्ध होता है। अतः उपर्युक्त उभय प्रकरणगत रौद्र-रस व्यंजना को अधिक्षेपजन्य रौद्र रस के नाम से अभिहित किया जाएगा। भरत के द्वारा निर्दिष्ट भेदों की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों प्रकरणों को वाक्य-रौद्र-भेद के अन्तर्गत स्थान दिया जायेगा। क्योंकि उपर्युक्त दोनों प्रकरणों में रौद्र रस की व्यंजना इन्द्रादि के वाक्यों तथा कलि के वाक्यों से ही होती है।

कलिगत क्रोधाभिव्यंजक उपर्युक्त प्रकरण प्रयत्न में नल की उत्तमता को व्यक्त कर नैषधगत अंगी शृंगार रस का अंग बन जाता है। देवताओं के द्वारा निवेदित दमयन्ती-स्वयंवर-सम्पन्नता तो प्रत्यक्ष रूप से ही नल की उत्तमता पर प्रकाश डालती है। कलि के वाक्य भी देवताओं की निन्दा से युक्त होने के कारण नल की उत्तमता को व्यक्त करते हैं। कलिगत क्रोध सर्वप्रथम कलि को नल दमयन्ती का अपकारी-मात्र प्रकट करता है। परन्तु नैषध के अग्रिम भाग में नल-दमयन्ती का अपकार करने का इच्छुक कलि नलपुर में अनेक यातनाओं को सहन करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो कलि नल-दमयन्ती पर रोष से दग्ध हो रहा था वही कलि चोरों की भांति उनके यहां घूमता है और सत्रस्त होता है। इस प्रकार कलि का वह क्रोध भी नल की उत्तमता तथा कलि की अपकृष्टता को व्यक्त कर नैषधगत अंगी शृंगार रस का अंग बन जाता है।

नैषधगत रौद्र-रसाभिव्यंजक उपर्युक्त प्रकरणों पर दृष्टिपात करने में प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने यद्यपि नैषध में अपने प्रधान प्रतिपाद्य से असम्बद्ध होने के कारण रौद्र रस की प्रचुर मात्रा में योजना नहीं की है परन्तु यदि कहीं पर उन्होंने रौद्र रस की व्यंजना के अनुरूप अवसर पाया है तो वहां पर उन्होंने रौद्र रस की व्यंजना भी पर्याप्त सफलता के साथ की है। उनके द्वारा की गई रौद्र योजना की प्रमुख विशेषता यह है कि वह ताडन-पाटनादि से युक्त न होते हुए भी रौद्रानुभूति कराने में सक्षम है। रौद्र-व्यंजना के मोह में यदि शृंगार रस की सुखद अनुभूति कराने वाले नैषध में ताडन-पाटनादि का अंकन किया गया होता तो वह उस सुखद अनुभूति को कलुषित ही करता। अतः इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती कि नैषधगत रौद्र-रस-व्यंजना अवसर के अनुरूप तथा अंगी शृंगार रस का उत्कर्ष बढ़ाने के अनुकूल है।

वीररस

शृंगार तथा वीर इन दोनों रसों को एक समान महत्त्वपूर्ण माना गया है।

श्रीहर्ष ने वीर रस के दानवीर भेद की योजना नैषध में प्रधान रूप से की है। यद्यपि उन्होंने यत्र-तत्र नल की दानवीरता के अतिरिक्त उसकी धर्म-वीरता तथा युद्धवीरता की ओर भी संकेत किया है। परन्तु नल को धार्मिक कृत्यों तथा युद्ध में संलग्न कर उन्होंने नलगत धर्म तथा युद्ध-विषयक उत्साह की विशद व्यंजना नहीं की है।

धर्मवीर

श्रीहर्ष के अनुसार नल ने अपने समय में धर्म की स्थापना कर अधर्म को कृश बना दिया था

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे।

भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम्॥ नै० १-७।

परन्तु नैषध का नल किसी वैसे कार्य के प्रति उत्साहवान् दृष्टिगत नहीं होता। केवल श्रीहर्ष के विभिन्न संकेतों से अथवा नैषधगत घटनाओं के सन्निवेशोपाय से यह तथ्य गौण रूप से प्रतीत होता रहता है कि नल एक धर्मप्रिय शासक था। सत्रहवें सर्ग में नल की प्रजा के द्वारा संपादित किये जाने वाले धार्मिक आचरणों का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रजा के वे धार्मिक आचरण नल की धार्मिकता को भी प्रकारान्तर से अभिव्यक्त करते हैं। परन्तु उन धार्मिक वर्णनों का भी प्रधान उद्देश्य नलगत धर्म-विषयक उत्साह की व्यंजना करना नहीं है। और न वे प्राधान्येन उसकी व्यंजना करते ही हैं।

युद्धवीर

धर्म विषयक उत्साह की भांति नलगत युद्ध-विषयक उत्साह की व्यंजना भी नैषध में रस-कोटि की नहीं की गई है। प्रारम्भ में ही नल के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने नल की युद्ध-वीरता का वर्णन भी किया है। (नै० १-८-१२।) उस वर्णन से नलगत युद्ध-विषयक उत्साह की व्यंजना तो होती है परन्तु अन्य भावों से परिपुष्ट न होने के कारण उस उत्साह को वीर रस के नाम से अभिहित करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी श्रीहर्ष ने नलगत युद्ध-विषयक उत्साह को व्यक्त करने वाले प्रकरणों की योजना की है। परन्तु उन प्रकरणों का भी प्रधान लक्ष्य नलगत युद्ध विषयक उत्साह की व्यंजना करना नहीं है।

दानवीर

नलगत दान-विषयक उत्साह की व्यजना श्रीहर्ष ने विशद-रूप से की है। इन्द्रादि देवता दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने के लिए आ रहे थे। परन्तु मार्ग मे नल को भी उसी स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए जाता हुआ देखकर उन्हे दमयन्ती की प्राप्ति के बारे मे सन्देह हो जाता है। अतएव वे किकर्तव्यविमूढ से बन जाते हैं। परन्तु अपने साथियो को हतप्रभ देखकर कपट-कुशल इन्द्र नल को वचित करने का तत्काल उपाय सोच लेते है और नल को रोककर तथा अपना परिचय बताकर उससे कुछ याचना करने का निवेदन करते हैं

एष नैषध स दण्डभृदेष ज्वालजालजटिल स हुताश ।
यादसा च पतिरेष च शेष शासितारमवगच्छ सुराणाम् ॥
अर्थिनो वयममीसमुपेमस्त्वा नलेति फलितार्थमवेहि ।
अन्वन क्षणमपास्य च खेद कुमहे भवति कार्यनिवेदम् ॥ नै० ५-७६-७७ ।

इस प्रकार कुछ समय के उपरान्त याचना करने का निवेदन कर इन्द्र तो चुप हो जाते है और नल का अर्थी इस नाम को सुनने से ही शरीर रोमाचित हो जाता है

अर्थिनामहर्षितामिलिलोमा स्व नृप स्फुटकदम्बकदम्बम् ।
अर्चनाथमिव तच्चरणाना स प्रणामकरणादुपनिन्ये ॥ नै० ५-७९ ।

इन्द्रादि देवता उसके पास याचक बनकर आये थे। अत वह यह सोच नहीं पाता कि इन्द्रादि देवताओ को कौनसी वस्तु दुर्लभ हो सकती है और वह उन्हे कौनसी प्रियतम वस्तु प्रदान कर सतुष्ट हो सकता है ?

दुर्लभ दिगधिपै किममीभिस्तादृश कथमहो मदधीनम् ।
ईदृश मनसिकृत्य विरोध नैषधेन समशायि चिराय ॥
जीवितावधि वनीपकमात्रैर्याच्यमानमखिल सुलभ यत् ।
अर्थिने परिवृढाय सुराणा कि वितीर्य परितुष्यतु चेत ॥ नै० ५-८०-८१ ।

दमयन्ती को वह अपने जीवन तथा धन से भी अधिक मूल्यवान समझता था। परन्तु उस पर उसका अधिकार नहीं था। वह केवल उसके हृदय मे ही रहती थी। अत इन्द्र के लिए वह उसे प्रदान ही कैसे कर सकता था

भीमजा च हृदि मे परमास्ते जीवितादपि धनादपि गुर्वी ।
न स्वमेव मम साहति यस्या षोडशीमपि कला किल नार्वी ॥ नै० ५-८२ ।

इस प्रकार दान देने योग्य वस्तु के बारे मे विचार करने के उपरान्त नल देवताओ की इच्छा जानने के लिए उत्सुक हो जाता है। क्योकि बिना उनकी इच्छा को जाने वह किसी वस्तु को दान मे देता भी तो कैसे ? और किसी वस्तु को दान देने के पूर्व जो समय व्यतीत हो रहा था उस समय को व्यतीत करना

एवमादि स विचिन्त्य मुहूर्तं तानवोचत पतिर्निषधानाम् ।
अर्थिदुर्लभमवाप्य महर्षीन् याच्यमानमुखमुल्लमितश्रि ॥
नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः सत्यमन्नजनितो जनदेहः ।
वीक्ष्य वः खलु तनूममृताद दृङ्निमज्जनमुदेति सुधायाम् ॥
मत्तपः क्व नु तनु क्व फलं वा यूयमीक्षणपथं व्रजथेति ।
ईदृशान्यपि दधन्ति पुनर्नः पूर्वपूरुषतपांसि जयन्ति ॥ नै० ५-९३-९५ ।
जीवितावधि किमप्यधिकं वा यन्मनीषितमितो नरडिम्भात् ।
तेन वश्चरणमर्चतु सोऽयं ब्रूत वस्तु पुनरस्तु किमीदृक् ॥ नै० ५-९७ ।

इस समस्त प्रकरण में याचक देवता आलम्बन हैं। देवताओं की सत्पात्रता व महत्ता तथा नल का अपना कुल व यश आदि उद्दीपन विभाव हैं। नल के उदात्त संकल्प, उसकी प्रसन्नता तथा सामाचादि एवं इन्द्रादि देवताओं को अपना जीवन तक दान में दे देने के बारे में किया गया उसका विनम्र निवेदनादि अनुभाव हैं। स्मृति, धृति तथा हर्षादि व्यभिचारियों से परिपुष्ट नलगत उत्साह व्यंग्य है। नलगत उत्साह चूंकि दान विषयक है। अतः उपर्युक्त प्रकरण को वीर रस के दानवीर नामक भेद के अन्तर्गत स्थान दिया जाएगा।

परन्तु यह वीर-रसाभिव्यंजक उपर्युक्त प्रकरण नल की उत्तमता की व्यंजना कर नैषधगत शृंगार रस का परिपोषक बन जाता है।

यद्यपि नल इन्द्र की अभिलाषा को जानने के उपरान्त उसे पूर्ण करने में निरुत्साहित हो जाता है। परन्तु नल का वह निरुत्साह इन्द्रादि देवताओं की कुटिलता के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। अतः इन्द्रादि देवताओं की इच्छा को पूर्ण करने के लिए निरुत्साहित होने के कारण न तो उपर्युक्त प्रकरणगत वीर रस की सत्ता तथा महत्ता पर प्रश्नचिह्न ही लगाया जा सकता है और न उसके कारण नल की उत्तमता को ही सन्देह की दृष्टि से देखा जा सकता है। क्योंकि नल एक शासक भी था। और एक शासक का कुटिल व्यक्तियों के साथ उनके व्यवहार के अनुरूप व्यवहार करना धर्म होता है।

नैषधगत उपर्युक्त वीर-रसाभिव्यंजक प्रकरण पर दृष्टिपात करने के अनन्तर यह निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि यदि श्रीहर्ष ने वीर रस की योजना के लिए अन्य अवकाशों का चयन किया होता तो वे शृंगार रस के समान उसकी भी हृदयग्राही योजना कर सकते थे। परन्तु नैषध में उन्होंने वैसा किया नहीं है। फिर भी दानवीर की जो उन्होंने व्यंजना की है उसकी महत्ता के बारे में दो मत नहीं हो सकते। नल के दान-विषयक उदात्त संकल्प वीर रस की व्यंजना करने के साथ-साथ नल के चरित्र में भी उज्ज्वलता का आधान करने में समर्थ हैं। दानवीर के अतिरिक्त वीर रस के अन्य भेदों की स्पष्ट योजना न करते हुए भी श्रीहर्ष ने यत्र-तत्र नल के बारे में स्वयं अथवा

किसी पात्र के द्वारा इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं कि पाठक को सर्वत्र नल धर्मप्रिय तथा युद्धवीर प्रतीत होता है।

भयानक रस विश्वासिनक भयानक

श्रीहर्ष ने नैषध में भयानक रस की योजना भी की है। शयन करते हुए हंस को जब राजा नल पकड़ लेता है तो पहले तो वह घबराकर उड़ने का प्रयत्न करता है। परन्तु जब वह अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं होता तो वह चीत्कार कर नल के हाथों में काटने लगता है -

तदानभा मानमवेत्य मम्भ्रमात् पुन पुन प्रायमदुत्प्लवाय स- ।
गतो विरत्योड्डयने निराशता करौ निरोद्धुर्दशति स्म केवलम् ॥
नै० १-१२५।

उस हंस के साथ और पक्षी भी थे। परन्तु नल के द्वारा उसको ग्रहण किया गया देखकर वे सब आकाश में उड़ जाते हैं और आकाश में पहुँचकर वे सब चीत्कार करने लगते हैं

ससम्भ्रमोत्पातिपतत्कुलाकुल सर प्रपद्योत्कतयानुकम्पताम् ।
तमूर्मिलोलैः पतगग्रहान्नृप न्यवारयद्वारिरुहै करैरिव ।।
न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमग ! यस्या पतिरुज्झितस्थिति ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ।।
नै०१-१२६, १२८।

जब नल उस हंस के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगता है तो वह नल के तृष्णातरल मन को धिक्कारता हुआ उसके हाथों से अपना छुटकारा करने के लिए कभी नल को विश्वासघात-जन्य पाप का स्मरण दिलाता है तो कभी उसके कुविक्रम की निन्दा तथा उसके कुशासन के बारे में अपना आक्रोश प्रकट करने लगता है

न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन् मुहु ।
अवादि तेनाथ स मानसौकसा जनाधिनाथ करपजरस्पृशा ।।
धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन समीक्ष्य पक्षान् मम हेमजन्मन ।
तवार्णवस्येव तुपारसीकरैर्भवेदमीभि कमलोदय कियान् ।।
न केवल प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मन ।
विगर्हित धर्मधनैर्निबर्हण विशिष्य विश्वासजुषा द्विषामपि ।।
पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एप पूर्यते ।
धिगीदृश ते नृपते ! कुविक्रम कृपाश्रये य कृपणे पतत्रिणि ।।
फलेन मूलेन च वारिभूरुहा मुनेरिवेत्थ मम यस्य वृत्तय ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथ न पत्या धरणी हृणीयते ।।
नै० १-१२९-१३३।

यहाँ पर नल के द्वारा किया गया हस-ग्रहण आलम्बन है। स्वर्ण हस के अन्य साथी हसो का आकाश मे उड जाना तथा चीखने लगना एव नल का हस के रूप की प्रशसा करना आदि उद्दीपन विभाव हैं। हस का उडने के लिए प्रयत्न करना, चीखकर नल के हाथो मे काट लेना तथा नल की निन्दा करते हुए प्रलाप करने लगना आदि अनुभाव हैं। जुगुप्सा, ग्लानि, शका, त्रास, दैन्य तथा आवेगादि भावो से परिपुष्ट हसगत भय स्थायी भाव व्यग्य है। हसगत इस भय को वित्रासितक भयानक रस के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योकि हसगत भय अपराधादि-जन्य न होकर हस के भीरु स्वभाव के कारण उत्पन्न हुआ है। हसगत यह भय पण्डितराज के द्वारा भयानक रस मे स्वीकृत विनाश-सम्भावना से भी युक्त है। क्योकि उपर्युक्त प्रलाप करने के उपरान्त भी हस जब नल के हाथो मे अपनी मुक्ति नही करा पाता तो वह अपने विनष्ट हो जाने की सम्भावना के ही कारण अपने परिवार की सम्भावित दुर्दशा की कल्पना कर करुण विलाप करने लगता है।

उपर्युक्त भयानक-रस-व्यजक यह प्रकरण पर्यन्त मे नल म दयालुता का सचारक होने के कारण नलगत उत्तमता का व्यजक बनकर नैषधगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है।

अपराधज भयानक

अपराधज भय की व्यजना श्रीहर्ष ने सत्रहवें सर्ग मे की है। स्वर्ग को जाते हुए देवताओ को जब कलि की सेना मे अविक्षेप पूर्ण प्रलाप सुनाई पडता है तो वे क्रुद्ध होकर उस प्रलापी को तर्जित एव भर्त्सित करने लगते हैं। फलत कलि की सेना निश्चल होकर खडी हो जाती है तथा उस सेना से एक व्यक्ति हाथ जोडकर बाहर आता है और देवताओ से क्षमा याचना करता हुआ गिडगिडाने लगता है

सरम्भैर्जम्भजैत्रादेस्तम्यमानाद् बलाद्बलन ।
मूधबद्धाजलिर्देवानयैव कश्चिदूचिवान् ॥
नापराधी पराधीनो जनोऽय नाक्तनायका ।
कालस्याह कलेबन्दी तच्चाटुचटुलानन ॥ नै० १७-१०७-१०८।

भयानक-रसाभिव्यजक इस प्रकरण मे इन्द्रादि देवता आलम्बन हैं। उनके द्वारा की गई कलि-चारण की भर्त्सना तथा कलिचारण के द्वारा किया गया अनर्गल-प्रलापजन्य अपराध उद्दीपन विभाव हैं। कलि-सेना का निश्चल हो जाना तथा उस सेना से निकलकर बन्दी के द्वारा इन्द्रादि देवताओ से क्षमा-याचना करने लगना आदि अनुभाव हैं। शका, ग्लानि, दैन्य तथा श्रमादि व्यभिचारियो से परिपुष्ट कलिचारणगत भय स्थायी भाव व्यग्य है जिसे

अपराधज भयानक रस के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योंकि कलिचारण-गत भय की उत्पत्ति का प्रधान हेतु उनके द्वारा किया गया अनौचित्य-प्रलापजन्य अपराध है।

वास्तव में यह सब पर्यन्त में नल को महनीयता प्रदान करने वाले इन्द्रादि देवताओं की श्रेष्ठता तथा श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित धर्म की आचरणीयता की व्यंजना कर इन्द्रादि देवताओं के द्वारा वरप्राप्त धार्मिक नल की उत्तमता का साधक होने के कारण नैषधगत शृंगार रस का अंग बन जाता है।

अपराधजन्य भयानक रस की विशद व्यंजना श्रीहर्ष ने कलि को आश्रय बनाकर की है। दमयन्ती के द्वारा नल-वरण कर लिये जाने से नल का अपकार करने के लिए कृतनिश्चय कलि देवताओं के समझाने-बुझाने पर भी अपने निश्चय से नहीं हटता और द्वापर के साथ नल का अपकार करने की इच्छा से नल-नगर की ओर प्रस्थान कर देता है

द्वापरैकपरीवारः कलिर्नलरुरुक्षितः ।
तन्निन्दाहिणी याता जगाह महिलं किल ॥ नै० १७-१५६।

निषध देश में पहुँचकर कलि अपने आश्रय के लिए किसी स्थान की खोज करने लगता है। परन्तु नल-नगर में उसे कहीं पर भी अपने अनुकूल कोई स्थान नहीं दृष्टिगत होता अपि तु आश्रय मिलने के स्थान पर वहाँ उसकी भेंट वेद-पाठियों से हो जाती है जो वहीं वेद-पाठियों के भय से आगे बढ़ने में झिझकते हुए उसको होमाग्निजन्य तथा होम-धूम पीड़ित करने लगता है:

विवेशाथ स कालेन काले कलिरुपेयिवान् ।
नैषीमर्हमानो राजधानी महीभुजः ॥
वेदानुद्धरता तत्र श्रुत्वाध्यावर्णयत् पदम् ।
न प्रभारमित्तु काल कलिः पदमधारयत् ॥
श्रुत्यावेदवक्त्रेभ्यस्तत्रावर्णयत जनम् ।
यत्र त्रकुचित्स्तस्य पुरे दूरमवर्तत ॥
नाग्नहोत्रि मागोरा पादयोर्स्तेन महिता ।
न देवताचिंकण्ठेभ्यो यावदभावि महिम्ना ॥
तस्य होमाग्निगन्धेन नासा नासामिताप्लुता ।
स्थापन दूरो नासौ कटुधूम-कदर्थिते ॥ नै० १७-१६२-१६६।

अतिथियों की सेवा होती देखकर तो उसकी और भी अधिक दुर्दशा हो जाती है। इसी प्रकार यज्ञाग्नि तथा धर्माचरण के लिए बनाये गये तालाब उसके अंगों को सन्तप्त तथा शिथिल बनाने लगते हैं। नै० १७-१६७-१६८।

कलि कुछ और आगे बढ़ता है तो देखता है कि प्रत्येक घर में पितृतर्पण में प्रयुक्त होने वाले तिल फैले हुए हैं। कलि उन तिलों को देखकर भी सन्तप्त

हो जाता है। इसी प्रकार स्नान करने के उपरान्त नल-नगर के व्यक्तियो के द्वारा लगाये गये तिलक कृपाण के समान उसके हृदय मे प्रविष्ट होकर उसको विदीर्ण सा करन लगते हैं

पितृणा तर्पणे वर्णं कीर्णाद्वेश्मनि वेश्मनि ।
कालादिव तिलात् कालात् दूरमत्रसदत्र स ॥
स्नातृणा तिलकैर्मने स्वमन्तर्दीर्णमेव स ।
कृपाणीभूय हृदय प्रविष्टैरिव तस्य तै ॥ नै० १७-१६९-१७०।

कलि उस नगर मे यदि कही अपने अनुकूल किसी व्यापार को सपन्न होता हुआ देखकर उसकी ओर ललकता है तो तत्काल उसे निराश होना पड़ता है। क्योंकि वह कलि को अनकूल प्रतीत होने वाला व्यापार भी किसी न किसी श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित मार्ग का अनुगामी होता है। नलनगर मे स्थित यज्ञ-यूप उसे शकु के समान तथा धार्मिक व्यक्ति उसे सर्पों के समान प्रतीत होने है। वृतिया के तो पास जाने तक का उसे साहस नही होता। और यदि वह कही ब्राह्मणो को गायत्री का आवाहन करता हुआ देखता है तो उनके पास से तो वह पहले ही भाग जाता है

यज्ञयूपघना जज्ञौ स पुर शकुशकुलाम् ।
जनैर्धर्मघनै कीर्णां व्यालक्रोडीकृता च ताम् ॥
स पार्श्वमशकद् गन्तु न वराक पराकिणाम् ।
मासोपवासिना छायानघन घनमस्खलत् ॥
आवाहिना द्विजैस्तत्र गायत्रीमर्कमण्डलात् ।
स सन्निदधती पश्यन् दृष्टनष्टोऽभवद् भिया ॥ नै० १७-१७१-१७४।

इस प्रकार आश्रय की खोज मे भ्रमण करते हुए कलि को गृहो, वनों अथवा मदिरो मे कही पर भी स्थान नही प्राप्त होता। नल-नगर मे उसे कही पर भी हिंसा अथवा कलह होती नही दृष्टिगत होती जहाँ पर वह स्थिर हो जाता। नै० १७-१७५-१७६।

मौनी तथा विनयी व्यक्तियो, ऋषियो एव ब्रह्मचारियो को तो वह देखकर ही सत्रस्त होने लगता है। इसी प्रकार यज्ञीय वस्तुओ तथा क्रियाओ को देख-कर वह व्याकुल होने लगता है। नै० १७-१७७-१८३।

स्नानको दान्तो तथा मौनियो से सन्त्रस्त कलि पापण्डियो की खोज कर रहा था। परन्तु उसकी भेंट हो जाती है वैदिक पडितो मे। इसी प्रकार किसी ब्राह्मण-घातक को देखकर वह उसकी ओर बढता है। परन्तु वहाँ भी उसे सताप ही हाथ लगता है

स्नानक घातक जज्ञे जज्ञौ दान्त कृतान्तवत् ।
वाचयमस्य दृष्ट्यैव यमस्येव बिभाय स ॥

स पाषण्डजनान्द्वेषी प्राप्नुवन् वेदपण्डितान् ।
जलार्थीवानलं प्राप्य पापन्तापादपामरन् ॥
तत्र ब्रह्मद्रुमं पश्यन्ननिनीयमानशे ।
निर्वर्ण्य सर्वमेधस्य यज्ञान् ज्वलति स्म स ॥ नै० १७-१८४-१८६ ।

संन्यासियों के हाथों में स्थित दण्डी तथा गृहस्थों की वेदयष्टियों से उसे महान् क्लेश होता है। स्थण्डिलशायियों तथा पथिकों को देखकर भी वह खिन्न हो जाता है। किसी नग्न क्षपणकों की तलाश में उसकी ब्रह्मचारियों तथा अक्षपर्णों से भेंट हो जाती है। नै० १७-१८७-१८६।

किसी का माला जपता हुआ देखकर कलि को प्रतीत होता है कि वह उसके प्राण ही खींच रहा हो। इसी प्रकार ब्राह्मणों को जब वह त्रिकाल सन्ध्या में अघमर्षण करता हुआ देखता है तब तो उसे महान् कष्ट का अनुभव होता है

जपतामक्षमालासु बीजाकर्षणदर्शनात् ।
स जीवाकृष्टिकष्टानि विपरीतदृगन्वभूत् ॥
त्रिसन्ध्यं तत्र विप्राणां स पश्यन्नघमर्षणम् ।
चकर्षेच्छद् दृशोरेव निजयोरपकर्षणम् ॥ नै० १७-१९०-१९१ ।

इस प्रकार नल-दमयन्ती के किसी पापाचरण की तलाश में कलि नल-नगर में जहां कहीं भी जाता है उसे नल का कहीं पर कोई स्थान नहीं दृष्टिगत होता

अद्राक्षीत् तत्र किंचिन्न कलिः परिचितं क्वचित् ।
भैमी-नलव्यलीकाणुप्रेक्षकाम परिभ्रमन् ॥ नै० १७-१९२ ।

वह जहां कहीं भी जाता है उसे तप-स्वाध्याय-परायण व्यक्ति, पतिव्रता, वेद-पाठ, विभिन्न प्रकार के यज्ञ, कर्तव्य-परायण, मर्यादा-पालक, तथा श्रुतिस्मृति-प्रतिपादित विधियों का आचरण करने वाले व्यक्ति आदि ही दृष्टिगत होते हैं। और उन्हें देखकर कभी वह संतप्त होता है तो कभी मूर्च्छित हो जाता है। कभी पीड़ित होता है तो कभी निराश हो जाता है। नै० १७-१९३-२०४।

अन्त में कलि नल-दमयन्ती को प्रेमपूर्ण परिहास-क्रीडाएँ करता हुआ भी देखता है। परन्तु वह उनकी उन परिहास-क्रीडाओं में भी मर्माहत-सा ही हो जाता है। और स्वगत आघात तथा नलापकार की भावना से युक्त होने के कारण नल-दमयन्ती के तेज से धर्षित होकर उनके पास से चला जाता है :-

अथ भीमजया जुष्टं व्यलोकत कलिर्नलम् ।
दुष्टदृग्मिर्दुरालोकं प्रभयेव महाप्रभुम् ॥
तयोः सौहार्दमान्द्रत्व पश्यन् शल्यमिवानशे ।
मर्मच्छेदमिवानर्च्छ स तन्नर्मोक्तिनिर्मितम् ॥

अमर्षादात्मनो दोषात् तयोस्तेजस्वितागुणात ।
स्प्रष्टु दृशाप्यनीशस्तौ तस्मादप्यचलत् कलि ॥ नै० १७-२०४-२०७ ।

भयानक-रसाभिव्यजक इस प्रकरण मे नल आलम्बन है । नलनगर-वासियो के धार्मिक आचरण कलिमकल्पित नलापकारात्मक अपराध आदि उद्दीपन विभाव है । कलिगत सताप, अश्रु, मूर्छा, खेद, सत्रस्तना तथा उसका गतिरोध एव पलायनादि अनुभाव है । शका, मोह, ग्लानि, जडता, त्रास तथा दैन्यादि व्यभिचारियो से परिपुष्ट कलिगत भय स्थायी भाव व्यग्य है । जिसे नलापकार-भावना तथा स्वभावजन्य होने के कारण अपराधज या स्वभावज भयानक रस के नाम से अभिहित किया जाएगा । उपर्युक्त विभावादिको से व्यक्त कलिगत यह भय विनाश शकात्मक भी है । क्योकि नलनगर-वासियो के धार्मिक आचरण उसके स्वभाव के विपरीत होने के कारण उसे विनाशकारी-से प्रतीत होने है ।

उपर्युक्त प्रकरण कलिगत भय-व्यजना करने के साथ-साथ नलनगर-वासियो की धार्मिकता का अभिव्यजक होने के कारण पयन्त मे नल की उत्तमता की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का पोषक भी बन जाता है ।

भयानक-रसाभिव्यजक नैषधगत उपर्युक्त प्रकरणो पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष केवल शृगार-रस की सूक्ष्म एव सवेद्य योजना करने मे ही नही निपुण हैं, अपितु वे अन्य रसो की समुचित योजना करने मे भी प्रवीण हैं । यद्यपि उन्होने भयानक रस के लिए नैषध मे विशेष स्थान नही दिया है । परन्तु जहा कही पर भी उन्होने इसकी योजना की है वह सुचारु एव नैषधीयचरित के महत्त्व के अनुरूप है । भयानक रस शृगार रस का विरोधी होता है । परन्तु इस तथ्य को स्वीकार करने मे किसीको कोई सकोच नही हो सकता कि श्रीहर्ष के द्वारा की गई नैषधगत भयानक रस की योजना नैषधगत शृगार रस का उत्कर्ष-वर्धन करती है , जब कि स्वतन्त्र रूप से वह स्वत भी आस्वाद्य एव महत्त्वपूर्ण है ।

वीभत्स रस शुद्ध वीभत्स

श्रीहर्ष ने नैषध मे बीभत्स रस की भी योजना की है । दमयन्ती स्वयवर से स्वर्ग को जाते हुए देवताओ को एक जन-समूह उनकी ओर बढता हुआ दिखाई देता है । देवताओ की दृष्टि उस जन-समूह मे पहले काम पर पडती है । वह निलज्ज तथा निर्भीक लम्पटो से घिरा हुआ था । अपने को लोकजित् तथा कर्ता समझने वाले एव स्त्रियो को अपना अस्त्र बनाकर ससार को त्रस्त करने वाले काम को देखकर देवताओ के मन मे अरुचि उत्पन्न हो जाती है

अद्राक्षुराजिहान ते स्मरमग्रेसर सुरा ।
अक्षविनयशिक्षार्थं कलिनेवपुरस्कृतम् ॥

अगम्यार्थं तृणप्राणा पृष्टम्योकृतभीह्रिय ।
सम्भलीभुक्तमवम्या जना यत्पारिपार्श्विका ।।
बिभर्ति लोकजिद्भाव बुद्धस्य स्पर्धयेव य ।
यस्येशतुल्यवात्र कर्तृत्वमशरीरिण ।।
ईश्वरस्य जगत्कृत्स्न सृष्टिमाकुलयन्निशाम् ।
अस्ति योऽस्त्रीकृतस्त्रीकस्तस्य वैर स्मरन्निव ।।
चक्रे शक्रादिनेत्राणा स्मर पीतनलश्रियाम् ।
अपि दैवतवैद्याभ्यामचिकित्स्यमरोचकम् ।। नै० १७-१४-१८।

काम को देखने के उपरान्त देवताओं की दृष्टि क्रोध की ओर जाती है। वह जो कुछ भी सामने आ जाता उसे इधर-उधर फेंक रहा था। उसके सभी अग काँप रहे थे तथा वह रक्तवर्ण से युक्त था और अपने आयुधों को ऊपर उठाये हुए चीख-चीखकर गालियाँ दे रहा था। जो लोग उसे चारों ओर से घेरे हुए थे वे भी अपने ओठों को काट रहे थे। उनके नेत्र भी रक्तवर्ण थे। उनकी भृकुटियों में बल पड़े हुए थे तथा वे लम्बी-लम्बी श्वासें छोड़ रहे थे। देवताओं ने देखा कि वह समस्त ससार को जला देने के लिए प्रयत्नशील है तथा उद्वेग एव विमोह-जनक क्रोध समस्त इन्द्रियों को आच्छादित करने तथा शकर जी तक को वशीभूत करने मे समर्थ है

यत्तत्क्षिपन्तमुत्कम्पमुत्यायुक्तमथारुणम् ।
बुबुधुर्विबुधा क्रोधमाक्रोशाक्रोशघोषणम् ।।
यमुपासन्त दन्तौष्ठक्षतामृक्शिष्यचक्षुष ।
भ्रकुटीफणिनीनादनिभनि श्वासफत्कृत ।।
दुर्गं कामाद्युगेनापि दुर्लंघ्यमवलम्ब्य स ।
दुर्वासो हृदय लोकान् सेन्द्रानपि दिधक्षति ।।
वैराग्य य करोत्युच्चै रजन जनयन्नपि ।
मूर्ते सर्वेन्द्रियाच्छादि प्रज्वलन्नपि यस्तम ।।
पचेषु विजयासक्तो भवस्य क्रुध्यतो जयात् ।
येनान्यविगृहीतारिजयस्तानय श्रित ।। नै० १७-१६-२३ ।

उसी समय देवता देखते हैं कि लोभ धनिकों की ओर अपने हाथ फैलाये हुए तथा डरता हुआ टूटी-फूटी वाणी में बोल रहा है और सकेतों से अपनी दीनता प्रकट कर रहा है। दीन, चार, अत्यधिक खाने के कारण रोगी तथा भोजन करने वाले लोगों की ओर ललचायी हुई आँखों से देखने वाले व्यक्ति उसके अनुजीवी थे। जो उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। दान देने मे विघ्न करने वाला, अपने निर्धन सम्बन्धियों को दासों के सामान बेच देने वाला तथा ब्रह्म-हत्यादिक पाँचों महापातकों को करने मे सकोच न करने वाला लोभ भिक्षा

माँगने की विशिष्ट शिक्षा देने के लिए भिखारियों के बच्चों की जिह्वा पर विशेष रूप से आसन जमाए हुए है

हस्तौ विस्तारयन्निर्भ्यं विभ्यदघपयस्यवाक् ।
सूचयन्काकुमाकूतैर्लोभिस्तत्र व्यलोकि तैः ॥
दैन्यम्लैन्यमया निस्यमत्याहारामयाविन ।
भुजानजनसाकूतपश्या यस्यानुजीविन ॥
धनिदानाम्बुवृष्ट्यै पात्रपाणाववग्रह ।
स्वान् दासानिव हा नि स्वाद्विक्रीणीतेऽर्थवत्सु य ॥
एकद्विकरणे हन्त महापातकपञ्चके ।
न तृणं मन्यते कोपकामौ य पचकारयन् ॥
य सर्वेन्द्रियसध्यापि जिह्वा बलवलम्बते ।
तस्यामाचार्यक याचाबटवे पाटवेऽर्जितुम् ॥ नै० १७-२४-२८ ।

लोभ के अनन्तर देवताओं के सम्मुख मोह आता है। देवता बड़े दुःख के साथ देखते हैं कि वह न तो किसी की हितकारी बात सुनता है और यदि वह किसी अलीक व अप्रामाणिक जड पदार्थ से भी चिपक जाये तो उसे छोडता नहीं। उसके सेवक भी मूर्ख, सांसारिक चिन्ताओं से ग्रस्त तथा विनाश काल को उपस्थित देखकर भी ईश्वर का स्मरण न करने वाले थे। मोह के बारे में देवता सोचते हैं कि वह ज्ञानी व्यक्तियों के अन्तःकरण को भी मलिन कर देता है तथा काम, क्रोध एवं लोभ तीनों ही उसके आश्रय में रहते हैं। वह प्रबुद्ध, विवेकी, शास्त्रज्ञानी तथा आत्म प्रकाशयुक्त व्यक्तियों को भी पथभ्रष्ट कर देता है तथा जो स्वयं समस्त संसार को जीतने के उपरान्त काम को पुनः उस पर विजय करना सरल बना देता है

पथ्या तथ्यामगृह्णन्तमथ बन्धुप्रबोधनाम् ।
शून्यमाश्लिष्य नोज्झन्त मोहमैक्षन्त हन्त ते ॥
इव इव प्राणप्रयाणेऽपि न स्मरन्ति स्मरद्विष ।
मग्ना कुटुम्बजम्बाले बालिशा यदुपासिन ॥
पुसामलब्धनिर्वाणज्ञानदीपमयात्मनाम् ।
अन्तर्मलीमसयति व्यक्त य कज्जलवदुज्ज्वलम् ॥
ब्रह्मचारिवनस्थायि यतयो गृहिण यथा ।
त्रयो यमुपजीवन्ति क्रोधलोभमनोभवा ॥
जाग्रतामपि निद्रा य पश्यतामपि योऽन्धता ।
श्रुते सत्यपि जाड्य य प्रकाशेऽपि च यस्तम ॥
कुरुसैन्य हरेणेव प्रागलज्जत नार्जुन ।
हत यन जयत् काममस्तमोगुणजुषा जगत् ॥ नै० १७-२६-३४ ।

इन्द्रादि-देवगत यह जुगुप्सा भी नल-दमयन्ती के प्रति प्रसन्नता तथा अनुकूलता प्रकट करने वाले इन्द्रादि देवताओ की श्रेष्ठता व्यक्त कर पर्यन्त मे नैषधगत शृगार रस का अग बन जाती है।

यद्यपि बीभत्स-रसाभिव्यजक उपर्युक्त दोनो प्रकणो मे जुगुप्सोद्भावक विभावो की ही प्राधान्येन योजना की गई है। और वे ही जुगुप्सा की प्रतीति के मुख्य हेतु हैं भी। परन्तु हम देख चुके हैं कि पडितराज ने तो आलम्बन-मात्र की योजनामात्र को भी बीभत्स रस की व्यजना करने मे समर्थ माना है

ननु रतिक्रोधोत्साहभयशोकविस्मयनिर्वेधु प्रागुदाहृतेषु यथालम्बनाश्रययो सम्प्रत्यय, न तथा ह्यमे जुगुप्साया च तत्रालम्बनस्यैव प्रतीत ।

र० ग० पृ० १७१ ।

अत विभावो की प्राधानता होने पर भी उपर्युक्त उद्धरणो की बीभत्स-रसाभिव्यञ्जना ही नही असदिग्ध है अपितु बीभत्स रस के शुद्ध भेद के व्यजक होने के कारण जिसकी अभिनव ने दुलभता तथा अप्रचुरता स्वीकार की है, द्वितीयक इत्यनेनैनस्य दुर्लभत्वेनाप्राचुर्य सूचयति (ना० शा० अभि० पृ० ३३१)। इन उद्धरणो का नैषध के महत्त्व मे चार चाँद लगाने वाला कहा जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध मे बीभत्स रस की न्यून मात्रा मे योजना करते हुए भी उसके जिस शुद्धरूप की व्यजना उन्होने की है वह एक ओर बीभत्स रस की अनुभूति कराने मे पूणतया समर्थ है तो दूसरी ओर हमारी चित्तवृत्तियो का परिष्कृत कर हमारे परमार्थ-साधन का हेतु बनने मे भी समर्थ है। और इस प्रकार वह केवल हमारा अनुरजन ही नही करती अपितु हमारे जीवन को परिष्कृत करने मे योगदान भी करती है। जहा तक नैषधीय-चरित-गत रस-योजना की दृष्टि से उसके महत्त्व का सम्बन्ध है उसके बारे मे भी दो मत नहीं हो सकते वह एक ओर बीभत्स रस का आस्वादन कराने मे जहाँ पूर्ण समर्थ है, वही दूसरी ओर शृगार रस के विरोधी रसो मे से होते हुए भी उसके परिपोष तथा उत्कर्ष-वर्धन मे भी क्षम है।

अद्भुत रस दिव्य अद्भुत

श्रीहर्ष ने नैषध मे अद्भुत रस की अनेक स्थानो पर मनोहारी व्यजना की है। नैषधगत अद्भुत रस की व्यजना दिव्य तथा आनन्दज उभयरूप है।

दमयन्ती-वियोग खिन्न नल अपने उपवन मे भ्रमण कर रहा था। वहाँ वह अपने क्रीडा-सरोवर के पास विचरते हुए एक विचित्र हस को देखता है और उसे देखकर कुतूहलाक्रान्त हो जाता है

पयोविलक्ष्मीमुषि केलिपल्वले रिरसुहसीकलनादसादरम्।
स तत्र चित्र विचरन्तमन्तिके हिरण्मय हसमबोधि नैषध ॥

प्रियासु बालासु रतिक्षमासु च द्विपत्रितं पल्लवितं च बिभ्रतम् ।
स्मराजितं रागमहीरुहाङ्कुरं मिषेण चञ्चोश्चरणद्वयस्य च ॥
महीमहेन्द्रस्तमवेक्ष्य स क्षणं शकुन्तमेकान्तमनोविनोदिनम् ।
प्रियावियोगाद्विधुरोऽपि निर्भरं कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत् ॥
नै० ११७-११९ ।

उसी समय हंस रतिश्रम से खिन्न होने के कारण क्षण-भर के लिए सो-सा जाता है। नल पहले तो उस हंस के सोने के अवसर की विशिष्ट मुद्रा के बारे में तर्कणायें करता है। बाद में अपने घोड़े से उतरकर निःशब्द गति से धीरे-धीरे उसके पास जाकर उस हंस को पकड़ लेता है

अथावलम्ब्य क्षणमेकपादिकां तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः ।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेण रतिक्लमालसः ॥
मनालमास्मानमनिर्जितप्रभं ह्रियानतं काञ्चनमम्बुजन्म किम् ? ।
अबुद्ध तं विद्रुमदण्डमण्डितं स पीतमम्भःप्रभुचामरं नु किम् ? ॥
कृतावरोहस्य हयादुपानहौ ततः पदे रेजतुरस्य बिभ्रती ।
तयोः प्रवालैर्वनयोस्तथाम्बुजैर्नियोद्धुकामे किमु बद्धवर्मणी ॥
विधाय मूर्तिं कपटेन वामनीं स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम् ।
उपेतपार्श्वश्चरणेन मौनिना नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना ॥
नै० १-१२१-१२४ ।

यहाँ पर हिरण्मय हंस आलम्बन है। उसके विचित्र अंग, खड़े होने की मुद्रा तथा उसका लोकोत्तर स्वरूप आदि उद्दीपन विभाव हैं। नल का कुतूहल-युक्त हो जाना, हंस-सौंदर्य के बारे में तर्कणायें करना तथा घोड़े से उतरकर हंस को पकड़ लेना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग, जड़ता, धृति, तथा वितर्कादि व्यभिचारियों से परिपुष्ट नलगत विस्मय स्थायी भाव व्यंग्य है। जिसे दिव्य-हंसदर्शन-जन्य होने के कारण दिव्य अद्भुत रस के नाम से अभिहित किया जायेगा।

पर्यन्त में नलगत यह विस्मय नल की उन्मत्तता की व्यंजना से कारण बनकर नैषधगत शृंगार रस का परिपोष भी करता है।

दमयन्ती स्वयंवर में उपस्थित राज-समूह का वर्णन करने के लिए स्वयंवर-भूमि में अवतरित सरस्वती का स्वरूप-वर्णन भी अद्भुत रस की व्यंजना करने में समर्थ है। स्वयंवर-भूमि में अवतरित सरस्वती का कण्ठनाल गन्धर्वविद्या-युक्त था तथा उसकी त्रिवली एवं कटाक्ष-विक्षेप वेदों तथा साहित्य से बने हुए थे। अथर्ववेद उसकी उदर-रोमराजि बन गया था। षडंग शास्त्र क्रमशः उसके चरित, अलंकार विधान, अर्थव्याख्यान, भुज-युगल, काञ्ची तथा हारलता के रूप में परिणत हो गया था। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष के शास्त्र उसके ओष्ठों के रूप में सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार उसका ऊरु-युगल मीमांसा के पूर्वोत्तर भेदों

से निर्मित था। आन्वीक्षिकी उसकी दशनपंक्ति तथा तर्कविद्या के तर्क उसके दाना के रूप में सुशोभित हो रहे थे। पुराण उसके कर-युगल तथा धर्म शास्त्र उसके मूर्धा के रूप में परिणत हो गये थे। उसकी भ्रकुटियां ओंकार के दलो से, ललाट-तिलक ओंकार के बिन्दु से वीणा बजाने का कोण ओंकार के अर्ध-चन्द्र से, दोनों कुण्डल लेख-समाप्ति-सूचक चिह्न से, उगलियां स्वर्ण-लेखनियों के सार से, केश स्याही के सार से तथा स्मित खड़िया के सार से निर्मित था। उसका आनन मोम-सिद्धान्तमय, उदर शून्यात्मतावादमय, चित्त विज्ञान-सामस्त्यमय एवं समस्तस्वरूप साकारता-सिद्धिमय-सा प्रतीत हो रहा था।

नै० १०-७३-८७।

यहां पर सरस्वती आलम्बन है। उसका अलौकिक स्वरूप उद्दीपन विभाव है। सरस्वती-स्वरूप के बारे में की गई विभिन्न तर्कणायें अनुभाव हैं। धृति, मति तथा वितर्कादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट कविगत विस्मय स्थायी भाव व्यंग्य है। जिसे अलौकिक सरस्वती स्वरूपजन्य होने के कारण दिव्य अद्भुत रस के नाम से अभिहित किया जाएगा।

यहाँ पर वर्णित सरस्वती का स्वरूप कवि-कल्पित होते हुए भी विस्मया-भिव्यंजक है। यद्यपि सरस्वती के दिव्य स्वरूप को देखकर स्वयंवर में उप-स्थित कोई राजा या भीम विस्मित नहीं होते। परन्तु अनेक स्थानों पर सन्देह तथा निश्चयात्मकता बोधक वितर्क, अवैमि, प्रतीमः, पश्यामि आदि पद स्वयं कवि को आश्रय के रूप में उपस्थित कर देते हैं और सरस्वती का वह स्वरूप किसी पात्र में विस्मय की उत्पत्ति न करते हुए भी कविगत विस्मय का व्यंजक बन जाता है।

पर्यन्त में सरस्वती का उपर्युक्त स्वरूप उसकी दिव्यता की व्यंजना करते हुए तथा नल-दमयन्ती के प्रति सरस्वती के प्रीतियुक्त होने के कारण नल-दमयन्ती की महत्ता की व्यंजना करते हुए नैषधगत शृंगार रस का पोषक भी बन जाता है।

इसी प्रकार दमयन्ती के द्वारा नल का वरण कर लिए जाने के उपरान्त इन्द्रादि देवताओं के द्वारा उस रूप का परित्याग कर अपने स्वरूप का धारण कर लिया जाना (नै० १४-६९-७०।) तथा भीम के द्वारा नल को यौतक में दी गई दिव्य वस्तुओं का विस्तृत वर्णन भी दिव्य-अद्भुत-रसाभिव्यंजक है (नै०१६-१६-३४)। विष्णु आदि अनेक देवताओं का आकाश में आकर स्वयंवर सभा का अवलोकन करने लगना तथा शुक्राचार्य का उस सभा का वर्णन करने लगना भी अद्भुत-रसाभिव्यंजक है (नै० १०-५०-६५)। इन स्थलों में व्यक्त विस्मय को भी दिव्य-सभा-वर्णन-जन्य होने के कारण दिव्य अद्भुत रस के नाम से अभिहित किया जाएगा।

आनन्दज अद्भुत

स्वयंवर सम्पन्न हो जाने के उपरान्त भीम के निमन्त्रण के अनुसार जब नल विवाह के लिए रथ पर आरूढ होकर भीम-भवन की ओर जाने वाला था उस समय उसे देखने के लिए पुर-बालायें अपने-अपने घरों से आकर राज-पथ पर खड़ी हो जाती हैं

ततोऽनु वार्ष्णेयनियन्त्रक रथ युधि क्षितारिक्षितिभृज्जयद्रथ ।
नृप पृथासूनुरिवाधिरूढवान् स जन्ययात्रामुदित किरीटवान् ॥
विदर्भनाम्नस्त्रिदिवस्य वीक्षितु रसोदयादप्सरसस्तमुज्ज्वलम् ।
गृहाद् गृहादेत्य कृतप्रसाधना व्यराजयन् राजपथानथाधिकम् ॥

नै० १५-७२-७३।

उन बालाओं को नल के जिस अलकृत स्वरूप के दर्शन होने वाले थे श्रीहर्ष ने सेवकों के द्वारा प्रसाधित तथा दर्शकों को हर्षित करने वाले नल के उस स्वरूप का अकन अव्यवहित पूर्व में ही कर दिया था। नै० १५-५७ ७१।

जब नल राजमार्ग के दोनों ओर खड़ी हुई उन अलकृत सुदरियों के सामने से निकलता है तो किसी स्त्री का आचल वक्षस्थल से उड जाता है पर नल को देखने में उत्सुक होने के कारण उसे इस बात का पता ही नहीं चलता। इसी प्रकार किसी अन्य स्त्री का अपनी सखी को नल का दर्शन कराने के प्रयत्न में हार उलझकर टूट जाता है। परन्तु वह भी उसकी तर्कणा नहीं कर पाती

अजानती कापि विलोकनोत्सुका समीरधूतार्धमपि स्तनाशुकम् ।
कुचेन तस्मै चलतेऽकरोत् पुर पुरागनामगलकुम्भसम्भृतिम् ॥
सखी नल दर्शयमानयाकुलो जवादुदस्तस्य करस्य कङ्कणे ।
विपर्य हारस्त्रुटितैरलक्षितै कृत कयापि क्षणलाजमोक्षणम् ॥

नै० १५-७४-७५।

एक स्त्री तो पान के धोखे में अपने हाथ में स्थित लीला-कमल को ही अपने मुख में रख लेती है। यहाँ तक कि कोई स्त्री तो उपपति के आलिंगन तक को नल-दर्शन में विघ्न मानने लगती है। जबकि उस भीड़-भाड़ में वह इस काम का सम्पन्न करने का अच्छा अवसर देख रहा था

करस्थताम्बूलजिघत्सुरेकिका विलोकनैकाग्रविलोचनोत्पला।
मुखे निचिक्षेप मुखद्विराजतारपेव लीलाकमल विलासिनी ॥
कयापि वीक्षाविमनस्कलावचने समाज एवोपपते समीयुष ।
घन सविघ्न परिरम्भमाहसैस्तदा तदालोकनमन्वभूयत ॥ नै० १५-७७-७८।

एक स्त्री तो निर्निमेष दृष्टि से नल को देखती हुई अपने पैरों के पजो के बल पर खड़ी होकर इतना अधिक उचक जाती है कि उसकी बराबरी पाती को

देखने के लिए पजो के बल पर खडी हो जाने वाली रत्नाकर की गोपियाँ भी शायद ही कर पाए

दिदृक्षुरन्या विनिमेषवीक्षणा नृणामयोग्या दधती तनुश्रियम् ।
पदाग्रमात्रेण यदस्पृशन्मही न तावता केवलमप्सरोऽभवत् ॥

नै० १५-७६ ।

उझकि उझकि पद कजनि के पजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी ।
हमको लिख्यौ है कहा हमको लिख्यौ है कहा
हमको लिख्यौ है कहा कहन सबै लगी ॥ उद्धवशतक—२७।

इसी प्रकार अनेक स्त्रियो के आभूषण टूटकर बिखर जाते हैं। परन्तु उन्हे इसका ज्ञान तब होता है जबकि कोई अन्य स्त्री उन्हे बार-बार हिलाकर तथा थपथपाकर इस बात का ज्ञान कराती है

विभूषणस्र सनशसनार्पितै करप्रहारैरपि घूननैरपि ।
अमान्तमन्त प्रसभ पुरापरा सखीषु सम्मापयतीव सम्मदम् ॥ नै०१५-८०।

अन्त मे वे स्त्रियां नल के सौन्दर्य से चमत्कृत होकर नल-दमयन्ती-सयोगादि के बारे मे अनेक कल्पनायें तथा बातें कर प्रसन्नता प्रकट करने लगती है। नै० १५-८२-६२।

यहा पर नल आलम्बन है। उसका अनुपम रूप-सौंदर्य उद्दीपन विभाव है। पुर-सुन्दरियो का निर्निमेष दृष्टि से नल-सौंदर्यावलोकन, उनकी आत्म-विस्मृति तथा नल-दमयन्ती-विषयक बातें अनुभाव हैं। जडता, मोह, हर्ष, आवेग, मति तथा वितर्कादि व्यभिचारियो से परिपुष्ट पुरसुन्दरीगत विस्मय स्थायी भाव व्यग्य है जिसे इष्ट-नल-दर्शनजन्य होने के कारण आनन्दज अद्भुत रस के नाम से अभिहित किया जायगा।

उपर्युक्त प्रकरण विस्मय स्थायी भाव की व्यजना करने के साथ-साथ पर्यन्त मे नल-दमयन्ती की उत्तमता की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का अङ्ग बन जाता है।

अद्भुत-रसाभिव्यजक उपर्युक्त प्रकरणों पर दृष्टिपात करने के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष ने अन्य रसो के समान अद्भुत रस की व्यजना करने मे भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है। यद्यपि उन्होंने अद्भुत रसाभिव्यजक प्रकरणो मे अनुभावो की अपेक्षा विभावो की ही प्रधानतया योजना की है परन्तु विभाव प्रधानता से युक्त वे सभी प्रकरण विस्मय स्थायी भाव की स्थिर व्यजना करने मे पूर्ण समर्थ हैं। अद्भुत रस शृगार रस का मित्र रस होता है। अतएव श्रीहर्ष ने हास्य के समान अद्भुत रस की भी अन्य रसों की अपेक्षा नैषध मे प्राचुर्येण योजना की है। यद्यपि विस्मयाभिव्यजक [illegible]

सभी प्रकरण अद्भुत-रस-रूपता को नहीं प्राप्त हो पाते परन्तु भाव-व्यंजना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। और उपर्युक्त प्रकरणों में तो श्रीहर्ष ने उसे रस-स्वरूपता प्रदान ही की है। उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ विस्मयाभि-व्यंजक नैषधगत समस्त प्रकरण नैषधगत अंगी रस के परिपाक में भी यथेष्ट योगदान करते हैं।

शान्त रस

श्रीहर्ष ने नल के द्वारा सम्पादित माध्यन्दिन क्रियाओं का विस्तृत वर्णन कर तथा उसे ईश्वराराधन में संलग्न कर शान्त रस की भी नैषध में विशद व्यंजना की है। नल यद्यपि दमयन्ती के साथ सम्भोग-सुख का अनुभव करने के लिए आतुर था। परन्तु वैतालिक सुन्दरी के मुख से माध्यन्दिन वेला को उप-स्थित जानकर वह तत्काल माध्यन्दिन क्रियाओं का सम्पन्न करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है और वह भी उदासीनता से नहीं, अपितु आनन्द से

आनन्द हठमाहर्त नव हरघ्यानावनादिक्षण-
स्यासन्नावपि भूपति प्रियतमाविच्छेद सेदालस।
पक्षद्वारदिश प्रति प्रतिमुहर्द्वार् निर्गतप्रेयसी-
प्रत्यासत्तिधिया दिशन् दृशमसौ निगन्तुमुत्तस्थिवान्॥ नै० २०-१६१।

शास्त्रानुमोदित विधियों के अनुसार स्नान, अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान, जप तथा तर्पणादि से निवृत्त होकर नल देवपूजनोपयोगी सामग्रियों से युक्त देवार्च-नालय में जाता है और एक आसन पर बैठकर पूजन तथा जप करता है। नल के द्वारा किये गये इस सूर्य, त्र्यम्बक तथा विष्णु के पूजन तथा जप में भी शास्त्रानुमोदित सामग्रियों एवं विधियों के पालन में निष्ठा प्रदर्शित की गई है। अन्त में नल विष्णु के मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध, कल्कि तथा दत्तात्रेय अवतार की पृथक्-पृथक् तथा समन्वित रूप में स्तुति भी करता है। नै० २१ ७ ११७।

विष्णु के अवतारों की स्तुति में नल प्रधान-रूप से उन अवतारों की महिमा का संकीर्तन ही करता है। परन्तु उस महिमा-संकीर्तन के मध्य में यत्र-तत्र नल अपने तथा संसार के लिए विभिन्न अवतारों से कामनायें भी करता रहता है। संसार के लिए वह प्रधान रूप से सुरक्षा की कामना करता है

भूरिसृष्टिकृतस्तवपाला पृष्ठसीमनि किलैरिव चर्म।
चुम्बितावतु जगत् भितिरक्षाकर्मठत्य कमठस्तवमूर्ति॥
भोगिभि क्षितितले दिवि वाम बन्धमेष्यसि चिर ध्रियमाण।
पाणिरेष भुवन वितरति छद्मवाभिरव वामन। विश्वम्॥
नै० २१-५६, ६३।

और अपने लिए रक्षा, अभिलाषपूर्ति, तत्त्वदृष्टि, पापनाश, अन्धकार-नाश तथा ताप-शान्ति के लिए कामना करता है

दैत्यभर्तुरुदराद्युनिविष्टा शक्रसम्पदमिवोद्धरतस्ते ।
पातु पाणिशरणिपञ्चकमस्माञ्छिन्नरज्जुनिभलग्नतदन्त्रम् ॥
स्वेन पूर्यत इय सकलाशा भो बले ! न मम किं भवतेति ।
त्वं बटुं कपटवाचि पटीयान् देहि वामन ! मनः प्रमदं नः ॥
नो ददासि यदि तत्त्वधियं मे यच्छ मोहमपि तं रघुवीर !
येन रावणचमूर्युधि मुग्धा त्वन्मयं जगदपश्यदशेषम् ॥
धूमवन् कलयता युधि कालं म्लेच्छकल्पशिखिना करवालम् ।
कल्किना दशतय मम कल्कं त्वं धुदस्य दशमावतरेण ॥
भक्तिभाजमनुगृह्य दृशा मां भास्करेण कुरु वीततमस्कम् ।
अर्पितेन मम नाथ ! न तापं लोचनेन विधुना विधुनासि ॥

नै० २१-६०-६१, ७०, ६१, ११५।

नल की माध्यन्दिन क्रियाओं का अवसान सम्प्रज्ञात समाधि तथा सुपात्रों को दानादि देने के उपरान्त होता है

इत्युदीय स हरिं प्रति सम्प्रज्ञानवासिततमः समपादि ।
भावनाबलविलोकितविष्णौ प्रीति-भक्ति-सदृशानि चरिष्णु ॥
विप्रपाणिषु भृशं वसु दर्पो पात्रसात्कृतपितृक्रतुकव्यः ।
श्रेयसां हरिहरं परिपूज्य प्रह्व एष शरणं प्रविवेश ॥ नै० २१-११८-११६।

इस प्रकार इस सर्ग के लगभग प्रारम्भिक तीन-चौथाई भाग में नल के द्वारा दैनिक कृत्यों के रूप में सम्पन्न किए जाने वाले स्नान, ध्यान, पूजन तथा ईश्वराराधनादिकों का श्रीहर्ष ने विशद अंकन किया है। नल ने उन कार्यों को आकस्मिक रूप से सम्पन्न किया हो ऐसी बात नहीं। नल के द्वारा किये गये इन समस्त व्यापारों का नैषध में यत्र-तत्र सकेतित नल की तत्त्वज्ञता का प्रतिफलन कहा जा सकता है।

यहाँ पर संसार की अनित्यता तथा विष्णु के विभिन्न स्वरूप आदि आलम्बन हैं। वैतालिक सुन्दरी के द्वारा माध्यन्दिन वेला की दी गई सूचना, पुरोहित, कुश, तिलक, मृत्तिका, गंगाजल, उज्ज्वल वस्त्र, मालायें, देवालय, ब्रह्मचारी, पूजन-सामग्रियाँ, विष्णु के विभिन्न अवतारों की महिमा आदि उद्दीपन विभाव हैं। नल के द्वारा किया गया विधानपूर्वक स्नान, प्राणायाम, अघमर्षण, सूर्योपस्थान, जप, तर्पण, पूजन, विष्णु के अवतारों का स्तवन, ध्यान तथा दानादि अनुभाव हैं। निर्वेद, स्मृति, धृति, मति तथा हर्षादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट नलगत तत्त्वज्ञता की व्यंजना होती है। जिसे सांसारिक अनित्यता तथा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण शान्त रस के नाम

से अभिहित किया जाएगा।

उपर्युक्त प्रकरण को नलगत धर्मवीरता अथवा देव-विषयक रति भाव का द्योतक नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्योंकि नल के द्वारा उत्साहित होकर किसी धार्मिक क्रिया के सम्पादित किये जाने के रूप में इस प्रकरण की अवतारणा नहीं की गई है। अपितु उसके दैनिक कृत्य के रूप में इस प्रकरण की अवतारणा की गई है जिसमें यह प्रकरण नलगत धर्म मूलक उत्साह की व्यंजना न कर प्रधान रूप से नलगत तत्त्वज्ञता की ही व्यंजना करता है। धर्म-मूलक उत्साह की प्रतीति उस तत्त्वज्ञता का ही परिपोष करती है। इसी प्रकार यह प्रकरण देव-विषयक-रति-प्रतीति-पर्यवसायी भी नहीं है। क्योंकि नल के द्वारा की गई विष्णु के विभिन्न अवतारों की स्तुति नल के विह्वल हृदय की पुकार न होकर ईश्वर-प्रणिधान मूलक दैनिक कार्य का सम्पादन है। नल के द्वारा राम की स्तुति में तत्त्व-दृष्टि तथा संसार को राम-रूप देखने के लिए की गई कामना तथा तम-विनाश एवं तापोपशम के लिए की गई स्तुति आदि नलगत तत्त्वज्ञता की ही प्राधान्येन व्यंजना करते हैं। विष्णु के विभिन्न अवतारों की स्तुति करते हुए उनके बारे में नल ने जो कल्पनाएँ की हैं वे भी प्राधान्येन नल-गत तत्त्वज्ञता की ही व्यंजना करती हैं। और स्तुति के अन्त में नल का सम्प्रज्ञात समाधि में विष्णु का साक्षात्कार करना तथा सुपात्रों को पितरों के यज्ञ से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का दान करना आदि भी नलगत तत्त्वबुद्धि को ही व्यक्त करते हैं।

शान्त रसाभिव्यंजक उपर्युक्त प्रकरणों में व्यक्त नलगत तत्त्वज्ञता पर्यन्त में नलगत उत्तमता की व्यंजना कर अंगी रस की परिपोषक बन जाती है।

यद्यपि श्रीहर्ष ने अन्य स्थानों पर शान्त रस की विशद योजना नहीं की है, परन्तु नैषध में ऐसे अवतरणों की कमी नहीं है जो नलगत तत्त्वज्ञता की व्यंजना करते हों। यदि उपर्युक्त प्रकरण को ध्यान में रखकर ही शान्त रस की दृष्टि से नैषध का मूल्यांकन किया जाये तो नैषध को शृंगार रस प्रधान महा-काव्य होते हुए भी शान्त रस के शान्त वातावरण में प्रवाहित होने वाली एक शृंगार रस की तरंगिणी के नाम से अभिहित किया जा सकता है। क्योंकि नल एक ओर शृंगार-रस का आश्रय है तो दूसरी ओर वह एक तत्त्वज्ञ भी है। और वास्तविकता तो यह है कि तत्त्वज्ञ वह पहले है और शृंगार-रस का आश्रय बाद में। श्रीहर्ष ने अनेक स्थानों पर नल की इस विशेषता की ओर संकेत तो किया ही है। नल दमयन्ती-सम्भोग-वर्णन के पूर्व भी वे इस तथ्य की ओर संकेत कर देते हैं

आत्मवित् सह तया दिवानिशं भोगभागपि न तापमाप स

आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसं न लिम्पति॥ नै०१८-२॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने शृगार-रस-प्रधान महाकाव्य म भी समानाधिकरण्य विरोधी शान्त रस की योजना कर और उसे भी समुचित रूप से सन्निविष्ट करने के कारण निर्विरोधी रखकर एक ओर अपने काव्यकौशल को प्रकट कर दिया है और दूसरी ओर नल-दमयन्ती सभोग के सूक्ष्मतम व्यापारो की योजना करत हुए भी उसे वासनात्मकता से दूषित नही होने दिया है।

उपसहार

नैषधीयचरितगत अग-रस-योजना सम्बन्धी उपयुक्त समस्त विवेचन के निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष ने नैषध म सभी रसो की आस्वाद्य योजना की है। यद्यपि उन्होंने शृगार रस की अपेक्षा अन्य रसो की अप्रधान रूप मे योजना की है। परन्तु अप्रधानरूपेण विनिविष्ट होते हुए भी वे स्वतन्त्र रूप से आस्वाद्य है और नैषध मे उनकी सत्ता पृथक् रूप मे प्रतीत न होकर शृगार रस के अग के रूप मे ही प्रतीत होती है। लक्षण-ग्रथकारो न महाकाव्य को विभिन्न रसो से समन्वित करने के प्रति आग्रह प्रदर्शित करत हुए भी काव्यगत भावात्मक एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कवियो को विशेष रूप से सावधान कर दिया है और इसमे कोई सदेह नही कि श्रीहर्ष विभिन्न रसो से समन्वित नैषध मे उस एकता को बनाये रखने मे पूणतया सफल रहे हैं। नैषध का विहगम अवलोकन मात्र करने वाले पाठक को यह भ्रम हो सकता है कि श्रीहर्ष न नैषध मे शृगार-भिन्न रसो के लिए समुचित अवसर नही प्रदान किया है। परन्तु नैषध का पाठक यदि थोडी-सी भी गहराई मे जाकर उसका आद्योपान्त अध्ययन करेगा तो उसे शृगार रस के समान ही अनुभूति प्रवण शृगार भिन्न अन्य रसो के अभिव्यजक प्रकरण भी पग पग पर दृष्टिगत होगे। यद्यपि श्रीहर्ष ने शृगार रस के समान अन्य रसो की विस्तत तथा प्राचुर्येण योजना नही की है परन्तु वह अपेक्षित भी नही थी। क्योकि महाकाव्य म सभी रसो की समान योजना को अधिक प्रशस्य नही माना जाता और भावात्मक एकता की दृष्टि मे वैसा करना समुचित भी नही होता। अत नैषधगत शृगार भिन्न अन्य रसो की अग के रूप मे की गई योजना को औचित्य-युक्त ही कहा जाएगा। ध्वन्यालोककार के अनुसार तो नैषध मे शृगार रस की प्राधान्येन तथा अन्य रसो की अपेक्षाकृत अप्राधान्येन की गई योजना का नैषध के उत्कर्ष का मूल कहा जा सकता है

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धाना नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ।। ध्व० ३-७७।

चतुर्थ अध्याय

भावादि-योजना

भावादि भी रसों के समान ही आस्वाद्य होते है। अतः रस के साथ-साथ उन्हें भी काव्य की आत्मा स्वीकार किया गया है—

रस-भाव-तदाभास-भावशान्त्यादिरक्रमः।

ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ॥ ध्व० २-२५।

भावादि पद भाव, रसाभास, भावाभास, भाव-शान्ति, भावोदय, भाव-सन्धि तथा भावशबलता सभी का बोधक होता है। अतः इन सभी का आस्वाद्य होने के कारण रस नाम से भी अभिहित किया गया है—

रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ।

सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ॥ सा० द० ३-२५९-२६०।

नैषधगत भावादि-योजना

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में भावादिकों की भी प्राञ्जल व्यंजना की है। यद्यपि महाकाव्य में रसों की ही प्राधान्येन योजना अभीष्ट होती है तथा भावादि प्रायः मे किसी न किसी रसादि की ही अंगता को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु यत्र-तत्र वे पृथक् रूप से भी आस्वाद्य होते ही हैं। नैषधीयचरित में ऐसे अनेक अवसर आए हैं जहाँ पर भावादि स्वतन्त्र रूप से आस्वाद्य हैं। उदाहरण-स्वरूप अधोलिखित प्रकरणों को लिया जा सकता है।

कान्तादि-विषयक रति भाव

कान्तादि-विषयक पद कान्तविषयक तथा कान्ताविषयक उभय विध रति स्थायी भावों का सूचक है। क्योंकि रति वासना का उदय केवल नायक में ही नहीं होता अपितु नायिका में भी होता है। इसके साथ-साथ यद्यपि रति वासना नायक-नायिका-दर्शनादि के अनन्तर ही उद्बुद्ध होती है परन्तु नायक-नायिका के समान अन्य अनेक उपकरण भी कहीं-कहीं रति-वासनोद्बोध के प्रधान कारण बन सकते

हैं। कान्तादि-गत आदि पद से उन उपकरणों का ग्रहण किया जा सकता है। रति-वासनोद्‌बोधक इन विभिन्न कारणों के आधार पर कान्तादि विषयक रति भाव को विभाजित किया जा सकता है। भरत ने रति भाव के लक्षण में रति-भावाद्‌बोधक अनेक विभावों तथा अनुभावों का निर्देश किया है। उनके अनुसार विभिन्न ऋतुएं, कुसुमादि माल्य, अनुलेपन, आभरण, भोजन, वरभवन का अनुभव तथा अप्रातिकूल्यादि विभावों एवं स्मित, मधुरभाषण भ्रूक्षेप तथा कटाक्षादि अनुभावों के संयोग से रति भाव की व्यंजना होती है। ना० शा० पृ० ३५०।

भरत के रति-भाव-लक्षण पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उसमें एक ओर देवादि-विषयक रति भावों के बीज सन्निहित हैं तो दूसरी ओर कान्तादि-विषयक रति के भी।

श्रीहर्ष ने नैषध में कान्तादि विषयक रति भाव की व्यंजना प्रचुर मात्रा में की है। परन्तु उन्होंने कान्तादि-विषयक रति भाव की व्यंजना में नल-दमयन्ती को प्रायः कम ही विषय बनाया है। नल-दमयन्ती को विषय बनाकर व्यक्त रति स्थायी भाव का उन्होंने सर्वत्र सम्यक् परिपोष किया है। क्योंकि शृंगार रस को नैषध का अंगीरस वे जो बनाना चाहते थे। परन्तु नल-दमयन्ती को विषय बनाकर की गई रति भाव की व्यंजना का नैषध में सर्वथा अभाव हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है।

अन्तःपुर में भ्रमण करता हुआ नल पहले दमयन्ती का मोहक चित्र बनाता है। उसके उपरान्त वह सस्पृह दृष्टि से उस चित्र का अवलोकन करता है

कौमारगन्धीनि निवारयन्ती वृत्तानि रोमावलिवेत्रचिह्ना।

सालिख्य तत्तैश्यत यौवनीयद्वा स्थामवस्थां परिचेतुकाम ॥ नै० ६-३८।

नल के द्वारा दमयन्ती के चित्र का बनाया जाना तथा उसका दर्शन किया जाना नलगत दमयन्ती-विषयक रति भाव की व्यंजना करता है।

दमयन्ती ने नल को अपनी पुरी का दर्शन करने में अत्यमनस्क देखकर स्वयं निश्चिन्त होकर नल का मुख देखने के लिए अपने नेत्रों को प्रेरित किया था। उसी समय नल की दृष्टि पुरी की ओर से सहसा जो लौटती है तो दमयन्ती की दृष्टि से उसका समागम हो जाता है

पुरीनिरीक्ष्यान्यमना मनागिति प्रियाय भैम्यानिभृत विसर्जित।

ययौ कटाक्ष सहसा निवर्त्तिना तदीक्षणेनाधपथे समागमम् ॥ नै० १६-१२२।

यहां पर नल आलम्बन है। नलमुख का दर्शन करने के लिए दमयन्ती का दृष्टि-निक्षेप अनुभाव है। इन दोनों के संयोग से दमयन्तीगत नल-विषयक रति भाव की व्यंजना होती है।

श्रीहर्ष ने कान्तादिविषयक रति भाव की विशद योजना सोलहवें सर्ग में की है। भोजन करते हुए बारातियों तथा भोजन परोसने वाली परिचारिकाओं के क्रिया-

कलापो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि बारातियो की दृष्टि भोजन की अपेक्षा परिचारिकाओ की भाव-भगिमाओ की ओर तथा परिचारिकाओ की दृष्टि भोजन परोसन की अपेक्षा बारातियो के क्रिया-कलापो की ओर अधिक लगी हुई थी। यद्यपि दम ने स्वय ही बारातियो तथा परिचारिकाओ को एक-दूसरे के निकट आने का अवसर दे दिया था परन्तु भोजन करते हुए बाराती तथा परिचारिकायें एक-दूसरे के इतना अधिक सन्निकट पहुच जाते है कि पाठक को यह आभास तक नही हो सकता कि बाराती कोई नवागन्तुक थे या बाराती तथा परिचारिकायें एक-दूसरे से परिचित नही थे अथवा उन दोनो का निकट सम्पर्क नही था।

बाराती तथा परिचारिकाओ मे से कोई भी एक-दूसरे से कम नही था। यदि कही पर कोई बाराती अपने अनुराग को प्रकट करने मे आतुर था तथा परिचारिका उस अनुराग का प्रत्युत्तर देने मे उसे मात दे देती है तो कही पर परिचारिका के अनुराग को ताडने म बाराती भी पीछे नही रहता

तिरोबनद्धसमरोजनालया स्मिते स्मित यन् खलु यूनि बालया।
तया तदीये हृदये निखाय तद्व्यधीयतासम्मुखलक्ष्यवेधिता॥
इत यद यत्करणोचितत्यजा दिदृक्षुचक्षुर्यदवारि बालया।
हृदस्तदीयस्य तदेव कामुके जगाद वार्तामखिला खल खलु॥
नै० १६-५६-५७।

दूसरी ओर एव दूसरा बाराती तो सभी लोगो की आखो मे धूल झोकने तक का साहस कर लेता है

जन ददत्या कलितानतेमुख व्यवस्यता माहसिकेन चुम्बितुम्।
पदे पतद्वारिणि मन्दपाणिना प्रतीक्षितोऽन्येक्षणवञ्चनक्षण॥ नै० १६-५८।

कोई बाराती यदि किसी परिचारिका के द्वारा किये गये सकेत को देखकर ही आनन्दानुभव करने लगता है तो कोई किसी दूसरी परिचारिका के कामसूचक क्रिया-कलापो को देखकर उसकी प्राप्ति के बारे मे निश्चिन्त-सा हो जाता है

युवानमालोक्य विदग्धशीलया स्वपाणिपाथोरुहनालनिर्मित।
श्लथाऽपि सख्या परिधि कलानिधौ दधावहो न प्रति गाढबन्धताम्॥
मुख यदस्माय्रि विभज्य सुभ्रुवा ह्रिय यदानम्य नताम्यमासितम्।
अवादि वा यन्मृदु गद्गद युवा तदेव जग्राह तदाप्तिलग्नकम्॥
नै० १६-५९,६१।

परिचारिकाये ही कामविवश हो गई हो ऐसी बात नही, बारातियो मे भी कोई यदि निर्लज्ज बन गया था तो कोई तडफने तक लगा था

विलोक्य यूना व्यजन विधुन्वतीमवाप्तसत्वेन भृश प्रसिष्विदे।
उदस्तकण्ठेन मृषोष्मनाटिना विजित्य लज्जा ददृशे तदाननम्॥

स तत्कुचस्पृष्टकचेष्टिदोर्लताचलद्दलाभव्यजनानिलाकुल ।
अवाप नानानलजालशृङ्खलानिबद्धनीडोद्भवविश्रम युवा ।।
नै० १६-६२-६३ ।

वारातियो तथा परिचारिकाओ के द्वारा किये गये सकेत भी कम अनूठे नहीं हैं। दोनो ही सकेत करने तथा एक-दूसरे के सकेतो को समझने मे कुशल हैं

अवच्छटा कापि कटाक्षपस्य सा तथैव भङ्गी वचनस्य काचन ।
यया युवभ्यामनुयने मिथ कृशोऽपि दूतस्य न शेपित श्रम ।।
अहर्निशा वेति रताय पृच्छति क्रमोष्णशीतान्नकरापणाद्विट ।
ह्रिया विदग्धा किल तन्निषेधिनी न्यधत्त मध्यामधुरेऽधरेऽङ्गुलिम् ।।
कियत् त्यजन्नोदनमारयन् कियत् करस्य पपृच्छ गतागतेन याम् ।
अह किमेष्यामि किमेष्यसीति सा व्यधत्त नम्र किल लज्जयाननम् ।।
नै० १६-६४-७८-७६ ।

इसी प्रकार अन्य परिचारिकायें तथा वाराती भी अवसर का लाभ उठाने में नहीं चूकते

नवौ युवानौ निजभावगोपिनावभूमिपु प्राग्विहितभ्रमिक्रम ।
दृशोर्विधत्त स्म यदृच्छया किल त्रिभागमन्योन्यमुखे पुन पुन ।।
पिपासुरस्मीति विबोधिता मुख निरीक्ष्य बाला सुहितेन वारिण ।
पुर करे कर्तुमना गलन्तिका हसात् सखीना सहसा न्यवर्तत ।।
नै० १६ ७५,८३ ।

एक युवक की प्रार्थना तथा युवती की शरारत को भी देखिए

चिर युवाकूतशनै कृतार्थनश्चिर सरोषेङ्गितया च निघुत ।
सृजन् करक्षालनलीलयाञ्जलीनसेचि किञ्चिद्विधुनाम्बुधारया ।।
नै० १६-१०७ ।

उपयु क्त उद्धरणो म परिचारिकायें तथा वाराती आलम्बन हैं। दोनो की विभिन्न चेष्टायें अनुभाव हैं। जिनके सयोग से परिचारिका तथा वाराती उभयगत अन्योन्य-विषयक रति भाव की व्यजना होती है। वारातियो तथा परिचारिकाओ का व्यक्त रति भाव व्यभिचारियो से परिपुष्ट न हो पाने के कारण शृगार-रस रूपता को नहीं प्राप्त हो पाता। पयन्त म यह समस्त प्रकरण नल तथा दमयन्ती की महनीयता प्रदान करने वाले वारातियों तथा परिचारिकाओ की निपुणता की व्यजना कर नैषधगत अगी रस का परिपोषक बन जाता है।

देव-विषयक रति भाव

देव-विषयक रति भाव को ही कुछ लक्षण-ग्रन्थकारो ने भक्ति रस के नाम से अभिहित किया है। आराध्य देव इसका आलम्बन होता है। उसकी महिमा आदि

उद्दीपन विभाव होते हैं। आराधक को अनेक रूप आराधना आदि अनुभाव होते हैं। देवादिविषयक परिपुष्ट तथा अपरिपुष्ट उभय विध रति भाव को भाव के नाम से अभिहित किया जाता है। अन्त निर्वेदादिक व्यभिचारी भावों के द्वारा इसका परिपोष भी किया जाता है।

श्रीहर्ष ने नैषध में देव-विषयक रति भाव की भी यत्र-तत्र व्यजना की है। राजा भीम अनेक स्थानों से आये हुए स्वयवर-मण्डप में उपस्थित राजसमूह का परिचय-वर्णन करने में किसी व्यक्ति को समर्थ न देखकर दुःखी हो जाते हैं। और उसी दुःख की स्थिति में उनका ध्यान अपने कुल-देवता की ओर जाता है और वे विष्णु का स्मरण करने लगते हैं

विचिन्त्य नानाभुवनागतास्तानमर्त्यसकीर्त्यचरित्रगोत्रान्।
कथ्या कथङ्कारममी सुतायामिति व्यपादि क्षितिपेन तेन ॥
श्रद्धालुसङ्कल्पितकल्पनाया कल्पद्रुमस्याथ रथाङ्गपाणे ।
तदाकुलोऽसौ कुलदैवतस्य स्मृतिं ततान क्षणमेकतान । नै० १०-६७-६८।

यहाँ पर विष्णु आलम्बन है। भीम के द्वारा किया गया विष्णु का ध्यान अनुभाव है। भीमगत विष्णुविषयक रति भाव व्यग्य है।

भीम के समान ही भीम पुत्री दमयन्ती भी पाँच समानाकृति-धारी व्यक्तियों में सत्य नल को पहचान पाने में असमर्थ होकर देवताओं की आराधना के द्वारा अपने सङ्कल्प को सिद्ध करने का प्रयत्न करती है। दमयन्ती के सङ्कल्प तथा उसके द्वारा की गयी देवताओं की आराधना पर प्रकाश डालते हुए श्रीहर्ष ने स्वगत देवविषयक रति भाव की भी व्यजना की है। उनके कथनानुसार दमयन्ती का सङ्कल्प मानवोचित था, क्योंकि देवताओं की प्रसन्नता को वे मानवों की अभिलाषा का पूरक तथा देवताओं को कल्पद्रुम का वन समझते हैं

अथाधिगन्तु निषधेश्वर सा प्रसादनामाद्रियतामराणाम्।
यत सुरगणा सुरभिर्नृणा तु सा वेधसामृज्यत कामधेनु ॥
प्रदक्षिणप्रक्रमणालवालविनिपद्मपावरणाम्बुसेकै ।
इष्टञ्च मृष्टञ्च फल सुवाना देवा हि कल्पद्रुमकानन न ॥ नै० १४-१-२।

इसी प्रकार उन्होंने देवताओं के नमस्कार, ध्यान तथा पूजनादि की महत्ता की ओर सकेत करते हुए दमयन्ती के द्वारा उनका नमन, ध्यान, पूजन, स्तुति तथा पूजनोपरान्त ध्यान कराकर दमयन्तीगत देवविषयक रति भाव की विशद व्यजना की है

श्रद्धामयीभूय सुपर्वणस्तान् ननाम नामग्रहणाग्रक सा।
सुरेषु हि श्रद्दधता नमस्या सर्वार्थसिद्ध्यगमिय समस्या ॥
यत्तान् निनै सा हृदि भावनाया बलेन साक्षादकृताखिलस्थान्।
अभूदमीऽस्तनिभू स तस्या वर हि दृष्ट्वा ददते पर ते ॥

सभाजन तत्र ससर्ज तेषा सभाजन पश्यति विस्मिते सा।
आमुच्यते यत्सुमनोभिरेव फलस्य सिद्धयै सुमनोभिरेव ॥
वैशद्यहृद्यैश्च दिमाभिरामैरामोदिभिस्तानथ जातिजातैं।
आनर्च गीर्यावितषट्पदै सा स्तवप्रसूनस्तवकैनवीनै ॥
हृत्तद्गिमद्गि यधिवास्य बुद्धया दध्यावथैतानियमेकनाना।
सुपवणा हि स्फुटभावना या सा पूवरूप फलभावनाया ॥ नै० १४-३-७।

यहां पर देवता आलम्बन है। देवताओं की महिमा उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती के द्वारा किया गया देवताओं का पूजन व ध्यानादि अनुभाव हैं। दमयन्ती-गत रति भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार नल को देवताओं के प्रति आदरवान् प्रदर्शित कर तथा उसे नित्यकर्मों में सलग्न कर श्रीहर्ष ने नलगत देवविषयक रति भाव की भी यत्र-तत्र व्यजना की है।

मुनि-विषयक रति भाव

नैषध में मुनि-विषयक रति भाव की भी व्यजना की गई है। इन्द्र देवता नारद मुनि को अपने पास आया हुआ देखकर उनका समुचित आदर-सत्कार करते हैं तथा अन्य सभी लोगों के साथ वार्तालाप बन्द कर नारद के साथ बातचीत करने लगते हैं। इन्द्र के द्वारा नारद से किया गया यह वार्तालाप विनय से परिप्लुत है। नै० ५-५-१८।

इन्द्र नारद को भगवन् शब्द से सम्बोधित करते हैं तथा वे नारद के वचनो को वेदों का सार-स्वरूप मानते हैं

तद्विमृज्य मम सशयशिल्पि स्फीतमत्र विषये सहसाधम्।
भूयता भगवत श्रुतिसारैरद्य वाग्भिरघमर्षणऋग्भि ॥ नै० ५ १८।

यहां पर नारद मुनि आलम्बन है। इन्द्र का नारद-सत्कार करना तथा विनय-प्रकाशन आदि अनुभाव है। इन्द्रगत रति भाव व्यग्य है।

नृप-विषयक रति भाव

श्रीहर्ष ने नृप विषयक रति भाव की भी यत्र-तत्र योजना की है। जब नल दमयन्ती के साथ अपने पुर में प्रवेश करता है तो पुरकुमारिकायें उसकी जय-जय कार करने लगती हैं तथा उसके ऊपर खीलो की वर्षा करने लगती हैं। इसी प्रकार पुरबालायें भी अपने भवनों के झरोखों में नल-दर्शन कर अपने नेत्रों को तृप्त करने लगती हैं तथा उसके ऊपर लाजा की वर्षा करने लगती हैं

अथ पथि पथि लाजैरामना बाहुवल्ली मुकुलकुलसकुल्यै पूजयन्तो जयति।
क्षितिपतिमुपनमुस्त दधाना जनानाममृतजलमृणालासौकुमार्यं कुमार्य ॥

निषधनृपमुखे दृशौमुधा मौग्धवातायनविवरग रश्मिश्रेणिनालोपनीताम् ।
पशुरसमपिपासापामुलन्दोल्परागाण्यखिलपुरपुरन्ध्रीनत्रनीलोत्पलानि ॥

नै० १६-१२५-१२७।

यहाँ पर नल आलम्बन है। नलनगर की पुरकन्याओं तथा बालाओं का जय-जय-कार तथा लाज-मोक्षणादि अनुभाव हैं। नलविषयक रति भाव व्यंग्य है। यहाँ पर नृप-विषयक रति भाव का विस्मय तथा हर्षादि भावों के द्वारा परिपोष भी किया गया है।

इसी प्रकार माध्यन्दिन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए दमयन्ती-भवन से बाहर जाते हुए नल को आश्रित राजाओं का प्रणाम करते लगना तथा भेंट में उसे अमूल्य रत्नराशि समर्पित करना भी नृप-विषयक रति भाव की व्यंजना करता है। नै० २१-१-३।

स्वयंवर में उपस्थित राजाओं का प्रभाव-वर्णन करने के अवसर पर भी नृप-विषयक रति भाव की व्यंजना के अनेक अनुपम अवसर आए हैं।

पुत्रादि-विषयक रति भाव

पुत्रादि-विषयक रति भाव को ही अनेक चिन्तकों ने वत्सलरस के नाम से भी अभिहित किया है। पुत्रादि इसके आलम्बन होते हैं। उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव होती हैं। आलिंगनादि अनुभाव होते हैं। शंका तथा हर्षादि व्यभिचारी भाव होते हैं। पुत्रादि के अन्तर्गत पुत्र-पुत्री तथा पुत्र के समान प्रिय जामात्रादि का ग्रहण किया जा सकता है।

दमयन्ती की व्याधि का कारण जान लेने के उपरान्त भीम के द्वारा उसकी व्याधि को दूर करने के लिए आशीर्वाद के व्याज से शीघ्र ही उसका स्वयंवर सम्पन्न करने के लिए दमयन्ती को दिया गया आश्वासन तथा दमयन्ती की सखियों को उसके स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहने के लिए दिया गया आदेश भीमगत पुत्री-दमयन्ती-विषयक रति भाव का व्यंजक है

व्यतरदथ पिताशिषं सुतायै नतशिरसे सहसोन्नमय्य मौलिम् ।
दयितमभिमतं स्वयंवरं त्वं गुणमयमाप्नुहि वासरै: कियद्भि: ॥
तदनु स तनुजा सखीरवादीत्तुहिनऋतौ गत एव हीदृशीनाम् ।
कुसुममपि शरायते शरीरे तदुचितमाचरतोपचारमस्याः ॥

नै० ४-११६-१२०।

यहा पर दमयन्ती आलम्बन है। उसकी मूर्च्छा आदि उद्दीपन विभाव हैं। भीम के द्वारा दमयन्ती के शिर का उन्नमन, दमयन्ती को दिया गया आशीर्वाद तथा सखियों को सावधान रहने के लिए सतर्क किया जाना आदि अनुभाव हैं। शंका व्यभिचारी भाव है। पुत्री-विषयक रति व्यंग्य है।

भीम को दमयन्ती के प्रति ही प्रगाढ प्रेम नही था। नल ने भी अपने गुणो के कारण उनके मन मे एक विशेष स्थान बना लिया था। अतएव दमयन्ती जब नल का वरण कर लेती है तो वे हर्ष विह्वल हो जाते हैं

विदर्भराजोऽपि सम तनूजया प्रविश्य हृष्यन्नवरोधमात्मन ।
शशास देवीमनुजातमशया प्रतीच्छ जामातरमुत्सुके नलम् ॥
तनुत्विपा यस्य तृण स मन्मथ कुलश्रिया य पवितास्मदन्वयम् ।
जगत्रयीनायकमेलके वर मुता पर वेद विवेक्तुमीदृशम् ॥ नै० १५-५-६ ।

भीम की उपर्युक्त प्रसन्नता-तथा उसके वचनो से पुत्रादि-विषयक रति भाव की व्यजना होती है।

इसी प्रकार नल तथा दमयन्ती को अपने यहा से विदा करने के अवसर पर प्रवाहित होने वाले दमयन्ती की माता तथा पिता के अश्रु तथा भीम के द्वारा दमयन्ती को दी गई शिक्षा आदि भी पुत्रादि-विषयक रति भाव की व्यजना करते हैं

तथा किमाज मनिजाक्वर्धिना प्रहित्य पुत्री पितरौ विषेदतु ।
विसृज्य नौ त दुहितु र्पति यथा विनीततालक्षगुणीभवद्गुणम् ॥
पितात्मन पुण्यमनापद क्षमा धन मनस्तुष्टिरथाखिल नल ।
अत पर पुत्रिन्न कोऽपि ते'हमित्युदस् रेष व्यसृजन्निजौरसीम् ॥
नै० १६-११५,११७ ।

मित्रादि-विषयक रति भाव

मित्रो या सगे-सम्बन्धियो के प्रति व्यक्त रति को भी भाव नाम से अभिहित किया जा सकता है और देवताओ के नल के प्रति तथा सरस्वती के दमयन्ती के प्रति व्यक्त प्रेम को मित्रादि-विषयक रति भाव के अन्तगत स्थान दिया जा सकता है। स्वर्ग को जाते हुए देवता ता नल क वियाग से दु खी थे ही क्योकि नल उनका अश जो था, इसी प्रकार सरस्वती भी दमयन्ती के वियोग से कुछ कम खिन्न तथा उत्कण्ठित नही थी। क्योकि दमयन्ती उसकी सखी ही नही अपितु उसके चित्रासा की आवासभूमि जो थी

स्वस्यामरैनृ पतिमशमम् त्यज ।
दृभिरशच्छिदाक्दनमेव तदाध्यगामि ।
उत्का स्म पश्यति निवृत्य निवृत्य यान्ती ।
वाग्देवतापि निजविभ्रमधाम भैमीम् ॥ नै० १४-६६ ।

यहाँ पर नल तथा दमयन्ती आलम्बन है। देवताओ का दु खी होना तथा सरस्वती का दमयन्ती को मुड-मुडकर देखना आदि अनुभाव है। इन्द्रादि देव तथा सरस्वतीगत रति व्यग्य है।

भूमिपतन, रदन, क्रन्दन, दीर्घनिश्वास, जड़ता, उन्माद, मोह तथा मरणादि अनुभावो के सयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५१।

दूत नल भीम के अन्त पुर मे अन्तर्हित अवस्था मे भ्रमण कर रहा था। यद्यपि वह दमयन्ती की प्राप्ति की ओर से निराश हो चुका था। परन्तु भ्रम मे एक बार दमयन्ती को प्राप्त कर लेने के उपरान्त जब उसकी मोह-निद्रा टूट जाती है तो उसे दुख होता है

भैमीनिराशे हृदि मन्मथेन दत्तस्वहस्तादिरहाद्विहस्त ।

स तामलीकामवलोक्य तत्र क्षणादपश्यन्व्यपदद्विबुद्ध ।। नै० ६-१६।

यहा पर दमयन्ती का प्राप्त न कर पाने का विचार विभाव है। नल का दुखी होना अनुभाव है। नलगत शोक भाव व्यग्य है।

इन्द्र दूती के द्वारा वितरित देव-सदेश तथा सखियो के द्वारा किये गए उस सदेश का अनुमोदन एव दमयन्ती को इन्द्र के द्वारा प्रेषित पारिजात की माला को ग्रहण करता हुआ देखकर पास ही बैठे हुए अन्तर्हित नल का हृदय मर्माहत हो जाता है

भैमी च दूत्य च न किञ्चिदापमिति स्वय भावयतो नलस्य ।

आलोकमानाद्यदि तन्मुखेन्दोरभून्न भिन्न हृदयारविन्दम् ।। नै० ६-८१।

यहा पर भी दमयन्ती को प्राप्त न कर पाने का विचार विभाव है तथा नल की उपर्युक्त भावना अनुभाव है। नलगत शोक भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार दमयन्ती के द्वारा प्रेरित उसकी सखी के मुख से दैन्य-निवेदन सुनकर यद्यपि नल अपने दौत्य काय से विरत नही होता परन्तु वह उस वाणी को सुनकर मर्माहत हुए बिना भी नही रहता

स भिन्नमर्मापि तदार्तिकाकुभि स्वदूतधर्मान्न विरन्तुमैहत ।

शनैरशसन्निभृत विनि श्वसन् विचित्रवाक् चित्रशिखण्डनन्दन ।।

नै० ६-७३।

क्रोध भाव

क्रोध भाव के आधर्षण, आक्रुष्ट, कलह, विवाद तथा प्रतिकूलता आदि विभाव एव नासापुटस्फुरण नरोद्वत्तन, [ओष्ठदशन तथा कपोल-प्रान्तस्फुरणादि अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३५२।

श्रीहर्ष ने नैषध म क्रोध भाव की भी यत्र-तत्र व्यजना की है। हस को पकड पाने मे निष्फल-प्रयत्न हो जाने से हँसती हुई सखियो को दमयन्ती के द्वारा दिया गया उपालम्भ दमयन्ती-गत क्रोध भाव की व्यजना करता है

उच्चाटनीय करतालिकाना दानादिदानी भवतीभिरेष ।

यान्वेति मा द्रुह्यति मह्यमेव सात्रेत्युपालम्भि तयालिवग ।। नै० ३-७।

नल के पुन-पुन प्रयत्न करने पर भी जब दमयन्ती किसी देवता का वरण करना स्वीकार नही करती तो नल अपने प्रयत्नो को निष्फल होता हुआ देखकर खीझ उठता है और दमयन्ती को लथाडने-सा लगता है

अहो! मनस्त्वामनु तेऽपि तन्वते त्वमप्यमीभ्यो विमुखीति कौतुकम्।
क्व वा निधिनिधनमेति किं च त स वाक्कवाट घटयन्निरस्यति ॥
दिवौकस कामयते न मानवी नवीनमश्रावि तवाननादिदम ।
कथ न वा दुर्ग्रहदोष एप ते हिनेन सम्यग्गुरुणापि शाम्यत ॥
नै० ६-३६, ४१।

शनै शनै उसके वाक्य और भी कटु होते जाते है और वह उस ऊँट से बढकर तथा मूख तक कहकर सम्बोधित करने लगता है

हरिं परित्यज्य नलाभिलापुका न लज्जसे वा विदुषिव्रवा कथम्।
उपेक्षितेक्षो करभाच्छमीग्नादुरु वद त्वा करभोरु! भोरिति॥
तपोनले जुह्वति सूर्यस्तनूर्दिवे फलायान्यजनुभविष्णव ।
करे पुन कपति मैव विह्वला बलादिव त्वा वलसे न वालिशे! ॥
नै० ६-४३, ४५।

यहा पर नल के द्वारा प्रस्तावित इन्द्रादि देवताओ का वरण न स्वीकार करने वाली दमयती विभाव है। नल के उपर्युक्त कटुण वचन अनुभाव है। नलगत क्रोध भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार मिथ्या शपथ दिलाने वाली दमयन्ती की सखी को नल का झिडकने लगना भी तद्गत क्रोध भाव की व्यजना करता है

तयालिमालपन्ती तामभ्यधान्निपधाधिप ।
आस्व तद्वञ्चिनी स्वश्चेन्मिथ्याशपथमाहमात् ॥ नै० २०-११५।

यहा पर मिथ्या शपथ दकर दमयन्ती के हाथा से अपनी मुक्ति कराने वाली कला नामक सखी आलम्बन है। कला का अन्य सखी के साथ सुन हुए रहस्यो का विनिमय करना उद्दीपन विभाव है। नल की भिडकी अनुभाव है। नलगत क्रोध भाव व्यग्य है।

उत्साह भाव

उत्साह भाव अविपाद शक्ति, धैय तथा शौर्यादि विभावो से उत्पन्न होता है। धैय-धारण एव वैशारद्यादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३५३।

श्रीहप न नैषध के प्रारम्भ मे नल के अनक गुणा का वणन करत हुए नलगत धर्म, युद्ध तथा दान-विषयक उत्साह की व्यजना करने वाले गुणो का भी वर्णन किया है। किसी धम-परायण व्यक्ति के राज्य म ही अधम तप म निरत हो सकता था, अ धार्मिक के राज्य मे नहीं

पदैश्चतुर्भि सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तप प्रपेदिरे।
भुव यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ॥

नै० १-७ ॥

इसी प्रकार कोई युद्धविषयक उत्साही व्यक्ति ही सेना के साथ भूमण्डल पर भ्रमण करने, शत्रुओ के प्रताप को शान्त करने, शत्रु-नगरो को जलाने, शत्रु राजाओ की स्त्रियो को रुलाने तथा अपने यश को युद्ध के द्वारा विस्तारित करने मे दत्तचित्त हो सकता था

यदस्य यात्रासु बलोद्धत रज स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतित सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कता विधौ ॥
स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्घनाशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।
निजस्य तेज शिखिन परश्शता वितेनुरङ्गारमिवायश परे॥
अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैर्निजप्रतापैर्वलय ज्वलद्भुव।
प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया रराज नीराजनया स राजघ ॥
निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टय।
न तत्यजुर्नूनमनन्यसंश्रया प्रतीपभूपालमृगीदृशा दृश ॥
सितांशुवर्णैर्वयति स्म तद्गुणैर्महासिवेम्न सहक्त्वरी बहुम्।
दिगङ्गनाङ्गाभरण रणाङ्गणे यश पट तद्भटचातुरी तुरी ॥

नै० १-८-१२।

दरिद्रो की दरिद्रता को समूल नष्ट कर देने के उपरान्त भी असन्तुष्ट कोई दान-विषयक उत्साही व्यक्ति ही रह सकता था

अय दरिद्रो भवितेति वैधसी लिपि ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादप प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रता नृप ॥
विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरु।
अमानि तत्तेन निजायशोयुग द्विफालबद्धाश्चिकुरा शिर स्थितम् ॥

नै० १-१५-१६।

नल की उपयुक्त सभी विशेषतायें क्रमश नलगत धर्म, युद्ध तथा दान-विषयक उत्साह भाव की व्यजना करती हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानो पर भी श्रीहर्ष ने नलगत दानादि-विषयक उत्साह भाव की व्यजना की है।

भय भाव

भय भाव गुरु अथवा राजापराध, हिंसक पशु, शून्य स्थान, अटवी, पर्वत तथा गजादि के दर्शन, निर्भत्सन, कान्तार, दुर्दिन, निशान्धकार, उलूक, नक्तञ्चर तथा आराव-श्रवणादि विभावो एव हस्त-कम्पन, हृदय कम्पन, स्तम्भ, मुखशोष, जिह्वा परिलेहन, स्वेद, वेपथु, त्रास, परित्राणान्वेषण, धावन तथा उत्क्रुष्टादि अनुभावो

के सयोग मे व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५४।

सरस्वती वासुकि का वर्णन करते हुए दमयन्ती से कहती है कि यदि दमयन्ती उसका वरण कर ले तो वह उसका योग्य पति बन सकता है। परन्तु सरस्वती वासुकि की जिन विशेषताओ का वर्णन करते हुए दमयन्ती को उसका वरण करने के लिए प्रेरित करती है वस्तुत वे विशेषताये दमयन्ती तो क्या किसी भी स्त्री को वासुकि का वरण करने के लिए लालायित नही कर सकती थी। क्योकि ऐसी स्त्री की कल्पना नही की जा सकती जो सप की जिह्वा मे अपना अधर-परिलेहन कराने का प्रस्ताव सुनकर भयभीत नही हो जाएगी और उस काय को कराने के लिए लालायित हो उठेगी। वही हालत सरस्वती का प्रस्ताव सुनकर दमयन्ती की हो जाती है

धृत्वैकया रसनयामतमीश्वरन्दोरप्यन्यया त्वदधरस्य रस द्विजिह्व ।
आस्वादयन् युगपदेप पर विशेष निर्णेतुमेतदुभयस्य यदि क्षम स्यात ॥
नै० ११-१८।

सरस्वती के इस प्रस्ताव को सुनकर दमयन्ती ता कापने ही लगती है। वासुकि के सेवक उसके कम्प को सात्विक समझकर नाचने लगते हैं जिससे वासुकि को शर्मिन्दा होना पड़ता है

तद्विस्फुरत्फणविलोकनभूतभीते कम्प च वीक्ष्य पुलक च ततोऽनु तस्या ।
सजातसात्त्विकविकारधिय स्वभूयान् नृपान्दधेऽपदुरगाधिपतिर्विनम्र ॥
नै० ११-२१।

यहा पर वासुकि के फैले हुए फन विभाव हैं। दमयन्ती का कम्प अनुभाव है। दमयन्तीगत भय व्यग्य है।

दमयन्ती की सखियो को धृष्टता करता हुआ देखकर जब कचुकी उन्हे डाटता है तो व वहा से भाग जाती हैं। सखियो का यह पलायन भी भय भाव की व्यजना करता है

अपयातमितो धृष्टे' धिग्वामश्लीलशीलताम् ।
इत्युक्ते चोक्तवन्तश्च व्यतिद्राते स्म ते भिया ॥ नै० २०-१३६।

इसी प्रकार नल के हाथों से मुक्त स्वर्ण हस को आकाश मे उड़ने वाले हसो का आकर घेर लेना तथा उसके अस्त-व्यस्त शरीर को देखकर उन हसो का पुन आकाश मे उड़कर चला जाना भी भय भाव की व्यजना करता है

अयमेत्य तडागनीडजैर्लघु पर्यव्रियतात्य शङ्कितै ।
उदडीयत वैकृतात् करग्रहजादस्य विकस्वरस्वरै ॥ नै० २-५।

जुगुप्सा भाव

जुगुप्सा भाव के अहृद्य-दशन अथवा उसका श्रवणादि विभाव होते हैं। सर्वाङ्ग-

सकोच, निष्ठीवन, मुखविकूणन तथा हृल्लेखादि इसके अनुभाव होते हैं।
नाo शाo पृo ३५४।

वियुक्त नल के द्वारा अपने उपवन मे पुष्पित पलाश तथा चम्पा की कलियो को देखकर की गई कल्पनायें जुगुप्सा भाव की व्यजना करती हैं

स्मरार्धचन्द्रेषुनिभे क्रशीयसा स्फुट पलाशेऽध्वजुषा पलाशनात् ।
स वृन्तमालोकत खण्डमन्वित वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम् ॥
विचिन्वती पान्थपतगहिंसनैरपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात् ।
व्यलोकयच्चम्पककोरकावली स शम्बरारेर्बलिदीपिका इव ॥
नैo १-८४-८६ ।

विस्मय भाव

श्रीहर्ष ने विस्मय भाव की अनेक स्थानो पर व्यजना की है। माया, इन्द्रजाल, किसी के द्वारा सपादित लोकसामान्य कर्म, चित्र, पुस्त, शिल्प, विद्या आदि का अतिशय आदि इसके विभाव होते हैं तथा नेत्र-विस्तार, निर्निमेषावलोकन, भ्रूक्षेप, रोमहर्षण, शिर कम्प तथा साधुवादादि इसके अनुभाव होते हैं। नाoशाo पृo ३५५।

आकाश से हस को उतरता हुआ देखकर दमयन्ती तथा उसकी सखियाँ सम्भ्रान्त हो जाती हैं और उनकी दृष्टि सहसा उस दिव्य हस की ओर आकर्षित हो जाती है

आकस्मिक पक्षपुटाहताया क्षितेस्तदा य स्वन उच्चचार ।
द्रागन्यविन्यस्तदृश स तस्या सम्भ्रान्तमन्त करण चकार ॥
नेत्राणि वैदर्भसुतासखीना विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि ।
प्रापुस्तमेक निरुपाख्यरूप ब्रह्मेव चेतासि यतव्रतानाम् ॥ नैo ३-२-३ ।

यहाँ पर दिव्य हस विभाव है। दमयन्ती तथा उसकी सखिया का हसावलोकनादि अनुभाव हैं। विस्मय भाव व्यग्य है।

भीम के अन्त पुर म अन्तर्हित अवस्था मे भ्रमण करते हुए नल के चक्रवर्ती-लक्षणो से युक्त पदचिन्हो को देखने, अपने रत्नो एव मणिमय भूमि मे नल का प्रतिबिम्ब देखने तथा अन्तर्हित नल से टकराकर गेंद के मध्यभाग मे ही भूमि पर गिर जाने से उत्पन्न भीम के अन्त पुर की सुन्दरियो का आश्चर्य भी विस्मय भाव की आस्वाद्य व्यजना करता है। नैo ६-३६-६३।

इसी प्रकार नल के घोडे, नल के उपवन मे स्थित तडाग, हस की गति, विदर्भ नगरी, तथा स्वयवर मे उपस्थित राजाओ के प्रभाव का वर्णनआदि भी विस्मयाभिव्यजक हैं।

नल का दूर से ही केवल चुल्लू भर पानी फेंककर दमयन्ती की सखियों को पूर्णतया भिगो देना भी विस्मय जनक है। नैo २०-१२६-१२९।

निर्वेद भाव

निर्वेद नामक भाव दरिद्रता, व्याधि, अपमान, अधिक्षेप, आक्रुष्ट, क्रोध, ताडन, इष्टजनवियोग तथा तत्त्वज्ञानादि विभावों एव रुदन, नि श्वसित, उच्छ्वसित तथा सम्प्रधारणादि अनुभावों से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५६।

भरत न तत्त्वज्ञान को निर्वेद का विभाव स्वीकार करते हुए भी उसकी उत्पत्ति स्त्री तथा नीच प्राणियो मे ही स्वीकार की है

तत्रनिर्वेदो नाम—समुत्पद्यते स्त्रीनीचकुसत्वानाम्। ना० शा० पृ० ३५६।

परन्तु तत्त्वज्ञान-जनित निर्वेद की उत्पत्ति उत्तम प्रकृति म ही हो सकती है इसम कोई सदह नही किया जा सकता। पडितराज न उत्तम प्रकृति मे निर्वेद की उत्पत्ति स्वीकार ही की है

उत्तमेषु तत्त्वज्ञानादिभिजनिता विषयविद्वेषाख्या, रोदनदीर्घनिश्वासदीनमुखतादिकारिणी चित्तवृत्तिर्निर्वेद। र० ग० पृ० ३३१।

नल भीम के अन्त पुर म दमयन्ती को खोजता हुआ अन्तर्हित अवस्था मे भ्रमण कर रहा था। वहा जब उसकी आखो के सामने किसी स्त्री के कोई गुह्याग खुल जाते है तो वह इतना परेशान सा होने लगता है

पश्यन् स तस्मिन् मरुतापि तन्व्या स्तनौ परिस्प्रष्टुमिवास्तवस्त्रौ।
अशान्तपक्षान्तमृगाङ्कभास्य दधार निर्यन्वलिन विलक्ष ॥
दोर्मूलमालोक्य कच रुरुत्सोम्तत कुचौ तावनुलेपयन्त्या।
नाभीमथैष श्लथवाससोऽनु मिमील दिक्षु क्रमकृष्टचक्षु ॥ नै० ६-१८,२०।

अन्त पुर के इन दृश्यो से अपनी रक्षा करन का उपाय उसके पास एक यही था कि वह एस अवसरो पर अपने नेत्र बन्द कर ले। परन्तु वैसा करना नल के लिए और भी अधिक आपत्ति खडी कर देता है

मीलन्न शेकेऽभिमुखागताभ्या धर्तुं निपीडय स्तनमान्तराभ्याम्।
स्वागायपतो विजया स पश्चात्सुमगसगोत्पुलके पुनस्त ॥ नै० ६ २१।

अन्त म वह वहा म हटकर एक चतुष्पथ पर आ जाता है। परन्तु वहा पर भी उसे उन दृश्यो का सामना करना पडता है

उद्वर्तयन्त्या हृदये निपत्य नृपस्य दृष्टिर्न्यवृनद् द्रुतैव।
वियोगिवैरात् कुचयोर्नखाङ्कैः रर्धेन्दुलीलैर्गलहस्तितेव ॥ नै० ६-२५।

जब वहा पर खडा होकर वह अपनी आख बन्द कर लेता है तो वहा पर भी उसकी वही दशा हो जाती है जो अन्त पुर मे हुई थी। नै० ६-२७-२८।

यहाँ पर अधनग्न स्त्रिया का दशन तथा उनसे टकराना आदि विभाव हैं। नलगत सतापादि अनुभाव हैं। निर्वेद भाव व्यग्य है।

सखियो के द्वारा अपन जीवन की रक्षा करने के लिए सावधान किए जाने पर

दमयन्ती का अपने जीवन के प्रति अनास्था प्रकट करना भी निर्वेद भाव की व्यंजना करता है

अकरुणादव सूनशरादमून् सहजयापदि धीरतयात्मन ।
असव एव ममाद्य विरोधिन कथमरीन् सखि! रक्षितुमात्थ माम्॥
हितगिर न शृणोषि किमाश्रव प्रसभमप्यव जीवितमात्मन ।
सखि! हिता यदि मे भवमीदृशी मदरिमिच्छसि या मम जीवितम्।
नै० ४-१०२-१०३।

ग्लानि भाव

ग्लानि भाव वान्त, विरक्त, व्याधि, तप, नियम, उपवास, मनस्ताप, काम तथा मद्य सेवन, व्यायाम, मार्ग-गमन, क्षुधा, पिपासा तथा निद्राभगादि विभावो एव वाक्य, नयन कपोल तथा उदरक्षमता, मन्द गमन, वेपन, अनुत्साह, तनुगात्रता, वैवर्ण्य एव स्वरभेदादि अनुभावों से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५८।

अपने से अधिक सौंदर्यशाली नल को दमयन्ती के स्वयवर में भाग लेने के लिए जाता हुआ देखकर इन्द्र के अतिरिक्त अन्य देवताओं को दमयन्ती की प्राप्ति के विषय में सन्देह हो जाता है और वे सतप्त होकर विभिन्न प्रकार की कल्पनायें करने लगते हैं

नैव न प्रियतमाभयवयामी यद्यमु न वृणुते वृणुते वा ।
एकतो हि विरमुमगुणज्ञामन्यत कथमद प्रतिलम्भ ॥
मा वरिष्यति तदा यदि मत्तो वेद नैयमियदस्य महत्त्वम्।
ईदृशी च कथमाकलयित्री मद्विशेषमपरान्नृपपुत्री ॥
नैषधे वत वृत दमयन्त्या व्रीडितो हि न वहिर्भवितास्मि।
स्वा ग्रहेऽपि वनिता कथमास्य हीनिमीलि खलु दर्शयिताहे ॥
नै० ५-६६-७१।

और अन्त में वे किंकर्तव्य-विमूढ़ से बनकर एक दूसरे का मुख देखने लगते हैं
इत्यवेक्ष्य मनसाभिविधेय किंचन त्रिदिवबुद्धी बुबुधे न।
नावनायकमपास्य तमिके मा स्म पश्यति परस्परमास्यम्॥ नै० ५-७२।

यमादि देवताओं का उपयुक्त मनस्ताप तथा किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर एक दूसरे का मुख देखने लगना ग्लानि भाव की व्यंजना करता है।

इसी प्रकार कामदेव को उपालम्भ देती हुई दमयन्ती के मुख का शुष्क हो जाना तथा अधिक बोलने में असमर्थ हो जाना भी ग्लानि भाव की मार्मिक व्यंजना करता है

इति वियद्वचमेव भृश प्रियाधरपिपासु तदाननमाशु तत्।
अजनि पांसुलमप्रियवाग्ज्वलन्मदनशोषणबाणहतेरिव ॥

प्रियसखीनिवहेन महाय सा व्यरचयद्गिरमर्धसमस्यया।
हृदयमर्मणि मन्मथसायकैः क्षतनमा बहु भाषितुमक्षमा॥
नै० ४-१००-१०१।

शङ्का भाव

शङ्का भाव चौय, अभिग्रहण, नृपापराध तथा पापकर्मकरणादि विभावो एव चतुर्दिक् अवलोकन अवगुण्ठन, मुखशोष, जिह्वापरिलेहन, मुख-वैवर्ण्य, स्वरभेद, कम्प, कण्ठोष्ठशुष्कता तथा आयासादि अनुभावो के सयोग से व्यक्त होता है।
ना० शा० पृ० ३५७-३५८।

नल भीम के अन्त पुर मे प्रवेश कर चुका था। उसी समय द्वारपाल किसी व्यक्ति को टोक देता है। अनएव अन्तर्हित होते हुए भी नल सशकित होकर देखने लगता है

अथ क इत्यन्यनिवारकाणा गिरा विभुर्द्वारि विभुज्य कण्ठम्।
दृश ददौ विस्मयनिस्तरगा त्रिदशिनायामपि राजसिह ॥ नै० ६-१२।

यहा पर द्वारपाल की वाणी विभाव है। अन्तर्हित नल का कण्ठ घुमाकर उसी ओर देखना अनुभाव है। शङ्का भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार शारी के मुख से सखियो के द्वारा सिखाया गया वाक्य सुनकर नल को यह आशङ्का हो जाती है कि वह देख लिया गया है। नल की यह आशङ्का भी नलगत शङ्का भाव की व्यजना करती है

एत नर त दमयन्ति ! पश्य त्यजाभिलिप्यालिकुलप्रबोधान्।
श्रुत्वा स नारीकरवर्तिशारीमुखात् स्वमाशङ्कत यत्र दृष्टम्॥ नै० ६-६०।

असूया भाव

असूया भाव अनेक प्रकार के अपराधो द्वेष, दूसरे के ऐश्वर्य, सौभाग्य, मेधा, विद्या तथा लीलादि विभावो एव दोषकथन, गुणोपघात ईर्ष्यापूर्वक अवलोकन, मुखावनमन भ्रुकुटिकरण, अवज्ञान तथा कुत्सनादि अनुभावो के सयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५८।

इन्द्र को दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने के लिए जाता हुआ देखकर इन्द्राणी तथा अन्य अप्सराओ की चित्तवृत्ति असूया भाव से युक्त हो जाती है। इन्द्राणी का मुख नीचा हो जाता है। क्योंकि इन्द्र उस जैसी सुन्दरी को छोडकर एक मानुषी को प्राप्त करने के लिए जा रहा था

मानुषीमनुसरत्यथ पत्यौ स्वभावमवलम्ब्य मघोनी।
खण्डिन निजमसूचयदुच्चैर्माननमरोरुहनत्या॥ नै० ५-४७।

इसी प्रकार रम्भा अप्सरा भी मलिनता-युक्त हो जाती है तथा घृताची लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगती है

यो मघोनि दिवमुच्चरमाणे रम्भया मलिनिमालमलम्भि ।
वर्ण एव स खलूज्ज्वलदस्याः शान्तमन्तरमभाषत भग्या ॥
जीवितेन कृतमप्सरसां तत्प्राणमुक्तिरिह युक्तिमती न ।
इत्यनक्षरमवाचि घृताच्या दीर्घनिःश्वसितनिर्गमनेन ॥ नै० ५-४८-४९ ।

तिलोत्तमा के हाथ से तो चामर ही छूट पड़ता है जब वह देखती है कि इन्द्र दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए उसे छोड़कर जा रहा है

साधु न पतनमेवमितः स्यादित्यभण्यत तिलोत्तमयापि ।
चामरस्य पतनेन कराब्जात्तद्विलोलनचलद्भुजनालात् ॥ नै० ५-५० ।

इसी प्रकार मेनका भी इन्द्र को दमयन्ती की प्राप्ति के लिए आतुर देखकर ज्वरयुक्त हो जाती है

मेनका मनसि तापमुदीतं यत्पिधित्सुरकरोदवहित्थाम् ।
तत्स्फुटं निजहृदः पुटपाके पक्त्रिमस्तिमसृजद् बहिरस्थाम् ॥ नै० ५-५१ ।

उर्वशी तो इन्द्र के स्नेह की परिसमाप्ति की आशंका से जड़ ही बन जाती है और कोई अन्य अप्सरा छिपे स्वर में इन्द्र की निन्दा तक करने लगती है

उर्वशी गुणवशीकृतविश्वा तत्क्षणस्तिमितभावनिभेन ।
शक्रसौहृदसमापनसीम्नि स्तम्भकार्यमुपपद्यपूर्वं ॥
कापि कामपि बभाण बुभुत्सुं शृण्वति त्रिदशभर्तरि किंचित् ।
एष कश्यपसुतामभिगन्ता पश्य कश्यपसुतः शतयज्ञः ॥ नै० ५-५२-५३ ।

उपर्युक्त प्रकरण में इन्द्र का दमयन्ती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए उद्यत हो जाना विभाव है । इन्द्राणी आदि अप्सराओं के मुखावनमन, मलिनता-प्राप्ति, निःश्वास, चामर पतन, दाह, स्तम्भ तथा कुत्सनादि व्यापार अनुभाव हैं । असूया भाव व्यंग्य है ।

स्वयंवर-मण्डप में नल के प्रवेश करते ही अन्य राजाओं की कान्ति मलिन हो जाती है और उनकी भ्रकुटियों में बल पड़ जाते हैं

धृताधरामौ चलितद्युशोभा तस्मिन् सभां चुम्बति राजचन्द्रे ।
गता वनाक्ष्णांविषयं विहाय क्व क्षत्रनक्षत्रकुलस्य कान्तिः ॥
द्रागदृष्ट्य क्षोणिभुजामभुष्मिन्नाश्वयपर्यत्नकिना निपेतुः ।
अनन्तरं दन्तुरितभ्रुवा तु नितान्तमीर्ष्याकलुषा दृगाली ॥
नै० १०-३९-४० ।

ईर्ष्यालु राजाओं में कुछ तो नल की प्रशंसा करने के व्याज से उसकी निन्दा करने लगते हैं तथा कुछ राजा नल के पास में ही बैठे हुए नल-रूप-धारी देवताओं की ओर संकेत कर उसके अद्वितीय सौंदर्य को चुनौती देते हुए अपनी

ईर्ष्या को प्रकट करने लगते हैं

सुधांशुरेष प्रथमो भुवीनि स्मरो द्वितीय किमसावितीमम् ।
दस्रस्तृतीयोऽयमिति क्षितीशा स्तुतिच्छलान्मत्सरिणो निनिन्दु ॥
मायानलोदाहरणान्मिथस्तैरूचे समा सन्त्यमुना कियन्त ।
आत्मापकर्षे मति मन्मराणा द्विष परम्परर्धनया समाधि ॥

नै० १०-४१-४२।

यहाँ पर सौंदयशाली नल विभाव है। नल की अपेक्षा सौदर्य म न्यून राजाओं की ईर्ष्या तथा उनके द्वारा की गई नल की निन्दा अनुभाव है। असूया भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार दमयन्ती के द्वारा नल का वरण कर लिए जाने के उपरान्त अन्य राजाओ के परिचारको के द्वारा की गई नल की निन्दा असूया भाव की व्यजना करती है

त्रपाम्य न स्यात् मदसि स्त्रियान्वयान कुतोऽनिरूप मुखभाजन जन ।
अमूदृशी तत्कविबन्दिवर्णनैरवाक्कृना राजकरञ्जिलोकवाक् ॥

नै० १५-३।

मद भाव

मद भाव मद्योपयोगादि विभावा तथा विभिन्न प्रकार की प्रकृतिया के अनुसार गान, रुदन, हास, परुषवचन-कथन तथा शयनादि अनुभावो के सयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३५६।

भरत ने मद भाव के अनुभावो को परम्परा-प्राप्त आर्याओ के अनुसार ही स्वीकार कर लिया है। उन्होंने स्वय पृथक रूप से इसके अनुभावो का निर्देश नही किया है। आर्याओ के अनुसार उत्तम प्रकृति मद भाव से युक्त होने पर शयन करता है, मध्यम प्रकृति हँसता तथा गाता है एव अधम प्रकृति रोता तथा कठोर वचन कहता है

उत्तमसत्त्व शेते हसति च गायति च मध्यमप्रकृति ।
परुषवचनाभिधायी कश्चित्कश्चित्तथा स्वपिति ॥ ना० शा० पृ० ३५६ ।

दमयन्ती-स्वयवर सम्पन्न हो जाने के उपरान्त देवता स्वर्ग को जा रहे थे। मार्ग मे कलि से उनकी भेंट हो जाती है। मत्त कलि अवज्ञापूर्वक देवताओं के पास आता है तथा उसी स्वर मे देवताओं की कुशल-मगल पूछने लगता है

विमुखान् द्रष्टुमप्येन जनगम इव द्विजान् ।
एष मत्त सहेल तानुपेत्य समभाषत ॥
स्वस्ति वास्तोष्पते! तुभ्य शिखिन्नस्ति न खिन्नता।
सखे! काल सुखेनासि पाशहस्त! मुदस्तव ॥ नै० १७-११२-११३।

कलि के द्वारा किया गया अपना गन्तव्य-निवेदन भी कम दम्भपूर्ण नही है

स्वयंवरमहं भैमीवरणाय त्वरामहे ।
तदस्मानन्नुमन्यध्वमध्वन तत्र धाविने ॥ नै० १७-११४।

यहाँ पर अधम स्वभावोचित कलि की मत्तता विभाव है तथा कलि के द्वारा अवज्ञा-मिश्रित स्वर में पूछा गया देवताओं का कुशल-प्रश्नादि अनुभाव है। कलिगत मद भाव व्यंग्य है।

श्रम भाव

श्रम भाव मार्ग-गमन तथा व्यायामादि विभावों एवं गात्रपरिमर्दन, संवाहन, निःश्वसित, विजृम्भित, मन्द पदोत्क्षेपण, नयन तथा वदन-विकूणन एवं सीत्कारादि अनुभावों के संयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३६०।

दमयन्ती के भवन को खोजते हुए अन्तर्हित नल का महलों की उपत्यकाओं में विश्राम करना तथा अन्त में येन केन प्रकारेण दमयन्ती के भवन में पहुँच पाना श्रम भाव की व्यंजना करता है

भ्रमन्नमुष्यामुपकारिकायामायस्य भैमीविरहात्क्षयीयान् ।
असौ मुहुः सौधपरम्पराणां व्यधत्त विश्रान्तिमुपत्यकासु ॥
पद्भ्यां नृपः संचरमाण एवं चिरं परिभ्रम्य कथं कथंचित् ।
विदर्भराजप्रभवाभिरामं प्रासादमभ्रंकषमाससाद ॥ नै० ६-३६, ५७।

आलस्य भाव

आलस्य भाव खेद, व्याधि, गर्भ, स्वभाव, श्रम तथा अतितृप्ति आदि विभावों एवं कार्यानभिलाष, शयन, आसन, निद्रा, तन्द्रा, आदि अनुभावों के संयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३६१।

सुरत खेद से श्रान्त हंस का अपने पंखों में अपना शिर ढककर एक पैर पर खड़े हो जाना तथा शयन करने लगना आलस्य भाव की व्यंजना करता है

अथावलम्ब्य क्षणमेकपादिकां तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः ।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेण रतिक्लमालसः ॥

नै० १-१२१।

दैन्य भाव

दैन्य भाव की व्यंजना दुर्गति तथा मनस्तापादि विभावों एवं अधृति, शिरपीड़ा, गात्रगौरव, अन्यमनस्कता तथा मृजापरिवर्जनादि अनुभावों के संयोग से होती है। ना० शा० पृ० ३६१।

दमयन्ती जब देखती है कि हंस उसकी नल-प्राप्ति-विषयक अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए उद्यत नहीं हो रहा है तो वह हंस की दीनता-मिश्रित स्वर में

प्राथना करने लगती है। उसका कहना है कि यद्यपि वह हस का प्रत्युपकारादि कर अनृण होने के योग्य नही है। परन्तु एक सज्जन होते हुए नि स्वार्थ भाव मे क्या वह उसका यह कार्य नही करेगा ?

दस्वारमजीव त्वयि जीवदेऽपि शुध्यामि जीवाधिकदे तु केन।
विधेहि त मा त्वदृणेष्वशाढ्ममुद्रदारिद्र यममुद्रमग्नाम् ॥
क्रीणीस्व मज्जीवितमेव पण्यमन्यन्न चेद्वस्तु तदस्तु पुण्यम्।
जीवेशदातयदि ते न दातु यशोऽपि तावत्प्रभवामि गातुम् ॥

नै० ३-८६-८७।

यहा पर नल वियोग विभाव है। दमयन्ती का नल समागम प्राप्त करने के लिए तथा हस को दूत बनाकर नल के पास भेजने के लिए हस की प्राथना करना अनुभाव है। दैन्य भाव व्यग्य है।

चिन्ता भाव

चिन्ता भाव ऐश्वय-भ्र श, इष्टद्रव्यापहार तथा दारिद्र यादि विभावो एव नि श्वसित उच्छ्वसित, सताप, ध्यान अधोमुखचि तन तथा कृशता आदि अनुभावो के सयोग से व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३६१।

इन्द्रादि देवताओ को याचना करता हुआ देखकर नल यह सोचने लगता है कि उसके पास ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसे देवता उससे मागना चाहते ह तथा जो उन्हे दुलभ है ?

दुलभ दिगधिपै किममीभिस्तादृश कथमहो मदधीनम्।
ईदृश मनसिकृत्य विरोध नैषधेन समशायि चिराय ॥
जीवितावधि वनीपकमात्रैर्याच्यमानमखिलै सुलभ यत्।
अर्थिने परिवृढाय सुराणा किं वितीय परितुष्यतु चेत ॥ नै० ५-८०-८१।

यहा पर इन्द्रादि देवताओ को याचना मे देने योग्य वस्तु के अभाव की उहा विभाव है। देय वस्तु का चि तन अनुभाव है। नलगत चिन्ता भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार हम के मुख से नल कथा-श्रवण करने के अनन्तर उत्पन्न दमयन्तीगत सताप चिन्ता भाव की व्यजना करता है

अदतनुज्वरभाक् तनुते स्म सा प्रियकथासरसीरसमज्जनम्।
सपदि तस्य चिरान्तरतापिनी परिणतिर्विषमा समपद्यत ॥ नै० ४-२।

मोह भाव

मोह भाव दैवोपघात, व्यसन, अभिघात, व्याधि, भय, आवेग तथा पूर्ववैरानुस्मरणादि विभावो से उत्पन्न होता है। अचैतन्यता, भ्रमण, पतन, आघूणन तथा अदशनादि इसके अनुभाव होते है। ना० शा० पृ० ३६२।

दमयन्ती सखी से अपने हृदय के अनलङ्कृत हो जाने की बात सुनकर सखी के मन्तव्य का अवधारण नही कर पाती और अपने हृदय मे नल के निकल जाने की सम्भावना मे मूर्च्छित हो जाती है

स्फुटति हारमणौ मदनोष्मणा हृदयमप्यनलङ्कृतमद्य ते ।
सखि! हतास्मि तदा यदि हृद्यपि प्रियतम स मम व्यवधापित ॥
इदमुदीर्य तदैव मुमूर्छ सा मनसि मूर्च्छितमन्मथपावका ।
क्व सहतामवलम्बलवच्छिदामनुपपत्तिमतीमतिदु खिता ॥

नै० ४-१०६-११० ।

यहाँ पर नल-वियोग विभाव है। दमन्ती की मूर्च्छा आदि अनुभाव हैं। मोह भाव व्यग्य है।

इसी प्रकार दमयती की मूर्च्छा से भयभीत भीम के द्वारा अपने मन्त्री तथा वैद्य के द्वारा कहे गए वचनो के मन्तव्य का अवधारण न कर पाना मोह भाव की व्यजना करता है। नै० ८-११७।

स्मृति भाव

स्मृति भाव स्वास्थ्य, जघन्य रात्रि, निद्राच्छेद, समान दर्शन, उदाहरण, चिन्ताभ्यास आदि विभावों तथा शिरकम्पन, अवलोकन एव भ्रूसमुन्नयनादि अनुभावों के सयोग स व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३६२ ।

देवताओ की आराधना करने के उपरान्त दमयन्ती की बुद्धि निर्मल हो जाती है और उसके उपरान्त जब वह सरस्वती की उक्तियों का स्मरण करती है तो उसे उन उक्तियो का रहस्य ज्ञान हो जाता है

प्रसादमासाद्य सुरै कृत सा सस्मार सारस्वतसूक्तिमुष्टे ।
देवा हि नान्यद्वितरन्ति किन्तु प्रमद्य मे साधु धिय ददन्ते ॥
शेप नल प्रत्यमरेण गाथा या या समर्था खलु येन येन ।
ता ता तदर्थेन सहलगन्ती तदा विशेप प्रतिसन्दधे सा ॥

नै० १४-९-१० ।

दमयन्ती के द्वारा किया गया सरस्वती के वचनो का उपयुक्त चिन्तन तथा उन वचनो का रहस्यावधारणादि स्मृति भाव की व्यजना करते हैं।

धृति भाव

धृति भाव शौर्य विज्ञान, श्रुति, विभव, शौचाचार, गुरुभक्ति, मनोरथ से अधिक अर्थलाभ तथा क्रीडा आदि विभावो से उत्पन्न होता है। प्राप्त विषयो का उपभोग, अप्राप्त, व्यतीत, उपहृत तथा विनष्ट विषयो का अननुशोचन आदि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३६३ ।

इन्द्र-दूती को दमयन्ती के द्वारा दिया गया प्रत्युत्तर दमयन्तीगत धृति भाव की विशद व्यजना करता है। इन्द्र की प्रशसा करने वाली दूती से वह कहती है कि वह अथवा अन्य साधारण व्यक्ति इन्द्र की प्रशसा नही कर सकता और न कोई व्यक्ति इन्द्र की आज्ञा का उल्लघन ही कर सकता है। परन्तु इन्द्र ने मुझे गौरव प्रदान कर अपनी जिस कृपा का प्रदर्शन किया है वह कृपा मुझे और भी अधिक तप करने के लिये प्रेरित करती है

स्तुती मघोनस्त्यज साहसिक्य वक्तु कियत्तद्यदि वेद वेद ।
वक्ष्योनर साक्षिणि हृत्सु नृणामज्ञानविज्ञापि ममापि तस्मिन् ॥
आज्ञा तदीयामनु कस्य नाम नकार पारुष्यमुपैतु जिह्वा ।
प्रह्वा तु ता मूर्ध्नि निधाय माला वालापराध्यामि विशेषवाग्भि ॥
तप फलत्वेन हर कृपेयमिम तपस्येव जन नियुङ्क्ते ।
भवत्युपाय प्रति हि प्रवृत्तावुपेयमाधुर्यमधैर्यमज्जि ॥ नै० ६-६१-६३।

इन्द्र के प्रति आदर प्रदर्शित करने के अनन्तर वह दूती से कहती है कि इन्द्र का सदेश प्राप्त होने से पूर्व ही वह मन मे नल का वरण कर चुकी थी तथा स्वर्ग मे सुख भोगने की अपेक्षा वह कर्मभूमि भारत मे रहना अधिक श्रेष्ठ समझती है

अश्रौषमिन्द्रादरिणी गिरस्ते सनीत्रनानिप्रतिलोमनीत्रा ।
स्व प्रागहं प्रादिपि नामराय किं नाम तस्मै मनसा नराय ॥
तस्मिन् विमृश्यैव वृते हृदैषा नैन्द्री दया मामनुतापिकाभूत् ।
निर्वानुकाम भवसभवाना धीर सुखानामवधीरणेव ॥
वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्या स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु ।
तत्रास्मि पत्युर्वरिवस्ययाह शर्मोर्मिकिर्मीरितधर्मलिप्सु ॥
स्वर्गं सता शर्म पर न धर्मा भवन्ति भूमाविह तच्च त च ।
इष्टयापि तुष्टि मुकुरा सुराणा कथ विहाय त्रयमेकमीहे ? ॥

नै० ६-९५-९८।

यहा पर दमयन्ती के द्वारा किया गया नल का मानसिक वरण तथा भारतभूमि मे उत्पत्ति आदि विभाव हैं। इन्द्र के साथ परिणय होने के प्रति अलाभ तथा स्वर्ग मे निवास के प्रति व्यक्त अनिच्छा आदि अनुभाव हैं। दमयन्तीगत धृति भाव व्यग्य है। दमयन्ती के माध्यम से भारतभूमि के प्रति व्यक्त श्रीहर्ष का उपर्युक्त देश प्रेम सस्कृत साहित्य की अनुपम निधि है।

व्रीडा भाव

व्रीडा भाव गुरु-व्यतिक्रमण, अवज्ञान, प्रतिज्ञात विषय के अनिर्वाह तथा पश्चात्ताप आदि विभावो से उत्पन्न होता है। निगूढ वदन, अधोमुखविचिन्तन,

उर्वी-लेखन, वस्त्र तथा अंगुलीयक-स्पर्शन एवं नखनिकृन्तनादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३६३।

पण्डितराज ने स्त्रियों में व्रीडा भाव की उत्पत्ति पुरुषमुखावलोकनादि से स्वीकार की है

स्त्रीणां पुरुषमुखावलोकनादेः—व्रीडा। र० गं० पृ० २७६।

नल को पहचान लेने के उपरान्त भी दमयन्ती सहज में ही उनके कण्ठ में वरमाला नहीं डाल पाती। वह नल की ओर देखने का प्रयत्न करती है परन्तु दृष्टि मध्य मार्ग में ही परावर्तित हो जाती है

कर स्रजा सज्जतरस्तदीय प्रियो मुखं मन्तु विरराम भूयः।
प्रियाननस्यार्धपथं ययौ च प्रत्याययौ चातिचलः कटाक्षः॥ नै० १४-२८।

येन केन प्रकारेण नल की मुखश्री का अवलोकन कर लेने पर भी वह उसमें पूर्णतया अवगाहन नहीं कर पाती। और जब सरस्वती उसमें अपना आशय स्पष्ट शब्दों में कहने के लिए आग्रह करती है तो वह नल का आधा नाम उच्चारण करके ही चुप रह जाती है

कथं कथञ्चिन्निपपौ स्वयम्य कृत्वाम्यपन्ना दरवीक्षितश्रिः।
वाग्देवतायाः वदनं दुविम्बं त्रपावती साकूतं सामिदृष्टम्॥
अजानतीवदमवाचदनामाकूनमस्यास्तदवस्य दर्वा।
भावस्त्वपोमिप्रतिसीरया ते न दीयते लक्षयितुं ममापि॥
देव्या धृतौ नति नलार्धनाम्नि गृहीत एव त्रपया निपीता।
अथाङ्गुलीरङ्गुलिभिः शसन्ती दूरं शिरः सा नमयाञ्चकार॥ नै० १४-३०-३२।

यहां पर नलमुखावलोकनादि विभाव हैं। दमयन्ती का अधोवीक्षण तथा नल का अर्ध नाम-ग्रहणादि अनुभाव हैं। व्रीडा भाव व्यंग्य है।

चपलता भाव

चपलता भाव की उत्पत्ति राग, द्वेष, मात्सर्य, अमर्ष, ईर्ष्या तथा प्रतिकूलता आदि विभावों से होती है। वाक्पारुष्य, निर्भर्त्सन, वध, बन्ध, सम्प्रहार तथा ताडनादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३६४।

नेपाल तथा मलय पर्वत के राजाओं का वर्णन करती हुई सरस्वती को दमयन्ती की सखियां दमयन्ती की उनके प्रति विरक्ति देखकर बीच में ही उपहास मिश्रित स्वर में टोक देती हैं। फलतः उन शासकों के सेवक बौखला उठते हैं। क्योंकि पहले भी एक दासी पाण्ड्य नरेश का वर्णन करती हुई सरस्वती को अपने अप्रस्तुत भाषण में उलझा चुकी थी

दमस्वसुश्चित्तमवेत्य हासिका जगाद देवीं कियदस्य वक्ष्यसि।
भण प्रभूते जगति स्थितं गुणैरिहाप्यते सुक्टवासयातना॥

ब्रवीति दामीट् क्मिप्यसगन ततोऽपि नीचैयमनिप्रगल्भते ।
अहो मभा मा।ुरिनीरिण क्रुधा न्यषेधदेतत् क्षितिपानुगानुज ।।
वयम्ययाकूतविदा दमस्वसु स्मित वितन्याभिदधेऽथ भारती ।
इत परेषामिपि पश्य याचता भव मुखेन स्वनिवेदन वगम् ।।
कृताव देवी वचनाधिकारिणी त्वमुत्तर दासि! ददामि का सती ।
इतीरिणम्न नृपदारिपार्श्विकान् स्वभतु रेव भ्रकुटिर्यवर्तयत् ।।
नै० १२-५०-५१,५६-६० ।

यहाँ पर दासियों का राजाओं के प्रतिकूल भाषण विभाव है। राजाओं के अनुचरों का क्रुद्ध होकर कठोर वचनों का प्रयोग करने लगना अनुभाव है। चपलता भाव व्यंग्य है।

हर्ष भाव

हर्ष भाव मनोरथ लाभ, इष्टजन समागम, मन परिताप, देव, गुरु, नृप तथा भर्तृ-प्रसाद, भोजन, आच्छादन, लाभ तथा उपभोगादि विभावों एवं नेत्र वदन-प्रसाद, प्रिय भाषण, आलिंगन, कंटकित, पुलकित, अश्रु तथा स्वेदादि अनुभावों के सयोग मे व्यक्त होता है। ना० शा० पृ० ३६४।

दमयन्ती के द्वारा किये गये इन्द्र-दूती के सदेश का निराकरण सुनने से उत्पन्न नलगत आनन्द हर्ष भाव की व्यंजना करता है

श्रवणपुटयुगेन स्वेन साधूपनीत
 दिगधिपकृपयाप्तादीदृश सविधानात् ।
जलभृत मधुबालारागवागुत्थमित्थ
 निपधजनपदेन्द्र पातुमानन्दसान्द्रम् ।। नै० ६-११२ ।

इसी प्रकार उन्माद तथा पश्चात्ताप के उपरान्त नल की तटस्थ सम्मति सुनने से उत्पन्न दमयन्ती का उल्लास हर्ष भाव की व्यंजना करता है

इतीरितैर्नैषधसूनृतामृतैर्विदर्भजन्मा भृशमुल्ललास सा ।
ऋतोरधिश्री शिशिरानुजन्मन पिकस्वरैद्रु रविकस्वरैर्यथा ।। नै० ९-१५६ ।

आवेग भाव

आवेग भाव उत्पात, वात, वर्षा, अग्नि, कुंजरोद्भ्रमण, प्रियाप्रियश्रवण, व्यसन तथा अभिघातादि विभावों से उत्पन्न होता है। भरत ने उपर्युक्त सभी विभावों से उत्पन्न आवेग के पृथक् पृथक् अनुभावों का निर्देश किया है। ना० शा० पृ० ३६५।

भीम के दूत के मुख से भीम का सदेश सुनकर नल के द्वारा दिया गया दूत को दान तथा भीम के सदेश का प्रत्युत्तर प्रियश्रवणजन्य नलगत आवेग भाव की व्यंजना करता है

आलोकन, मुखशोष, सृक्परिलेहन, निद्रा, नि श्वसित तथा ध्यान आदि इसके अनु-भाव होते हैं। भरत न प्रथम पाच अनुभावों की उत्तम तथा अन्तिम अनुभावों की अधम पात्रा मे सत्ता स्वीकार की है। ना० शा० पृ० ३६७।

अनेक मकरपविकरपा के उपरान्त भी पाच तुल्याकृतिधारी व्यक्तियो मे वास्तविक नल का पहचान पाने मे समर्थ न हो पाने मे उत्पन्न दमयन्ती-मुखगत मलिनता विषाद भाव की व्यजना करती है

इति मनसि विकल्पानुच्चैः मन्यजन्ती
क्वचिदपि दमयन्ती निर्णय नाससाद।
नुखमथ परितापास्कन्दिनानन्दमस्या-
मिहिरविरचिताकम्कदमिन्दु निनिन्द॥ नै० १३-५५।

यहा पर पाच समानाकृतिधारी व्यक्तियो के उपस्थित होन से दमयन्ती का नल को न पहचान पाना विभाव है। उसके द्वारा नल को पहचानने के लिए किये गये प्रयत्न तथा उन प्रयत्नो की निष्फलता मे उत्पन्न वैमनस्यादि अनुभाव हैं। विषाद भाव व्यग्य है।

औत्सुक्य भाव

औत्सुक्य भाव इष्टजन-वियोगानुस्मरण तथा उद्यान-दर्शनादि विभावों से उत्पन्न होता है। दीर्घनि श्वास, अधोमुख विचिन्तन, निद्रा, तन्द्रा तथा शयनाभिला-षादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३६७।

पण्डितराज न त्वरा को भी औत्सुक्य का अनुभाव स्वीकार किया है

ज ग्रुनैवास्य लाभो ममास्तु इतीच्छा औत्सुक्यम्। इष्टविरहादिरत्र विभाव-स्त्वराचिन्तादयोऽनुभावा। र० ग० पृ० ३१८।

उपवन म विहार करने के अनन्तर भी नल आन्तरिक शान्ति का लाभ नहीं कर पाता और दमयन्ती का वियोग उसे खिन्न बनाये रखता है

इतीष्टगन्धाढ्यमटन्नसौ वन पिकोपगीतोऽपि शुकस्तुतोऽपि च।
अविन्दतामोदभर बहिश्चिर विदर्भसुभ्रूविरहेण नान्तरम्॥
नै० १-१०४।

यहा पर दमयन्ती वियोग तथा उद्यान-विहारादि विभाव है। नलगत अशान्ति अनुभाव है। औत्सुक्य भाव व्यग्य है।

दमयन्ती के द्वारा वितरित स्वयवर मे सम्मिलित होन के निमत्रण को स्वीकार कर नल के चले जाने के उपरान्त दमयन्ती को एक रात्रि व्यतीत कर पाना भी दुष्कर हो जाता है

इत्थमन्या प्रियमाप्तुमुद्धुरप्रियो धारा सृजन्त्या स्या-
न्नम्रोन्नम्रकपोलपालिपुलकर्वैनस्वनीरश्रुण।

चत्वार प्रहग स्मरार्तिभिरभूत् सापि क्षपा दु क्षपा
तत्तस्या कृपयाखिलैव विधिना रात्रिस्त्रियामा कृता ।। नै० ६-१५८ ।

यहा पर नल-वियोग विभाव है। दमयन्तीगत अश्रु तथा पुलक एव कालातिक्रमणासहिष्णुता आदि अनुभाव है। दमयन्तीगत औत्सुक्य भाव व्यग्य है।

निद्रा भाव

दुर्बलता, श्रम, क्लम, मद, आलस्य, चिन्ता तथा अत्याहारादि विभाव निद्रा भाव की उत्पत्ति करते हैं। वदनगौरव, शरीरावलोकन, नेत्रघूर्णन, गात्रविजृम्भण, मान्द्य, उच्छ्वसित, सन्नगात्रता तथा अक्षिनिमीलनादि इसके अनुभाव होते हैं।
ना० शा० पृ० ३६७ ।

नल के प्रेरित करने पर दमयन्ती के द्वारा किया गया नेत्र-निमीलन निद्राभाव की व्यजना करता है

सगमय्य विरहेऽस्मि जीविका यैव वामय रताय तत्क्षणम् ।
हन्त[1] दन्य इति रुष्टयावयोर्निद्रयात्र किमुनापपद्यते ।।
इदश निगदति प्रिय दृश सम्मदात् कियदिय न्यमीलयत् ।
प्रातरालपति कोकिले कल जागरादिव निश कुमुद्वती ।। नै० १८-१५०-१५१ ।

अपस्मार भाव

अपस्मार भाव देव यक्ष, नाग, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाचादि के ग्रहण अथवा स्मरण उच्छिष्ट अथवा शून्यागार सेवन, अशुचि तथा व्याधि आदि विभावों स उत्पन्न होता है। स्फुरित, नि श्वसित, उत्कम्पित, धावन, पतन, स्वेद, स्तम्भ, वदनफेन तथा जिह्वापरिलेहनादि इसके अनुभाव होते हैं।
ना० शा० पृ० ३६८ ।

नलवियोग-जन्य दमयन्तीगत निश्वासाधिक्य तथा ज्वर अपस्मार भाव की व्यजना करते है

स्मरकृता हृदयस्य मुहुर्दशा बहु वदति नव नि श्वसितानिल ।
व्यधित वासमि कम्पमद श्रित त्रमति क मति नाश्रयबाधन ।।
करपदाननलोचननामभि शतदलै सुतनोर्विरहज्वर ।
रविमहो बहु पीतचर चिरादनिशतापमिषादुदमृज्यत ।। नै० ४-१६-१७ ।

इसी प्रकार दमयन्ती के शिविका-वाहकों का सर्पों को फुफकारता हुआ देखकर हाहाकार करते लगना भी अपस्माराभिव्यजक है

तद्दर्शिभि स्ववरणे फणिभिर्भिनिगरौ-
निश्वस्य तन् किमपिमृष्टमनात्मनीनम् ।
यत्तान् प्रयातुमनसोऽपि विमानवाहा
हा हा प्रतीपपवनाशकुनान्न जग्मु ।। नै० ११-२२ ।

सुप्त भाव

सुप्त भाव निद्राभिभव, विषयोपगमन, मोहन, क्षितितलशयन, प्रमारण तथा अनुकर्षणादि विभावों से उत्पन्न होता है। उच्छ्वसित, सन्नगात्रता, अक्षिनिमीलन, सर्वेन्द्रिय सम्मोहन तथा उत्स्वप्नायितादि इसके अनुभाव होते हैं।

ना० शा० पृ० ३६८।

चिरकाल तक सभोग करने के उपरान्त एक शय्या पर शयन करते हुए नल-दमयन्ती का स्वप्न-दर्शनादि स्वप्न भाव की व्यजना करता है

मिश्रितोरु मिलिताधर मिय स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम्।
तौ ततोऽनुपरिरम्भसम्पुटे पीडना विदधतौ निदद्रतु ॥ नै० १८-१५२।

विबोध भाव

विबोध भाव आहार-विपरिणाम, निद्राच्छेद, स्वप्नान्त, तीव्रशब्द, स्पर्श तथा श्रवण आदि विभावों से उत्पन्न होता है। विजृम्भण, अक्षिपरिमदन तथा-शयन मोक्षणादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३६८।

दमयन्ती शयन कर रही थी। परन्तु जब नल उसकी नीवी पर हाथ रखता है तो वह जाग जाती है और नल का हाथ वहाँ से हटा देती है

नीविसीम्नि निहित म निद्रया मुग्ध्रुवो निशि निषिद्धसविद ।
कम्पित शयमपास यनया दोलनैर्जनितबोधयानया ॥ नै० १८-४६।

यहाँ पर दमयन्ती की नीवी पर नल का हाथ रखना विभाव है। दमयन्ती का जाग जाना तथा नल के हाथ को हटा देना अनुभाव है। विबोध भाव व्यग्य है।

अमर्ष भाव

अमर्ष भाव विद्या, ऐश्वर्य, शौर्य अथवा बलादि की अधिकता से युक्त किसी व्यक्ति के द्वारा किए गये अधिक्षेप अथवा अपमानादि विभावों से उत्पन्न होता है। शिर कम्पन, प्रस्वेदन, अधोमुख विचिन्तन, ध्यान, अध्यवसाय, उपाय अथवा सहाया-न्वेषणादि इसके अनुभाव होते है। ना० शा० पृ० ३६६।

दूत नल के अधिक्षेप-पूर्ण वचनो को सुनकर दमयन्ती का चिरकाल तक मौन बैठा रहना तथा अन्त म नि श्वासो को लेते हुए नल से कठोर वचनो को कहने लगना अमर्ष भाव की व्यजना करता है

चिरादनध्यायमवाड्मुखी मुखे तत स्म मा वामयते दमस्वसा।
कृतायतश्वासविमोक्षणाथ त क्षणाद्बभाषे करुण विचक्षणा ॥
विभिन्दता दुष्कृतिनी मम श्रुति दिगिन्द्रदूर्वाचिकसूचिसञ्चयै ।
प्रयानजीवामिव मा प्रति स्फुट कृत त्वयाप्यनवदूततोचितम् ॥

त्वदास्यनिय मदलीकर्दु यशोमपीमय सलिलपिम्पभागिव ।
श्रुति ममाविश्य भवद्दुरक्षर मृजत्यद कोटवदुत्कटा रज ॥
नै० ९-६१-६३ ।

यहाँ पर उपयुक्त सदभ के पूर्व कहे गए नल के अधिक्षेप-पूर्ण वचन विभाव है। दमयन्ती का नीचे की ओर मुख करके चिरकाल तक मौन बैठा रहना तथा अन्त मे लम्बी-लम्बी श्वासे लेकर नल से कठोर वचन कहने लगना अनुभाव है। अमर्ष भाव व्यग्य है।

अवहित्थ भाव

अवहित्थ भाव लज्जा, भय, अपजय, गौरव तथा कुटिलनादि विभावो से उत्पन्न होता है। अयथा कथन, अवलोकित, कथा-भग तथा कृतक धैर्यादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३७० ।

नल को दमयन्ती-स्वयवर म भाग लेने के लिए जाता हुआ देखकर अन्य देवता तो किंकर्तव्य-विमूढ हो जाते हैं। परन्तु कपट-कुशल इन्द्र नल का कुशल प्रश्न पूछते हुए अपना तथा सभी देवताओं का परिचय बताकर उसस याचना करने का निवेदन करने लगते है

कि विधेयमधुनेति विमुग्ध स्वानुगाननमवेक्ष्य ऋभुक्षा ।
शसति स्म कपटे पटुरुच्चैर्वञ्चन समभिलस्य नलस्य ॥
सवन कुशलभागमि कच्चित्त्व म नैषध इति प्रतिभा न ।
स्वासनार्धसुहृदस्त्वयि रेखा वीरसेननृपतेरिव विद्म ॥
एप नैषध[1] स दण्डभृदेप ज्वालजालजटिल स हुताश ।
यादसा स पतिरेप च शेष शामितारमवगच्छ सुराणाम् ॥
आर्थिनो वयममी समुपेमस्त्वा नलेति फलितार्थमर्हि ।
अध्वन श्रणमपास्य च खेद कुमहे भवति कार्यनिवेदम् ॥ नै० ५-७३-७७ ।

यहाँ पर इन्द्र की कुटिलता विभाव है। इन्द्र के द्वारा पूछा गया नल का कुशल-मगल तथा नल से याचना करने लिए किया गया इन्द्र का मिथ्या निवेदनादि अनुभाव हैं। अवहित्थ भाव व्यग्य है।

उग्रता भाव

उग्रता भाव चौर्य, अभिग्रहण, नृपापराध तथा असत्प्रलापादि विभावो से उत्पन्न होता है। वध, बन्धन, ताडन तथा निभर्त्सनादि इसके अनुभाव होते हैं।
ना० शा० पृ० ३७० ।

कलि के अनर्गल असत्प्रलाप को सुनकर सरस्वती के द्वारा की गई उसकी भर्त्सना उग्रता भाव की व्यजना करती है। कलि देवताओ के सम्मुख दमयन्ती के

अपहरण का प्रस्ताव रखना है तथा मिल-जुलकर उसके साथ भोग करने की देवताओं को राय देना है। सरस्वती उसके इस प्रस्ताव को सहन नहीं कर पाती और वह उसकी भर्त्सना करने लगती है

यतध्वं सहकर्तुं मा पाञ्चाली पाण्डवैरिव ।
सापि पञ्चभिरस्माभिः सविभज्यैव भुज्यताम् ॥
अथापरिवृढा सोढुं मूखता मुखरस्य ताम् ।
चक्रे गिरा शराघातं भारती सारतीव्रगा ॥
कीर्ति भैमी वर चास्मै दातुमेवागमन्नमी ।
न लीढे धीरवैदग्धीं धीरगम्भीरगाहिनी ॥ नै० १७-१३२-१३४।

यहाँ पर कलि का असत् प्रलाप विभाव है। सरस्वती के द्वारा की गई कलि की भर्त्सना अनुभाव है। उग्रता भाव व्यग्य है।

मति भाव

मति भाव की उत्पत्ति शास्त्र-चिन्तन तथा ऊहापोह आदि विभावों से होती है। शिष्योपदेश, अर्थ-विकल्पन तथा संशयच्छेदादि इसके अनुभाव होते है।
नां० शा० पृ० ३७१।

इन्द्रादि देवताओं की आराधना करने के उपरान्त दमयन्ती के द्वारा किया गया सरस्वती के श्लिष्ट वचनों का रहस्यावधारण दमयन्तीगत मति भाव की व्यजना करता है

सा भगिरस्या खलु वाचि कापि यद्भारती मूर्तिमतीयमेव।
श्लिष्टं निगद्यादृत वामवादीन् विशिष्य मे नैषधमप्यवादीत् ॥
जग्रन्थ सेयं मदनुग्रहेण वचःस्रजं स्पष्टयितुं चनत्न ।
द्वे ते नले लम्भयितुं क्षमेन ममैव मोहोऽयमहो महीयान् ॥
श्लिष्यन्ति वाचो यदमूरमुष्या कवित्वशक्ते खलु ते विलासा ।
भूपाललीलां किल लोकपाला समाविशन्ति व्यतिभिदिनोऽपि ॥
त्यागं महेन्द्रादिचतुष्टयस्य किमभ्यनन्दत्तमसूचिनस्य ।
किं प्रेरयामास नते च तस्मा मा सूक्तिरस्या मम कः प्रमोह ॥
नै० १४-१४-१७।

व्याधि भाव

भरत ने वात पित्त-कफज व्याधि अर्थात् ज्वरादिकों के विभिन्न भेदों का निर्देश करते हुए सभी के पृथक् पृथक् अनुभावों का निर्देश किया है। परन्तु उन्होंने विभिन्न व्याधियों के मूल कारणों का निर्देश नहीं किया है। ना० शा० पृ० ३७१।

काव्य में व्याधियों के मूल कारणों का विशेष महत्त्व होता है। क्योंकि

व्याधि के मूल कारण का जब तक ज्ञान न हो तब तक न तो भावानुभूति म तीव्रता ही आ सकती है और न भाव ज्ञान ही सम्यक् रूप से हो सकता है। पंडितराज ने व्याधि भाव के लक्षण में व्याधिजनक कारणों की ओर भी संकेत किया है

रोगविरहादिप्रभवो मनस्तापो व्याधिः । र० गं० पृ० २९८।

भरत ने संगीत तथा सदाह द्विविध ज्वरों का निर्देश करते हुए प्रवेपित तथा उत्कम्पनादि अनुभावों के द्वारा उनका अभिनय करने का निर्देश दिया है।

ना० शा० पृ० ३७१।

श्रीहर्ष ने व्याधि भाव की व्यंजना चतुर्थ सर्ग म विशद रूप से की है। दमयन्ती हंस के मुख से नल के गुणों का श्रवण कर लेने के उपरान्त नल के विरह से संतप्त रहने लगती है

कुसुमचापजतापसमाकुलं कमलकोमलमैक्ष्यत तन्मुखम् ।

अहरहर्वहदभ्यधिकाधिका रविरुचिग्लपितस्य विधोर्विधाम् ॥ नै० ४-६।

शनैः शनैः उसका यह संताप बढ़ने लगता है और स्थायी बन जाता है

करपदाननलोचननामभिः शतदलैः सुतनोर्विरहज्वरः ।

रविमहो बहुपीतचरं चिरादनिशतापमिषादुदसृज्यत ॥ नै० ४-१७।

और उसे संताप का निवारण करने के लिए चन्दन-रज तथा मृणाल का सेवन करना अनिवार्य बन जाता है। परन्तु उससे भी दमयन्ती का यह संताप दूर नहीं हो पाता और वह उदीयमान चन्द्रमा की निन्दा करने लगती है

चिरहतापिनि चंदनपांसुभिर्वपुषि सार्पितपाण्डिममण्डना ।

विषधराभविषाभरणा दधे रतिपतिं प्रति शम्भुविभीषिकाम् ॥

अथ मुहुर्बहुनिन्दितचन्द्रया स्तुतविधुन्तुदया च तया बहु ।

पतितया स्मरतापमये गदे निजगदेऽश्रुविमिश्रमुखी सखी ॥

नै० ४-२७, ४३।

यहां पर नल-विरह विभाव है। दमयन्तीगत संताप तथा संताप-निवारण के लिए किया गया चन्दन-रज का धारण तथा चन्द्रोपालम्भादि अनुभाव है। व्याधि भाव व्यंग्य है।

उन्माद भाव

उन्माद भाव इष्टजन-वियोग विभव-नाश, अभिघात तथा वातादि के प्रकोपादि विभावों से उत्पन्न होता है। अनिमित्त हसित, रुदन, उत्क्रुष्ट, असम्बद्धप्रलाप, शयित, उपविष्ट, उत्थित प्रधावित, नृत्य, गीत, पठन, भस्मपांस्ववधूनन, तृणनिर्माल्य मलिन वस्त्र, घट कपाल तथा शराव आदि के धारण, उपभोग एवं अनवस्थित चेष्टायें इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३७२।

काम-संतप्त दमयन्ती के द्वारा चन्द्रमा को विनष्ट करने के लिए सोचे गए

उपाय तद्गत उन्माद भाव की व्यजना करते हैं

श्रवणपूरतमालदलांकुर शशिकुरंगमुखे सखि! निक्षिप ।
किमपि तुदलित स्थगयत्यमु सपदि तेन तदुच्छ्वसिमि क्षणम् ॥
अममये मनिरन्मिपति ध्रुव करगनैव गता यदियं कुहूः ।
पुनरुदैति निरुध्य निवास्यतें सखि! मुख न विधो पुनरीक्ष्यते ॥

नै० ४-५६-५७ ।

इसी प्रकार हंस के द्वारा दमयन्ती के सम्मुख निवेदित नल की अधोलिखित दुरवस्था भी नलगत उन्माद भाव की व्यजना करती है

बिभेनि रुष्टासि किलेत्यकस्मात्स त्वां किलोपेत्य हसत्यकाडे ।
यान्तीमिव त्वामनुयात्यहेतोरुक्तस्त्वयेव प्रतिवक्ति मोघम् ॥ नै० ३-११२ ।

मरण भाव

भरत ने व्याधिज तथा अभिघातज दो प्रकार के मरण भावों तथा दोनों प्रकारों के अनेक अनुभावों का निर्देश किया है । ना० शा० पृ० ३७२ ।

समस्त भाव चूँकि चित्तवृत्ति स्वरूप होते हैं अत मरण भाव प्राणवियोगात्मक मरण दशा का सूचक न होकर मरण दशा की पूर्वावस्था का सूचक होता है । जैसा कि पडितराज ने स्वीकार किया है

रोगादिजन्या मूर्च्छारूपा मरणप्रागवस्था मरणम् । न चात्र प्राणवियोगात्मक मुख्य मरणमुचित ग्रहीतुम्, चित्तवृत्त्यात्मकेषु भावेषु तस्याप्रसक्ते ।

र० ग० पृ० ३११ ।

हंस के द्वारा दमयन्ती के सम्मुख उसके वियोग से उत्पन्न नल की दुरवस्थाओं का किया गया वर्णन मरण भाव की भी व्यजना करता है

भवद्वियोगाभिदुरार्तिधारायमस्य मज्जति नि शरण्य ।
मूर्च्छामयद्वीपमहान्धपङ्के हा हा महीभृद्भटकुञ्जरोऽयम् ॥
सव्यापसव्यत्यजनाद्विरक्तौ पञ्चेषुवाणैः पृथगर्जितासु ।
दशासु शेषा खलु तद्दशा या तया नभ पुष्प्यतु कोरकेण ॥

नै० ३-११३-११४ ।

त्रास भाव

त्रास भाव विद्युत्, उल्का, अशनिपात, निर्घात, अम्बुधर, महासत्त्व तथा पशुरवादि विभावों से उत्पन्न होता है। अग-सकोच, उत्कम्पन, वेपथु, स्तम्भ, रोमाञ्च, गद्गद् तथा प्रलापादि इसके अनुभाव होते हैं। ना० शा० पृ० ३७३ ।

उड़ते हुए हंस की तीव्र गति से उत्पन्न शब्द अन्य पक्षियों को त्रासयुक्त बना देता है। और वे ऊपर से उडकर नीचे की ओर आ जाते हैं

विनमद्भिरध स्थितैं खगैर्झटिति श्येननिपातशङ्किभि ।
स निरैक्षि दृशैकयोपरि स्यदझङ्कारितपत्त्रपद्धति ॥ न० २-७० ।

वितर्क भाव

वितर्क भाव सदेह, विमर्श तथा विप्रतिपत्ति आदि विभावो से उत्पन्न होता है। विविध विचारित, प्रश्न, सम्प्रधारण तथा मन्त्रसगूहनादि इसके अनुभाव होते है। ना० शा० पृ० ३७४ ।

पाँच तुल्य आकृति वाले व्यक्तियों को स्वयवर-सभा म उपस्थित देखकर सदेहाकुल दमयन्ती अनेक कल्पनाएँ करती हुई सोचती है कि क्या वह भ्रमवश पाँच नलो को देख रही है अथवा नल ने अनेक रूप धारण कर लिए है। नै० १३-४२-४५ ।

परन्तु अन्त मे वह इस निश्चयात्मक निष्कर्ष पर पहुँच जाती है कि इन्द्रादि देवता ही नल का रूप धारण कर स्वयवर मे आ गए है

मुग्धा दधामि कथमित्थमथापशङ्का सक्रन्दनादिकपट स्फुटमीदृशोऽम् ।
देव्यानयैव रचिता हि यथा तथैषा माया यथा दिगधिपानपि ता स्पृशन्ति ॥ नै० १३-४६ ।

यहाँ पर पाच तुल्य आकृतिवाले व्यक्तियों के बारे मे दमयन्ती के द्वारा किए गए सकल्प-विकल्प विभाव है। दमयन्ती के द्वारा किये गये विचार तथा उसकी निश्चयात्मक कल्पना आदि-अनुभाव हैं। वितर्क भाव व्यग्य है।

नैषधगत भाव-योजना

गत पृष्ठों मे उद्धृत नैषधगत भावात्मक प्रकरण निर्दिष्ट-भाव-व्यजना के अनुरूप विभाव तथा अनुभावो से सयुक्त है। यद्यपि यह उद्धरण निर्दिष्ट भाव के अतिरिक्त अन्य भावो से भी यत्किंचित् युक्त है, परन्तु प्राधान्येन उन निर्दिष्ट भावो की ही व्यजना करते है।

उपर्युक्त सदर्भो के अतिरिक्त नैषध मे अन्य अनेक ऐसे अवसर आए है जहाँ पर श्रीहर्ष ने भावाभिव्यजक विभावादिका की समुचित योजना की है। परन्तु यहा पर उन सब प्रकरणो को उद्धृत करना अनावश्यक समझकर वैसा नही किया गया है। विभिन्न रसो की व्यजना पर विचार करते हुए उनकी व्यजना मे सहायक व्यभिचारियो का निर्देश उन रसा के साथ किया ही गया है। अत यहाँ पर उनकी पुन चर्चा करना अनावश्यक ही था। यद्यपि वे समस्त भाव विभिन्न रसों की व्यजना करने मे ही सहायता करते है परन्तु इस तथ्य से मुख नही मोडा जा सकता कि उन व्यभिचारियो मे ऐसे अनेक व्यभिचारी है जो पर्यन्त मे किसी स्थायी के परिपोषक बनने के पूर्व भी चमत्कारानुभूति कराते है और पर्यन्त मे होने वाली रसानुभूति भी उनकी प्रतीति से अनुप्राणित रहती है। इसीलिए प्रस्तुत अध्याय म कुछ ऐसे

व्यभिचारियों को भी भाव के नाम से अभिहित कर उन्हें उद्धृत किया गया है जिन्हें पहले किसी रस का परिपोषक व्यभिचारी कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध में विभिन्न भावों की विशद योजना कर नैषध को सदैव सजीव बनाये रखने का सफल प्रयास किया है। काव्य में सर्वत्र किसी न किसी स्थायी भाव की व्यंजना ही यदि की गई हो तो उसमें वह वैचित्र्य नहीं आ सकता जो कि विभिन्न भावों से सवलित स्थायी भावों की व्यंजना करने वाले काव्यों में अनायास ही समाहित हो जाता है। इसके साथ-साथ *अनेक अवसरों पर भावों की व्यंजना स्थायी भावों की व्यंजना की अपेक्षा अधिक* विषयानुरूप होती है। ऐसे अवसरों पर यदि भाव व्यंजना की उपेक्षा कर स्थायी भावों का बरबस समावेश किया भी जाये तो वह रुचिकर नहीं होगा। इसीलिए एक महाकाव्य का विभिन्न भावों से सवलित होना आवश्यक होता है। श्रीहर्ष ने नैषध को वैसा बनाया है इसमें कोई सदेह नहीं।

श्रीहर्ष ने नैषध में विभिन्न भावों की योजना करते हुए भी सभी भावों की समान रूप से प्राचुर्येण योजना नहीं की है। उन्होंने नैषधगत अगी शृगार रस के अनुरूप भावों की व्यंजना करने में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अन्य भावों की उन्होंने यत्र तत्र ही योजना की है। जिन भावों की उन्होंने न्यून मात्रा में योजना की है उनमें निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, मोह, चपलता, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, विबोध, अमर्ष, उग्रता, व्याधि, उन्माद, मरण तथा त्रासादिक विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीहर्ष ने इन भावों की न्यूनमात्रा में योजना क्यों की? इस तथ्य पर विचार कर लेना भी अनावश्यक न होगा। उपर्युक्त भावों में आलस्य तथा उग्रता नामक व्यभिचारी भावों को भरत ने शृगार रस का अपरिपोषक माना है। अतः शृगार प्रधान नैषध में उन भावों की न्यूनता का होना स्वाभाविक था। निर्वेद ग्लानि, शंका, असूया श्रम, निद्रा, सुप्त तथा विबोधादि व्यभिचारियों को भरत ने विप्रलम्भ-शृगाराभिव्यंजक माना है। परन्तु इन भावों के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह भाव विप्रलम्भ शृगार के प्रवास, ईर्ष्या तथा शापादिक भेदों की व्यंजना के अधिक अनुरूप होते हैं। और नैषध में विप्रलम्भ शृगार के इन भेदों का सर्वथा अभाव है। यद्यपि श्रीहर्ष ने ईर्ष्या विप्रलम्भ की न्यून मात्रा में योजना की है परन्तु न्यून मात्रा में नियोजित होने के कारण उसमें अधिक व्यभिचारियों *को सहायक नहीं बनाया जा सकता था। अतः नैषध में निर्वेदादि व्यभिचारियों की* कम योजना होना स्वाभाविक था। यद्यपि व्याधि, उन्माद, अपस्मार, जाड्य तथा मरणादि भाव नैषध में प्राधान्येन विनियोजित पूर्वराग विप्रलम्भ के अनुरूप होते हैं फिर भी श्रीहर्ष ने इनका अधिक प्रयोग नहीं किया है। केवल चतुर्थ सर्ग में इनके सामान्य स्वरूप की योजना की है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी यदि कहीं

इनका समावेश किया है तो न्यून मात्रा मे ही। इसके साथ साथ इनकी योजना करने के अवसर पर श्रीहर्ष इनके औचित्येन सन्निवेश के प्रति भी सर्वदा सजग रहे है। क्योंकि इन व्यभिचारियो की योजना के बारे मे आचार्यो ने विशेष सावधानी बरतने का निर्देश दिया है और इनकी अधिकता का समर्थन नही किया है

उन्मादापस्मारव्याधीना या नायन्त कुत्सिता दशा सा काव्ये प्रयोगे च दर्शनीया। कुत्सिता तु सर्वथेऽपि नेति वृद्धा। वय तु ब्रूम। तादृश्या दशाया स्त्र जीवितनिन्दात्मिकाया तद्देहोपभोगसाररत्यात्मकावस्थाबन्धोऽपि विच्छिद्यत एवेति सम्भव एव। मरणमचिरकालप्रत्यापत्तिमयमत्र मन्तव्यम्।

ना० शा० अभि० पृ० ३०७।

न्यून मात्रा मे विनियोजित भावा मे मद, दैन्य मोह, चपलता, आवेग, गर्व, विषाद अमर्ष तथा त्रासादि व्यभिचारी भावों का यदि नल दमयन्ती की चित्तवृत्ति मे अधिक प्रदर्शन किया गया होता तो वह उनकी उन्मना के विपरीत होता। क्योंकि यह भाव उत्तम-प्रकृति-सूचक गुणो के प्रतिकूल होते है। अत श्रीहर्ष ने नैषधगत अंगी शृंगार रस के अनुरूप भावो की योजना अधिकाश स्थलों म की है। शेष भावा की व्यजना चाहे वह नल-दमयन्ती को विभाव बनाकर की हो या औचित्य निर्वाह के लिए किसी अन्य पात्र को विभाव बनाकर की हो न्यून मात्रा म ही की है। यद्यपि नल-दयमन्ती के अतिरिक्त अन्य पात्रो मे उन भावो की उत्पत्ति क प्रदर्शन प्रचुर मात्रा मे किया जा सकता था। परन्तु श्रीहर्ष ने अप्रस्तुत या गौण विषयो म समय व्यय करना अनावश्यक समझकर वैसा आवश्यकतानुसार न्यून मात्रा मे ही किया है। इस प्रकार हम देखते है कि नैषध म सन्निविष्ट कुछ भावो *की प्रचुरता तथा कुछ भावो की विरलता भी सोद्देश्य है।*

उपर्युक्त सदर्भो म व्यक्त विभिन्न भाव तथा इसी प्रकार के अन्य भावाभिव्यजक प्रकरण यद्यपि स्वतन्त्र रूप मे चमत्कारपरक हे और वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता के बल पर नैषध का महनीयता प्रदान करने मे समर्थ है, परन्तु प्रकरणादि की पर्यालोचना करने के अनन्तर उन समस्त भावा तथा भावाभिव्यजक यागो का मुख्य स्थायी भाव की व्यजना मे पर्यवसान हो जाता है। *और इस प्रकार वे किसी न किसी रस के* पोषक बनकर तद्द्वारा नैषधगत अंगी शृंगार रस के अग बन जाते है। जिन भावा का सम्बन्ध नल-दमयन्ती की चित्तवृत्ति से प्रदर्शित किया गया है उनकी शृंगार-रसागतता पर तो किसी प्रकार का सदेह किया ही नही जा सकता क्योंकि वे या ता नल दमयन्तीगत रति वासना का प्रत्यक्ष रूप से ही परिपोष करन होंगे जिसकी नैषध म प्रधान रूप से व्यजना की गई है अथवा वे नल दमयन्ती की उत्तमता की व्यजना कर तद्गत रति वासना का अप्रत्यक्ष रूप से परिपोष करते होंगे और जिन भावो की व्यजना नल-दमयन्ती से भिन्न पात्रो के माध्यम से की गई है वे भाव भी पर्यन्त म नायक-नायिकादिगत वासनाओं की प्राधान्येन

तरग रहे हैं तो देवताओ की अनवना तथा दमयन्ती की अननुरक्ति आदि का आभास उनकी हृदयविद्रावक प्रार्थनाओ को भी हास्यजनक बना देता है। नल ने स्वय अपनी ओर से देवताओ के सदेश को मार्मिकता प्रदान करने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। परन्तु उसे दमयन्ती के सम्मुख सभी देवताओ का सदेश निवेदन करना था। अत वह यह नहीं कह सकता था कि किसी एक देवता ने ही उसके लिए आलिगनादि का सदेश भेजा है। और सभी के आलिगनादि का सदेश निवेदन देवताओ पर हँसने के लिए विवश कर देता है। देवता यह चाहते थे कि दमयन्ती उनकी मूर्च्छा को दूर करने के लिए विशल्यौषधि बन जाये तथा उनके काम-सताप को अनगलीलाओ से शान्त कर दे

एवैत्यमने परिरभ्य पीनस्तनोपपीड त्वयि सदिशन्ति ।
त्व मूर्च्छना न स्मरभिल्लशल्यैर्मुद विशल्यौषधिवल्लिरेधि ॥
निजे मृजास्मासु भुज भजन्त्यावादित्यवर्गे परिवेषवेषम् ।
प्रसीद निर्वापय तापमङ्गैरनङ्गलीलालहरीतुषारै ॥ नै० ८-६०, ६१।

परन्तु दमयन्ती अकेली किस किस देवता के लिए औषधि बन सकती थी। फलत. देवताओ को न तो दमयन्ती के कटाक्षो मे मग्न पडना है जैसा कि वे चाहते थे और न उन्हे दमयन्ती की इच्छा का अनुगमन कर भूलोक का नाम स्वर्गलोक रखना पडता है

दयस्व कि धावयसि त्वमस्मानतन्द्रचण्डालशरैरस्पृश्यै ।
भिन्ना वर तीक्ष्णकटाक्षबाणै प्रेमस्तव प्रेमरसात् पवित्रै ॥
दयादयश्चेतसि चेत्तवाभूदलकुरु द्या विफलो विलम्ब ।
भुव स्वरादेशमवाचरामो भूमौ धृतिं यासि यदि स्वभूमौ ॥ नै० ८-६३, ६६।

उपर्युक्त प्रकरण म दमयन्ती आलम्बन है। उसका सौदर्यादि उद्दीपन विभाव है। इन्द्रादि देवताओ की काम-सताप-जन्य अवस्था तथा उनका सदेश अनुभाव है। चिन्ता, औत्सुक्य तथा दैन्य आदि व्यभिचारी भाव है। इन्द्रादि दवगत दमयन्ती-विषयक रति व्यग्य है। परन्तु व्यग्य रति अनुभयनिष्ठ है। अत अभिलाषा मात्र-स्वरूपिणी होने के कारण शृगार रस रूपता को न प्राप्त होकर रत्याभासता को प्राप्त हो जाती है। दमयन्ती की एकता तथा उसके प्रति अपना अनुराग प्रकट करने वाले देवताओ की अनेकता तथा दिव्यता प्रस्तुत प्रकरण को प्रकृत्यनौचित्यता से भी युक्त कर देती है। दिव्य-प्रकृति-विरुद्ध इन्द्रादि-देवगत अनुभावस्वरूप कामजन्य दुरवस्थाये तथा उनका सदेश एव चिन्तौत्सुक्यादि व्यभिचारी भाव भी अनौचित्य-युक्त है। अत इस प्रकरण को शृगाराभास का ही व्यजक स्वीकार किया जायेगा।

पर्यन्त म शृगाराभासाभिव्यजक यह प्रकरण नल की उत्कृष्टता की व्यजना कर नलगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है।

इमी प्रकार दमयन्ती-स्वयवर मे उपस्थित राज-समूहगत दमयन्ती विषयक अभिलापा स्वरूप रनि वासना को भी शृगाराभास के नाम से ही अभिहित किया जायेगा। दमयन्ती जब शिविका पर बैठकर स्वयवर-भूमि मे प्रवश करती है तो सभी राजा कटाक्षो से उसे देखन लगते है तथा उसे दखकर हृष एव रोमाञ्च स युक्त हो जाते हैं

जलकृताङ्गाद्भुतकेवलाङ्गी स्तवाधिकाध्यक्षनिवेद्यलक्ष्मीम्।
इमा विमानन सभा विशन्ती पपावपाङ्गैरथराजराजि॥
आसीदसौ तत्र न कोऽपि भूपस्तमूर्तिरूपोद्भवदद्भुतस्य।
उल्लेसुरङ्गानि मुदा न यस्य विनिद्ररोमाङ्कुरदन्तुराणि॥

नै० १०-१०७-१०८।

दमयन्ती को देखकर उस मण्डप मे उपस्थित राजा अपनी उँगलिया को चटकाने लगते हैं। सभी राजाओ की भ्रकुटियाँ ऊपर चढ जाती हैं और व अपने शिर का हिलाने लगते हैं

अगुष्ठमूर्ध्ना विनिपीडिताग्रा मध्येन भागेन च मध्यमाया।
आस्फोटि भैमीमवलोक्य तत्र न तर्जनी केन जनेन नाम॥
अस्मिन् समाजे मनुजेश्वराणा ता खञ्जनाक्षीमवलोक्य केन।
पुन पुनर्लोलितमौलिना न भ्रुवोरुदक्षेपितरा द्वयी वा?॥

नै० १०-१०६-११०।

अतन विह्वल होकर सभी राजा लडखडाती आवाज में दमयन्ती-सौंदय का वणन करने लगते हैं। नै० १०-१११-१३१।

यहाँ पर दमयन्ती आलम्बन है। उसका सौंदर्यादि उद्दीपन विभाव है। राजाओं का रोमाचित हो जाना, उनकी भ्रकुटियो म बल पड जाना, उनके शिर का कापन लगना तथा उनका उँगलिया चटकाने लगना और अत म विह्वल होकर दमयन्ती-सौदर्य का वणन करने लगना यह सभी अनुभाव हैं। हृष, औत्सुक्य तथा वितर्कादि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके सयोग स दमयन्ती-विषयक राजसमूहगत रति स्थायी भाव की व्यजना होती है। परन्तु व्यग्य रति के अनुभयनिष्ठ होने से तथा राजसमूह के द्वारा समाज मे ही शृगार रस के विपरीत अनुत्तम-प्रकृति सूचक व्यापारो के प्रदशन से व्यग्य रति को शृगाराभास के नाम से ही अभिहित किया जायगा।

पयन्त मे यह प्रकरण दमयन्ती की उत्तमता की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है। यदि शृगार रस के विप्रलम्भ तथा सभोग नामक भेदो के समान शृगाराभास को भी विभाजित करना अभीष्ट हो तो इन्द्रादि-देवगत उपयुक्त रत्याभास को विप्रलम्भाभास तथा राजसमूहगत रत्याभास को सभोगाभास के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

हास्याभास

श्रीहर्ष ने शृंगाराभास के समान हास्याभास की भी न्यून मात्रा में ही योजना की है। गुरुजनादि को आलम्बन बनाकर की गई हास्य रस-व्यंजना को हास्याभास नाम से अभिहित किया गया है। गुरुजनादि पद को यदि सभी आदरणीय व्यक्तियों व विषयों का उपलक्षण स्वीकार कर लिया जाय, जैसा कि यह है ही, तो ऋषियों, मुनियों, माता, पिता तथा विभिन्न मर्यादाओं को आलम्बन बनाकर किए गए उपहास को भी हास्याभास के नाम से ही अभिहित किया जायेगा।

कलि का बन्दी अपने अनर्गल प्रलाप में अनेक आर्य मर्यादाओं की खिल्लियाँ उड़ाता है। कभी वह अग्निहोत्रादिकों को जीविका का साधन बताता है तो कभी मुनियों पर पुण्य चराने तथा वेदों की आज्ञा मानने की निन्दा करता है तथा कामदेव की आज्ञा मानने के लिए लोगों को प्रेरित करता है

अग्निहोत्रं त्रयीतन्त्रं त्रिदण्डं भस्मपुण्ड्रकम् ।
प्रज्ञापौरुषनिःस्वानां जीवो जल्पति जीविका ॥
कि ते कृतहृतात् पुण्यात् तस्मात्रे हि फलत्वद ।
यस्य तस्मृत्यनन्यस्य न्याय्यमेवाशनो यदि ॥
कुरुध्वं कामदेवाज्ञां ब्रह्माद्यैरप्यलङ्घिताम् ।
वेदाऽपि देवकीयाज्ञा तस्याज्ञा काधिगहणा ॥ नै० १७-३६, ५७, ५६।

इसी प्रकार चारण की अन्य उक्तियाँ भी विभिन्न मर्यादाओं की उच्छेदक है। इन उक्तियों में चारण जिन मर्यादाओं का उपहास करता है वे तत्त्वतः उपहास करने के योग्य नहीं है। अतः चारण के उन उपहासों को अनुचित विभावों पर आधारित होने के कारण हास्याभास के नाम से अभिहित किया जाएगा।

करुणाभास

पक्षिशीर-कुपुत्र विषयक तथा वीतराग निष्ठ शोक को करुणाभास के नाम से अभिहित किया गया है। अभिनव ने करुणाभास को हास्य रस का जनक मानते हुए अबन्धु के प्रति व्यक्त शोक का हास्य रस स्वीकार किया है

तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम्।—एवं यो यस्य न बन्धुस्तच्छोके करुणोऽपि हास्य एवेति सर्वत्र योज्यम्। ना० शा० अभि० पृ० २९६।

अभिनव के उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर अबन्धुविषयक शोक को भी करुणाभास के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

दमयन्ती अपने ऊँचे प्रासाद से देखती है कि चक्रवाक मिथुन सायंकाल को आया हुआ देखकर एक दूसरे से वियुक्त हो रहा है और वियुक्त होने के अवसर पर वे करुण क्रन्दन कर रहे है। नै० २१-१४३।

दमयन्ती भी उस चक्रवाक-मिथुन के वियोग को देखकर लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगती है और नल को उनकी वियुक्त दशा का दर्शन करने के लिए प्रेरित करने लगती है

अथ रथचरणौ विलोक्य रक्तावतिविरहासहताहताविवार्त्तौ ।
अपि तमकृत पद्ममुष्टिकाल श्वसनविकीर्णमगेजसौरभ सा ॥
अभिलपति पति प्रति स्म भैमी सदय[1] विलोक्य कोकयोरवस्थाम् ।
मम हृदयमिमौ च भिन्दती हा क इव विलोक्य नरो न रोदतीमाम् ॥
नै० २१ १४४-१४५ ।

यहा पर परस्पर वियुक्त होते हुए चक्रवाक आलम्बन है। उनका क्रन्दन उद्दीपन विभाव है। दमयन्तीगत नि श्वास तथा उसके उद्गार अनुभाव है। विषादादि व्यभिचारी भाव हैं। दमयन्तीगत शोक स्थायी भाव व्यग्य है। परतु दमयन्तीगत शोक के अबधु-व्यसन-जन्य होने के कारण उसे करुणाभास के नाम से अभिहित किया जाएगा, करुण रस के नाम से नही।

पयन्त मे दमयन्तीगत उपयुक्त शोक दमयन्ती के मुग्धात्व की व्यजना कर नैषधगत अगी शृगार रस का अग बन जाता है।

श्रीहर्ष ने उपर्युक्त सदर्भों के अतिरिक्त अयत्र कही भी किसी अन्य रसाभास की योजना नैषध मे नही की है। और यदि कही पर किसी स्थायी भाव की आभासत्वयुक्त व्यजना की भी है तो उस स्थायीभाव का व्यभिचारियों से परिपाष नही किया है। अत उस व्यक्त स्थायी भाव को रसाभास नाम से अभिहित करने की अपेक्षा भावाभास नाम से अभिहित करना समुचित होगा।

रत्याभास

इन्द्र-दूती के द्वारा दमयती के सम्मुख निवेदित इन्द्र का आलिगन-सदेशादि रत्याभासाभिव्यजक है। क्योकि इन्द्रगत रति अनुभयनिष्ठ होने के कारण अनौचित्य-युक्त है

सलीलमालिगनयोपपीडमनामय पृच्छति वासवस्त्वाम् ।
शेषस्त्वदाश्लेषकथाविनिद्रैस्तद्रोमभि सदिदिशे भवत्यै ॥ नै० ६-७८ ।

उपयुक्त सन्दभ मे अकित इन्द्रगत रति विभावादिका मे व्यक्त होते हुए भी व्यभिचारी भावा से अपरिपुष्ट होने के कारण रस रूपता को नही प्राप्त हो पाती। अत उसे भावाभास के नाम से अभिहित किया जाएगा, शृगाराभास के नाम से नही।

इसी प्रकार वैतालिको के द्वारा इन्द्र की घाडियो तथा चक्री की सुरतेच्छा का किया गया वणन भी अशिष्ट होने के कारण रत्याभास की ही व्यजना करता है

इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी श्रीहर्ष ने विभिन्न भावों के उदय की सुंदर व्यंजना की है।

भाव-सन्धि

परस्पर अनभिभूत होते हुए भी एक-दूसरे का अभिभव कर सकने में समर्थ दो भावों की एकत्र योजना को भाव सन्धि के नाम से अभिहित किया जाता है

भाव-सन्धिरयोयानभिभूतयोरन्योन्याभिभवयाग्ययो समानाधिकरण्यम्।

र० ग० पृ० ३८६।

दमयन्ती की दृष्टि नल की ओर बार-बार जाती है। परन्तु वह एक बार भी नल का दर्शन नहीं कर पाती और उसकी दृष्टि अधमार्ग से ही वापस हो जाती है

नाविलोक्य नलमासितु स्मरा ह्रीर्न वीक्षितुमदत्त सुभ्रुव।

तद्‌दृश पतिदिशाचलन्नथ व्रीडिता ममकुचमुहु पय॥ नै० १८-५३।

यहाँ पर नल विभाव है। दमयन्ती का नल को देखने के लिए प्रयत्न करना तथा उसकी दृष्टि का अधमार्ग से वापस लौट जाना अनुभाव है। औत्सुक्य तथा व्रीडा भाव की सन्धि व्यंग्य है। दमयन्तीगत औत्सुक्य तथा व्रीडा भाव यद्यपि एक दूसरे का अभिभव करने में समर्थ है। परन्तु यहाँ पर वे परस्पर अनभिभूत होते हुए ही प्रतीत होते हैं।

इसी प्रकार दमयन्ती का दिन में विरह-सहन करने में असमर्थ होकर रात्रि की कामना करना तथा रात्रि में नल की क्रीडाओं से लज्जित होकर दिन की अभिलाषा करने लगना औत्सुक्य तथा व्रीडा भाव की सन्धि का व्यंजक है

वासर विरहिनि महा निशा कान्तसगममय समैहत।

सा ह्रिया निशि पुर्नदिनोदय वाञ्छति स्म पतिकेलिलज्जिता॥ नै० १८-५५।

दमयन्ती नल को दिन में ही हठ करता हुआ देखकर अपनी सखियों के पीछे जाने लगती है। परन्तु द्वार पर पहुँच जाने के उपरान्त न तो उसे आगे जाते बनता है और न पीछे ही लौटते बनता है

प्रियम्याप्रियमारभ्य तदन्तर्दू नयानया।

शेके शालीनयालिभ्यो न गन्तु न निवर्तितुम्॥ नै० २०-१४७।

यहाँ पर नल विभाव है। उसका हठ उद्दीपन विभाव है। दमयन्ती का नल की इच्छा के विपरीत नल के पास से उठकर चल देना तथा द्वार पर पहुँचकर रुक जाना अनुभाव है। शंका तथा ग्लानि की सन्धि व्यंग्य है।

भाव-शबलता

परस्पर विरोधी होने के कारण एक-दूसरे के बाधक अथवा उदासीन भावों की मिश्रित व्यंजना को भाव-शबलता नाम से अभिहित किया जाता है

भाव-शबलत्वं भावानां बाध्य-बाधक-भावमापन्नानामुदासीनानां वा व्यामिश्रणम्। र० गं० पृ० ३५०।

श्रीहर्ष ने एक-दूसरे के बाधक तथा उदासीन उभयविध भावों की अनेक स्थानों पर मिश्रित व्यञ्जना की है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है।

नल इन्द्रादि देवताओं के दौत्य कार्य को स्वीकार कर जब कुण्डिनपुर में पहुँचता है तो भीम की नगरी को देखकर पहले तो उत्कण्ठित होकर उसका दर्शन करता है। परन्तु क्षण-भर के उपरान्त जब वह देवताओं के कार्य को स्मरण करता है तो वह लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगता है

भैमीपदस्पर्शकृतार्थरथ्यां नेत्रे पुरीमुत्कलिकाकुलस्ताम्।

नृपो निपीय क्षणमीक्षणाभ्यां भृशं निशश्वास सुरैः सनाथः ॥ नै० ६-५।

यहाँ पर दमयन्ती की निवासभूमि नगरी तथा देवताओं का कार्य विभाव हैं। नलगत उत्कण्ठा तथा निःश्वास अनुभाव हैं। परस्पर विरोधी होने के कारण एक-दूसरे के बाधक हर्ष तथा निर्वेद भावों की शबलता व्यंग्य है।

अन्तर्हित नल द्वारपालों की अवहेलना कर भीम के भवन में प्रविष्ट तो हो जाता है परन्तु अन्तर्हित रूप में प्रवेश करने के कारण वह लज्जित भी होता है। इसी प्रकार दमयन्ती-दर्शन-प्राप्ति की आशा से वह सन्तुष्ट होता है परन्तु अपने कार्य का स्मरण कर वह दुःखी हो जाता है

लीनस्थितामीति हृदा नलज्जे हेलां दधौ रक्षिजनेऽत्ननज्जे।

द्रक्ष्यामि भैमीमिति सन्तुताप दूत्यं विचिन्त्य स्वमसौ शुशोच ॥ नै० ६-१०।

यहाँ पर द्वारपालों की अवहेलना करना अन्तर्हित अवस्था में भीम के भवन में प्रवेश करना, दमयन्ती-दर्शनाशा तथा अपने दूत रूप का स्मरण आदि विभाव हैं। नलगत द्वारपालों के प्रति अवज्ञा, लज्जा, सन्तोष तथा शोक अनुभाव हैं। परस्परोपमर्दक गर्व, व्रीडा, हर्ष तथा निर्वेद भावों की शबलता व्यंग्य है।

दमयन्ती वन्दियों के अवसर पर पिता की सेवा में जाती थी और जब स्तुति-पाठक नल के गुणों का वर्णन करते थे तो वह उन्हें सुनकर रोमाञ्चित हो जाती थी :

उपासनामेत्य पितुः स्म रज्यते दिने दिने सावसरेषु बन्दिनाम्।

पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं विनिद्ररोमाजनि शृण्वती नलम् ॥ नै० १-२४।

यहाँ पर दमयन्ती का बन्दियों के अवसर पर पिता की सेवा में जाकर नलगुण-श्रवण करना विभाव है। दमयन्तीगत नलगुण-श्रवणलोभ तथा रोमाञ्च अनुभाव हैं। औत्सुक्य तथा हर्ष नामक उदासीन भावों की शबलता व्यंग्य है।

इसी प्रकार सखियों के मुख से नल का नाम सुनकर अन्य कार्यों में आसक्त होते हुए भी दमयन्ती का उन कार्यों को छोड़ देना तथा सखियों की बात सुनने के लिए उत्सुक हो जाना भी भाव-शबलता की व्यञ्जना करता है -

कथाप्रसंगेषु मिथः सखीमुखात्तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते ।
द्रुतं विधूयान्यदभूयतानया मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया ॥ नै० १-३५ ।

यहां पर नलचर्चा विभाव है। दमयन्ती का अन्य-कार्य-परित्याग तथा हर्ष से नलचर्चा श्रवण करने के लिए तत्पर हो जाना अनुभाव हैं। हर्ष तथा औत्सुक्य नामक उदासीन भावों की शबलता व्यंग्य है।

नैषधगत उपर्युक्त भाव-शान्त्यादि भी अन्य रसों तथा भावों के समान पर्यन्त में नल-दमयन्तीगत रतिवासना के परिपोषक बनकर शृंगार रस का परिपोष करने लगते हैं।

उपसंहार

इस अध्याय में नैषधगत भावादि के अभिव्यंजक कुछ संदर्भों को ही उद्धृत किया गया है। कविता, वह चाहे जिस कोटि की क्यों न हो, सर्वथा भावशून्य नहीं हो सकती। यह हो सकता है कि कोई भाव किसी स्थान पर स्वतन्त्र रूप से चर्वणा का विषय न होकर किसी अन्य भाव का परिपोष ही कर रहा हो। परन्तु भाव-सम्पर्श-शून्य कविता की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः यदि किसी काव्य में निहित भावों, रसाभासों, भावाभासों तथा भाव शान्त्यादिकों का ही आनुपूर्वी आकलन किया जाय तो वही एक महाकाय प्रबन्ध बन सकता है। नैषधगत भावादिकों के आकलन को भी इसका अपवाद नहीं कहा जा सकता। परन्तु नैषधगत जिन संदर्भों को इस अध्याय में उद्धृत किया गया है यदि उन संदर्भों पर ही दृष्टिपात किया जाये तो भी यह स्वीकार करने में किसी को रंचमात्र भी संकोच नहीं हो सकता कि श्रीहर्ष ने नैषध में शृंगार रस की प्राधान्येन योजना करते हुए भी भावादिकों की विशद व्यंजना की है और भावादिकों की इस व्यंजना में स्वतन्त्र रूप से आस्वादन-योग्यता का आधान करते हुए भी उसे शृंगार-रस-पर्यवसायी बनाये रखने का स्तुत्य प्रयास किया है।

पञ्चम अध्याय

व्यंजक-योजना

नैषधीयचरित की भाषा

नैषधगत आत्मस्वरूप रसादिकों का विवेचन उसके शरीर-पक्ष की समीक्षा के बिना अधूरा ही रह जाएगा। अत प्रस्तुत अध्याय में रसादिकों के व्यंजक भाषादिक तत्त्वों की नैषधीयचरितगत योजना पर भी विचार कर लिया जाये।

यद्यपि विभावअनुभाव तथा व्यभिचारी भाव आदि को रसादिकों का व्यंजक स्वीकार किया जाता है। परन्तु विभाव-स्वरूप ज्ञान का जनक तथा अनुभाव-स्वरूप क्रियाओ एव भाव-स्वरूप व्यभिचारियों का बोधक काव्यगत शब्द व्यापार होता है। विचाराभिव्यक्ति का माध्यम-स्वरूप यह शब्द-व्यापार जिसे भाषा नाम से अभिहित किया जाता है, जितना अधिक सुनियोजित एव सशक्त होता है, रसादिकों की प्रतीति भी उतनी ही अधिक अव्याहत होती है। क्योंकि विभावादिकों का औचित्य जो कि रसादि की आस्वाद्य व्यंजना का निदान होता है काव्यगत शब्द-व्यापार अर्थात् उसकी भाषा के औचित्येन सघटन पर निर्भर करता है। अत विभावादिकों के रसादि की व्यंजना में साक्षात् कारण होते हुए भी काव्यगत शब्द-व्यापार अर्थात् उसकी भाषा का रस-व्यंजना में अपना विशिष्ट महत्त्व होता है।

विचाराभिव्यक्ति का माध्यम-स्वरूप यह शब्द-व्यापार अर्थात् काव्य की भाषा स्वगत वर्ण, पद, पदावयव वाक्य तथा सघटनादिक समस्त अंगों के द्वारा रसादिकों की व्यंजना किया करता है जैसा कि लक्षण ग्रन्थकारों ने स्वीकार किया है –

यस्त्वलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो ध्वनिर्वर्णपदादिषु।

वाक्ये सघटनाया च स प्रबन्धेऽपि दीप्यते ॥ ध्व० ३-२८।

पदैकदेशरचनावर्णेष्वपि रसादय। का० प्र० सू० ६१।

अत नैषधगत भाषा पर दृष्टिपात करते हुए तद्गत वर्णपदादिक समस्त भाषावयवों पर हम यहाँ विचार करेंगे।

वर्ण-योजना

वर्णों की रस-व्यजकता का प्रतिपादन करते हुए रेफ से सयुक्त शकार तथा षकार एव ढकार के आधिक्य प्रयोग को शृगार रस का प्रतिबन्धक तथा बीभत्सादि रसों का व्यजक स्वीकार किया गया है

शषौ सरेफसयोगौ ढकारश्चापि भूयसा ।
विरोधिन स्यु शृगारे तेन वर्णा रसच्युत ॥
त एव तु निवेश्यन्ते बीभत्सादौ रसे यदा ।
तदा त दीपयन्त्येव तेन वर्णा रसच्युत ॥ ध्व० ३-५६-६० ।

नैषधगत विभिन्न रसात्मक स्थलों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष ने प्राय रसानुरूप वर्ण-योजना ही की है। रसानुरूप वर्ण-विन्यास एक असामान्य काव्य-कौशल होता है और इसमें कोई सदेह नही कि श्रीहर्ष में यह कौशल विशिष्ट रूप में विद्यमान है। पदलालित्य जिसका मूल समुचित वर्ण-विन्यास होता है और जो नीरस प्रकरणों में भी सरसता का सचार करने में समर्थ होता है, नैषध में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। पदों के अन्त में तथा यत्र-तत्र पदों के मध्य में गुम्फित वर्गों के पचम वर्णों की बहुलता नैषधगत दुरूह सदर्भों में भी सरसता का आधान कर देती है।

श्रीहर्ष ने रसानुरूप वर्ण-योजना करने में नैषध के किसी विशेष प्रकरण में ही श्रम किया हो ऐसी बात नहीं। समस्त नैषध में उन्होंने रसानुरूप वर्ण-योजना की है। या यों कहो कि श्रीहर्ष की प्रतिभा को रूपायित करने वाले वर्णों ने स्वय ही नैषध में अपने अनुरूप स्थानों की खोज कर ली है।

पदावयव तथा पद-योजना

यद्यपि रसादि की प्रतीति समस्त काव्य-व्यापार की समन्वित अभिव्यक्ति होती है परन्तु काव्यगत पदावयव तथा पद कहीं कहीं उस प्रतीति के प्रधान उपाय हुआ करते हैं। नैषध में ऐसे पदावयव तथा पद प्राचुर्येण उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण-स्वरूप कुछ सदर्भों को उद्धृत कर लेना ही पर्याप्त होगा।

हस का करुण विलाप प्रसगगत पदावयवों तथा पदों के विशिष्ट प्रयोग के कारण हृदयग्राही चित्र उपस्थित कर देता है

तवापि हा हा विरहात् क्षुधाकुला कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते ।
चिरेण लब्धा बहुभिमनारथैगता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ॥ नै० १-१४१ ।

यहा पर प्रयुक्त 'आकुला' तथा 'कूलेषु' पदावयव एव 'हा हा' ते, तथा 'क्षणेन' आदि पद हसगत शोक के प्रभाव को द्विगुणित कर देते हैं।

इसी प्रकार नल की आतुर उत्कण्ठा की प्रतीति अधोलिखित श्लोक के 'सा' तथा

'इयम्' पदों में मूर्तिमती-सी बन जाती है

भैमीपदस्पशकृतार्थरथ्या सेयं पुरीत्युत्कलिकाकुलस्ताम् ।

नृपो निपीय क्षणमीक्षणाभ्यां भृशं निशश्वास सुरैं क्षताश ।। नै० ६-५ ।

करुण विलाप करती हुई दमयन्ती को 'प्रिये' पद से सम्बोधित करने तथा स्वयं ही उनके सम्मुख अपना नाम अपने मुख से ही ग्रहण कर लेने से नलगत रतिवासना की व्यंजना में तीव्रता आ जाती है

अयि प्रिये! कस्य कृते विलप्यते विलिप्यते हा मुखमश्रुबिन्दुभिः ।

पुरस्त्वयालोकि नमन्नयं न किं निरश्चलल्लोचनलीलया नलः ।। नै० ९-१०३ ।

नल ने दमयन्ती के सम्मुख देवताओं की चर्चा कर उसे कष्ट दिया था। अतः वह दमयन्ती के प्रति अपराधी था। परन्तु उस अपराध का परिमार्जन करने के लिए भी अब वह तैयार था

दृशोरमगल्यमिदं मिलज्जलं करेण तावत् परिमाजयामि ते ।

अथापराधं भवदंघ्रिपंकजद्वयीरजोभिः सममात्ममौलिना ।। नै० ९-१०६ ।

यहाँ पर प्रयुक्त 'रजोभिः' मौलिना तथा पदावयव नलगत रतिवासना की व्यंजना के प्रधान पोषक हैं। इसी प्रकार अन्य सदर्भों में भी श्रीहर्ष ने रसादि की व्यंजना में उत्कर्ष लाने वाले पदों तथा पदावयवों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

वाक्य-योजना

पदों तथा पदावयवों के समान वाक्य भी यत्र-तत्र रसादि की व्यंजना का पोषक हुआ करता है। श्रीहर्ष ने रस-पोषक वाक्यों की योजना भी नैषध में की है। नल दमयन्ती वियोग से दुःखी था और इस वियोगजन्य कष्ट से मुक्ति पाने के लिए ही वह अपने उपवन को गया था। परन्तु वहाँ हंस से उसकी भेंट हो जाती है। हंस पहले विस्तारपूर्वक नल के सम्मुख दमयन्ती का गुण-वर्णन करता है। और जब वह उस दमयन्ती के सम्मुख उसका गुण-वर्णन करने तथा दमयन्ती की प्राप्ति कराने का आश्वासन देता है तो नल की वियोग-व्यथा और भी अधिक तीव्र हो जाती है। देखिए किस प्रकार उसकी वियोग-व्यथा उसके वाक्यों से प्रकट हो रही है

तदिहानवधौ निमज्जतो मम कन्दर्पशराधिनीरधौ ।

भव पोत इवावलम्बनं विधिनाकस्मिकसृष्टसन्निधिः ।। नै० २-६० ।

इसी प्रकार जब हंस दमयन्ती के पास जाकर उसके सम्मुख नल-गुण-वर्णन करता है और दमयन्ती के मन में निहित नल को प्राप्त करने की अभिलाषा को तीव्र करने के उपरान्त उसकी किसी भी इच्छा को पूर्ण करने का वचन देकर भी जब वह दमयन्ती की नल-प्राप्ति-विषयक अभिलाषा को पूर्ण करने में कृत्रिम आनाकानी करने लगता है तो दमयन्ती की वियोग-व्यथा उसके वाक्यों से झरने-सी लगती है

जीर्णीष्व मज्जीवितमेव पण्यमन्यन्न चेद्वस्तु तदस्तु पुण्यम्।
जीवेशदातर्यदि ते न दातु यशोऽपि तावत्प्रभवामि गातुम्॥ नै० ३-८७।

सुबादि-योजना

पदो तथा वाक्यो आदि के समान सुबादिक भी रसादिको के व्यंजक होते हैं
सुप्तिङ् वचनसम्बन्धैस्तथा कारकशक्तिभि।
कृत्तद्धितसमासैश्च द्योत्योऽलक्ष्यक्रम क्वचित्॥ ध्व० ३-७२।

सुबादिकों की व्यजकता का निरूपण करते हुए सुबादिको की व्यजकता से युक्त महाकाव्यों को कवि की महत्ता का द्योतक माना गया है

दृश्यन्ते च महात्मना प्रतिभाविशेषभाजा बाहुल्येनैवविधा प्रकारा।
ध्व० पृ० ३२६।

अत नैषधगत सुबादिको की योजना पर भी एक दृष्टिपात कर लेना अनावश्यक न होगा।

समग्र नैषध पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष ने प्राय सुबादिको की योजना भी रसादिको की व्यंजना के अनुरूप की है। यदि नैषध के श्लोकों को हम देखें तो उनमे सुबादिको मे किसी एक या अनेक का विशिष्ट प्रयोग अवश्य उपलब्ध हो जाएगा। उदाहरणस्वरूप हम पूर्वोद्धृत करुण-रसाभिव्यजक हस के विलाप को ही ले सकते हैं

तवापि हा हा विरहात् क्षुधाकुला कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम॥ नै० १-१४१।

इस श्लोक मे प्रयुक्त ते, मम, मनोरथै, विलुठ्य, गता, स्फुटितेक्षणा तथा बहुभि आदिगत सुप्, सम्बन्ध, वचन, कृत्, समास एव विशेषणादि समस्त भाषा के अग व्यक्त शोक स्थायी को तीव्रतर बना रहे है।

सुबादि के समान उपयुद्धृत कारिकागत चकार के आधार पर निपात, उपसर्ग, छन्द, पदपुनरुक्ति, काल तथा सर्वनामादिकों की विशिष्ट-प्रयोजनगर्भता को भी रसाभिव्यजक स्वीकार कर लिया गया है

च शब्दान्निपातोपसर्गकालादिभि प्रयुक्तैरभिव्यज्यमानो दृश्यते।— पदपौनरुक्त्य च व्यजकत्वापेक्षयैव कदाचित् प्रयुज्यमान शोभामावहति आदि। ध्व० पृ० ३२४, ३४२।

श्रीहर्ष ने निपातादिको की योजना भी रसव्यजना के अनुरूप की है। उदाहरण-स्वरूप दमयन्ती के करुण विलाप को हम देख सकते है

ममादरीद् विदरीतुमान्तर तदर्थिकल्पद्रुम' किंचिदर्थ्यते।
भिदा हृदि द्वारमवाप्य मा म मे हतासुभि प्राणमम मम गम॥ नै० ९-१००।

यहा पर प्रयुक्त, 'वि' उपसर्ग, मा' निपात, 'स' सर्वनाम, तथा वर्तमान काल

आदि दमयन्तीगत शोक को चरमोत्कर्ष प्रदान कर देते हैं।

पदपुनरुक्ति में श्रीहर्ष सर्वाधिक धनी है। नैषध में ऐसे स्थल भरे पड़े है। उदाहरण स्वरूप कुछ स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है

कथितमपि नरेन्द्र शंसयामास हंस
किमिति किमिति पृच्छन्भाषितं स प्रियाया।
अधिगतमय सान्द्रानन्दमाध्वीकमत्त
स्वयमपि शतकृत्वस्तत्तथान्वाचचक्षे॥ [नै० ३-१३५।
इदमिदमधिरुह्य मानि नेयम्मसर्जुविशति विशति वेदीमुर्वशी नेयमुर्व्यां।
इति जनजनितैं सानन्दनादैर्विजज्ञे नलहृदि परभैमीवर्णनाकर्णनाप्ति॥
नै० १०-१३६।

उपर्युक्त प्रसगो मे 'किमिति' किमिति 'इयम्' इयम्, तथा 'विशति विशति' की आवृत्ति व्यक्त भावो मे प्रभविष्णुता का सचार कर देती है।

छन्दो की रस-व्यंजकता के बारे मे दो मत नही हो सकते। अभिनव ने विघ्नो के स्वरूप तथा उन विघ्नो के शमनोपायो का निर्देश करते हुए गेयता को जो कि छन्दो का प्राण होती है, असहृदय मे भी सहृदयता का आधान कर देने वाला तत्त्व स्वीकार किया है। ना० शा० अभि० पृ० २८१।

यह गेयता नैषध में सर्वत्र विद्यमान है। श्रीहर्ष ने प्रसगानुरूप अनेक गेय छन्दो का प्रयोग कर नैषप्रगत वर्णनो को भी हृदयावर्जक बना दिया है।

इस प्रकार हम देखते है कि आनन्दवर्धन ने सुप्तादिको की जिस विशिष्ट योजना को कवि की प्रतिभा का द्योतक स्वीकार कर काव्य में उसकी अवसरोचित योजना को रसवत्ता का सचारक माना है, नैषध मे वह विद्यमान है।

पद-सघटना

पद-सघटना तीन प्रकार की होती है—असमासा, मध्यम-समासा तथा दीर्घ-समासा

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा सघटनोदिता॥ ध्व० ३-६१।

इन तीन प्रकार की सघटनाओ को ही वैदर्भी, पाचाली एव गौडी नामक रीतियो के नाम से तथा उपनागरिका, कोमला एव परुषा नामक वृत्तियो के नाम से अभिहित किया गया है। सघटना माधुर्य, ओज तथा प्रसाद नामक गुणो का आश्रय लेकर रसादिको की व्यजना करती है। वक्ता, वाच्य तथा विषयगत औचित्य सघटना का नियामक होता है

गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा।
रसास्तन्नियमे हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो॥

विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्य ता नियच्छति ।
काव्यप्रभेदाश्रयत स्थिता भेदवती हि सा ॥ ध्व० ३-६२-६३ ।

यद्यपि उपर्युक्त तीनों प्रकारकी सघटनाये सभी रसा की व्यजना कर सकती हैं। परन्तु वक्ता, वाच्य तथा विषयो के भेदोपभेदो का निर्देश करते हुए आनन्दवधन ने कवि या कविनिबद्ध वक्ता के रसभाव-रहित होने पर ही सघटना की स्वतन्त्रता-पूवक योजना करने का निर्देश दिया है। अन्यथा कवि या वक्ता रसभावादि से युक्त हो तो उनके अनुसार असमामा या मध्यम-समासा रचना ही करनी चाहिए

तत्र यदा कविरपगतरसभावो वक्ता तदा रचनाया कामचार । यदापि कविनिबद्धो वक्ता रसाभावरहित तदा स एव । यदा तु कवि कविनिबद्धो वा वक्ता रसभावसमन्वितो रसश्च प्रधानभूतत्वाद् ध्वन्यात्मभूत, तदापि नियमेनैव तत्रासमासामध्यमसमासे एव सघटने। ध्व० पृ० २७५-२७६ ।

आगे उन्होंने रौद्रादि रसो मे तो मध्यम-समासा तथा धीरोद्धत नायक से सम्बद्ध प्रकरणों में दीघ-समामा सटघना को स्वीकार कर लिया है। परन्तु विप्रलम्भ शृगार तथा करुण रसात्मक स्थलो मे व असमासा पद-सघटना करने का ही निर्देश देते हैं

करुणविप्रलम्भयोस्त्वसमासैव सघटना। कथमिति चेत्। उच्यते। रसो यदा प्राधान्येन प्रतिपाद्य, तदा तत्प्रतीतौ व्यवधायका विरोधिनश्च सर्वात्मना परिहार्या । एवञ्च दीघसमासासघटना समासानामनेकप्रकारसभावनया कदाचिद् रसप्रतीति व्यवदधातीति तस्या नात्यन्तमभिनिवश शोभते, विशेषतोऽभिनयार्थे काव्ये ततोऽन्यत्र च विशेषत करुणविप्रलम्भशृगारयो। तयोहि सुकुमारतरत्वात् स्वल्पायामप्यस्वच्छताया शब्दार्थयो प्रतीतिमन्थरीभवति। रसान्तरे पुन प्रतिपाद्ये रौद्रादौ, मध्यमसमासा सघटना, कदाचिद् धीरोद्धतनायकसम्बन्धव्यापारेण दीघसमासापि वा, तदाक्षेपाविनाभाविरसोचितवाच्यापेक्षया न विगुणा भवतीति-सापि नात्यन्त परिहार्या। ध्व० पृ० २७७-२७८ ।

नैषध का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने प्राय रसात्मक स्थलो मे वक्ता तथा वाच्यानुरूप असमासा, मध्यमसमासा अथवा दीर्घ समासा पद सघटना की है। नैषध का अधिकाश भाग असमासा-सघटना-युक्त है। इसीलिए श्रीहर्ष ने नैषध को वैदर्भी रीतियुक्त काव्य कहा है

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि। नै० ३-११६ ।

यद्यपि नैषध मे मध्यम समासा तथा दीघ समासा सघटना भी अनेक स्थानो पर उपलब्ध हो जाती है परन्तु श्रीहर्ष ने मध्यम-समासा तथा दीघ-समासा सघटना वक्तादि के औचित्य का ध्यान मे रखकर ही की है। जैसे सरस्वती के द्वारा किया गया स्वयवर मे उपस्थित राज-समूह का वणन दीघ समासा तथा मध्यम समासों से युक्त होते हुए भी सरस्वती की वाणी के अनुरूप है। इसी प्रकार

विभिन्न वर्णनों में उन्होंने सामासिक पद-योजना की है और वर्णनात्मक स्थलों में दीर्घ-समासा या मध्यम-समासा सघटना आनन्दवर्धन को भी अनभिमत नहीं है। क्योंकि वर्णनात्मक स्थल प्रायः रसभावादि से पूर्णतया युक्त नहीं होते। यदि श्रीहर्ष ने कहीं रसात्मक स्थलों में और विशेष रूप से करुण तथा *विप्रलम्भ-रसात्मक प्रकरणों में मध्यम-समासा सघटना की भी है तो वे उसे सरल* बनाये रखने के प्रति सवदा सजग रहे हैं और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। फलतः मध्यम समासों से युक्त होते हुए भी वे प्रकरण-रसाभिव्यजक हैं। आनन्दवर्धन ने स्वय भी मध्यम-समासा सघटना यदि वह सरल हो तो उसे करुण एव विप्रलम्भ रस के विरुद्ध नहीं माना है

सर्वासु च सघटनासु प्रसादाख्यो गुणो व्यापी।—प्रसादातिशये ह्यसमासापि सघटना करुणविप्रलम्भशृगारौ न व्यनक्ति तदपरित्यागे च मध्यमसमासापि प्रकाशयति। ध्व० पृ० २७६।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने भाषागत वर्ण, पदावयव, पद, वाक्य तथा सघटनादि समस्त अवयवों की नैषध में रसानुरूप योजना की है। उन्होंने सरस्वती के द्वारा श्लिष्ट वाणी से नैषध के कवि को वैदर्भी रीति तथा प्रसादादि गुणों से युक्त हो जाने का वरदान दिलाया है

गुणानामास्थानीं नृपतिलकनारीतिविदिता
रसस्फीतामन्तस्तव च तव वृत्ते च कवितु ।
भवित्री वैदर्भीमधिकमधिकण्ठ रचयितु
परीरम्भक्रीडाचरणशरणामन्वहमहम् ॥ नै० १४-९१ ।

इसमें कोई सदेह नहीं कि श्रीहर्ष ने कवि के लिए जिस वरदान को सर्वोच्च वरदान समझ कर सरस्वती के द्वारा कवि को उसकी प्राप्ति हो जाने की घोषणा करायी है, श्रीहर्ष को वह वरदान प्राप्त हो गया था। नैषध का अधिकांश भाग वैदर्भी रीति से ही युक्त है।

वैदर्भी रीति को प्राचीन-ग्रन्थकारों ने सभी गुणों से समन्वित है स्वीकार किया।

रुद्रट स्त्वाह

असमस्तैकसमस्ता युक्ता दशभिर्गुणैश्च वैदर्भी। सा० द० पृ० ७७१।

अत वैदर्भी रीति में ग्रथित नैषध का समस्त गुणों से युक्त होना स्वत सिद्ध हो जाता है और नैषध की भाषा में निहित रसों का आश्रय लेकर स्थित *रहने वाले गुणों की व्यजना। शक्ति पर अनास्था करने के लिए भी अवकाश नहीं रह* जाता है।

इन सब विशेषताओं से युक्त होते हुए भी नैषध की भाषा में यत्र-तत्र क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग अनायासेन उपलब्ध हो जाता है, इस तथ्य का अस्वीकार नहीं

किया जा सकता । परन्तु क्लिष्ट शब्दो का आधिक्य वर्णनात्मकस्थलो मे अपेक्षाकृत अधिक है । रसात्मक स्थलो मे उनका बाहुल्य नही है । हो सकता है कि श्रीहर्ष के लिए वे शब्द सरल हो और विशिष्ट विद्वान् उन्हे सरल अनुभव करते हो परन्तु सामान्य पाठक के लिए वे व्याख्या सापेक्ष्य हैं ।

प्रबन्ध-योजना

प्रबन्ध रसादिको का मुख्य व्यजक होता है। यह छ प्रकार से रसादिका की व्यजना मे हेतु बनता है–१ विभाव, भाव, अनुभाव तथा सचारियो के औचित्य मे युक्त कथानक का विधान करना, २ रस-प्रतिकूल कथाश का परित्याग तथा रसोपयोगी कथाश की कल्पना का करना ३ रसोपयोगी सधियो तथा सन्ध्यगो, की योजना करना ४ रसादिका का समुचित अवसर पर उद्दीपन तथा प्रशमन करना, ५ आरम्भ से अन्त तक अगी रस का अनुसधान करना तथा ६ अलकारो की रसानुरूप योजना करना

विभावभावानुभावसचार्यौ चित्यचारुण ।
विधि कथाशरीरस्य वृत्तस्योत्प्रेक्षितस्य वा ।।
इतिवृत्तवशायाता त्यक्त्वाननुगुणा स्थितिम् ।
उत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्टरसोचितकथान्वय ।
सधिसन्ध्यगघटन रसाभिव्यक्त्यपेक्षया ।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसपादनेच्छया ।।
उद्दीपनप्रशमन यथावसरमन्तरा ।
रसस्यारब्धविश्रान्तेरनुसधानमगिन ।।
अलकृतीना शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम् ।
प्रबन्धस्य रसादीना व्यजकत्वे निबन्धनम् ।। ध्व० ३-६६-७० ।

अग्रिम पृष्ठो मे नैषधगत प्रबन्ध-योजना पर दृष्टिपात करते हुए हम यह स्पष्ट करने का प्रयास करेगे कि श्रीहर्ष ने नैषधगत प्रबन्ध को रसादिका की व्यजना के अनुरूप बनाने के लिए उपयु क्त विधियो मे किन-किन विधियो का आश्रय लिया है तथा वे इस उद्देश्य मे कहा तक सफल रहे है ।

विभाव-योजना

आनन्दवर्धन ने विभावौचित्य को रस-व्यजना का सर्वप्रथम मूल कारण स्वीकार करते हुए भी स्वय विभावो के औचित्यका निर्धारक मानदण्ड नही बताया है क्योकि वे इसे प्रसिद्ध विषय मानते हैं

तत्र विभावौचित्य तावत् प्रसिद्धम् । ध्व० पृ० ३३६ ।

विभावौचित्यकी निकष स्वरूप इस प्रसिद्धि को यदि भरतादि के द्वारा की

गई विभिन्न रसादिकों के विभावों की सम्यक् प्रतिष्ठा स्वीकार कर लिया जाये जिसे आनन्दवर्धन ने स्वीकार ही किया है तो यह भी मानना होगा कि श्रीहर्ष ने नैषध में विभावों की समुचित योजना की है। नैषधगत रसादिकों की योजना पर प्रकाश डालते हुए हम देख चुके हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध में जिन रसों या भावादिकों की योजना की है उन सभी रसों तथा भावादिकों के विभाव भरतादि के द्वारा *निर्दिष्ट विभावों से भिन्न नहीं हैं। यद्यपि आनन्दवर्धन* ने भरतादि के द्वारा निर्दिष्ट विभावादिकों के ग्रहण को औचित्य-रक्षा का सहज उपाय माना है

इयत्सूच्यते—भरतादिस्थितिं चानुवर्तमानेन महाकविप्रबन्धांश्च पर्यालोचयता स्वप्रतिभां चानुसरता, कविनावहितचेतसा भूत्वा विभावाद्यौचित्यभ्रंशपरित्यागे परः प्रयत्नो विधेयः। ध्व० पृ० ३०८।

परन्तु यदि कोई कवि लोक को आधार बनाकर विभावौचित्य की रक्षा कर रहा हो तो उसे भी असमुचित नहीं कहा जा सकता। अतः श्रीहर्ष ने यदि कहीं पर भरतादि के द्वारा अनिर्दिष्ट विभावों की योजना कर रसादिकों की प्रभावशाली व्यंजना की भी है तो उस श्रीहर्ष की महत्ता का द्योतक ही माना जायेगा। उपर्युक्त तथ्य के समर्थन में यदि यहां पर नैषधगत रसादिकों के विभावों के औचित्य पर कुछ विचार कर लिया जाये तो अनावश्यक न होगा।

शृंगार-विभाव

शृंगार रस के आलम्बन विभाव नायक-नायिका होते हैं

आलम्बनो नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्। सा० द० ३-२९।

नायकों के धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त नामक चार भेद किए गए हैं। यद्यपि उपर्युक्त समस्त नायक प्रकारों को आलम्बन बनाकर शृंगार रस की योजना की जा सकती है, इसीलिए नायिकाओं के प्रति नायकों के अनुराग को आधार मानकर उनके दक्षिणादि भेदों का निर्देश किया गया है (सा० द० ३-३५)। परन्तु यह असंदिग्ध तथ्य है कि शृंगार रस की उन्मुक्त योजना धीरललित नायक को आलम्बन बनाकर ही की जा सकती है।

नायकों के समान नायिकाओं के भी अनेक भेदोपभेद किये गए हैं और कवियों ने *सभी नायिकाओं को आलम्बन बनाकर शृंगार-योजना भी की है।* परन्तु नायिकाओं के अनेक भेदों में स्वीया मुग्धा नायिका को आलम्बन बनाकर की गई शृंगार-योजना में श्रेय तथा प्रेय दोनों की उपलब्धि हो सकती है इस तथ्य को स्वीकार करने में भी किसी को अनुपपत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि स्वीया मुग्धा केवल हमारी मर्यादाओं के अनुरूप होने से ही काम्य नहीं होती अपितु स्वीया मुग्धा के साक्षात्कार से उद्बुद्ध रति वासना अन्य नायिकाओं के साक्षात्कार से उद्बुद्ध रति वासना की अपेक्षा अधिक समय तक स्थिर रह सकने के योग्य भी होती है।

उद्यानगमन, वरभवन तथा रहस्स्थानादि शृगार रस के उद्दीपन विभाव होते हैं। हम आगे देखेंगे कि नैषधगत शृगार रस के विभाव शृ गारोचित ही है।

नायक

जिस सुखी व्यक्ति को व्यसन या दुःख भोगने के उपरान्त पुनः अभ्युदय की प्राप्ति हो जाती है वह प्रधान पुरुष पात्र नायक होता है

व्यसनी प्राप्य दुःख वा युज्यतेऽभ्युदयेन यः ।

तथापुरुषमाहुस्त प्रधानं नायकं बुधाः ॥ ना० शा० २४-२०-२१ ।

उपर्युक्त नायक-लक्षण के आधार पर नल का नैषध का नायक कहा जायेगा। क्योंकि वह नैषध का सर्वप्रमुख पुरुष पात्र है। पहले वह हस के मुख से दमयन्ती का सदेश सुनकर उसकी प्राप्ति के बारे में आश्वस्त था तथा उसका प्रारम्भिक जीवन भी सुखमय था। परन्तु इन्द्रादि देवताओं की याचना सुनने के उपरान्त वह दुःखी हो जाता है और उसकी आशाओं पर तुषारपात हो जाता है। फिर भी अन्त में *दमयन्ती-समागम-प्राप्ति-रूपी अभ्युदय का लाभ उसे हो ही जाता है।* इस प्रकार सुख के उपरान्त व्यसन और व्यसन के उपरान्त पुनः अभ्युदय की प्राप्ति नल को नैषध की नायकता प्रदान कर देती है।

श्रीहर्ष ने नल को धीरललित नायक का स्वरूप प्रदान किया है। नल का यह स्वरूप नैषधगत अगी-शृगार-रस के अनुरूप ही रही है अपितु भरत के निर्देशों के अनुरूप भी है। नल निषध देश का शासक था और भरत के अनुसार नृप को धीर-ललित नायक का स्वरूप ही प्रदान करना चाहिए

देवा धीरोद्धता ज्ञेया स्युर्धीरललिता नृपाः ।

सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ ॥ ना० शा० २४-२८ ।

श्रीहर्ष ने नल के चरित्र में कुछ धीरोदात्त नायक के गुणों का प्रदर्शन भी किया है। कदाचित् इसीलिए प्रकाश-व्याख्याकार ने उसे प्रारम्भ में धीरललित नायक स्वीकार करते हुए भी आगे चलकर धीरोदात्त कह दिया है और डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल ने उसे धीरोदात्त नायक मान लिया है

नायकश्चात्र धीरललितः । नै० प्र० व्या० १ १ ।

हृदंर्दर्मिमा त्व अस्या—यया—नैषधो धीरोदात्तो नलोऽपि समाकृष्यत स्ववशीकृत । नै० प्र० व्या० ३-११६ ।

'नल एक धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किए गए है । नै०प०प० २२१ ।

नल के चरित्र पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने नल के चरित्र में धीरोदात्त नायक के गुणों का उत्कृष्ट सन्निवेश नहीं किया है।

धीरोदात्त नायक महासत्त्व, अतिगम्भीर क्षमावान्, अविकत्थन, स्थिर, निगूढाहकार तथा दृढव्रती होता है

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थन ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत ॥ द० रु० २-४-५ ।

श्रीहर्ष ने अनेक स्थानो पर नलगत उपयुक्त गुणो की ओर सकेत किया है। परन्तु नल के कुछ कार्य उपर्युक्त गुणों के विरुद्ध हैं। जैसे धीरोदात्त महासत्त्वता से युक्त होने के कारण शोक तथा लोभादि विकारों मे अभिभूत नही होता। परन्तु हस तथा दमयन्ती का रुदन नल के अन्त करण को शोकादि विकारो से शून्य नही रहने देता। दमयन्ती-अभिलाषजन्य उसका कामविकार भी सभा मे ही प्रकट हो जाता है (नै० १-५३, ५५)। अत नलगत अतिगम्भीरता पर भी प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है। नल 'आर्जव हि कुटिलेषु न नीति' को आधार बनाकर देवताओं को प्रत्युत्तर देता है। परन्तु इस मानदण्ड को नीति की दृष्टि से यदि प्रशस्य कहा जा सकता है तो क्षमा की दृष्टि से हय भी। क्योंकि अपराधी को ही क्षमा करने अथवा दण्ड देने का प्रश्न उठता है किसी निरपराधी का नही।

धनजय ने नायक के सामान्य गुणों का परिगणन करते हुए उनमे स्थिरता गुण का परिगणन भी किया है

नेता विनीतो—स्थिरो युवा। द० रु० २-१।

हम देख चुके हैं कि धनजय ने धीरोदात्त नायक के गुणो मे भी स्थिरता का उल्लेख किया है। धनिक ने इस आवृत्ति को आवृत्त गुण की उत्कृष्ट योजना करने का द्योतक माना है

यच्च क्वचित् स्थैर्यादीना सामान्यगुणानामपि विशेषलक्षणे क्वचित् सकीर्तन तत्तेषा तत्राधिक्यप्रतिपादनार्थम्। द० रु० स० वृ० पृ० ३६२।

परन्तु श्रीहर्ष ने नल के चरित्र मे स्थिरता की उत्कृष्टता नही प्रदर्शित की है। इन्द्रादि देवताओ का उनकी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन देकर भी नल उनकी प्रार्थना स्वीकार करने मे आनाकानी करता है। यद्यपि नल अन्त मे देवताओं का दौत्यभार स्वीकार कर लेता है। परन्तु नल ने यह कार्य मन से स्वीकार नहीं किया है। देवता उसके ऊपर इसे थोप-सा देते हैं

इत्याकर्ण्य क्षितीशस्त्रिदशपरिषदस्ता गिरस्ताहुगर्भा
वैदर्भी कामुकोऽपि प्रसभविनिहित दौत्यभार बभार। नै० ५-१३७।

उसकी उन्मत्तता उसे दौत्य कार्य का अन्त तक निर्वाह भी नही करने देती। अत नलगत स्थिरता को भी उत्तम कोटि का नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नलगत उदात्तता-सूचक गुण परीक्षा की घडियों मे नल के काम नहीं आते। और यदि नल के उत्तरकालीन जीवन पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्वत स्पष्ट हो जाता है कि नल धीरोदात्त नायक के गुणो की अपेक्षा धीरललित नायक के गुणो से अधिक युक्त ही नही था, अपितु उसके जीवन मे वे गुण घुलमिल से गए थे।

धीरललित नायक निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी तथा मृदु होता है

निश्चिन्तो धीरललित कलासक्त सुखी मृदु । द० रू० २-३ ।

नल के चरित्र मे यह सभी गुण अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं। धनिक के अनुसार सचिवादिकों पर राज्यभार छोड देन के कारण राजा निश्चिन्त हो जाता है और कलाओं का सेवन तथा सुख-भोग मे सलग्न हो जाता है। शृगार-प्रधान होन के कारण वह मृदु भी होता है

सचिवादिविहितयोगक्षेमत्वात् चिन्तारहित । अत एव गीतादिकलाविष्टो भोगप्रवणश्च शृगारप्रधानत्वात् च सुकुमारसत्वाचारो मृदुरिति ललित ।

द० रू० स० वृ० पृ० ३६१।

निश्चिन्तता

नल प्रारम्भ मे भले ही दमयन्ती को प्राप्त करन के लिए प्रयत्नशील रहने के कारण व्यस्त रहा हो परन्तु दमयन्ती को प्राप्त कर लेन क उपरान्त वह अपना राज्यभार मन्त्रियो पर छोड देता है और स्वय दमयन्ती के साथ कामाराधना मे लग जाता है

यस्य मन्त्रिषु स राज्यमादराधराराध मदन प्रियासख । नै० १८ ३ ।

अत नल को यदि निश्चिन्तता स युक्त कहा जाए तो असमुचित न होगा।

कलासक्तता

हम देख चुके हैं कि धनिक ने कलासक्त गुण को स्पष्ट करते हुए कला पद को वात्स्यायन के द्वारा निर्दिष्ट गीतवाद्यादि चौसठ कलाओ का वाचक तथा भोग-प्रवणता को कलासक्तता का पूरक मान लिया है। नल-चरित्र पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वह कलासक्त भी था और भोग प्रवण भी था। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित स्थलो को उद्धृत किया जा सकता है

गीत-कला

नल के भवन के सम्मुख अहर्निश किन्नरो का गान हुआ करता था

नानिश त्रटति यत्पुर पुरा किन्नरीविरुतगीतिझङ्कृति ॥ नै० १८-१६ ।

वाद्य-कला

दमयन्ती की सखिया नल को वीणा सुनाया करती थीं

शिष्या कलाविधिषु भीमभुवो वयस्या वीणामृदुक्वणनकर्मणि या प्रवीणा ।
आसीतमेतमुपवीणयितु यदुत्था गन्धर्वराजतनुजा मनुजाधिराजम् ॥

नै० २१-१२४।

नृत्य-कला

नल भवन में सम्मुख नृत्य करने वाले स्त्री-पुरुषों के कंकणों का शब्द नल-दमयन्ती के सुरत शब्दों को तिरोहित कर लिया करता था

यत्रर्वणन्वर्वणवर्वङ्कुरुतैर्ग्यवनीविरावितिनाम् ।
करणालिखलहैरपनृत्यता तिरोहित सुरतकूजित तयो ॥ नै० १८-१७ ।

आलेख्य-कला

उसका भवन सरस्वती तथा ब्रह्मा के चित्रों से व्याप्त था

भित्तिचित्रलिखिताखिलक्रमा यत्र तस्थुरितिहासकथा ।
पद्मनन्दनसुताग्निसुताभ्यामाप्तमन्तरमतानि मतानि ॥ नै० १८-२० ।

पुष्पास्तरण-कला

नल भवन की पुष्प शय्या पृथ्वी के तिलक के समान प्रतीत होती थी

यदभुत क्वचन सूनशय्यया भाजि भूतिलकप्रगल्भता ॥ नै० १८-८ ।

मणिभूमिकाकर्म-कला

नल ने मन्त्रियो पर राज्यभार छोडकर अनेक वर्णों के मणियों से निर्मित भवन में दमयन्ती के साथ कामदेव की आराधना प्रारम्भ की थी

नवकवणमणिकोटिकुट्टिमे हेमभूमिभृति सौधभूधरे । नै०१८-३ ।

ऐन्द्रजाल-कला

उसका भवन ऐन्द्रजालिक योगों से भी सम्पन्न था

कुत्रचित्रचितचित्रशालिक क्वापि वास्थिरविचित्रशालिक । नै० १८-११ ।

सूत्रक्रीडा-कला

उसके आवास भवन में सूत्र नियन्त्रित कठपुतलियों का अद्भुत नृत्य भी हुआ करता था

सूत्रयन्त्रविशिष्टचेष्टयाश्चर्यसञ्जिबहुशालभञ्जिक ॥ नै० १८-१३ ।

वीणाडमरुकवाद्य-कला

नल दमयन्ती का सुरत-कूजित कभी नृत्य करने वाले स्त्री-पुरुषों के कंकण रव में तिरोहित हो जाता था तो कभी वीणा एवं वेणु के स्वर में तिरोहित हो जाया करता था। नै० १८-१७ ।

नाटकाख्यायिका-कला

उसके भवन मे नायिकाओ का अभिनय भी होता था

गौरभानुरुरगहिनीम्मगेद्वृनभावमितिवृत्तमाश्रिता ।
रेजिरे यदजिरेऽभिनीनिभिर्नायिका भरतनारनीनुगा ॥ नै० १८-२३ ।

शुकसारिका-प्रनपन-कला

दमयन्ती की सखिया नल को प्रसन्न करने के लिए शुक तथा सारिकाओ को लेकर उसके पास जाती थी । शुक सखियो के गान की अनुवृत्ति करता था ।

नै० २१ १२२-१२३,१२६ ।

उपयुक्त समस्त कलाओ का वात्स्यायन ने चौसठ कलाओ के अन्तगत परिगणन किया है

गीतवाद्यम् —इतिचतु षष्टिरगविद्या । कामसूत्रस्यावयविन ।

का० सू० पृ० ८३-८८ ।

उपयुक्त कलाओ के अतिरिक्त अन्य अनक कलाओ का प्रदर्शन भी श्रीहर्ष ने नल-चरित्र मे किया है।

भोगप्रवणता

नल की कलासक्तता के समान श्रीहर्ष ने उसकी भोगप्रवणता का भी सूक्ष्म एव विस्तृत अकन किया है। इस सम्बन्ध मे स्वय कुछ कहने की अपेक्षा श्रीहर्ष के कथनो को उद्धृत कर देना ही पर्याप्त होगा

तत्र सौधसुरभूरुहेरयोरावियसुरथकामकेतय ।
ये महाङ्कविभिरप्यवीक्षिता पासुलाभिरपि ये न लिक्षिता ॥
न स्थली न जलधिर्नकानन नाद्रिभूर्न विषयो न विष्टपम् ।
क्रीडिता न सह यत्र तेन सा सा विधैव न यया यया न वा ॥

नै० १८-२६, ८८ ।

श्रीहर्ष के यह कथन केवल अतिशयोक्ति मात्र ही नहीं है। उन्होंने नल-दमयन्ती की विभिन्न सभोग क्रियाओ का सूक्ष्म अकन कर अपने कथनो को चारितार्थ भी कर दिया है।

मृदुता

हस के करुण क्रन्दन को सुनकर नल के नेत्रो से अश्रुधारा का प्रवाहित होने लगना तथा दमयन्ती के करुण विलाप को सुनकर नल का उन्मत्त हो जाना सलगन मृदुता के द्योतक हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीहर्ष ने नल के चरित्र मे धीरललित नायक के समस्त गुणो का सन्निवेश किया है। परन्तु नल को धीरललित नायक का स्वरूप प्रदान करते हुए भी श्रीहर्ष ने नल के चरित्र मे धीरोदात्त नायक के गुणो का प्रदान कर नल-चरित्र के महत्त्व को कम नही होने दिया है। धीरोदात्तनायक-गुणो से युक्त होने के कारण नल केवल विलासी शासक मात्र नही प्रतीत होता अपितु वह एक अनासक्त भोगी के समान हमारे सम्मुख उपस्थित होकर बरबस हमारी श्रद्धा का पात्र बन जाता है। नल की इस अनासक्तिपूर्ण भोगप्रवणता की ओर श्रीहर्ष ने स्वय सकेत भी कर दिया है

आत्मवित् सह तया दिवानिश भोगभागपि न पापमाप स ।
आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनस न लिम्पति ॥ नै० १८-२॥

श्रीहर्ष के द्वारा नल के चरित्र मे प्रदर्शित इन उभयविध काम्य गुणो के सम्मिश्रण के कारण नल का राम तथा युधिष्ठिर के साथ भले ही न बिठाया जा सके, परन्तु अभिमानवीयता से रहित नैषधगत नल-चरित्र भी अशास्त्रीय, कम समादरणीय अथवा अननुकरणीय नही है। नल के चरित्र मे गुम्फित उदात्त एव ललित गुणो का यह मणिकाचन सयोग नैषधगत शृगार-व्यजना को भी उदात्त तथा ललित बना देता है।

नायिका

नैषध की नायिका दमयन्ती है। उसका प्राजल चरित्र भी नैषध मे प्रधान रूप से अकित है। भरत के अनुसार नृप पत्नी नायिका होती है

दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा।
एतास्तु नायिका ज्ञेया नानाप्रकृतिलक्षणा ॥ ना० शा० २४-२३॥

परन्तु दमयन्ती को नायिकात्व की प्राप्ति केवल निषधाधिपति नल की पत्नी होने के कारण ही नही हो जाती। वह भी नल के समान ही नैषध मे प्राधान्येन अकित है। श्रीहर्ष ने दमयन्ती को शृगार रस के अत्यन्तानुरूप स्वीया मुग्धा नायिका का स्वरूप प्रदान किया है। स्वीया नायिका सुशीलता तथा सरलता आदि गुणो से युक्त होती है। स्वीया की उपभेद-स्वरूप मुग्धा नायिका नवीन अवस्था वाली, नूतन कामविकार से युक्त, रतिकाल मे विपरीत आचरण करने वाली तथा मृदु-कोपना होती है

स्वीयाशीलार्जवादि युक्। द० रू० २-१५।

मुग्धा नववय कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि। द० रू० २-१६।

नैषधगत दमयन्ती के चरित्र मे यह सभी गुण उपलब्ध हो जाते है। उदाहरण स्वरूप अधोलिखित स्थलो को उद्धृत किया जा सकता है जो कि दमयन्तीगत मुग्धात्व एव नैषधगत शृगार दोनो के ही युगपत् अभिव्यजक हैं।

सुशीलता

दमयन्ती यद्यपि नल के वियाग के कारण मूर्च्छित थी परन्तु जब पिता भीम को वह अपने पास उपस्थित देखती है तो वह तत्काल ही चेतनायुक्त हो जाती है (नै० ४-११८)। इसी प्रकार प्रतिदिन उसका पिता की सेवा में जाना तथा माता को प्रणाम करने के लिए जाना भी सुशीलता का द्योतक है। नै० १-३४, ६-४८।

सरलता

दमयन्ती सरल इतनी थी कि आकाशचारी हंस को पकड़ने का प्रयत्न करने लगती है (नै० ३-४)। इसी प्रकार वह चक्रवाकों को परस्पर वियुक्त होता हुआ देखकर शोकयुक्त हो जाती है। नै० २१-१४४-१४८।

अवस्था

दमयन्ती की अवस्था भी नवीन ही थी। वह अभी वय संधि की सीमा को पार नहीं कर पायी थी

वयसी शिशुता तदुत्तरे सदृशि स्वाभिविधि विधुत्सुनी।
विधिनापि न रामरेखया कृतसीम्नी प्रविभज्य रज्यत ॥ नै० २-३०।

काम की नवीनता

दमयन्ती का कामविकार भी नवीन था। नल गुण श्रवण के साथ ही वह उत्पन्न हुआ था

यथोह्यमान खलुभोगभाजिना प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम्।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलावरुद्ध वयसैव वशित ॥ नै० १-३२।

रतिवामता

रतिकालीन वामता की वात्स्यायन तथा भरत दोनों ने प्रशसा की है। अभिनव के अनुसार तो वह शृगार रस का प्राण होती है

तथा हि—सम्भोगेऽप्येकघनशर्करास्वादस्यानीयतापरिहाराय वैषम्य गोत्र-स्खलितस्पर्धामन्युद्धा कलहविप्रलम्भस्तुभूत कवयो निवध्नन्ति। वामो हि काम। कामकासनम् २-७१ इति वात्स्यायनादिभिरभिहितम्। मुनिनापि वक्ष्यते यद्वामाभिनिवेशित्वम् इति। ना० शा० अभि० पृ० ३०८।

दमयन्ती में यह वामता चरम सीमा पर पहुँच गई है। नैषधगत समस्त सभोग-वर्णन दमयन्ती की वामता से युक्त है। श्रीहर्ष का अधोलिखित कथन उसके रतिकालीन समस्त व्यापारों में पूर्णतया चारितार्थ हुआ है

वेश्मपत्युरविशन्न मान्द्यमाद् वेशिनापि शयनं न साभजन्।
भाजितापि सविधं न मास्वरन् श्वापितापि न च सम्मुखाभवन्॥
नै० १८-३४।

मृदुकोपनता

दमयन्ती कुपित तो हो जाती है परन्तु उसका कोप भी स्थायी नहीं रहता। और कुपित भी वह मात्रा में ही होती है। कुपित होकर केवल मौन को ही धारण करती है। जब नल उस उत्सुक छोड़कर सन्ध्योपासन करने के लिए चला जाता है तो वह कुपित हो जाती है (नै० २०-३-७)। परन्तु जब नल कुछ मीठी बातें करके उसको प्रणाम करने के लिए उद्यत हो जाता है तो उसका कोप शान्त हो जाता है और वह अपने कटाक्षों से नल को मोह लेती है। नै० २०-१४-१६।

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त दमयन्ती में सलज्जता तथा पतिप्राणता आदि ऐसे गुण भी पूर्णतया विद्यमान थे जिन्हें स्वीया तथा मुग्धा नायिका के गुणों में निर्दिष्ट न होते हुए भी स्त्रियों का भूषण माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध में शृंगार-रसोपयोगी आलम्बन विभावों की ही योजना की है।

आलम्बन विभावों के समान श्रीहर्ष ने नैषध में उद्दीपन विभावों की भी शास्त्र-सम्मत योजना की है। भरत ने अलङ्कार, इष्टजन विषय, वरभवन तथा उद्यान-गमनादि को शृंगार रस का विभाव स्वीकार किया है। परवर्ती विवेचकों के अनुसार इन्हें उद्दीपन विभाव के नाम से अभिहित किया जा सकता है। श्रीहर्ष ने इन उद्दीपन विभावों की भी नैषध में यत्र-तत्र अवसर के अनुरूप विशद योजना की है। चन्द्रिका, रहस्स्थान नायिकाओं एवं नायकों के सौंदर्य को भी उद्दीपन विभाव स्वीकार किया गया है। श्रीहर्ष ने नैषध में इनकी भी समुचित योजना की है।

अंग-रस-विभाव

श्रीहर्ष ने शृंगार रस के समान अन्य अंग रसों के विभावों की योजना भी भरतादि के निर्देशों के अनुरूप ही की है। हास्यादिक रसों की योजना पर प्रकाश डालते हुए हम देख चुके हैं कि उन्होंने हास्य रस की व्यंजना भरत के द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न विकृतियों तथा नाट्यादि को विभाव बनाकर ही की है। इसी प्रकार करुण रस के व्यंजक इष्टवियोग तथा धर्मोपघातादि विभाव भी भरतसम्मत हैं। श्रीहर्ष ने रौद्र रस की व्यंजना अधिक्षेप तथा अनृत वचनों को विभाव बनाकर की है और भरत ने इन्हें रौद्र रस का विभाव माना ही है। नैषध में वीर रस के दानवीर भेद की ही विशद योजना की गई है। दानवीर के विभाव सुपात्र याचक तथा अध्यवसायादि होते हैं। श्रीहर्ष ने दानवीर की व्यंजना करते हुए इन्हें ही

विभाव बनाया है। इसी प्रकार नैषधगत राजापराधादिजन्य भयानक रस, अहृद्यदर्शनादिजन्य बीभत्स रस, दिव्यदर्शनादिजन्य अद्भुत रस तथा परमात्म-स्वरूप-ज्ञानादि-जन्य शान्त रस की व्यजना में भी शास्त्रसम्मत विभावों की ही योजना की गई है।

नैषधगत-रसाभासादिकों एव भावों पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने उनकी व्यजना में भी शास्त्रानुमोदित विभावों का ही प्रयोग किया है।

भरत तथा अभिनव ने रसों की उत्पादी जनकता का निर्देश करते हुए कुछ ऐसे स्थलों की ओर सकेत किया है जहा पर कुछ रसादि ही अन्य रसादिकों के व्यजक बन जाते हैं। श्रीहर्ष ने नैषध में ऐसे अनेक अवसरों की भी समुचित योजना की है। उदाहरणस्वरूप अधोलिखित प्रकरणों को लिया जा सकता है।

शृगाराभासादिकों को हास्य रस का व्यजक माना जाता है। हम देखते हैं कि दमयन्ती-स्वयवर में भाग लेने के लिए आए हुए अनेक राजाओं को चित्रित करते हुए उनकी दमयन्ती को प्राप्त करने की अभिलाषा का चित्रण कर श्रीहर्ष ने शृगाराभास की व्यजना की है। राजाओं की अभिलाषा का चित्रण करने के साथ ही श्रीहर्ष ने दमयन्ती की दासियों के द्वारा उपहास गर्भित वचन कहलाकर हास्य-रस की योजना के लिए अवसर निकाल लिया है। नै० १२-२१-२२ ५० ५६।

इसी प्रकार चक्रवाक-वियोगदर्शनजन्य दमयन्तीगत शोक की व्यजना जिसे अबन्धु विषयक होने के कारण अभिनव के अनुसार करुणाभास कहा जाएगा, नल का सम्मित बना देती है। नै० २१-१८९।

भरत ने रौद्र रस को करुण का जनक माना है। परन्तु रौद्र रस के बधबन्धादि कर्म करुण रस के जनक होते हैं। श्रीहर्ष ने नैषध में बधबन्धादि की योजना ही नहीं की है। अत नैषधगत रौद्र करुण रस की सृष्टि नहीं कर पाता। परन्तु रौद्र रस भयानक रस का भी जनक होता है और श्रीहर्ष ने रौद्र रस को भयानक रस का व्यजक बनाया ही है। इन्द्रादि देवताओं का उग्ररूप कलि को भयभीत कर देता है। नै० ७१-१०७-१०८।

शृगार को करुण रस का जनक भी स्वीकार किया गया है। इष्ट की अप्राप्ति का निश्चय करुण रस का जनक बन जाता है। ऐसी स्थिति में इष्ट समागमकल्पनाएं करुण रस की पोषक बन जाती हैं। हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नल की प्राप्ति की सम्भावना के विनष्ट हो जाने से दमयन्ती को शोकाकुल प्रदर्शित कर यहाँ पर भी शास्त्र का ही अनुगमन किया है। नै० ९-८८-१००।

वीर रस भयानक, अद्भुत तथा शृगार तीन रसों का जनक होता है। श्रीहर्ष ने नैषध में वीर रस से इन तीनों रसों की व्यजना की है। कलि नल के नगर में जहाँ कहीं भी जाता है, उसे धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न होती हुई दृष्टिगत होती हैं

जिसे देखकर वह भयभीत हो जाता है (नै० १७-१६२-२०७)। यद्यपि धार्मिक क्रियाओ को भय का विभाव बनाना उचित नही प्रतीत होता। परन्तु कलि जैसे पातकी मे तो धर्माचरण भय ही उत्पन्न करेगा। इसी प्रकार नल का दान-विषयक उत्साह भी विस्मयजनक है। नैषध के आरम्भ मे ही हम देखते है कि तीनो लोको की सुन्दरियां वीर नल को प्राप्त करना चाहती थी। नै० १-२६-३०।

भरत तथा अभिनव के द्वारा अनिर्दिष्ट कुछ रसादिकों से अन्य रसों की व्यंजना भी हो सकती है। वस्तुत महाकाव्य इस परिवर्तनशील जगत् का प्रतिरूप होता है जिसे कुछ निश्चित नियमो मे पूर्णतया आबद्ध कर देना न तो सम्भव ही है और न काम्य ही। अत शास्त्र की इयत्ता को एक सीमा रेखा न मानकर निर्देशक सिद्धान्त की मान्यता प्रदान करना ही समीचीन प्रतीत होता है। अत शृगाराभास को यदि करुण रस का जनक स्वीकार किया गया है तो एक समर्थ कवि शृगाराभास को क्रोध का हेतु भी बना सकता है। जैसा कि श्रीहर्ष ने बनाया है। दूतरूप नल के द्वारा दमयन्ती के सम्मुख किया गया इन्द्रादि देवताओं का प्रणय-निवेदन दमयन्ती को क्रोधित कर देता है। नै० ६-६१-६३।

इसी प्रकार नैषध म कुछ ऐसे प्रकरण भी हैं जहा पर श्रीहर्ष ने परम्परा से प्रत्यक्षेण अननुमोदित विभावो के द्वारा कुछ रसो की व्यंजना की है। उदाहरण स्वरूप कलि-चारण के द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था आदि के लिए गए उपहास तथा कलि के द्वारा किए गए देवताओ के उपहास को लिया जा सकता है। परन्तु इन प्रकरणो की अवतारणा ऐसे अवसर मे की गई है कि कलि-चारण के द्वारा किया गया वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि का उपहास वस्तुत वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि की उपहास्यता को प्रकट करने की अपेक्षा चारण की अज्ञता तथा उपहास्यता को प्रकट करता है। इसके साथ-साथ उसका यह अतात्विक प्रलाप इन्द्रादि देवताओ के क्रोध का विभाव बन जाता है। कलि के द्वारा किए गए देवताओ के उपहास मे यद्यपि अनौचित्य है। श्रीहर्ष को कम से कम देवताओ को उपहास का पात्र नही बनाना चाहिए था। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वह भी अनुचित नही प्रतीत होता। देवताओं ने सच्चे नल को धोखा देने के लिए कोई कसर नहीं छोडी थी। इसीलिए श्रीहर्ष ने उन देवताओ का उपहास कराने मे कदाचित सकोच नही किया। परन्तु उन्होने यह उपहास कराया कलि के द्वारा ही है। अत वह अनुचित नहो प्रतीत होता। चारण तो देवताओ से डर गया था। परन्तु कलि उनसे डरने वाला नही था। जब देवता उसका उपहास करने पर उतर आए थे तो वह देवताओ के इस कार्य को कैसे सहन कर लेता। वह नल तो था नही। इस प्रकार श्रीहर्ष को इन्द्रादि देवताओं का उपहास करने का एक अच्छा अवसर हाथ लग जाता है और वे कलि के द्वारा उनका उपहास कराने मे सकोच नहीं करते। नल जैसे व्यक्ति को धोखा देने वाले देवताओ का वे यदि और कुछ नहो कर सकते थे, उनके कार्यो

के बारे मे यदि स्वय कोई टिप्पणी नही कर सकते थे तो कम मे कम कवि के द्वारा उनका उपहास तो करा ही सकते थे। क्योकि कलि तो कलि ही था। वह उचित-अनुचित सब कुछ कर सकता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषधगत रसादिको की व्यजना समुचित विभावो की योजना कर ही की है। यदि कही पर उन्होने परम्परया अनुमोदित विभावो की योजना की भी है तो किसी विशेष परिस्थिति तथा विशिष्ट पात्रा की प्रकृति को ध्यान मे रखकर की है। अत वह भी असमुचित प्रतीत न होकर समुचित ही प्रतीत होती है।

भाव-योजना

सभी स्थायी तथा व्यभिचारी आदि भाव विभावादिका से व्यक्त होते हैं। अत भावा का औचित्य भी विभावादिको के औचित्य पर ही निभर करता है। परन्तु केवल विभावादिको के औचित्यपूर्ण सनिवेश से ही भाव औचित्ययुक्त नही हो सकता। अपितु जिस पात्र के भावो को विभाव-साक्षात्कार के अनन्तर उद्बुद्ध किया गया हो उस पात्र की प्रकृति का औचित्य भी भावौचित्य का हेतु होता है। इसीलिए आनन्दवर्धन ने भावो के व्यजक विभावादिका का औचित्येन सनिवेश करने के साथ-साथ प्रकृत्यौचित्य की ओर पृथक् रूप से ध्यान आकृष्ट कर दिया है और प्रकृत्यौचित्य को भावौचित्य का मूल मान लिया है। वस्तुत भावो का काव्य मे अभिधान तो होता नही, उनका तो किमी पात्र म उद्बोध व्यक्त किया जाता है। अत जिस पात्र मे जिस भाव का उद्बोध अकित किया गया हो उस पात्र की प्रकृति यदि उस भाव के योग्य हो तभी उस भाव का औचित्ययुक्त कहा जा सकता है

भावौचित्य तु प्रकृत्यौचित्यात्। प्रकृतिर्हि उत्तममध्यमाधमभावेन, दिव्य-मानुषादिभावेन च विभेदिनी। तायथायथमनुसृत्यासकी र्ण स्थायीभाव उप-निबध्यमान औचित्यवान् भवति। ध्व० पृ० २६६।

आनन्दवधन ने दिव्य तथा मानुष एव उत्तम मध्यम तथा अधमादि प्रकृतियो के अनुरूप उनमे उत्साह, रति तथा विस्मयादि स्थायी भावा का उपनिबन्धन करने का निर्देश करते हुए प्रकृत्यौचित्य के विपरीत उपनिबद्ध भावो को उपहास्य, हेय, असह्य एव अनुचित अभिहित किया है और इस प्रमाद का एक दोष माना है। (ध्व० पृ० ३००-३०७)। अत प्रसगवश नैषधगत पात्रा की प्रकृति तथा उन पात्रो के व्यक्त भावो के औचित्यानौचित्य पर एक दृष्टिपात कर लिया जाए।

शृगारादि रसो के स्वरूप पर विचार करते हुए हम उन रसो के अनुरूप प्रकृति का निर्देश कर चुके है। समस्त नैषध पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने जिन पात्रा के स्थायी आदि भावो का उपनिबन्धन कर शृगारादि

रसो की योजना की है उन पात्रों मे उस रस के अनुरूप प्रकृति को सूचित करने वाले गुणा का अकन करन मे भी श्रीहर्ष ने प्रमाद नही किया है। अत उन पात्रो के उन गुणों पर दृष्टिपात कर यह अनायास ही जाना जा सकता है कि श्रीहर्ष ने भावों का उपनिबन्धन प्रकृति के अनुरूप किया है या विपरीत किया है।

रतिभाव योजना

श्रीहर्ष ने नैषधगत शृगार रस की योजना नल तथा दमयन्तीगत स्थायी भावों की व्यजना कर की है और हम देख चुके हैं कि शृगार रस उत्तमयुव-प्रकृति-स्वरूप होता है। नैषध मे विभिन्न स्थानो पर अकित नल दमयन्ती के विभिन्न गुणो पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नल तथा दमयन्ती दोनों ही युवा एव उत्तम-प्रकृति-युक्त थे।

नल-दमयन्ती-अवस्था

हम देख चुके है कि दमयन्ती अभी वय सन्धि मे ही विद्यमान थी और नल के शरीर को भी यौवन न आलिंगन मे भर लिया था

सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वन वपुस्तथालिंगदथास्य यौवनम्॥ नै० १-१६।

प्रकृत्यौचित्य

भरत न विभिन्न प्रकार की प्रकृतियो के सूचक गुणो का दो स्थानों पर तईसवे तथा चौबीसवे अध्याय मे निर्देश किया है। अभिनव के अनुसार तेईसवें अध्याय मे निर्दिष्ट गुण कामोपचार-विषयक है तथा चौबीसवें अध्याय मे परिगणित गुण सर्वव्यवहार-विषयक है

तत्र हि कामोपचाराभिप्रायेण प्रकृतित्रैविध्य व्याख्यातम्। इह तु सर्वव्यवहार-विषयमिति विशेषो दृश्यते। ना० शा० अभि० पृ० २५०।

भरत न स्वय भी तईसवे अध्याय मे उपनिबद्ध नायक-प्रकृति विभाजन को स्त्रीसप्रयोग-विषयक नाम स अभिहित किया है

स्त्रीसप्रयोगविषय ज्ञेया पुन्पास्त्वमी पच। ना० शा० २३-५३।

अत नल-दमयन्ती की प्रकृति परीक्षा करन के लिए इन दानो के चरित्र मे निहित कामोपचार-विषयक तथा सर्वव्यवहार-विषयक उभयविध गुणो पर विहगम दृष्टिपात कर लिया जाय।

कामोपचार-विषयक उत्तमता-सूचक गुण-नल-तथा-प्रकृति

भरत न निम्नलिखित नायक-गुणो को कामोपचार-विषयक उत्तमता का सूचक माना है

यो विप्रियं न कुरुते नार्या किंचिद्विरागमज्ञालम्।
अज्ञानेप्सितहृदय स्मृतिमान्धृतिमान् स तु ज्येष्ठ ॥
मधुरस्त्यागी राग न याति मदनस्य चापि वशमेति ।
अवमानितश्च नार्या विरज्यते चोत्तम स पुमान् ॥ ना० शा० २३-५५-५६ ।

श्रीहर्ष ने नल को इन सभी गुणों से विभूषित किया है। उदाहरण-स्वरूप नलगत उपर्युक्त गुणों के सूचक अधोलिखित प्रकरणों को उद्धृत किया जा सकता है।

नल मधुगोष्ठी में दमयन्ती के सामने ही अन्य स्त्रियों से मनोविनोद करने लगा था। परन्तु दमयन्ती की वक्र दृष्टि देखते ही वह उन स्त्रियों का मनोविनोद करना बन्द कर देता है और उन स्त्रियों के सामने ही दमयन्ती के पैरों पर गिर पड़ता है (नै० २०-८०)। वह स्वगत दमयन्ती-विषयक अभिलाषा को गुप्त रखने में अपने को असमर्थ पाकर उपवन विहार के लिए चला जाता है। परन्तु अपनी अभिलाषा को प्रकट नहीं होने देता(नै० १-५५)। चौदहों विद्याओं का वह सम्यक् ज्ञाता था (नै० १-४)। कामदेव जब उस पर विजय पाने के लिए शरसंधान करता है तो तीनों लोकों की विजय करने से प्राप्त उसका यश संशय में पड़ जाता है (नै० १-३३)। अपने मधुर दर्शन से वह संसार भर को तृप्त कर सकता था (नै० ८-३०)। सुमेरु पर्वत को विभाजित कर याचकों को न दे पाने के कारण तथा समुद्र को स्वल्प-जल लेकर मरुस्थल न बना सकने के कारण वह अपने को अयश युक्त मानता था (नै० १-१६)। दमयन्ती को हृदय से चाहते हुए भी वह उसको अपना अथवा देवताओं का वरण करने के पूर्व सोच विचार कर लेने की सम्मति देता है (नै० ९-१३८-१३५)। विधिविधान-वशात् वह दमयन्ती में अनुरक्त भी हो जाता है(नै० १-८९)। दमयन्ती ने नैषध में कहीं पर भी नल का अपमान नहीं किया है। अतः दमयन्ती से विरक्त हो जाने की नल को आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। यदि श्रीहर्ष ने नलगत उपर्युक्त अन्तिम गुण को प्रदर्शित करने के मोह में दमयन्ती के किसी वैसे, नल का अपमान करने वाले कार्य की ओर संकेत किया होता तो वे नल को दमयन्ती से विरक्त हो जाने का उल्लेख कर नल को उस अन्तिम गुण से विभूषित तो कर सकते थे परन्तु दमयन्ती का वैसा व्यवहार उसके चरित्र को कलुषित कर देता। अतः श्रीहर्ष ने नलगत उपर्युक्त अन्तिम गुण को प्रदर्शित करने के लिए अवसर ही नहीं निकाला है। इस गुण को प्रदर्शित करने का अवसर न मिलने के कारण यह भी नहीं कहा जा सकता कि स्त्री के द्वारा अपमानित किये जाने पर भी नल उससे विरक्त नहीं होता।

सर्व व्यवहार विषयक उत्तमता सूचक गुण तथा नल-प्रकृति

भरत ने अधोलिखित नायक-गुणों को सर्व-व्यवहार-विषयक उत्तमता का

सूचक माना है

जितेन्द्रियज्ञानवती नानाशिल्पविचक्षणा ।
दक्षिणाधमहालक्ष्या भीतान्त परिमानवती ॥
नानाशास्त्रार्थसपन्ना गाम्भीर्यौ दार्यशालिनी ।
स्थैर्यत्यागगुणोपेता ज्ञेया प्रकृतिरुत्तमा ॥ ना० शा० २४-२-३ ।

नल उपयुक्त सभी सर्व-व्यवहार-विषयक उत्तमता-सूचक गुणों से भी युक्त था। निम्नलिखित स्थलो पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्वत स्पष्ट हो जाता है।

भीम के अन्त पुर मे भ्रमण करते हुए नल को कामदेव के द्वारा बिछाया गया ललनाओं के विलासो का जाल भी फास नहीं पाता (नै० ६-१६)। अहर्निश दमयन्ती के साथ सभोग करते रहने पर भी ज्ञान मे निमग्न होने के कारण उसके मन को पाप स्पर्श नहीं कर पाता (नै० १८-२)। उसका पत्रावली-रचना-कौशल दमयन्ती के विस्तीर्ण वक्ष पर ही पूर्णतया प्रदर्शित हो सकता था (नै० ३-११८)। करद राजाओ से प्राप्त रत्न-राशि को वह नवागतुक राजाओ म वितरित कर देता है (नै० २१ ४-५)। उसके राज्य मे अधम तक तपस्या किया करता था (नै० १-७)। उसकी वियोग व्यथा को केवल उसके अन्तरग मित्र ही जानते थे (नै० १-५६)। चक्रवाक-वियोग-दर्शनजन्य दमयन्तीगत भय को वह हसी मे ही उडा देता है (नै० १८ ६६)। शास्त्रज्ञानरूपी तृतीय नेत्र से युक्त होने के कारण वह शकर का अवतार प्रतीत होता था (नै० १-६)। कामपीडित होते हुए भी वह भीम से दमयन्ती की याचना नहीं करता (नै० १-५०)। इन्द्रादि देवताओ को वह अपना जीवन तक दान मे दे देने के लिए उत्सुक हो जाता है (नै० ५-८७)। उसके हृदय मे निहित दमयन्ती के अनुराग को देवताओ का भय तक नहीं दूर कर पाता। (नै० ६-१३५)। ब्रह्मा के द्वारा याचको के भाग्य मे लिखी गई दरिद्रता को वह दारिद्र्य-दरिद्रता मे परिणत कर देता है (नै० १-१५)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नल को कामोपचार-विषयक तथा सर्व-व्यवहार-विषयक उभयविध उत्तमता-सूचक गुणो से विभूषित कर उसे शृगार रस का समुचित पात्र बना दिया है। अत श्रीहर्ष के द्वारा नल को आश्रय बना कर की गई रति भाव की व्यजना को औचित्ययुक्त ही कहा जाएगा। क्योकि रति भाव का आश्रय नल रति भाव के अनुरूप उत्तम-प्रकृति-सूचक गुणों से विभूषित जो है।

कामोपचार-विषयक उत्तमता-सूचक गुण तथा दमयन्ती-प्रकृति

भरत ने निम्नलिखित नायिकागत-गुणो को कामोपचार-विषयक उत्तमता का सूचक स्वीकार किया है

या विप्रियेऽपि निष्ठ्यूत प्रियं वदति नाप्रियम् ।
न दीर्घरोषा च तथा कलासु च विचक्षणा ॥
शीतशोभाकुलाधिक्यं पुरुषैर्या च काम्यते ।
कुशला कामतन्त्रेषु दक्षिणा रूपशालिनी ॥
गुह्यानि कारणाद्दोषं विगतेर्ष्या ब्रवीति च ।
कार्यकालविशेषज्ञा सुरूपा सा स्मृतोत्तमा ॥ ना० शा० २३-३६-३८ ।

नैषध पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि दमयन्ती उपयुक्त सभी गुणों से युक्त थी। जैसे मधुगोष्ठी में नल को अन्य स्त्रियों का मनोविनोद करता हुआ देखकर भी वह नल से अप्रिय भाषण नहीं करती (नै० २०-८०)। दैनिक विधियों को सम्पन्न करने के लिए नल के चले जाने पर वह मन में रुष्ट तो हो जाती है परन्तु नल के अनुनय विनय करने पर उसका क्रोध तत्काल ही शान्त भी हो जाता है (नै० २०-७-२५)। वह चित्र-कला तथा काव्य-कला में भी निपुण थी। अनुमान में वह नल का तथा अपना चित्र बनाकर उसे देखती है (नै० २०-७७)। हंस उसकी श्लिष्ट वाणी को सुनकर उसे श्लेष-कवि की उपाधि तक दे देता है। (नै० ३-६६)। पृथ्वी का राजसमूह ही नहीं इन्द्रादि देवता तक उसको प्राप्त करने के लिए लालायित थे (नै० ५-३२, २-८६)। नल के साथ समागम करते हुए वह किसी विधि तथा स्थान को असम्भुक्त नहीं रहने देती (नै० १८-८४)। जब नल ईश्वराराधन करता था तब वह भी ईश्वराराधन करती थी, नल के भोजन कर चुकने के बाद वह भोजन करती थी तथा नल को आलिंगन करने के लिए उत्सुक देखकर वह उसकी गोद में जाकर बैठ जाती थी (नै० २१-१२१)। सौन्दर्य में वह पृथ्वी का आभूषण, बहुमूल्य रत्न तथा कामदेव के अमोघ अस्त्र के समान थी (नै० ५-२६)। नल को अन्य स्त्रियों का मनोविनोद करता देखकर तथा उसे असमय में ही स्मर-शर-व्यथा का निवेदन करता हुआ देखकर वह रुष्ट भी हो जाती है। (नै० २०-८०,१५१)। दूत नल को अपने प्रिय नल के समान अप्रतिम सौन्दर्य-सम्पन्न मानते हुए भी उसके मन में ईर्ष्या नहीं उत्पन्न होती और वह उसके रूप की प्रशंसा करने में संकोच नहीं करती (नै० ९-६६-६७)। स्वयंवर में पांच नलों को उपस्थित देखकर वह अवसर के अनुरूप समाधान खोज लेती है और आराधना के द्वारा देवताओं को प्रसन्न कर नल को पहचानने देशकाल के अनुरूप का उपक्रम करने लगती है। (नै० १४-१)।

सर्वव्यवहार-विषयक उत्तमता-सूचक गुण तथा दमयन्ती-प्रकृति

सर्वव्यवहार-विषयक नायिका की उत्तमता के सूचक गुण अधोलिखित होते हैं,
मृदुस्वभावा चाचपला स्मितभाषिण्यनिष्ठुरा ।
गुरूणां वचने दक्षा सलज्जा विनयान्विता ॥

रूपाभिजनमाधुर्यैर्गुणैः स्वाभाविकैर्युता ।
गाम्भीर्यधैर्यसम्पन्ना विज्ञेया प्रमदोत्तमा ॥ ना० शा० २४-६-१० ।

श्रीहर्ष ने दमयन्ती को उपर्युक्त गुणों से भी समन्वित किया है। उदाहरण-स्वरूप दमयन्तीगत उपयुक्त गुणों के सूचक अधोलिखित प्रकरणों को उद्धृत किया जा सकता है।

दमयन्ती सरल इतनी अधिक थी कि वह आकाशचारी हंस तक को पकड़ने का उपक्रम करने लगती है (नै० ३-८) और स्थिर इतनी अधिक थी कि देवताओं का भय तक उसे नल-वरण-विषयक निश्चय से विचलित नहीं कर पाता (नै० ९-८८)। जब नल दमयन्ती की वाणी की प्रशंसा करता है तो वह मुस्करा कर नल के मुख की प्रशंसा करने लगती है (नै० २२-१०२-१०४)। स्वयंवर में उसे प्राप्त न कर पाने के कारण दुःखी राजाओं को वह अपने पिता से अनुरोध कर अपनी एक एक सखी दिला देती है (नै० १४-१७)। वियोग-व्यथा के कारण मूर्च्छित होते हुए भी वह पिता का आगमन सुनकर वियोग चिह्नों को तत्काल ही दूर कर देती है तथा उठकर पिता को प्रणाम करती है (नै० ३-११८)। जब दूत रूप नल उसके प्रश्नों के उत्तर देने के बारे में टालमटोल करता है तो वह भी चतुरता से नल को कोई उत्तर न देने में अपनी असमर्थता प्रकट कर देती है (नै० ९-३-१६)। वह प्रतिदिन पिता की सेवा में उपस्थित होती थी तथा प्रतिदिन माता को प्रणाम करने के लिए उसके पास भी जाती थी (नै० १-३४, ६-४८)। माता, पिता, भाई तथा सखियों का सान्निध्य भी उसे प्राप्त था। हम आगे देखेंगे कि वह रूप, माधुर्य तथा स्वभाविक गुणों में भी युक्त थी। उसके मनोगत पति को कोई भी नहीं जान सका था (नै० ५-२६)। स्वयंवर में पाँच नलों को उपस्थित देखकर भी वह नल को पहचानने के लिए प्रयत्न करती रहती है (नै० १३-४१ ५५)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नल के समान दमयन्ती को भी उभय-विध उत्तमता-सूचक गुणों से समन्वित कर शृंगार के अनुरूप प्रकृति से सम्पन्न कर दिया है। अतः नैषध में की गई दमयन्तीगत रति भाव की व्यंजना को भी औचित्य-पूर्ण कहा जाएगा।

सात्त्विकालंकार-मूलक उत्तमता

हम देख चुके हैं कि भरत ने रूप, माधुर्य तथा स्वाभाविक गुणों को सर्व-व्यवहार-विषयक उत्तमता का सूचक माना है और आगे हम देखेंगे कि उन्होंने इन गुणों का सात्त्विकालंकारों में भी परिगणन किया है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि भरत नायिकाओं के सात्त्विकालंकारों को भी नायिकाओं की उत्तमता का सूचक मानते हैं। यद्यपि भरत ने सभी सात्त्विकालंकारों का उपर्युक्त उभयविध उत्तमता-सूचक गुणों में स्पष्ट रूप से परिगणन नहीं किया है परन्तु रूपा-

भिजनमाधुर्यादि-पद-गत आदि पद के आधार पर माधुर्यादिक समस्त अयत्नज अलकारो को उत्तमता का द्योतक स्वीकार किया जा सकता है। स्वाभाविक गुणो को भरत ने अलकारो के नाम से भी अभिहित किया है और इन गुणो को उन्होने उत्तमता का सूचक भी स्वीकार ही किया है।

जहा तक अभिनव का प्रश्न है उन्होने स्पष्ट रूप से सात्विकालकारो को उत्तमता का द्योतक स्वीकार किया है

देहधर्मत्वेनैव स्थित सात्विक, यत सात्विकेष्ववोत्तमेषु दृश्यते—न च सत्वमयमुत्तमस्त्रीरूप विमुच्यान्यत्रामीचेष्टालकारा विनिवेश लभन्ते। न सात्विकास्तावद्राजसतामसशरीरेष्वसभवात। ना० शा० अ० २२ अभि० पृ० १५३।

अभिनव के अनुसार सात्विकालकार-मूलक स्त्रियो को उत्तमता की उपयोगिता शृगार रस मे होती है और पुरुषो की सात्विक-गुण-जन्य उत्तमता वीर-रस-पर्यवसायी होती है

तत्र स्त्रीणामुत्तमत्व शृगाररसपर्यन्तमेव, पुरुषाणा तु वीररसविश्रान्तम्।

वही पृ० १५३।

नैषध शृगार-रस-प्रधान महाकाव्य है। अत दमयन्तीगत सात्विकालकार-मूलक उत्तमता पर प्रकाश डाल लेना भी प्रकृत विषय के विपरीत नही होगा।

सात्विकालकार

सात्विकालकारो का अगज, स्वाभाविक तथा अयत्नज नामक तीन भागो मे विभक्त किया गया है। यद्यपि विद्वान् इन अलकारो की सख्या के बारे मे एक मत नही है। परन्तु भरत ने जिन सात्विकालकारो का निर्देश किया है, धनजय ने भी उन्ही अलकारो का निर्देश किया है और अभिनव सख्या-परिवधन के विरुद्ध हैं

(न च) एतावत एवैत इत्यत्र नियमो विवक्षित। तेन मौग्ध्यमदभावविकृतपरितपनादीनामपिशाक्याचार्यराहुलादिभिरभिधान विरुद्धमित्यल बहुना।

ना० शा० अभि० अ० २२ पृ० १६४।

अत प्रस्तुत प्रकरण म भरत निर्दिष्ट दमयन्तीगत सात्विकालकारो की सत्ता पर ही प्रकाश डाला जाएगा।

दमयन्तीगत सात्विकालकार

अगज अलकार

अगज अलकार तीन होते है भाव, हाव तथा हेला। अभिनव के अनुसार यह सर्वाधिक सत्वोत्कर्षयुक्त उत्तम नायिकाओ म ही दृष्टिगत होते है तथा क्रियात्मक

होते हुए भी यह प्राग्जन्माभ्यन्तरित होते हैं। सत्वोद्बुद्ध भाव-संस्कार-मात्र से ही यह नायिकाओं के शरीर मात्र में उत्पन्न हो जाते हैं

भावहावहेलास्तु सर्वा एव सर्वास्वेव सत्त्वाधिकामुत्तमागनासु भवन्ति। तत्र देह विकारा केचन नियात्मका अपि ते च प्राग्जन्माभ्यन्तरिता भावसंस्कार-मात्रेण सत्त्वोद्बुद्धेन देहमात्रे सति भवन्ति, त एवागजा उच्यन्ते, तथा भावो हावो हेला च। ना० शा० अभि० अ० २२,पृ० १५४।

भाव

भरत ने भाव अलङ्कार का लक्षण उपन्यस्त करते हुए वागगमुखरागादि तथा सत्त्व से कविगत भाव का भावित करने वाले नायिकागत अगज अलङ्कार को भाव नाम से अभिहित किया है

वागगमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।

कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्यते॥ ना० शा० २२-८।

अभिनव अगज अलङ्कारों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए तथा भरत के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं

वागगमुखरागे सत्त्वेन च लक्षितो भाव वागगसत्त्वविशेष एव बालिकाया भाव इत्युच्यतेऽन्यथ। किमपि विशेषा सत्याह्। कविरन्तर्गत वासनात्मतया वर्तमान रसास्य भाव भावयन्सूचयन् किं सर्वस्य नेत्याह कवे सूक्ष्मसूक्ष्मानपि योऽर्थान् पश्यति तस्य सहृदयस्येत्यर्थ। ना० शा० अभि० अ० २२ पृ० १५६।

भरत तथा अभिनवगुप्त उपर्युक्त भाव लक्षणों पर दृष्टिपात करने से निम्न-लिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं

१—भाव अलङ्कार बालिकागत होता है।

२—वागगादिगत विशेषता को ही भाव नाम से अभिहित किया जाता है।

३—यह सत्वज होता है।

४—वागगादिगत वैशिष्ट्य इतना अधिक अस्फुट होता है कि केवल सहृदय ही उसे लक्षित कर सकते हैं।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत भावालङ्कार की ओर प्रारम्भ में ही संकेत कर दिया है। कुमारी दमयन्ती का दर्पण में अपनी आकृति देखना तथा अन्य स्त्रियों के समान दर्पण को अपने श्वासों से मलिन न करना तद्गत भावालङ्कारत्व के बोधक है

श्रियात्म योग्याहमिति स्वमीक्षितुं करे तमालोक्य सुरूपया घृत ।

विहाय भैमीमपदर्पणा कया न दर्पण श्वासमलीमस कृत ॥ नै० १-३१।

हाव

शृङ्गारोचित आकार के सूचक, स्वयं ही पुन पुन उत्पन्न एवं विलीन होने

वाले अक्षि, भ्रू तथा ग्रीवादिगत विकारों को हाव नाम से अभिहित किया जाता है
तत्राक्षिभ्रूविकाराढ्य शृंगाराकारसूचक ।
सग्रीवारेचको ज्ञेयो हावः स्थितसमुत्थित ॥ ना० शा० २२-१० ।
अभिनव के अनुसार हावालंकार इस बात का सूचक होता है कि भावालंकार युक्त कुमारी अपनी चित्तवृत्ति को किसी में संलग्न कर रही है। उसके उन विकारों को देखकर सभी व्यक्ति उसके मनोविकार से परिचित हो जाते हैं अर्थात् वे भावालंकारगत विकारों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते हैं
तत्रेति तत्पुरुष एव (उन्नतागता) पावत्वगेन चाद्भ्रूतारकग्रीवादेः मानिसयो विकाररूपो धर्मः, अत एव शृंगारोचितमाकारं सहृदयानहृदनमर्त्रजनहृदय सूचयतीति। हावः —एष हि स्वचित्तवृत्ति परत्र मुद्रती ददती ता कुमारी हावयति।
वही अभि० पृ० १५६ ।
श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत हावालंकारता-सूचक व्यापारों का भी अंकन किया है। कुमारी दमयन्ती का मन यौवनागम के साथ ही सुखोपभोगों को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाता है। वह नल का चिन्तन करने लगती है। फलतः उसकी चित्तवृत्ति में कामविकार का भी उदय हो जाता है और जब नल के बारे में बार-बार सुनकर वह आश्वस्त हो जाती है कि नल उसकी रूपसंपत्ति के अनुरूप है तब तो वह अपने कामदेव के आज्ञाकारी मन को पूरी छूट दे देती है। नै० १-३२-३३ ।
दमयन्ती के उपर्युक्त सभी व्यापार तद्गत हावालंकारता के सूचक हैं।

हेला

रतिवासनाजन्य ललिताभिनयात्मक हाव अलंकार ही हेला अलंकार होता है
यो वै हावः स एवैषा शृंगाररससंभवा ।
समाख्याता बुधैर्हेला ललिताभिनयात्मिका ॥ ना० शा० २२-११ ।
अभिनव ने हाव तथा हेला अलंकार की तुलना करते हुए हेला अलंकार के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट कर दिया है
हावावस्थायां यत्नेव रतेः प्रवाधन न मन्यते केवलं तत्संस्कारबलात्तया-विकारान् करोति। यैर्दृष्टा तथा कल्पयति। यदा तु रतिवासनाप्रबोधाता प्रवुद्धा रतिमभिमन्यत केवल समुचितविभावसंग्रहविरहान्निर्विषयतया स्फुटीभावं न प्रतिपद्यते तदा तच्चित्तिता देहविकारविशेषो हेला।
ना० शा० अभि० अ० २२ पृ० १५७ ।
श्रीहर्ष ने ललितानिनयात्मक रतिवासनाजन्य दमयन्तीगत हेलालंकारता के सूचक विकारों का अंकन भी किया है। दमयन्ती का जानबूझकर वंदियों के अवसर पर पिता की सभा में जाना तथा उन बंदियों के मुख से नलगुण-वर्णन सुनकर रोमांचित हो जाना दमयन्तीगत हेलालंकारता के सूचक है। इसी प्रकार

उसका तृण के अर्थ मे प्रयुक्त नल शब्द को सखी के मुख से सुनकर अन्य कार्यों का परित्याग कर देना तथा सखियो की बातें सुनने के लिए तत्पर हो जाना भी दमयन्तीगत ललाटलग्नता के द्योतक हैं। नै० १-३८-३५।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषध की दमयन्ती सवाधिक सत्वातत्र्ययुक्त उत्तम नायिकाओ मे उपलब्ध होने वाले सभी अगज अलकारो से युक्त है।

स्वाभाविक अलकार

स्वाभाविक तथा अयत्नज अलकार अगज अलकारो के समान प्राग्ज साम्य-तत्रित न होकर उचित विभावानुप्रवश से स्फुटित रति-वासनायुक्त शरीर मे स्फुटित होते हैं। इन्हे स्वाभाविक इसलिए कहा जाता है क्योकि यह नायिका के अपने रति भाव की स्वन अनुभूति के अनन्तर उत्पन्न होते हैं और इनकी उत्पत्ति सभी नायिकाओ मे समान रूप से न होकर उनके स्वभाव के अनुरूप अनियत सख्या मे हुआ करती है। परन्तु स्वाभाविक अलकार अगज अलकारो के समान होने क्रियात्मक ही हैं

अन्ये त्वयत्नजा समसमुचितविशिष्टविभावानुप्रवेशस्फुटीभवद्रतिभावानुविद्धे देहे परिस्फुरन्ति। ते स्वाभाविका स्वस्माद्रतिभावात् हृदयगोचरीभूताद् भवतीति। तथा कस्यचित् कश्चिदेव स्वभावबलाद् भवति। अयस्या अन्य, कस्याश्चित् द्वौ त्रय इत्यादि, अतोऽपि स्वाभाविका।—एवमगजा स्वाभाविकाश्च क्रियात्मान। ना० शा० अभि० भा० २२ पृ० १५४।

भरत ने निम्नलिखित दश स्वाभाविक अलकारो का निर्देश किया है

लीलाविलासौ विच्छित्तिर्विभ्रम किलकिंचितम्।
मोट्टायित कुट्टमित बिब्बोको ललित तथा॥
विहृत चेति विज्ञेया दश स्त्रीणा स्वभावजा। ना० शा० २२-१३।

अभिनव के अनुसार यह दश अलकार प्राप्तसमागमा तथा अप्राप्तसमागमा उभयविध नायिकाओं मे हो सकते हैं

एते च दश प्राप्तसभोगत्वऽपि भावयत्येव। वही० पृ० १५६।

लीला

प्रिय के प्रति अत्यधिक आदरयुक्त होने के कारण उसकी वाणी आदि के मधुर एव विशिष्ट अनुकरण को नायिकागत लीला अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

वागगालकारै श्लिष्टै प्रीतिप्रयोजितैर्मधुर।
इष्टजनस्यानुकृतिर्लीला ज्ञेया प्रयोगज्ञै॥ ना० शा० २२-१४।

श्रीहर्ष ने दमयन्ती को लीला अलकार से अलकृत किया है। नल स्वय चन्द्रोदय

का वणन करने के उपरान्त दमयन्ती को भी चन्द्रमा का वणन करने के लिए प्रेरित करता है तो दमयन्ती चन्द्रमा का वर्णन करने लगती है (नै० २२-५६-५८)। परन्तु दमयन्ती भी कुछ समय तक चन्द्रमा का वर्णन करने के उपरान्त नल को चन्द्रमा का वणन करन के लिए विवश कर देती है। नल ने दमयन्ती को यह कहकर चन्द्रमा का वणन करने म प्रवृत्त कर दिया था कि वह कदाचित् चन्द्रमा से ईर्ष्या करती है इसी लिए वह मौन है

मुखाभ्यसूयानुशयादिन्दौ वेय तव प्रेयसि[1] मूकमुद्रा ॥ नै० २२-५६।

परन्तु दमयन्ती जब नल को चन्द्रमा का वणन करने के लिए प्रेरित करती है तो उसका कथन भी नल की उक्ति से कम मधुर नहीं ह

स्ववणना न स्वयमर्हतीति नियुज्य मा त्वन्मुखमिन्दुरूपम्।
स्थानेऽन्युदास्ते शशिन प्रशस्तौ वरानुरागमाहमिति स्म साह॥
नै० २२-१०४।

मधुर वाणी म नल के कथन का ही अनुकरण करने के कारण दमयन्ती के इस वचन-विन्यास को लीला अलकार के नाम से अभिहित किया जाएगा।

विलास

नायिका के खडे होने, बैठने, चलन तथा हस्तादिकों के सचालन मे उत्पन्न विशेषता विलास अलकार होता है

स्थानासनगमनाना हस्तभ्रूनेत्रकर्मणा चैव।
उत्पद्यते विशेषो य श्लिष्ट स तु विलास स्यात्॥ ना० शा० २२-१४।

विश्वनाथ के अनुसार इस विशेषता की उत्पत्ति का हेतु इष्ट-दर्शनादि होता है

यानस्थानासनादीना मुखनेत्रादिकर्मणाम्।
विशेषस्तु विलास स्यादिष्टसदर्शनादिना॥ सा० द० ३-९९-१००।

श्रीहर्ष ने दमयन्ती का विलास अलकारयुक्त चित्र अनेक स्थानो पर अकित किया है। उदाहरण-स्वरूप नल के कण्ठ मे वरमाला पहनाने के अवसर पर उत्पन्न दमयन्तीगत विशेषता को उद्धृत किया जा सकता है

मन्दाक्षनिस्पन्दतनोमनाभूदुष्प्रेरमप्यानयति स्म तस्या।
मधूकमालाम् उर कर सा कण्ठोपकण्ठ वसुधासुधाशा॥ नै० १४-४७।

श्रीहर्ष ने इस प्रकरण म दमयन्ती के विलासयुक्त व्यापारो का सश्लिष्ट चित्र अकित किया है।

किलकिंचित

स्मित एव हसितादि की युगपत् उत्पत्ति को किलकिंचित अलकार के नाम से

अभिहित किया गया है

स्मित-रुदित-हसित-भय-हर्ष-गर्व-दुःख-श्रमाभिलाषाणाम् ।
सङ्करकरणं हर्षादसकृत् किलकिंचितं ज्ञेयम् ॥ ना० शा० २२-१८ ।

विश्वनाथ के अनुसार इन सब की युगपत् उत्पत्ति का हेतु प्रिय-समागमजन्य हर्ष होता है

साकर्यं किलकिंचितमभीष्टतमसगमादिजाद्धर्षात् ॥ सा० द० ३-१०१ ।

हस के कथनानुसार किलकिंचित अलकार दमयन्ती की प्रमुख विशेषता थी

त्वयि वीर¹ विराजते परं दमयन्ती-किलकिंचितं किल ॥ नै० २-४४ ।

श्रीहर्ष ने उसकी इस विशेषता को उसके व्यवहारों में भी प्रदर्शित किया है। देखिए नल के द्वारा किए गए नखक्षतों को देखकर वह किस प्रकार क्रुद्ध तथा प्रसन्न होती है

वीक्ष्य वीक्ष्य करजस्य विभ्रमं प्रेयसार्जितमुरोजयोरियम् ।
कातमैक्षत हसस्पृहं कियन् कोपसङ्कुचितलोचनाचला ॥ नै० १८-१३० ।

मोट्टायित

प्रियदर्शन अथवा कीर्तनादिजन्य लीला तथा हेलादि को मोट्टायित अलकार कहा जाता है

इष्टजनस्य कथाया लीलाहेलादिदर्शने वापि ।
तद्भावभावनाकृतमुक्तं मोट्टायितं नाम ॥ ना० शा० २२-१६ ।

दमयन्ती का निषध देश से आए हुए दूतादिकों के मुख से नल-गुण-श्रवण कर चिरकाल तक के लिए विमनस्क बन जाना दमयन्तीगत मोट्टायित अलकारता का द्योतक है

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान्मिषेण दूतद्विजबन्दिचारणाः ।
निपीय तत्कीर्तिकथामथानया चिराय तस्थे विमनायमानया ॥ नै० १-३७ ।

कुट्टमित

नायककृत केशग्रहणादिजन्य हर्ष से उत्पन्न सम्भ्रमात्मक चेष्टाओं को कुट्टमित अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

केशस्तनाधरादिग्रहणादतिहर्षसम्भ्रमोत्पन्नम् ।
कुट्टमितं विज्ञेयं सुखमपि दुःखोपचारेण ॥ ना० शा० २२-२० ।

नल के द्वारा अधरक्षत कर लिए जाने से उत्पन्न दमयन्ती की अधोलिखित अवस्था कुट्टमित अलकार स्वरूप है

ईक्षितोपदिशतीव नर्तितुं तत्क्षणोदितमुदं मनोभुवम् ।
कान्तदन्तपरिपीडिताधरा पाणिधूननमियं वितन्वती ॥ नै० १८-६४ ।

विहृत

अवमर प्राप्त हो जान पर भी व्याज अथवा मुग्धता के कारण प्रिय से कहने के योग्य प्रेमयुक्त वचन न कह पाना विहृत अलकार होता है

वाक्याना प्रीतियुक्ताना प्राप्ताना यदभाषणम् ।
व्याजात्स्वभावतो वापि विहृत नाम तद्भवेत् ।। ना० शा० २२-२४ ।

दूतरूप नल के मुख से ही उसके अनुराग तथा परिचयादि को जानने के उपरान्त दमयन्ती मुग्धतावश नल से कुछ नही कह पाती । यहा तक कि वह अपनी सखी तक से नल की बातो का उत्तर देने के लिए उसके कान म कुछ नही कह पाती

विदर्भराजप्रभवा तत पर त्रपासखी वक्तुमल न सा नलम् ।
पुरस्तमूचेऽभिमुख यदत्रपा ममज्ज तेनैव महाहृदे ह्रिय ।।
यदापवार्यापि न दातुमुत्तर शशाक सख्या श्रवसि प्रियस्य सा ।
विहस्य सख्यैव तमब्रवीत तदा ह्रियाधुना मौनधना भवत्प्रिया ।।

नै० ६-१४१-१४२ ।

दमयन्तीगत उपयुक्त स्वाभाविक अलकारो पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने दमयन्ती के स्वभाव के अनुरूप स्वाभाविक अलकारो का भी उसमे प्रदर्शन किया है ।

अयत्नज अलकार

अयत्नज अलकार भी अगज अलकारो के समान सर्वाधिक सत्वोत्कर्षयुक्त उत्तम नायिकाओ म होते है । परन्तु यह अगज तथा स्वाभाविक अलकारो के समान क्रियात्मक न होकर गुण स्वरूप होते हैं । क्योकि नायिकाओ में इनकी उत्पत्ति *बिना किसी ईप्सित प्रयत्न के होती है । इन अलकारो की उत्पत्ति का* हेतु उनकी रति वासना होती है

भावहावहेलास्तु सर्वा एव सर्वास्वेव सत्वाधिकासूत्तमागनासु भवन्ति । तथा शोभादय सप्त । एवमगजा स्वाभाविकाश्च क्रियाजन्मान , अन्ये तु गुणस्वभावा शोभादय ते चायत्नजा । यत्नजाता क्रियात्मका उच्यन्त । इच्छातो यत्नस्ततो देहक्रियेति हि पदार्थविद । ततोऽन्ये यत्नजाता ।—स्वाभाविका अयत्नजा स्वरतिभावेन प्राणिना भवन्ति । शा० ना० अभि० अ० २२, पृ० १५४-१५५ ।

अयत्नज अलकार सात होते है

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च तथा माधुर्यमेव च ।
धैर्य प्रागल्भ्यमौदार्यमित्येते स्युरयत्नजा ।। ना० शा० २२-२६ ।

अभिनव के अनुसार अयत्नज अलकारो की उत्पत्ति सभोगप्राप्ति के अनन्तर अथवा सभोगप्राप्ति की सभावना होने पर ही होती है

शोभादयस्तु सप्त भाविनोप्राप्तसभोगतायामेव । वही पृ० १५६ ।

उपर्युक्त अयत्नज अलकारो के स्वरूप पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि प्रथम तीन अयत्नज अलकार नायिकाओ के शारीरिक सौंदर्य मे सम्बद्ध हैं। कवियो ने नायिकाओ के शारीरिक सौंदर्य का वणन दो प्रकार से किया है—समग्र रूप से तथा अग-प्रत्यग का पृथक्-पृथक् रूप से। अग प्रत्यग-सौंदय वणन शिख-नख तथा नख-शिख दो प्रकार से किया जाता है। दिव्य नायिकाओ के अग-प्रत्यग सौंदय वणन का नख-शिख तथा मानुषी स्त्रियो के अग-सौंदर्य-वणन को शिख-नख नाम से अभिहित किया जाता है। क्योकि परम्परानुसार दिव्य नायिकाओ का सौंदर्य-वणन नख म प्रारम्भ किया जाता है तथा शिखा का सौंदर्य वणन करने के उपरान्त समाप्त किया जाता है परन्तु मानुषी नायिकाओ का सौंदय वर्णन शिखा से प्रारम्भ किया जाता है और नखों का वर्णन करने के उपरात समाप्त किया जाता है।

शोभा

उपभोगोपबृ हित रूप, यौवन तथा लावण्यादि के द्वारा नायिका के अगो मे समुत्पन्न सौंदय-वृद्धि को शोभा अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है -

रूपयौवनलावण्यैरुपभोगोपबृ हितै ।

अलकरणमगाना शोभेति परिकीर्तिता ॥ ना० शा० २२-२७ ॥

भरत ने उपर्युक्त लक्षण मे उपभोग को रूप-यौवनादि का वर्धक तथा रूप-यौवनादि का अग सौंदय-वधक हेतु स्वीकार किया है। परन्तु विश्वनाथ ने रूप-यौवनादि के समान उपभोग को भी अगो की सौंदय वृद्धि का हेतु स्वीकार कर लिया है

रूपयौवनलालित्यभोगाद्यैरगभूषणम्।

शोभा प्रोक्ता————————॥ सा० द० ३-६५।

इसी प्रकार उनके द्वारा उपर्युक्त यौवनशोभा का उदाहरण यह प्रकट करता है कि विश्वनाथ रूप तथा यौवनादि सभी को पृथक्-पृथक् सौंदय वृद्धि का हेतु स्वीकार करते हैं। परन्तु उनकी इस स्वीकृति मे औचित्य नही प्रतीत होता क्योकि यौवनादि से हीन रूपकृत सौंदर्य अथवा लावण्यादि से रहित यौवनकृत सौंदय को शोभा अलकार के नाम से अभिहित करना भरत के विरुद्ध ही नही होगा अपितु वास्तविकता के विपरीत भी होगा। इसी प्रकार उपभोग को सौंदय-वृद्धि का हेतु मानने की अपेक्षा रूप-यौवनादि का वधक स्वीकार करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। अभिनव ने भी उपभोग को रूप-यौवनादि का वधक ही स्वीकार किया है

तान्येव रूपादीनि पुरुषेणोपभुज्यमानानि छायान्तर श्रयन्ति।

ना० शा० अभि० अ० २२, पृ० १६२।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत शोभालंकारता के सूचक उसके अवयव-सौंदर्य का वर्णन हंस के मुख से कराया है। नल के हाथों से मुक्त हंस प्रत्युपकार करने की इच्छा से स्वयं ही नल के सम्मुख दमयन्ती की चर्चा करता है और नल को यह आश्वासन देता है कि यदि वह दमयन्ती को प्राप्त करना चाहता हो तो इस कार्य में वह उसकी सहायता कर सकता है। हंस को इस तथ्य का ज्ञान नहीं था कि नल पहले से ही दमयन्ती को चाहता था। अतः वह दमयन्ती के सौंदर्य से नल को भली भांति परिचित करा देने के लिए उसका आकर्षक शिख-नख-सौंदर्य वर्णन करता है।

इस सौंदर्य-वर्णन में हंस दमयन्ती के केश-कलाप की चमर तथा मयूरपुच्छ से, नेत्रों की हरिणनेत्रों तथा खंजरीटों से, अधर की बिम्बाफल, चन्द्रबिम्ब तथा कमलों से, भ्रुकुटियों की धनुष से, नासिका की तूणीर से, भुजयुगल तथा हाथों की मृणाल तथा कमल से, रोमराजि की रेखा से, कुचों की स्वर्णकुम्भों तथा गज-कुम्भ से तुलना करते हुए नल के सम्मुख दमयन्ती का एक कमनीय चित्र अंकित कर देता है। अंत में वह दमयन्ती के कृश उदर, त्रिवली, विशाल तथा वर्तुल नितम्ब, विपुल ऊरुयुगल तथा नूपुरयुक्त चरणों में निहित सौंदर्य का भी आकर्षक वर्णन करता है। नै० २-२० ३६।

हंस ने दमयन्ती के अवयवों में निहित सौंदर्य के मूलभूत कारणों का भी स्वयमेव उल्लेख कर दिया है। हंस के कथनानुसार दमयन्ती ने शारीरिक शोभा में तीनों लोकों की सुन्दरियों के सौंदर्य-मद का दमन कर दिया था तथा कामदेव एवं यौवन उसके दुरवगाह लावण्य-प्रवाह में अठखेलियां किया करते थे

भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधां दधौ॥
अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोर्गमिते कान्तिझरैरगाधताम्।
स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचावुभौ॥ नै० २-१८,३१।

हंस के द्वारा संकेतित दमयन्तीगत सौंदर्य के उपर्युक्त हेतुओं को शोभा अलंकार के लक्षण में अंग सौंदर्य वृद्धि का हेतु स्वीकार किया गया है। यद्यपि दमयन्ती को अभी तक नल के साथ संभोग का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था परन्तु वह नल के विषय में अभिलाषयुक्त तो हो ही चुकी थी। अतः उसके मन में निहित नल-प्राप्ति विषयक अभिलाष तथा कामवासना से उसके अंग-प्रत्यंगों एवं रूप, यौवन तथा लावण्यादि में निखार का आ जाना स्वाभाविक था। हम देख चुके हैं कि केवल संभोगप्राप्ति ही नहीं अपितु भावी संभोगप्राप्ति की आशा भी रूपादिकों को उपबृंहित कर देती है और दमयन्ती को यदि नलसंभोग-प्राप्ति की आशा न होती तो वह नल को प्राप्त करने के लिए अभिलाष ही क्या करती। उसने नल के गुणों का अनेक बार श्रवण कर लेने के उपरान्त जब यह देख लिया था कि वह उसके अनुरूप है तभी उसने नल को प्राप्त करने के लिए अभि-

लाया की थी। अत नल के साथ समागम का अवसर प्राप्त न होने पर भी दमयन्ती को नल का समागम प्राप्त हो जाने की आशा थी इस विषय मे सदेह नही किया जा सकता। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान मे रखकर यदि दमयन्ती के उपर्युक्त अवयव-सौंदर्य-वर्णन पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्वत स्पष्ट हो जाता है कि दमयन्ती का उपर्युक्त सौंदर्य तद्गत शोभालकारता का सूचक है।

कान्ति

मन्मथ से अभिवृद्ध शोभा को ही कान्ति अलकार के नाम से अभिहित किया गया है

विज्ञेया च तथा कान्ति शोभैवापूर्णमन्मथा। ना० शा० २२-२८।

सैव कान्तिमन्मथाप्यायितद्युति ॥ सा० द० ३-९६।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत कान्ति अलकार का अकन सप्तम सर्ग मे किया है। कान्ति अलकार स्वरूप दमयन्ती के इस सौंदर्य-वर्णन को श्रीहर्ष ने नल के द्वारा कराया है। नल देवताओ का दूत बनकर दमयन्ती के पास जाता है। परन्तु अर्न्तहित होने के कारण दमयन्ती या उसकी सखियाँ नल को देख नही पाती। अन्तर्हित नल दमयन्ती के अवयवो को एक बार एक दृष्टि से देख जाता है और उन अवयवो मे निहित सौंदय का पान कर वह अत्यधिक आनन्दित हो जाता है। उसकी समझ मे यह नही आता कि दमयन्ती के शरीर मे इतना अधिक सौंदर्य आ कैसे गया है। वह उसके सौंदय के मूलभूत हेतुओं की कल्पना तो करता है, परन्तु उस अद्भुत सौंदय को देखकर उसके मन मे उन हेतुओं की कारणता पर आस्था नही जमती

पदे विधातुर्यदि मन्मथो वा ममाभिषिच्येत मनोरथो वा।
तदा घटेतापि न वा तदेतत् प्रतिप्रतीकाद्भुतरूपशिल्पम् ॥
तरगिणी भूमिभृत प्रसूना जानामि शृगाररसस्य सेयम्।
लावण्यपूरोऽजनि यौवनेन यस्या तथोच्चैस्स्तनताघनेन ॥
अस्या वपुर्व्यूहविधानविद्या कि द्योतयामास नवा स काम ।
प्रत्यगमगस्फुटलब्धमूमा लावण्यसीमा यदिमामुपास्ते ॥ नै० ७-१०-१२।

इस प्रकार श्रीहर्ष ने नल के द्वारा अवलोकित दमयन्तीगत सौंदर्य को कामदेव का कौशल बनाकर नल का दमयन्ती की हारिद्रनिभ प्रभा तथा अनुपमेय, निर्दोष एव अलक्ष्य रूपादि की ओर आकृष्ट किया है। नै० ७-१३-१६।

नल एक बार दमयन्ती के समग्र सौंदर्य पर दृष्टिपात कर लेने के उपरान्त विभिन्न उपमानो का आश्रय लेकर दमयन्ती के अवयवो मे निहित सौंदर्य का वर्णन करने लगता है। वह उसके केशो की मयूर-पुच्छ तथा अधकार से, केशयुक्त भाल की कृष्ण पक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा से, भ्रुकुटियो की कामदेव के धनुष तथा चन्द्र-

गत क्लक-रेखा से, नेत्रो की कामदेव के बाण, कमल, मृगी के नेत्र, कदलीगर्भ-सार, कमलपत्रसार, चकोरनेत्र तथा कमलिनी-पुष्प म, नासिका की तिलपुष्प-निर्मित कामदेव के तूणीर मे, अधरोष्ठ की बन्धूक पुष्प तथा बिम्बाफल से, स्मित की चन्द्रिका से, दन्तपक्ति की चन्द्रकिरणा तथा मोतियो स, वाणी की मौकुमाय-सीमा, कोकिलकूजन, सरस्वती तथा वीणा-ध्वनि मे, सावयव मुख की चन्द्रमा, कमल तथा कामनिवास से, कर्णों की मालपुआ, नवाक-रेखा, पाश तथा प्रत्यचा से, ग्रीवा मे निहित अद्भुत सौंदय की अन्य विरुद्ध कल्पनाआ मे, ग्रीवागत रेखाओ की कवित्वगानादि-विभाजक रेखाओ से, बाहुओ की मृणाल से, हाथो की उगलियो की वाण से, हाथ की तूणीर, पल्लव तथा कमल मे, कुचो की द्वीप, तालफल, घट, चक्रवाक, कमलकर्णिका गजकुम्भ तथा बिल्व-फल-युगल स, उदर की मनोभव राज्य से, क्षीण कटि की विशाल स्तनो मे, रामरोजि की मेचक सूत्र, रज्जु, त्रुटित शृखला तथा प्रत्यचा से, नाभि की कूप तथा बिल मे, पृष्ठ भाग की सुवर्ण-पट्टिका से, नितम्ब की चक्र से, वराग की अश्वत्थ दल से, ऊरुओ की कदली, गजकर तथा वृक्ष के तने से, गुल्फ-प्रच्छन्नता की अदृश्य सिद्धि से, चरणो तथा उनकी लालिमा की पल्लव, मृगा, सिन्दूर तथा कमलादि स, गति की गजगति से, युगल अगो की एक-दूसरे अग स, पैरो की उगलियो की दशदिशा-सूचक रेखाओ से तथा नखो की चन्द्रमा से तुलना करते हुए दमयन्ती के अग-प्रत्यग मे निहित लावण्य-राशि को रूपायित करने के प्रयास मे अपने मनोराज्य की विनाम-भूमि को मूर्तिमान बना देता है ॥ नं० ७-२०-१०६ ।

अत मे श्रीहर्ष ने यहाँ पर वर्णित दमयन्ती-सौंदय के मूल कारणो पर भी दृष्टिपात किया है

सृष्टातिविश्वा विधिनैव तावत् तस्यापि नीतोपरि यौवनेन ।
वदग्ध्यमध्याप्य मनाभुवेयमवापिता वाक्पथपारमेव ॥ नं० ७-१०७ ।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत उपयुक्त सौंदय के जिन हेतुओ की चर्चा नल के द्वारा करायी है उन हेतुओ से अभिवृद्ध सौदर्य को ही काति अलकार के नाम मे अभिहित किया गया है । यद्यपि दमयन्ती को अभी तक नल-समागम की प्राप्ति नही हुई थी परन्तु हस के मुख से नल की दारुण वियोग-व्यथा को सुनकर दमयन्तीगत नल-समागम प्राप्ति-विषयक आशा का दृढ हो जाना तथा सभावित समागम-प्राप्ति के निश्चितप्राय हो जाने से दमयन्ती के सौंदर्य का अभिवृद्ध हो जाना स्वाभाविक था । अत दमयन्तीगत उपर्युक्त सौदर्य को कान्ति अलकार के नाम से अभिहित किया जायेगा ।

दमयन्ती को जितना अधिक सुदर नल ने देखा है वह चाहे उतनी सुन्दरी भले ही न हो परन्तु नल को तो वह अतिशय रूपसी प्रतीत हो हो रही थी क्योकि वह उसे चाहता जो था ।

दीप्ति अलकार

विस्तीर्ण कान्ति को ही दीप्ति अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है
कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते ॥ ना० शा० २२-२८।

अभिनय के अनुसार सभोगपरिशीलन से नायिकागत कान्ति दीप्ति मे परिणत हो जाती है

तान्येव रूपादीनि पुरुषेणोपभुज्यमानानि छायान्तर श्रयन्ति। सा छाया मन्द-मध्यतीव्ररूप क्रमेण सभोगपरिशीलनादाश्रयति। शोभा काति दीप्ति चेत्यथ।
ना० शा० अभि० अ० २२ पृ० १६३।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत दीप्ति अलकारता के सूचक सौंदय का वणन स्वयवर मे उपस्थित राजाओ के द्वारा कराया है। दमयन्ती के अप्रतिम सौंदर्य को देखकर राज समूह विह्वल होकर पहले उसके रूप तथा लावण्य की प्रशसा करता है

रूप यदाकण्य जनाननेभ्यस्तत्तदिगन्ताद्वयमागमाम।
सौंदयसारादनुमीयमानादस्यास्तदस्मादहुना बकनीय ॥
रसस्य शृगार इति श्रुतस्य क्व नाम जागर्ति महानुदन्वान्।
कस्मादुदस्थादियमन्यथा श्रीर्लावण्यवैदग्ध्यनिधि पयोधे ॥

नै० १०-११३ ११४।

तदनन्तर वे उसके मुख की चन्द्रमा से, भ्रकुटियो की काम-धनुष से, कर्ण-ताटको की स्मरशर-लक्ष्य से, भ्रकुटिमध्य की धनुष के मध्य भाग से, नेत्रो की कमल तथा खजनो से, पुतलियो की भ्रमरो से, कुचो की रति तथा कामदेव के भवन के ऊपर स्थित स्वण कलशो से, बाहुओ की मृणाल से, हाथो की कमल से तुलना करते हुए दमयन्तीगत अवयव सौंदय की निर्झरिणी में आकण्ठ मग्न हो जाते है।
नै० १०-११५-१२३।

अन्त मे राजसमूह दमयन्ती के सौंदर्य की अनुपमेयता, नितम्बो तथा स्तनो की विशालता, त्रिवली विलास, श्वासो की मन्दता, विभिन्न अगो की मृदुलता तथा वाणी की मधुरता का मनोरम वणन भी करता है। नै० १०-१२४-१२६।

राजाओ को तो दमयन्ती का अप्रतिम सौंदर्य देखकर यह निश्चिय-सा हो जाता है कि दमयन्ती कामदेव की ही रचना है

कृति स्मरस्यैव न धातुरेषा नास्या हि शिल्पीतरकारुजेय।
रूपस्य शिल्पे वयसापि वेधा निर्जीयते स स्मरकिंकरेण॥ नै० १०-१३०।

राजाओ के द्वारा वर्णित दमयन्ती के उपर्युक्त अवयव-सौंदय को दीप्ति अलकार के नाम से ही अभिहित किया जायेगा। राजाओ ने स्वय ही दमयन्तीगत उपर्युक्त सौंदर्य को कामदेव का विलास बताया है। दमयन्ती स्वयवर-मण्डप मे आने के पहले ही नल के अनुराग से पूणतया परिचित हो चुकी थी। उसने स्वय ही

नल को स्वयवर मे सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया था और नल ने उस निमन्त्रण को स्वीकार भी कर लिया था (९-१५७)। अत दमयन्ती को नल-समागम की प्राप्ति का निश्चय हो जाना तथा उस निश्चय के फलस्वरूप उसके सौंदर्य का चरम सीमा पर पहुँच जाना स्वाभाविक था।

माधुर्य

रति क्रीडा कालीन चेष्टाओ के समान क्रोधादिक अवस्थाओ मे भी विद्यमान रहने वाली नायिकाओ की चेष्टागत मसृणता को माधुर्य अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

सर्वावस्थाविशेषेषु दीप्तेषु ललितेषु च।

अनुल्वणत्व चेष्टाया माधुर्यमिति सज्ञितम्॥ ना० शा० २२-२९।

दीप्तेष्विति कोपादिषु च शब्द इवार्थे ललितेषु रतिक्रीडादिषु यथा मासृण्य चेष्टायास्तथा दीप्तेष्वपि यत्तन्माधुर्यम्। वही अभि० पृ० १६३।

दमयन्ती माध्याह्न वेला मे ही नल के स्मरशर व्यथा निवेदन को सुनकर रुष्ट हो जाती है (२०-१५१)। रुष्ट होकर वह नल के पास से उठ कर अपनी सखियो की ओर जाने तो लगती है परन्तु उसकी गति मे मन्दता बनी रहती है। द्वार पर पहुँच कर वह नल की ओर मुडकर देखती भी है परन्तु उसके पास वापस न आकर मुस्कराकर बाहर चली जाती है। जब वह द्वार पार कर लेती है तो उसे नल की इच्छा के प्रतिकूल आचरण करने के कारण कुछ दुख भी होता है और अब उसे न तो सखियो के पास जाते बनता है और न नल के पास ही लौटते बनता है। नै०-२०-१५३-१५७।

दमयन्ती की यह चेष्टाएँ तद्गत माधुर्यालकारता की सूचक हैं।

धैर्य

चपलता से अनुपहत, आत्मश्लाघा-विमुख स्वाभाविक चित्तवृत्ति को प्रकट करने वाली चेष्टाओ को धैर्य अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

चापलेनानुपहता सर्वार्थेष्वविकत्थना।

स्वाभाविकी चित्तवृत्तिर्धैर्यमित्यभिधीयते॥ ना० शा० २२-३०।

श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत धैर्य अलकारता के सूचक उसके व्यापारो का भी अनेक स्थानो पर अकन किया है। एक बार नल मे अनुरक्त हो जाने के उपरान्त वह नल की प्राप्ति न होने पर अपने जीवन का परित्याग तक कर सकती थी (३ ७७)। दूत नल के द्वारा अनेक प्रलोभनो तथा विभीषिकाओ के उपस्थित किए जाने पर भी वह अपने सकल्प से नही डिगती और अपने जीवन की निन्दा करती हुई अपना अन्त चाहने लगती है। नै० ९-८६-१००।

प्रागल्भ्य

सुरत कालीन नि साध्वसता को प्रकट करने वाली चेष्टाओ को प्रागल्भ्य अलकार के नाम से अभिहित किया जाता है

प्रयोगनिस्साध्वसता प्रागल्भ्य समुदाहृतम् ॥ ना० शा० २२-३१।

प्रयोग इति कामकलादौ चातु षष्टिक इत्यर्थ । यथाह —

अभ्यदाभूषण पुम नमो लज्जैव योषित ।

परात्म परिभवे प्रागल्भ्य सुरतेष्विव ॥ इति। वही अभि० पृ० १६३।

दमयन्तीगत प्रयोग-कालीन नि साध्वसता का अकन श्रीहर्ष ने प्रचुर मात्रा मे किया है। इस तथ्य के प्रमाण मे श्रीहर्ष की अधोलिखित उक्तियो को उद्धृत कर देना ही पर्याप्त होगा

पत्युरागिरिशमातरक्रमात् स्वस्य चागिरिजमालन वपु ।

तस्य चाहमखिल पतिव्रता क्रीडति स्म तपसा विधाय सा ॥

न स्थली न जलधिर्न कानन नाद्रिभूर्न विषयो न विष्टपम् ।

क्रीडिता न सह यत्र तेन सा सा विधैव न यया यया न वा ॥ नै० १८ ८३-८४।

औदार्य

क्षमप, ईर्ष्या तथा क्रोधादिक अवस्थाओ मे भी विनय का आचरण करना तथा परुष भाषणादि न करना औदार्य अलकार होता है

औदार्यं प्रश्रय प्रोक्त सर्वावस्थानुगो बुधै ॥ ना०शा० २२-३१।

सर्वास्वमर्षेर्ष्याक्रोधाद्यवस्थास्वपि यत्परुषवचनाद्यनुदीरण तदौदार्यम्।

वही अभि० १६३।

दमयन्ती की सखिया दमयन्ती का उपहास करती रहती हैं। परन्तु दमयन्ती उनमे कुछ कहने की अपेक्षा लज्जावनत मुखी हो जाती है जबकि नल को दमयन्तीगत औदार्य पर आश्चर्य तक होने लगता है

आह स्म तद्गिरा ह्रीणा प्रिया नतमुखी नल ।

ईदृग्भण्डसखी कापि निस्त्रपा न मनागपि ॥

अहो तापनपाक ते जातरूपमिद मुखम् ।

नातितापार्जनेऽपि स्यादिनो दुर्वर्णनिर्गम ॥ नै० २०-१४०-१४१।

इसी प्रकार नल के मुख से अभीप्सित देव-सन्देश सुनकर मन मे रुष्ट होते हुए भी वह नल से कठोर भाषण नही करती और सखी के द्वारा उस से देवताओ का सदेश-निवेदन न करने के लिए उसकी प्रार्थना ही करती है। नै० ९-२६-२८।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने दमयन्ती को सात्विक अलकारो से विभूषित कर उसे श्रृगार रसोपयोगी सात्विकालकार-मूलक उत्तमता से भी युक्त

कर दिया है। अत दमयन्तीगत रति भाव को भी नलगत रति भाव के समान औचित्य-चार कहा जायेगा।

रति-भिन्न भावो की योजना

रति भाव के समान उत्साह भाव तथा शान्त रस भी उत्तम प्रकृति के अनुरूप होता है। इसीलिए भरत ने इन्हे उत्तम-प्रकृति स्वरूप स्वीकार किया है। श्रीहर्ष ने इनकी योजना भी नल के आश्रय से ही की है। नल कामोपचार-विषयक उत्तमता के समान सद-व्यवहार विषयक उत्तमता से भी युक्त है। अत नैषधगत उत्साह तथा शान्त-रस-योजना को भी औचित्ययुक्त कहा जायेगा सहा तथा विस्मय भावो का निबन्धन सामान्यतया सभी प्रकार की प्रकृतियो मे किया जा सकता है। क्योकि हास्य तथा अदभुत रसो की भरतादि ने किसी विशिष्ट-प्रकृति स्वरूपता का निर्देश नही किया है। श्रीहर्ष ने भी नैषध मे इन भावो की योजना प्राय सभी प्रकार के पात्रो के आश्रय से की है। व्यसन-जन्य शोक को स्त्री तथा नीच प्रकृति के अनुरूप स्वीकार किया गया है। श्रीहर्ष ने उसकी व्यजना भी हस पक्षी तथा दमयन्ती के आश्रय से की है। अभिनव के अनुसार धर्मोपघातज शोक उत्तम व्यक्तियो मे भी उत्पन्न हो सकता है। अत श्रीहर्ष के द्वारा की गई नलगत शोकभाव-योजना को भी समुचित ही कहा जायेगा। रौद्र रस राक्षस, दानव तथा उद्धत मनुष्य की प्रकृति के अनुरूप होते हुए भी विशेष कारणवश सभी प्रकार के व्यक्तियो मे उत्पन्न हो सकता है। अत विशिष्ट-कारणजन्य नल तथा इन्द्रादि देवगत क्रोध का भी औचित्ययुक्त ही कहा जायेगा। भयानक रस स्त्री तथा नीच-प्रकृति स्वरूप होता है। श्रीहर्ष ने इसकी व्यजना भी कलि एव कलि चारण मे की है जिनकी कुचेष्टाएँ तथा अनर्गल प्रलाप उनकी नीचता को प्रकट ही कर देते है। श्रीहर्ष ने बीभत्स रस के उत्तम-प्रकृति-स्वरूप केवल शुद्ध बीभत्स भेद की योजना ही नैषध मे की है। उन्होने उसकी व्यजना इन्द्रादि देवताओ के आश्रय से की है और देवताओ की उत्तमता के बारे मे सदेह ही किसे हो सकता है। वे पहले नल को वञ्चित करने का प्रयत्न तो करते है परन्तु अन्त मे वे नल को वरदानादि भी दे जाते है जो उनकी उत्तमता का परिचायक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने प्राय सभी भावो की योजना विभिन्न भावो के अनुरूप प्रकृति मे युक्त पात्रो के माध्यम से की है। व्यभिचारी भावो की योजना करने के अवसर पर भी प्रकृत्यौचित्य को उन्होने सवदा अक्षुण्ण बनाये रखा है। अत विभाव योजना के समान नैषधगत भाव योजना भी औचित्ययुक्त है।

अनुभावादि-योजना

आनन्दवर्धन के अनुसार अनुभावादिको को औचित्ययुक्त तभी कहा जा

सकता है यदि वे भरतादि के निर्देशों के अनुरूप हो

अनुभावौचित्य तु भरतादौ प्रसिद्धमेव। ध्व० पृ० ३०८।

विगत अध्यायों में हम देख चुके हैं कि श्रीहर्ष ने अनुभावों की योजना में भरतादि का ही अनुगमन किया है।

नैषधगत विभावादिकों की योजना में सम्बन्धित उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टि-पात करने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने नैषध में विभावों, भावों तथा अनु-भावादिकों के औचित्य में चारु रसाभिव्यञ्जक कथानक का ही विधान किया है।

कथानक-योजना

किसी भी काव्य का कथानक चाहे वह ऐतिहासिक हो या कविकल्पित, तब तक रसाभिव्यञ्जक नहीं हो सकता जब तक उसमें वर्णित पात्रों, पात्रगत भावों, उन पात्रों के व्यापारों तथा घटनाओं का औचित्येन सन्निवेश न किया गया हो। घटनाओं के रसानुरूप होते हुए भी रसाननुरूप पात्रों, पात्रगत भावों तथा उनके व्यापारों की योजना अथवा पात्रों, पात्रगत भावों तथा उनके व्यापारों के रसानु-रूप होते हुए भी घटनाओं की अनौचित्ययुक्त योजना कथानक को दूषित कर सकती है। अतएव आनन्दवर्धन ने पात्रों, पात्रगत भावों तथा पात्रों के विभिन्न व्यापारों के समान ही कथानकगत घटनाओं की भी समुचित योजना करने का निर्देश दिया है

इदमपरं प्रबन्धस्य रसाभिव्यञ्जकत्वे निबन्धनम्—इतिवृत्तवशायाता कथ-चिद्रसाननुगुणां स्थितिं त्यक्त्वा, पुनरुत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्टरसोचितकथोन्नयो विधेय। ध्व० पृ० ३११।

कथानक में रसानुरूपता का आधान करने वाले पात्रादिकों के औचित्य तथा नैषध में उसके अनुगमन पर प्रकाश डाला जा चुका है। अग्रिम पृष्ठों में नैषधगत कथानक तथा उसके मूल स्रोत पर तुलनात्मक दृष्टिपात करते हुए नैषध में नियो-जित घटनाओं के औचित्यानौचित्य पर भी विचार कर लिया जाये।

नैषध महाभारतादि में उपनिबद्ध ऐतिहासिक कथानक पर आधारित महा-काव्य है। आनन्दवर्धन के अनुसार ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाकर रचना में प्रवृत्त होने वाले कवि को इतिहासकार बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसे अपने काव्य में रसानुरूप घटनाओं का ही सन्निवेश करना चाहिए, चाहे वे इति-हास विरुद्ध ही क्यों न हों

कविना प्रबन्धमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्। तत्रेतिवृत्ते यदि रसाननुगुणां स्थितिं पश्येत्, तां भङ्क्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुणं कथान्तर-मुत्पादयेत्। न हि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वाहेण किञ्चित् प्रयोजनम्, इतिहासादेरेव तत्सिद्धेः। ध्व० पृ० ३११-३१२।

नैपध तथा उसके कथानक के मूल स्रोत नलोपाख्यान पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने उपर्युक्त निर्देश का भी पूर्णतया पालन किया है।

नैपधगत कथानक का आधार

नलकथा की चर्चा न्यूनाधिक रूप मे अनेक ग्रन्थो मे की गई है। परन्तु श्रीहर्ष ने नैपध का गठन महाभारत के आधार पर किया है। महाभारत के आरण्यक पर्व मे नल के समस्त जीवन को उन्तीस अध्यायो म उपनिबद्ध किया गया है। परन्तु श्रीहर्ष ने नल के समस्त जीवन को अपने काव्य का विषय न बनाकर केवल प्रारम्भिक जीवन का अकन करने के उपरान्त ही नैपध को समाप्त कर दिया है।

वनवासी युधिष्ठिर सोचते थे कि कदाचित् उनमे अधिक दुखी व्यक्ति ने पृथ्वी पर जन्म नही लिया था

न मत्तो दुखिनतर पुमानस्तीति मे मति । म०भा०आ०प० ४६-३४॥

परन्तु बृहदश्व के कथनानुसार नल युधिष्ठिर से भी अधिक दुखी व्यक्ति था

श्रृणु राजन्नवहित सह भ्रातृभिरच्युत।
यस्त्वत्तो दुखिततरो राजासीत् पृथिवीपते॥
निपधेपु महीपालो वीरसेन इति स्म ह।
तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थदर्शिवान्॥ वही ४६ ३८-३६।

उपर्युक्त सन्दर्भ के आधार पर महाभारत मे उपनिबद्ध नलोपाख्यान को एक करुण कथा के नाम मे अभिहित किया जा सकता है। परन्तु श्रीहर्ष के कथनानुसार नैपध शृगार-रस-प्रधान महाकाव्य है

तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृगारभग्यामहा—
काव्ये चारुणि नैपधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गत॥ नै० १-१४५।

अत महाभारतगत नलोपाख्यान तथा नैपध के कथानक मे परिवर्तन होना आवश्यक रूप से निश्चित हो जाता है। क्योकि एक करुण कथा को परिवर्तन तथा परिवर्धन किये बिना शृगारिक बनाया ही कैसे जा सकता है। महाभारत तथा नैपध के कथानक पर तुलनात्मक दृष्टिपात करते हुए हम देखेंगे कि श्रीहर्ष ने किन-किन घटनाओ तथा विषयो को परिवर्तित तथा परिवर्धित किया है और श्रीहर्ष के द्वारा किया गया वह परिवर्तनादि कहाँ तक समुचित है।

नैपध तथा नलोपाख्यान का कथानक

प्रथम सर्ग

महाभारत के अनुसार नल रूपवान, अश्वकोविद, तेजस्वी, ब्रह्मण्य, वेदवित्, शूर, अक्षप्रिय, सत्यवादी, अक्षौहिणीपति, स्त्रियों का इष्ट, उदार, संयतेन्द्रिय, आर्तरक्षक तथा धनुर्धारी शासक था। म०भा०आ०प० ५०-१-४।

श्रीहर्ष ने भी महाभारत में निर्दिष्ट अक्षप्रियता के अतिरिक्त अन्य समस्त गुणों की सत्ता नल में प्रदर्शित की है। नै० १-१-३०।

जैसा कि हम देख चुके हैं, महाभारत में उपनिबद्ध नल भविष्य में कथा एक करुण-कथा है। नल के जीवन में आने वाले समस्त दुःखों का कारण उसकी यह अक्षप्रियता ही बन जाती है। अतः महाभारत में नल की अक्षप्रियता की चर्चा प्रारम्भ में कर देना समुचित ही था। इसीलिए महाभारतकार नल की विशेषताओं का वर्णन करने के अवसर पर उसकी अक्षप्रियता की चर्चा करना भी नहीं भूले

अक्षप्रिय सत्यवादी महानक्षौहिणीपतिः। वही ५०-३।

परन्तु श्रीहर्ष ने नल के इस दुर्गुण या गुण का नैषध में कहीं पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निर्देश नहीं किया है। यद्यपि नैषध के कुछ टीकाकारों ने कुछ श्लोकों की व्याख्या करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि श्रीहर्ष ने उन श्लोकों में नल की द्यूतकुशलता की ओर संकेत किया है। परन्तु वे व्याख्याएँ तात्त्विक न होकर दुराग्रह मात्र ही हैं। श्रीहर्ष को यदि नल की द्यूतप्रियता का वर्णन करना अभीष्ट होता तो वे स्पष्ट रूप से इसका वर्णन कर सकते थे। वस्तुतः श्रीहर्ष नल के इस अवगुण का वर्णन करना ही नहीं चाहते थे। क्योंकि श्रीहर्ष नलगत द्यूतप्रियता का वर्णन तथा नल के जीवन में उसका प्रदर्शन कर एक करुण काव्य की सृष्टि नहीं करने जा रहे थे, अपितु वे एक शृंगार प्रधान महाकाव्य की रचना करना चाहते थे। अतएव उन्होंने नल के इस गुण या अवगुण की नैषध में जानबूझ कर चर्चा नहीं की है। अतः श्रीहर्ष के द्वारा किये गए इस परिवर्तन को उनकी योजना के अनुरूप समुचित ही कहा जायेगा।

नलगुण वर्णन के अनन्तर महाभारत में क्रमशः भीम के गुणों, उसकी सन्तानहीनता, महर्षि दमन के वरदान से दमयन्ती आदि की उत्पत्ति तथा दमयन्ती के गुणों का वर्णन किया गया है। म०भा० आ०प० ५०-५-१३।

परन्तु श्रीहर्ष को नल, भीम तथा दमयन्ती के गुणों का क्रमिक वर्णन समुचित नहीं प्रतीत हुआ। अतः उन्होंने नलगुण-वर्णन के अनन्तर संसार की सुन्दरियों के नल-विषयक अनुराग की व्यंजना के सन्दर्भ में दमयन्तीगत नलाभिलाषा की विशद व्यंजना के लिए अवसर बना लिया है। नै० १-३१-८१।

स्पष्ट है कि श्रीहर्ष के द्वारा किये गये इस परिवर्तन से नल-गुण-वर्णन *केवल वर्णन मात्र न रह कर त्रिलोक सुन्दरीगत तथा दमयन्तीगत नलाभिलाषा*त्मक काम विकार का हेतु बन जाता है। फलतः महाभारतगत विभिन्न व्यक्तियों का क्रमिक गुण-वर्णन जहाँ वर्णन मात्र प्रतीत होता है वहाँ नैषधगत नलगुण-वर्णन शृंगार-व्यंजना का हेतु बन जाता है।

महाभारत में दमयन्ती-गुणगणन के अनन्तर परस्पर गुणश्रवणजन्य नलदमयन्तीगत अन्योन्यानुराग की ओर संकेत किया गया है।

वही आ०प० ५०-१४-१५।

श्रीहर्ष ने महाभारत का अनुसरण करते हुए भी इस प्रसंग को कुछ अधिक भाव-प्रवण बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने क्रमशः नलगुण-श्रवण-जन्य दमयन्तीगत नलाभिलाष की व्यंजना करने के उपरान्त दमयन्ती गुण-श्रवण-जन्य नलगत दमयन्तीविषयक अभिलाष की व्यंजना की है। नै० १-६०-५४।

श्रीहर्ष के द्वारा किये गये दमयन्ती तथा नलगत अन्योन्यानुराग के इस क्रमिक प्रदर्शन को विश्वनाथ के शब्दों में अधिक हृदयावर्जक कहा जा सकता है

आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः। सा०द० ३-१९५।

आदौ पुरुषानुरागे संभवत्यप्यनेनमधिकं हृदयंगमं भवति। वही।

महाभारत का काम-व्यथित नल एकान्त सेवन करने लगता है।

वही ५०-१७।

नैषध का नल भी दमयन्ती वियोग से संतप्त होकर एकान्त सेवन करने के लिए तत्पर हो जाता है। परन्तु दोनों के एकान्त-सेवन-प्रकार में पर्याप्त अन्तर है। नैषध का नल पहले एकान्त-सेवन का विचार करता है। तदनुसार अपने मित्रों के साथ घोड़ों पर चढ़कर उपवन को जाता है। तदनन्तर वह लतावनस्पतियों के दर्शन करता है। नै० १-५४-११६।

श्रीहर्ष ने इस संदर्भ में नल के अश्व तथा अन्य अश्वों की चाल, पुरवासियों के द्वारा किये गये उसके दर्शन, विलास वन तथा सरोवरादि का मनोहारी वर्णन एवं नलगत वियोग-व्यथा का विशद अंकन किया है जिनका महाभारत में सर्वथा अभाव है।

महाभारत के अनुसार नल उपवन में कनक जातरूप-परिच्छद हंसों को देखता है और उन हंसों में एक हंस को पकड़ लेता है। वही ५०-१८।

परन्तु नैषध का नल हंसों को कमलों से युक्त सरोवर के निकट देखता है तथा उसके द्वारा देखे गये हंसों में केवल एक हंस ही हिरण्मय था। वह हिरण्मय हंस सुरत-खेद के कारण अपने पंखों में अपना सिर टककर तथा एक पैर पर स्थित होकर सो रहा था। नल उस अद्भुत हंस को देखकर अपनी वियोग-व्यथा भूल जाता है और घोड़े से उतरकर तथा धीरे-धीरे हंस के पास जाकर उसे पकड़ लेता है। नै० १-११६-१२४।

कहना न होगा कि श्रीहर्ष ने इस प्रसंग में सरोवर की निकटता, स्वर्ण हंस की एकता, हंस की सुरत-खिन्नता तथा नल के द्वारा हंस को पकड़ने के लिए किये गये प्रयास का स्वाभाविक एवं सूक्ष्म वर्णन कर सरस बिम्बों की प्रशस्य योजना की है।

महाभारत का हंस नल के द्वारा पकड लिए जाने पर दमयन्ती के सम्मुख नल की प्रशंसा करने का प्रलोभन देकर नल के हाथो से अपना छुटकारा कर लेता है। वही ५०-१६-२१।

परन्तु नैषध का हंस नल के द्वारा पकड लिए जाने पर पहले नल के हाथों से उड़ने का प्रयास करता है। नल के हाथो मे काट लेने पर भी जब वह देखता है कि नल उसे छोडने की अपेक्षा उसके रूप की प्रशंसा कर रहा है तो वह नल को धिक्कारना प्रारम्भ कर देता है और अपनी वृद्धा माँ, नव-प्रसूता वरटा तथा नवजात शिशुओ की संभावित दुर्दशा की कल्पना कर करुण विलाप करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। उसके करुण क्रन्दन को सुनने से दयार्द्र चित्त नल के आंसुओ से भीग जाने के उपरान्त जब वह चेतनायुक्त हो जाता है तो नल स्वयं ही उसे छोड देता है। नै० १-१२५-१४३।

श्रीहर्ष ने इस सदर्भ मे नल के द्वारा हिरण्मय हंस के पकड लिए जाने से उत्पन्न अन्य हंसो के प्रतिक्रियात्मक विभिन्न व्यापारो का भी सूक्ष्म अंकन किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने महाभारत के सकेतो को परि-वर्तित तथा परिवर्धित कर एक ओर नलगत उदात्तता की ओर सकेत कर दिया है और दूसरी ओर करुण रस तथा अन्य भावों की मार्मिक व्यंजना कर संस्कृत साहित्य मे एक अप्रतिम अध्याय की अभिवृद्धि कर दी है।

द्वितीय सर्ग

नल के हाथो से मुक्त नैषध का हंस पहले अपने शरीर को फडफडाता है। तदनन्तर अपने घोंसले को उडकर चला जाता है और अपने शरीर को खुजलाने लगता है। जो हंस भय के कारण आकाश मे उड गये थे वे अब आकर उस हंस को घेर लेते हैं। परन्तु उसकी अस्त-व्यस्त अवस्था को देख-कर वे पुन आकाश म उड जाते है। जब वह हिरण्मय हंस अपने शरीर की खुजलाहट दूर कर लेता है तो वह पुन नल के हाथ पर आकर बैठ जाता है तथा नल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ प्रत्युपकार करने के लिए नल से अपना निवेदन सुनने की प्रार्थना करता है। नै० २-१-१५।

इस समस्त प्रसग की सरस तथा स्वाभाविक योजना श्रीहर्ष की अपनी प्रतिभा की उपज है। महाभारत मे इन तथ्यो की ओर सकेत भी नही किया गया है।

नल के हाथ पर बैठा हुआ हंस पहले भीम तथा दमन आदि का सदर्भ देते हुए दमयन्ती के गुणो का आकर्षक वर्णन करता है। तदनन्तर वह दमयन्ती के साथ उसके संयोग की अनुरूपता का वर्णन करता हुआ नल से कहता है कि यदि वह उसे अपनी सम्मति दे दे तो वह दमयन्ती जैसी सुन्दरी के साथ

उसका सयोग कराने के लिए दमयन्ती के सम्मुख नल की ऐसी गुणस्तुति कर सकता है कि दमयन्ती उसके अतिरिक्त और किसी का वरण नहीं करेगी। और इस प्रकार वह नल को दमयन्ती जैसी सुन्दरी को प्राप्त करने मे सहायक बनकर उसके उपकार से उऋण हो सकता है। नै० २-१६-४८।

हम देख चुके है कि महाभारत मे भी दमयन्तीगुण-वर्णन किया गया है। परन्तु महाभारतगत दमयन्तीगुण-वणन बृहदश्व ने युधिष्ठिर के सम्मुख किया है जिनके लिए दमयन्ती एक तटस्थ पात्र मात्र थी। अत महाभारतगत दमयन्तीगुण वणन केवल वणन मात्र प्रतीत होता है। इसी प्रकार महाभारत मे हस ने नल को दमयन्ती के सामने उसकी प्रशसा करने का जो प्रलोभन दिया है वह भी अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। क्योकि हस को स्वय तो यह ज्ञान था नही कि नल तथा दमयन्ती परस्पर अनुरक्त है। अत नल के सम्मुख दमयन्ती की विशेषताओ का वणन किए बिना उसे यह विश्वास कैसे हो गया कि वह नल को दमयन्ती का प्रलोभन देकर उसके हाथो से मुक्त हो जायेगा। हस के इस प्रलोभन से तो यह प्रतीत होता है कि कम से कम हस नल को एक ऐसा कामुक व्यक्ति समझता था जो किसी भी स्त्री का नाम सुनकर ललक पडेगा और उसे छोड देगा।

परन्तु श्रीहर्ष ने उपयु क्त दोनो प्रसगो की ऐसे अवसर पर योजना की है कि दमयन्तीगुण-वणन केवल गुणवणन-मात्र न रहकर नलगत दमयन्ती-विषयक अभिलाषा को प्रदीप्त करने का हेतु बन गया है और हस का प्रस्ताव हसगत प्रत्युपकार-मूलक सदाशयता को प्रकट करते हुए दमयन्ती के पास अपना सदेश भेजने के लिए नल को एक सुअवसर प्रदान करने के साथ-साथ नल-दमयन्ती को एक दूसरे के निकट लाने की भूमिका बन जाता है। नैषध के हस को भी नल-दमयन्ती के परस्परानुराग का ज्ञान नही था। अतएव उसने नल का दमयन्ती की ओर आकृष्ट करने के लिए दमयन्ती के गुणो का जो सश्लिष्ट वणन किया है उसे सुनकर नल यदि दमयन्ती के प्रति अनुरक्त न भी होता तो अनुरक्त हो सकता था।

महाभारत के अनुसार नल हस को छोड देता है और सभी हस विदर्भ की ओर उडकर चल देते है। नल हस के प्रस्ताव को सुनकर हस को कोई उत्तर नही देता। म० भा० आ० प० ५० २१।

नैषध का नल हस के प्रस्ताव को सुनकर उसे अपनी स्वीकृति ही नही देता अपितु वह हस की प्रशसा करता हुआ उसके सम्मुख दमयन्ती-कामना-जन्य अपनी उस वियोग-व्यथा को भी प्रकट कर देता है जो कि चिरकाल से उसके मन को व्यथित किये हुए थी तथा जो हस के द्वारा किये गये दमयन्ती-गुण वर्णन से द्विगुणित हो गई थी। नै० २-४६-६३।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत का नल दमयन्ती को मन से चाहते हुए भी हंस के सम्मुख अपने मनोभावों को प्रकट नहीं करता। कोई समालोचक नल के इस मौन को धीरता के नाम से अभिहित कर सकता है। परन्तु नैषध के नल के द्वारा सहृदयता को प्रकट करने के साथ-साथ हंस के प्रति कहे गये प्रिय वचनों में जो स्वाभाविकता एवं सरलता निहित है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। श्रीहर्ष के द्वारा इस प्रसंग में की गई विप्रलम्भ शृंगार की मार्मिक व्यंजना तो सर्वथा मौलिक एवं सजीव है ही।

महाभारत के हंस निषध देश से उड़ते हैं और विदर्भ देश में पहुँच जाते हैं। वही ५०-२१।

परन्तु नैषध का हंस एक लम्बे मार्ग का अतिक्रमण करने के उपरान्त विदर्भ देश में पहुँचता है। विदर्भ में पहुँचकर वह कुछ समय तक विदर्भ नगरी पर उड़ता रहता है तथा उसका अवलोकन करता रहता है। अन्त में वह उस उपवन के निकट भी पहुँच जाता है जहाँ पर दमयन्ती अपनी सखियों के साथ विहार कर रही थी। नै० ३-७३-१०६।

श्रीहर्ष ने अपनी इस नूतनता में भी सरसता तथा स्वाभाविकता का आधान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस सर्ग में श्रीहर्ष के द्वारा किया गया हंस की गति तथा विदर्भ नगरी का अद्भुत वर्णन तो सर्वथा मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण है ही।

तृतीय सर्ग

हम देख चुके हैं कि महाभारत के अनुसार सभी हंस विदर्भ को उड़कर जाते हैं। विदर्भ में पहुँचकर वे दमयन्ती के सम्मुख पृथ्वी पर उतर पड़ते हैं और दमयन्ती तथा उसकी सखियाँ उन हंसों का अलग-अलग पीछा करने लगती हैं। दमयन्ती जिस हंस का पीछा कर रही थी वह हंस पहले नल के गुणों का संक्षिप्त वर्णन करता है तदनन्तर दमयन्ती के मन में नल-वरण-विषयक निश्चय को उत्पन्न करने के लिए उसकी तथा नल की अन्योन्यानुरूपता का वर्णन करने लगता है। वही ५०-२२-२९।

नैषध के अनुसार केवल उपहृत हंस ही विदर्भ देश को जाता है। अतः श्रीहर्ष के सामने यह प्रश्न नहीं किये जा सकते कि उपहृत हंस के अतिरिक्त अन्य हंस विदर्भ को क्यों गये और गये भी तो दमयन्ती ने उस उपहृत हंस का ही पीछा कैसे किया तथा यदि उसने किसी अन्य हंस का पीछा किया तो वह नल-गुण-वर्णन क्योंकर करने लगा आदि ?

श्रीहर्ष ने इस सन्दर्भ में हंस के पृथ्वी पर उतरने, दमयन्ती तथा उसकी सखियों के विस्मित होने तथा हंस को पकड़ने के लिए किए गए दमयन्ती

के प्रयासो का भी अद्भुत चित्र खींचा है। दमयन्ती हंस को पकड़ने का बार-बार प्रयत्न करती है। परन्तु हंस उसके उन प्रयत्नो को निष्फल कर देता है। अन्त मे जब हंस यह देखता है कि दमयन्ती अब शून्य स्थान मे आ चुकी है तो वह दमयन्ती के प्रयासो पर व्यंग्य करता हुआ अपनी उस दिव्यता का वर्णन करने लगता है जो उसे सामान्य व्यक्तियो की श्रेणी से हटाकर विशिष्ट व्यक्तियो की श्रेणी मे लाकर बड़ाकर देती है। अपनी इस दिव्यता के वर्णन मे ही हंस नल की चर्चा चलाने के लिए अवसर खोज लेता है। उसके कथनानुसार भूलोक मे अनेक गुणो से सम्पन्न केवल नल ही एक व्यक्ति था जिसका तथा जिसकी पत्नियो का वह अनुरंजन किया करता था। अतः दमयन्ती को उसके चाटुरसामृत वचन सुनने का अवसर नही प्राप्त हो सकता। परन्तु यदि दैवयोग वश वह नल की पत्नी बन गयी तो उसका भी वह अनुरंजन किया करेगा। इस प्रकार नल के गुणो का वर्णन तथा नल दमयन्ती की समनुरूपता की ओर संकेत करने के उपरान्त हंस दमयन्ती के मनोभावो को जानने का प्रयत्न करने लगता है। नै० ३-५३।

प्रस्तुत प्रसंग मे श्रीहर्ष ने दमयन्ती के द्वारा किये गये हंसानुगमन, सखियो के प्रति शीघ्र हंसानुगमन कालीन प्रयासों तथा हंस के द्वारा की गई उन प्रयासो की मधुर भर्त्सना एव नल गुण-स्तुति मे जिस औचित्यपूर्ण स्वाभाविकता तथा सरसता का आधान किया है महाभारत मे उसके दर्शन नहीं होते। यद्यपि श्रीहर्ष प्रथम सर्ग के प्रारम्भ मे ही नल-गुण-वर्णन कर चुके थे परन्तु दमयन्ती के सम्मुख हंस के द्वारा नल-गुण-वर्णन कराना भी आवश्यक था। क्योकि हंस को दमयन्ती की नलानुरक्तता का पहले से ज्ञान तो था नही। अतः दमयन्ती को नल की ओर आकृष्ट करनेके लिए हंस के द्वारा दमयन्ती के सम्मुख नलगुण वर्णन किया जाना समुचित ही था।

महाभारत के अनुसार दमयन्ती हंस के मुख से अपनी तथा नल की अनुरूपता को सुनकर उससे केवल इतना ही कहती है कि वह नल से भी वही बाते जाकर कह दे जो उसने उससे कही हैं। म० भा० आ० प० ५०-३०

परन्तु नैषध की दमयन्ती हंस से केवल यही नही कहती कि वह नल के पास जाकर उन दोनो की अनुरूपता का निवेदन कर दे अपितु वह महाभारत की दमयन्ती की अपेक्षा कही अधिक सलज्जा तथा मुखर बन जाती है। वह हंस के बार बार प्रयत्न करने पर भी पहले तो स्पष्ट शब्द मे अपनी अभिलाषा को प्रकट नही करती। परन्तु जब हंस उसे अपनी अभिलाषा को प्रकट करने के लिए विवश कर देता है तो वह अपनी अभिलाषा ही नहीं, अपितु अपने इस दृढ संकल्प को प्रकट कर देती है कि उसका पाणिग्रहण यदि

नलाभिलापात्मक विप्रलम्भ व्यजना को अधिक सशक्त तथा औचित्यपूर्ण बना दिया है।

महाभारत के अनुसार भीम को दमयन्ती की अस्वस्थता का समाचार उसकी सखिया देती है। भीम इस समाचार को सुनकर तथा दमयन्ती की अवस्था की ओर ध्यान देकर उसका स्वयबर करने का सकल्प कर लेते है। महाभारत मे इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख नही है कि भीम दमयन्ती की दुरवस्था का समाचार सुनकर उसके पास गये भी थे या नही। वही ५१ ५-७।

नैषध के अनुसार नल-वियोग-सतप्त दमयन्ती जब एक सखी के मुख से अपने हृदय के अनतङ्गत हो जाने की बात सुनती है तो वह अपने हृदय मे नल के निकल जाने की आशका मे मूर्च्छित हो जाती है। दमयन्ती की यह मूर्च्छा सखियो मे कोलाहल पैदा कर देती है जिसे सुन कर भीम स्वय ही दमयन्ती के भवन मे पहुँच जाते है। वैद्य तथा मन्त्री श्लिष्ट वाणी मे भीम को दमयन्ती की दुरवस्था का सही कारण बताने का प्रयास करते है। परन्तु भीम घबराहट मे उनकी उस वाणी का अर्थ नही समझ पाते। परन्तु जब दमयन्ती पिता को उपस्थित देखकर प्रकृतिस्थ हो जाती है तो भीम को उसकी मूर्च्छा का कारण स्वत ज्ञात हो जाता है और वे आशीर्वाद के व्याज से शीघ्र ही दमयन्ती का स्वयवर सम्पन्न करने का निश्चय प्रकट कर देते है। वे दमयन्ती की शालीनता की रक्षा के लिए उससे उसकी अस्वस्थता का कारण तक नही पूछते। परन्तु सखियो को दमयन्ती के स्वास्थ्य के बारे मे सतर्क रहने का निर्देश देना नही भूलते। नै० ४-११०-१२२।

स्पष्ट है कि श्रीहर्ष ने महाभारत के सकेतो मे किंचित् परिवर्तन कर सखियों की मर्यादा तथा दमयन्ती की शालीनता की रक्षा भी कर ली है और भीम के वात्सल्य भाव को प्रकट करने के लिए समुचित अवसर भी निकाल लिया है।

पचम सर्ग

महाभारत के अनुसार दमयन्ती का स्वयवर करने का निश्चय कर भीम राजाओ को निमन्त्रण भेज देते हैं और राजा स्वयवर में भाग लेने के लिए अपनी सेनाओं के साथ चल पडते हैं। वही ५१-८-१०।

श्रीहर्ष ने भी भीम को राजाओ के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए अकित किया है। परन्तु उन्होंने इस अवसर पर राजाओ के आगमन का वर्णन नही किया है। नै० ५-१।

हम देखेंगे कि महाभारत तथा नैषध दोनो मे ही स्वयवर-वर्णन के पूर्व राजाओ के आगमन का वर्णन किया गया है। अतएव श्रीहर्ष के द्वारा इस

अवसर पर राजाओ के आगमन की ओर प्रदर्शित की गई उपेक्षा का समुचित ही कहा जायेगा।

महाभारत के अनुसार जिस समय अनेक राजा दमयन्ती-स्वयम्वर मे भाग लेने के लिए आ रहे थे उसी समय नारद तथा पर्वत ऋषि भ्रमण करते हुए इन्द्र के पास पहुँच जाते है। इन्द्र उन दोनो का पूजन करने के उपरान्त उनकी कुशल पूछते है। फलत नारद इन्द्र को अपनी कुशलता बताने के साथ-साथ राजाओ की कुशलता भी बता देते हैं। नारद के द्वारा राजाओ की चर्चा चला दिए जाने से इन्द्र युद्ध मे वीरगति को प्राप्त होकर स्वर्ग म राजाओ के न आने का कारण पूछते है तो नारद इन्द्र को वह कारण बताते हुए कहते है कि पृथ्वी के राजा चूकि दमयन्ती को प्राप्त करना चाहते है। अत वे सभी दमयन्ती के शीघ्र सम्पन्न होने वाले स्वयवर म भाग लेने के लिए तैयारियां कर रहे है और वे परस्पर युद्ध करने की इच्छा मे विरत हो गये है।

म० भा० आ० प० ५-१६-२१।

श्रीहर्ष ने इस कथानक मे भी कुछ परिवर्तन किया है। उन्होने पहले देव लोक को जाते हुए नारद तथा पर्वत की गति पर दृष्टिपात किया है। जब नारद इन्द्र के भवन मे पहुँच जाते है तो इन्द्र उनकी सपर्या आदि के उपरान्त वार्तालाप के मध्य मे वीरगति को प्राप्त होकर राजाओ के स्वर्ग मे न जाने का कारण पूछते है। फलत नारद इन्द्र के विनयी स्वभाव की प्रशसा करते हुए पहले दमयन्ती के सौन्दय तथा उसके शीघ्र ही सपन्न होने वाले स्वयवर की चर्चा करते है। तदनन्तर वे राजाओ की दमयन्ती के प्रति अनुरक्ति तथा स्वर्गागमन के मूल कारण युद्ध के प्रति उनकी विरक्ति से इन्द्र को परिचित करा देते है। इसी सदर्भ म नारद अपने स्वर्ग में आगमन का हेतु भी बता देते है। वे कहते है कि पृथ्वी पर कही युद्ध होता हुआ न देखकर वे युद्ध देखने की लालसा म स्वर्ग को आये थे। परन्तु जब इन्द्र स्वर्ग को युद्ध की सभावना से रहित बताकर उन्हे निराश कर देते हैं तो वे इन्द्र से विदा लेकर पर्वत के साथ इस आशा म भूलोक को पुन वापस चल देते है कि हो सकता है दमयन्ती स्वयवर मे एकत्रित राजा दमयन्ती को न प्राप्त कर सकने के कारण युद्ध करने लगे जिसे देखने के लिये वे स्वर्ग को गए थे। नै० ५-१-४४।

महाभारत तथा नैषध के उपर्युक्त कथानक पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि महाभारत का कथानक पाठक के मस्तिष्क मे अनेक प्रश्न खड़े कर देता है परन्तु उनका समाधान नही करता। जैसे नारद स्वर्ग को क्यो गए थे, इन्द्र के साथ वार्तालाप कर चुकने के उपरान्त नारद तथा पर्वत किधर चले गये, नारद ने अपनी कुशलता के साथ-साथ इन्द्र को राजाओ की कुशलता क्यो बताई जबकि इन्द्र ने उसे पूछा ही नही था आदि। परन्तु श्रीहर्ष ने इन प्रश्नो के लिए अवकाश नही रहने दिया है। उन्होने महाभारतगत

कथानक की कड़ियों में सुसम्बद्धता लाने के साथ-साथ इस सदर्भ में नारद की कलहप्रियता, इन्द्रगत विनम्रता तथा आदरणीय व्यक्तियों के प्रति प्रदर्शित की जाने वाली सम्मान भावना का भी सम्यक् प्रदर्शन किया है।

महाभारत के अनुसार नारद जब दमयन्ती-स्वयंवर की चर्चा कर रहे थे उसी समय अन्य लोकपाल भी उनके पास आ जाते हैं। वे सभी नारद की बातों को सुनते हैं और प्रसन्न होकर दमयन्ती-स्वयम्वर में जाने का निश्चय कर लेते हैं। महाभारत के इन उल्लेखों से यह स्पष्ट नहीं होता कि देवता स्वयंवर को देखने के लिए जा रहे थे या दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए जा रहे थे। वही ५१-२२-२४।

नैषध के अनुसार नारद की बातें केवल इन्द्र ही सुनते हैं और वे ही सर्वप्रथम दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए आतुर होते हैं। अन्य लोकपाल तो उन्हें स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जाता हुआ देखकर उनके साथ हो लेते हैं। श्रीहर्ष ने इस अवसर पर इन्द्रगत दमयन्ती-स्वयंवर में भाग लेने की उत्सुकता से खिन्न इन्द्राणी आदि अप्सराओं के मनोभावों पर भी सूक्ष्म दृष्टि-पात किया है। नै० ५-४५ ५५।

स्पष्ट है कि नैषधगत कथानक महाभारत की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट होने के साथ-साथ इन्द्र की अग्रेसरता तथा अन्य लोकपालों की अनुगामिता पर भी प्रकाश डालता है। इस सदर्भ में श्रीहर्ष के द्वारा की गई इन्द्र की दमयन्ती-लोलुपता से उत्पन्न अप्सराओं के मनोभावों की व्यंजना तो सर्वथा मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण है ही।

महाभारत के अनुसार एक ओर इन्द्रादि देवता दमयन्ती-स्वयंवर में भाग लेने जा रहे थे। दूसरी ओर नल भी दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार सुनकर उसमें भाग लेने के लिए चल देता है। मार्ग में इन्द्रादि देवता जब नल को देखते हैं तो उसके अपार सौन्दर्य से विस्मित हो जाते हैं। वे अन्तरिक्ष में अपने विमानों को रोक देते हैं और आकाश से उतर कर नल के पास आते हैं तथा सत्य की दुहाई देते हुए नल से कहते हैं कि वह उनका दूत बन जाये। नल उनका प्रस्ताव स्वीकार करने के उपरान्त जब उनका परिचय, सदेश तथा जिस व्यक्ति के पास उनका सदेश ले जाना था उसका परिचय आदि पूछता है तो इन्द्र सभी देवताओं का परिचय बताते हुए उससे कहते हैं कि उसे दमयन्ती के पास उनका यह सदेश ले जाना है कि वह उनमें से किसी एक का वरण कर ले। वही ५१-२५-२६ तथा ५२-१-६।

परन्तु नैषध के देवता जब स्वयंवर में भाग लेने के लिए चलते हैं तो वे पहले से ही भीम तथा दमयन्ती दोनों के पास अपनी-अपनी दूतियाँ भेज देते हैं। भीम-नगर को जाते हुए मार्ग में उन्हें एक अद्भुत शब्द सुनाई पड़ता है।

वे सभी उस शब्द को सुनकर सकल्प-विकल्प कर ही रहे थे कि वेग से जाता हुआ नल का रथ उनके सामने आ जाता है। नल के सौन्दर्य को देखकर वे सभी स्तम्भित हो जाते है और जब उन्हे यह निश्चय हो जाता है कि नल भी दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने जा रहा है तो उन्हे दमयन्ती की प्राप्ति मे सदेह हो जाता है। परन्तु इन्द्र अपने सभी साथियो को किंकर्तव्यविमूढ देखकर उच्च स्वर मे नल की कुशल पूछते है और सभी देवताओ का परिचय बताने के उपरान्त क्षण-भर विश्राम करने के बाद उससे कुछ याचना करने का निवेदन करते है। नल इन्द्रादि देवताओ को अपने सामने याचक रूप मे उपस्थित देखकर मन मे अनेक प्रकार के उदात्त सकल्प-विकल्प करने लगता है और अपने जीवन को धन्य मानता हुआ उनकी किसी भी इच्छा को पूर्ण करने का सकल्प कर लेता है। अन्त मे जब नल इन्द्रादि देवताओ से अपना अभीप्सित निवेदन करने का विनम्र आग्रह करता है तो इन्द्र चाटुकारिता मिश्रित स्वर मे उससे दमयन्ती के पास दूत बनकर जाने की याचना करने लगते है।

नै० ५-५६-१०२।

महाभारतगत उपर्युक्त घटनाओ के क्रम पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि नल अनेक गुणो से सम्पन्न एक शासक होते हुए भी किसी अज्ञात व्यक्ति के दौत्य जैसे कार्य को भी स्वीकार कर सकता था और वह भी ऐसे अवसर पर जबकि वह काम्य स्वयवर मे भाग लेने के लिए जा रहा था। परन्तु श्रीहर्ष ने महाभारतगत घटनाओ के क्रम मे परिवर्तन कर नैषधगत कथानक को औचित्यपूर्ण एव सरस बना दिया है। इन्द्र का सभी देवताओ का परिचय बताने के उपरान्त नल से केवल याचना करने का निवेदन करना इन्द्र की कुशलता का परिचायक है। नल ही नही ऐसा और कौन दानी व्यक्ति होगा जो इन्द्रादि देवताओ को याचक के रूप मे अपने सामने उपस्थित देखकर प्रसन्न नही हो जाता और उनकी याचना को पूर्ण करने के लिए तत्पर नही हो जाता? इस सदर्भ मे श्रीहर्ष ने देवताओ की मानसिक स्थिति, इन्द्र की कुशलता तथा नलगत दान-विषयक उत्साह की जो विशद व्यजना की है वह महाभारत के कथानक मे परिवर्तन तथा परिवर्धन से ही सभव हो सकी है।

महाभारत का नल देवताओ का सदेश सुनकर उनसे विनम्र आग्रह करता है कि वे सभी उसे एक कार्य को सम्पन्न करने के लिए नियुक्त न करें। परन्तु देवताओ की एक झिडकी से ही नल अपने आग्रह को त्याग देता है और इस कार्य को सम्पन्न करने मे आने वाली एक कठिनाई की स्मरण कराता हुआ कहता है कि वह भीम के सुरक्षित भवन मे प्रवेश कैसे कर सकेगा? परन्तु इन्द्र उसकी इस आपत्ति को भी यह कहकर दूर कर देते है कि वह भीम के सुरक्षित भवन मे प्रवेश कर लेगा। फलत नल देवताओ के आदेश का स्वीकार

कर लेता है और दमयन्ती-भवन की ओर चल देता है। वही ५२-७-१०।

नैषध का नल इन्द्र के वचनो मे निहित कुटिलता से अवगत होकर पहले तो उनकी भर्त्सना करता है और बाद मे उनका दूत बनने के प्रति अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। वह उन्हे स्पष्ट शब्दो मे यह भी बता देता है कि वह स्वय दमयन्ती को चाहता है और दमयन्ती भी उसका वरण करने का निश्चय कर चुकी है। परन्तु जब इन्द्रादि देवता उसकी वदान्यता ससार की क्षणभगुरता तथा अपनी याचकता का निवेदन करते हुए पुन उसकी चाटुकारिता करने लगते है तो वह अपने ऊपर थोपे गये उस दौत्य-भार को अनिच्छा होते हुए भी वहन कर लेता है और देवता उसे अन्तर्हित होने की सिद्धि दे देते है। नै० ४-१०३-१३७।

श्रीहर्ष के द्वारा परिवर्तित तथा परिवर्धित रूप मे ग्रथित महाभारत का उपयुक्त प्रसग भी देवताओ की कुटिलता, नल की व्यवहार-कुशलता तथा महानता का द्योतक होने के साथ ही विभिन्न भावो की व्यजना से अनुप्राणित है।

महाभारत तथा नैषधगत देव-नल-प्रसग पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि महाभारत म देवताओ की कुटिलता पर पर्दा डालने का प्रयास किया गया है और नल को एक सामान्य व्यक्ति का चरित्र प्रदान किया गया है। जबकि नैषध मे देवताओ की कुटिलता तथा नल चरित्र की महनीयता दोनो को ही उभार कर प्रस्तुत किया गया है। महाभारत का नल अनेक गुणो से सम्पन्न होते हुए भी किसी अज्ञात व्यक्ति का दूत बनना स्वीकार कर लेता है। वह देवताओ की एक घुडकी से ही डर जाता है। वह यह तक नही कह पाता कि वह स्वय दमयन्ती को चाहता है। परन्तु नैषध का नल अपने अनेक गुणो के अनुरूप देवताओ को याचक के रूप मे पाकर अपने को धन्य मानने लगता है और उनकी कुटिलता से अवगत हो जाने के उपरान्त उनकी भर्त्सना भी करता है। वह निर्भयता-पूर्वक देवताओ को यह भी बता देता है कि वह स्वय भी दमयन्ती को चाहता है।

महाभारत मे यह स्पष्ट नही किया गया है कि देवताओ को ज्ञात था कि नल दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने के लिए जा रहा था तथा दमयन्ती उसका वरण करने का निश्चय कर चुकी थी। देवता देवता होते हुए भी जिस नीच कार्य म प्रवृत्त हो रहे थे महाभारत म उस कार्य मे प्रवृत्त होने के कारण उनकी निन्दा भी नही की गई है। परन्तु देवताओ की यह कुटिलता अन्त मे उस समय पर प्रकट ही हो जाती है जब वे नल का रूप धारण कर दमयन्ती का शीलभग करने के लिए उद्यत हो जाते है।

श्रीहर्ष ने देवताओ के किसी कार्य पर पर्दा डालने का प्रयास नही किया,

है। उन्होने प्रारम्भ मे ही देवताओ की कुचेष्टाओ का स्पष्ट रूप से निर्देश कर दिया है। इन्द्र को नारद के द्वारा यह ज्ञात हो चुका था कि दमयन्ती किसी युवक को चाहती है (नै० ५-२७)। फिर भी इन्द्र उसे प्राप्त करने के लिए आतुर हो जाते है। नल की वेषभूषा आदि को देखकर जब उन्हे यह निश्चय हो जाता है कि वह भी दमयन्ती-स्वयवर को ही जा रहा है और उसकी उपस्थिति मे दमयन्ती उन लोगो का कथमपि वरण नही कर सकती तो वे नल को वचित करने पर उतर जाते हैं। नल उन्हे यद्यपि इस वास्तविकता को समझाने का प्रयास करता है कि दमयन्ती उसके अतिरिक्त अन्य किसी का वरण नही कर सकती फिर भी इन्द्रादि देवता उसे अपना दूत बनाने का प्रयत्न करते रहते है।

चूंकि देवता एक नीच कार्य मे प्रवृत्त हुए थे। अत श्रीहर्ष ने उनके किसी कार्य पर पर्दा न डाल कर नीच व्यक्तियो के अनुरूप देवताओं के द्वारा नल की चाटुकारिता तथा नल के द्वारा देवताओ की भर्त्सना भी कराई है। इस प्रकार श्रीहर्ष ने देवताओ तथा नल के चरित्र को आमने-सामने रखकर देवताओ की नीचता तथा नल की महानता का सफलतापूर्वक प्रदर्शन कर दिया है।

षष्ठ सर्ग

महाभारत के अनुसार नल देवताओ का दूत बनना स्वीकार कर दमयन्ती के भवन की ओर चल देता है और वहा पहुँच कर दमयन्ती को सखियो के मध्य मे उपस्थित देखता है। वही ५२-१०-१३।

श्रीहर्ष ने महाभारत के इस सकेत को भी एक सरस प्रकरण का रूप दे दिया है। नल देवताओ का दौत्य-भार वहन कर अपने रथ पर सवार होकर भीम की राजधानी की ओर चल देता है। और देवता प्रतिसदेश सुनने की लालसा मे वही ठहर जाते हैं। कुण्डिनपुर मे पहुँचकर वह रथ से उतर कर नगर मे प्रवेश करता है। उस समय वह अन्तर्हित था। अत उसे कोई देख नही पाता। दमयन्ती-भवन को खोजता हुआ नल जब भीम के अन्त पुर मे पहुँच जाता है तो वहाँ उसे बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। क्योकि अन्तर्हित होने के कारण उसे कोई देख तो रहा नही था जो उसे आता हुआ देखकर सावधान हो जाता। अत नल के सामने कभी कोई अर्धनग्न स्त्री आ जाती है और कभी उन अर्धनग्न स्त्रियो को देखने मे खिन्न होकर नल जब आखे बन्द कर लेता है तो अन्य स्त्री उससे टकरा जाती है। फलत नल बहुत दुखी हो जाता है। वही पर उसकी दमयन्ती से भी अचानक भेट हो जाती है। परन्तु अन्तर्हित होने के कारण दमयन्ती तो उसे देख नही

पानी और वह अपने भवन को चली जाती है परन्तु नल वही मिथ्या दमयन्ती के पीछे चक्कर लगाता रह जाता है। अन्त मे पैदल ही इधर-उधर बहुत देर तक भ्रमण करने के उपरान्त नल दमयन्ती-भवन के पास पहुँच जाता है और देखता है कि दमयन्ती की सखियो की सभा लगी हुई है। नै० ६-१-५८।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीहर्ष ने महाभारत के सकेत को प्रवाहयुक्त कथानक का रूप देते हुए इस सदर्भ मे नल के मनोभावो तथा उसके निष्कलुष चरित्र का जो मनोहारी अकन किया है वह श्रीहर्ष तथा नैषधीयचरित दोनो की महत्ता का परिचायक है।

महाभारत का नल दमयन्ती को सखियों की सभा के मध्य मे उपस्थित देखता है। वही ५२-११।

नैषध का नल भी सखियो मे आवृत्त दमयन्ती को देखता है। परन्तु श्रीहर्ष केवल सखियो का निर्देश मात्र करके आगे नही बढ जाते। वे उन सखियो के व्यापारो पर भी सूक्ष्म दृष्टिपात करते हैं। नल ने दमयन्ती की जिन सखियो को देखा था उनमे से कोई आलाप भर रही थी। कोई मैना से दमयन्ती का विनोद कर रही थी। कोई नल-दमयन्ती के स्वयवर का नाटक कर रही थी। कोई एक-दूसरे के तिलक लगा रही थी। दमयन्ती स्वय भी केतकी-पत्र पर नल के लिए प्रेम-पत्र लिख रही थी। कोई सखी चित्र बना रही थी तो अन्य सखियाँ भी इसी प्रकार किसी न किसी व्यापार मे लगी हुई थी। नल पहले तो उन सखियो म दमयन्ती को पहचान नही पाता, परन्तु अन्त मे दमयन्ती का अपार सौंदर्य उसे प्रकट कर देता है। नै० ७-५६-७४।

जब नल दमयन्ती की बातों पर ध्यान देता है तो वह देखता है कि दमयन्ती देवताओं की दूतियो के प्रस्ताव को अस्वीकार कर रही है। दूतियाँ यद्यपि विस्तारपूर्वक युक्तियुक्त रीति से देवताओ का सदेश निवेदन करती हैं और दूतियो के सदेश को सुनकर दमयन्ती की सखियाँ भी दूतियो के प्रस्ताव का अनुमोदन कर देती हैं। परन्तु दमयन्ती उन दूतियो के प्रस्ताव को नही स्वीकार करती। इन्द्र की दूती इन्द्र का वाचिक सदेश सुनाने के उपरान्त दमयन्ती को इन्द्र के द्वारा प्रेषित पारिजात की माला भी देती है। परन्तु दमयन्ती उस माला को ग्रहण करते हुए भी उस दूती के प्रस्ताव का अनुमोदन करने वाली सखियों को बीच मे ही रोककर इन्द्र के प्रति आदर प्रदर्शित करते हुए दूती को स्पष्ट बता देती है कि वह वस्तुत इन्द्र के अयोग्य है और वह इन्द्र के अश स्वरूप नल का पहले म ही वरण कर चुकी है। वह अपने निश्चय की महत्ता तथा स्वर्ग की अपेक्षा मृत्युलोक के गरिमामय होने का वर्णन कर ही रही थी कि उसने देखा सखियाँ उससे फिर कुछ कहना चाहती है। अत वह उन सखियो को जोकि उसके व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य पर हावी होना चाहती थी,

भिड़कते हुए इन्द्र-दूती को पुन कुछ न कहने की शपथ दे देती है। श्रीहर्ष ने दूतियों तथा दमयन्ती के इस वार्तालाप के मध्य मे यत्र-तत्र आशा तथा निराशा की तरगो मे दोलायमान नल की मन स्थिति पर भी सूक्ष्म दृष्टिपात किया है। नै० ६-७५-११२।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने सखियो से आवृत्त दमयन्ती की सभा का एक सजीव चित्र अकित किया है। इस सदभ मे उन्होंने देव-दूतियो के द्वारा नल की उपस्थिति मे दमयन्ती को देवताओ का सदेश दिला कर दमयन्ती-गत दृढ़ता, स्वदेशानुराग, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की भावना तथा नल के मनोभावो की जो मर्मस्पर्शी व्यजना की है उसे सस्कृत साहित्य की एक अनुपम निधि कहा जा सकता है।

सप्तम सर्ग

महाभारत मे नल के द्वारा दृष्ट उसके काम विकार को प्रदीप्त करने वाले दमयन्ती-सौंदर्य को भी कुछ रेखाओ मे आबद्ध किया गया है। वही ५२-१२-१३।

श्रीहर्ष ने महाभारत की उन रेखाओ मे रग भरते हुए दमयन्ती के सौंदर्य को मूर्तिमान् बना दिया है। उन्होंने दमयन्ती के इस सौंदय का समस्त सप्तम सग मे अकन किया है। यद्यपि इस सर्ग मे कथानक जैसी कोई वस्तु नही है। अनेक उपमानों के द्वारा दमयन्ती के सौंदर्य को ही रूपायित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इस सौंदय-वणन म भी एक सूक्ष्म प्रवाह अवश्य परिलक्षित होता है। नल पहले तो दमयन्ती के समस्त सौंदय को एक बार देख जाता है। उसके उपरान्त वह मन म क्रमश उसके समग्र एव शिखनख सौदय का वर्णन करने लगता है। अवयव-सौंदर्य-वर्णन मे सर्वप्रथम उसकी दृष्टि दमयन्ती के केशो पर पड़ती है। तदनन्तर वह नखो की ओर क्रमश खिसकती तथा रुकती हुई चली जाती है। बीच-बीच मे वह कभी-कभी लौटकर किसी-किसी अग की ओर पुन पुन देखना भी जाता है। इस प्रकार अन्तर्हित अवस्था मे ही दमयन्ती सौदय का आकण्ठ पान करने के उपरान्त नल दमयन्ती के सामने प्रकट होने का निश्चय करता है। नै० ७-१-१०८।

महाभारत की रेखाओ पर आधारित नैषध के इस समस्त सग पर दृष्टि-पात करने से प्रतीत होता है कि अनेक कल्पनाओ मे पुनरुक्ति होते हुए भी यह सग नलगत रति वासना की व्यजना करने मे पूर्णतया समर्थ है। यद्यपि श्रीहर्ष द्वितीय सग मे हस के द्वारा दमयन्ती-सौंदय का वर्णन करा चुके थे, परन्तु नल के द्वारा किये गये दमयन्ती के इस सौंदय-वणन को पुनरुक्ति मात्र नही कहा जा सकता। क्योंकि प्रथम सौदय-वणन नलगत रति-वासना का उद्बोधक होने के कारण विभाव स्वरूप है तथा सप्तम सर्गगत सौंदय-

वर्णन नलगत रति-वासना का कार्यस्वरूप होने के कारण अनुभाव स्वरूप है। इसी प्रकार दमयन्ती का प्रथम सौंदर्य-वर्णन तद्गत शोभा अलंकारता का सूचक है और सप्तम सर्गगत सौंदर्य-वर्णन कान्ति अलंकारता का सूचक है। इसके साथ ही नल जिस दमयन्ती को चिरकाल से चाह रहा था उसे देखकर यदि वह कुछ समय तक देखता रह गया तथा मन में उसके सौंदर्य की प्रशंसा करने लगा तो उसकी प्रशंसा करता ही चला गया तो इसमें उसका दोष ही क्या ? मानव स्वभाव कुछ होता ही वैसा है।

अष्टम सर्ग

महाभारत में दमयन्ती-सौंदर्य-वर्णन के उपरान्त नल को देखने से उत्पन्न दमयन्ती की सखियों की घबराहट का अंकन किया गया है। सभी सखियाँ नल को देखकर उसके तेज से धर्षित हो जाती हैं और अपने-अपने आसनों से उठ बैठती हैं। वे सभी नल के सौंदर्य को देखकर मन में अनेक संकल्प-विकल्प करती हैं। परन्तु नल से बातें करने का साहस किसी को नहीं होता। अन्त में दमयन्ती स्मितपूर्वक अपने कामविकार को बढ़ाने वाले नल से उसका नाम, अपने पास आने का कारण तथा सुरक्षित भवन में अलक्षित प्रवेश कर लेने का कारण पूछती है। वही ५२-१४-२०।

नैषध के अनुसार नल के प्रकट हो जाने के उपरान्त सभी सखियाँ तथा दमयन्ती उसे देखती हैं। नल तथा दमयन्ती दोनों ही एक दूसरे को देखकर काम-विकार से युक्त हो जाते हैं। परन्तु दोनों ही अपने-अपने मनोभावों का शमन कर लेते हैं। सभी सखियाँ नल को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाती हैं तथा नल का परिचयादि न पूछकर अपने-अपने आसनों से उठकर खड़ी हो जाती हैं। दमयन्ती भी पहले तो नल के अवयव-सौंदर्य का पान करती है तदनन्तर नल से आतिथ्य-योग्य प्रिय वचनों को कहती हुई उसके गन्तव्य, निवास, नाम, सुरक्षित भवन में प्रवेश करने के कारण तथा वंश आदि को जानने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करती है। वह अन्त में आतिथ्य के व्याज से नल के सौंदर्य की स्तुति करती हुई नल से अपने प्रश्नों का उत्तर देने के लिए विनम्र आग्रह भी करती है। नै० ८-१-४६।

नैषधगत इस प्रसंग पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने महाभारत का अनुसरण करते हुए भी दमयन्ती के द्वारा नल के सौंदर्य का दर्शन तथा वर्णन कराकर दमयन्तीगत रति-वासना की जो मर्मस्पर्शी व्यंजना की है, महाभारत में उसका कथन मात्र कर दिया गया है। महाभारत में अन्तर्हित नल के प्रकट होने का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। श्रीहर्ष ने महाभारत में दमयन्ती के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के क्रम में भी परिवर्तन कर दिया है। इस

आगे देखेंगे कि यह क्रम-परिवर्तन नल के दौत्य कार्य को सफल बनाये रखने मे पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। यद्यपि प्रथम तथा तृतीय सर्ग मे नल-गुण-वर्णन किया जा चुका था परन्तु दमयन्ती के द्वारा किया गया यह नलगुण-वर्णन विभाव-स्वरूप न होकर अनुभाव-स्वरूप है तथा नल सौन्दर्य-दर्शनजन्य दमयन्तीगत रति-वासना का व्यजक होने के साथ-साथ दमयन्ती के विवश हृदय का उदगार स्वरूप है। अत दमयन्ती के द्वारा किये गये इस नल-गुण-वर्णन को अनीप्सित नही कहा जा सकता ।

महाभारत का नल दमयन्ती के द्वारा पूछे गये प्रश्नो के क्रमश उत्तर देता हुआ सर्वप्रथम अपना नाम ही उसे बता देता है। तदनन्तर वह अपनी देवदूतता तथा अपने आगमन के प्रयोजन अर्थात् देवताओ के सदेश से दमयन्ती को परिचित करा देता है। अन्त मे वह दमयन्ती के अन्तिम प्रश्न का उत्तर देता हुआ उसे यह भी बता देता है कि देवताओ के प्रभाव से ही वह उसके सुरक्षित भवन मे प्रवेश कर सका है। वही [५२-२१-२४।]

श्रीहर्ष ने महाभारत के इन सकेतो को पर्याप्त परिवर्तन के उपरान्त आत्मसात किया है। उन्होने दमयन्ती के प्रश्नो का नल के द्वारा उत्तर दिलाने से पहले दमयन्ती के द्वारा की गई गुण स्तुति से उत्पन्न नल के मनोविकारो पर दृष्टिपात किया है। नल जब दमयन्ती के द्वारा दिये गये आसन पर बैठकर अपने मनोविकारो को सयत कर लेता है तब वह दमयन्ती के प्रथम तथा द्वितीय प्रश्न का उत्तर देता है कि वह देवताओ की सभा से उसके लिए देवताओ का सदेश लेकर आया है। नल दमयन्ती के प्रश्नो का उत्तर देते हुए भी अपने निवास-स्थान का पता दमयन्ती को नहीं बताता। वह दमयन्ती के प्रथम दो प्रश्नो का उत्तर देकर उसको अपनी बातो मे उलझा लेता है और उसके अन्य प्रश्नो का उत्तर न देकर मधुर स्वर मे उसका कुशल-मगल पूछते हुए देवताओ का सदेश निवेदन करने लगता है। नल के द्वारा निवेदित देव-सदेश भी नल का स्वकल्पित सदेश है। देवताओ ने केवल उसे दूत बनाकर भेज दिया था, उन्होने उसे यह नही बताया था कि वह दमयन्ती से क्या-क्या बातें कहेगा। नल स्वय ही निसृष्टार्थ दूत की भाति सदेश की कल्पना कर देवताओ का कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगता है। वह पहले दमयन्ती को उसकी अभिलाषा मे उत्पन्न इन्द्रादि देवताओ की दुरवस्था मे परिचित कराता है। तदनन्तर वह देवताओ के पृथ्वी पर आगमन का निवेदन करता हुआ देवताओ के द्वारा प्रेषित जो वस्तुत देवताओ के द्वारा प्रेषित न होकर नल के द्वारा स्वय कल्पित था, प्रेम-सदेश निवेदन करने लगता है। अन्त मे वह दमयन्ती से अपनी दूतता को सफल बनाने के लिए आग्रह करता हुआ किसी देवता का वरण करने की सम्मति भी देता है। नै० ८-५०-१०८।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने दमयन्ती के द्वारा पूछे गये प्रश्नो के क्रम मे परिवर्तन कर, नल के द्वारा दिये गये प्रथम दो प्रश्नों के उत्तर मे गोलमाल कर तथा नल के द्वारा वितरित देवताओ के सदेश को हृदयग्राही बनाकर नल के दौत्य कार्य को रोचक एव प्रभविष्णु बनाने के साथ-साथ शृगाराभास की प्रशस्य योजना की है।

नवम सर्ग

नैषध की दमयन्ती जब यह देखती है कि नल उसके सभी प्रश्नो के उत्तर न देकर बीच मे देवताओ की व्यथा तथा उनका सदेश निवेदन करने लगा है तो वह नल के इस अप्रस्तुत सम्भाषण के लिए उसे उलाहना देती है और उससे अपना नाम तथा वश बताने के लिए आग्रह करती है। परन्तु नल को यह ज्ञान था कि यदि वह दमयन्ती को अपना नाम तथा वश बता देगा तो दमयन्ती देवताओ के बारे मे कुछ भी सुनना पसद नही करेगी। अत वह दमयन्ती के इन उत्तरो को देने मे आनाकानी करने लगता है। कुछ टालमटोल करने के उपरान्त वह अपने वश का नाम तो बता देता है परन्तु सज्जनो की परम्परा का स्मरण दिलाते हुए दमयन्ती को वह अपना नाम स्वय बताने मे अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। दमयन्ती भी कम चतुर न थी। जब वह देखती है कि नल जान-बूझकर अपना नाम छिपा रहा है तो वह भी नल की चतुरता की दाद देती हुई उसे कुलागनाओ की परम्परा का स्मरण दिलाकर उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने मे अपनी असमर्थता प्रकट कर देती है। परन्तु नल मौन रहने वाला तथा हार मान जाने वाला दूत नही था। अत वह पुन हृदय से दमयन्ती के उत्तर का अभिनन्दन करता हुआ देवताओ के सन्देश का उत्तर देने के लिए तथा अपने दौत्य को सफल बनाने के लिए दमयन्ती से विनम्र आग्रह करने लगता है। नै० ९-१-२१।

नल-दमयन्ती का यह सरस सवाद श्रीहर्ष की प्रतिभा की उपज है। महाभारत मे उसकी ओर सकेत भी नही किया गया है।

महाभारत की दमयन्ती नल का परिचय तथा देवताओ का सदेश सुनकर हँसते हुए नल से मधुर भाषण करने लगती है। वह अपनी कामात दशा का निवेदन करते हुए नल को यह स्पष्ट बता देती है कि यदि वह उसका प्रत्याख्यान करेगा तो वह किसी न किसी प्रकार आत्महत्या कर लेगी।

वही ५३-१-४।

परन्तु नैषध की दमयन्ती नल के द्वारा दिये गये अपने प्रश्नो के अधूरे उत्तरो को सुनकर पहले तो मन मे नल जैसे सुन्दर व्यक्ति को दूत बनाकर भेजने वाले देवताओं की अदूरदर्शिता पर हँसती है। तदनन्तर नल के प्रति आदर-

वान् होने के कारण देवताओ के साथ अपने परिणय-सम्बन्ध की अयोग्यता का निवेदन करते हुए सखी के द्वारा वह अपने नल-वरण-विषयक पूत्र निश्चय तथा उस निश्चय के बारे मे अपने दृढसकल्प से नल को परिचित करा देती है।
नै० ६-२२-३७।

नैषधगत यह प्रसग भी महाभारत की अपेक्षा अधिक भावप्रवण होने के साथ साथ दमयन्तीगत सलज्जता तथा दृढता का व्यजक है इस बारे मे दो मत नही हो सकते। और यह सभव तभी हो सका है जबकि श्रीहर्ष ने महाभारत की भाति दमयन्ती के द्वारा नल से अपने अनुराग के बारे मे स्वय कुछ न कहलाकर उसकी शालीनता की रक्षा करते हुए सखी के द्वारा दमयन्ती के निश्चय को प्रकट कराया है।

महाभारत का नल दमयन्ती के सकल्प को सुनकर देवताओ के सामने किसी पुरुष का वरण करने मे सम्बन्धित दमयन्ती के निश्चय पर आश्चय प्रकट करता है। नल दमयन्ती को देवताओ की शक्ति का स्मरण दिलाते हुए उससे प्रार्थना करता है कि वह देवताओ के सामने उसका वरण कर उसे देवताओ का कोप-भाजन न बनाए और देवताओ का वरण कर ले।
वही ५३-५७।

नैषध का नल सखी के मुख से दमयन्ती का सकल्प सुनकर चिढ सा जाता है। और दमयन्ती की भर्त्सना करता हुआ वह उससे कहता है कि यदि उसने किसी निषिद्ध साधन को अपनाकर नल के न प्राप्त होने की सभावना मे आत्मघात भी कर लिया तो भी वह देवताओ के हाथो से नही बच सकती। इस प्रकार घुडकने तथा भय दिखाने के उपरान्त नल पुन दमयन्ती की चाटुकारिता-सी करने लगता है तथा इन्द्रादि देवताओ मे किसी एक देवता का वरण करने तथा उसके साथ काम-क्रीडाएँ करने के लिए दमयन्ती को प्रेरित करने लगता है। परन्तु दमयन्ती पर नल की यह नीति कोई असर नही कर पाती। अभी तक उसने नल के बार बार अनीप्सित देव सदेश निवदन करने पर भी नल से कुछ अप्रिय शब्द नहीं कहे थे। परन्तु नल के उपयुक्त कटुव्यग्योक्तियो को सुनकर वह मर्माहत हो जाती है और अपनी पीडा को तीव्र स्वर मे प्रकट करती हुई नल को सचमुच यमदूत घोषित कर देती है। इसके उपरान्त वह सखी के द्वारा नल से प्रार्थना करती है कि वह अब और अधिक देवताओ के बारे मे कुछ न कहे और कल तक उसके पास विश्राम करे। ताकि वह उसे देखकर वह दिन बिता ले। क्योकि उसका प्रिय नल भी उसके समान ही है। देवताओ के बारे मे तो अब वह कुछ सोच भी नही सकती आदि। नै० ६-३८ ७१।

नल दमयन्ती की उस वाणी से मर्माहत होने हुए भी अपने कार्य से विरत नही होता और दमयन्ती को देवताओ की उन शक्तियो का स्मरण

दिलाने लगता है जो शक्तियाँ देवताओं की सभी इच्छाओं को पूर्ण कर सकती थी और जिनका आश्रय लेकर वे उसे हर स्थिति में प्राप्त कर सकते थे। नल दमयन्ती से यह भी कहता है कि देवता यदि चाहे तो वे नल के साथ होने वाले उसके पाणिग्रहण को भी नहीं होने दे सकते है। नै० ९-७२-८३।

नल के द्वारा कही गई सभी बातो की यथार्थता पर विचार करने के उपरान्त दमयन्ती को यह निश्चित हो जाता है कि अब वह नल को नही प्राप्त कर सकेगी। अत उसका शोक निर्बाध रूप से उमड पडता है और वह करुण विलाप करने लगती है। दमयन्ती के उस करुण विलाप को सुनकर नल भी उदभ्रान्त हो जाता है और वह भी अपने दौत्य-कार्य को भूलकर प्रलाप करने लगता है। परन्तु जब दमयन्ती उसके प्रलाप को सुनकर प्रकृतिस्थ हो जाती है तो वह भी सचेत हो जाता है और वह अपनी उन्मत्तता पर पश्चात्ताप करने लगता है। उसी समय हस आकर नल को निष्कारण आत्मनिन्दा न करने के लिए सावधान कर देता है। फलत नल आत्मनिन्दा से विरत होकर निभयतापूवक दमयन्ती को अपना अथवा इन्द्रादि देवताओं मे किसी एक का सोच विचार कर वरण करने के सम्बन्ध मे अपनी तटस्थ सम्मति भी देता है। नै० ९-८४-१३५।

उपर्युक्त समस्त प्रसग श्रीहर्ष की उद्भावना है। और इसमे कोई सदेह नही कि श्रीहर्ष की यह उद्भावना औचित्ययुक्त एव रस-प्रवण है। समस्त सस्कृत साहित्य मे ऐसे प्रकरण थोडे ही मिलेंगे। महाभारत मे तो उपर्युक्त कथानक की ओर केवल सकेत मात्र किया गया है।

महाभारत की दमयन्ती देवताओं से भयभीत नल को मार्ग दिखाती है। वह नल को देवताओं के साथ स्वयवर मे आने का परामर्श देती है और कहती है कि स्वयवर मे देवताओं के सामने वह उसका वरण कर उस पर दोष नहीं आने देगी। वही ५३ ८-११।

नैषध की दमयन्ती नल से परिचित हो जाने के उपरान्त उल्लसित होते हुए भी लज्जावश नल से सम्भाषण नही कर पाती। यहाँ तक कि वह अपनी सखी तक को नल की बातो का उत्तर देने के लिए प्रेरित नहीं कर पाती है। सखी स्वय दमयन्ती को मौन देखकर नल को उसकी कामजनित दुरवस्थाओं से परिचित कराती है तथा दमयन्ती को इस प्रकार कष्ट देने के कारण उसको उलाहना भी देती है। वह नल के सामने उन उपायो का भी निर्देश करती है जिन उपायो को अपनाकर केवल नल ही नही, अपितु दमयन्ती भी देवताओं के कोप से मुक्त हो सकती थी। अन्त मे दमयन्ती भी स्वय नल को स्वयवर मे आने का निमत्रण देती है और नल उस निमत्रण को स्वीकार कर लेता है। नै० ९-१३६-१५७।

श्रीहर्ष ने इस सदर्भ मे भी महाभारत की भाति दमयन्ती के द्वारा नल से कुछ न कहलाकर उसकी सखी के द्वारा दमयन्ती की वियोग-व्यथा का वर्णन कराकर तथा देवताओं के अपराध से विमुक्त हो जाने के उपायो का निर्देश कराकर शील तथा शृगार रस की युगपत् व्यजना करने का सराहनीय प्रयास किया है।

महाभारत का नल दमयन्ती के सुभाव को सुनकर उसके पास से देवताओं के पास चला आता है। वह दमयन्ती के प्रस्ताव को सुनकर स्वयवर मे अपने आने अथवा न आने बारे मे उससे कुछ नही कहता। देवताओं के पूछने पर वह दमयन्ती-भवन मे प्रवेश से लेकर दमयन्ती के अन्तिम सुभाव तक की सभी बातें विस्तारपूर्वक उन्हे बता देता है। वही ५३-१२ २१।

परन्तु नैषध का नल दमयन्ती के द्वारा एकान्त मे स्वयवर मे सम्मिलित होने का निमत्रण पाकर दमयन्ती को अपनी स्पष्ट स्वीकृति देने के उपरान्त देवताओं के पास आता है। नल के द्वारा प्रदर्शित यह शिष्टाचार दमयन्ती की उत्कण्ठा को तीव्र कर देता है और उसे एक रात्रि बिताना भी कठिन हो जाता है। नल देवताओं को आद्योपान्त सब वृत्तान्त भी नहीं बताता। श्रीहर्ष ने केवल यह सकेत मात्र कर दिया है कि नल ने देवताओं को अपने दौत्य से परिचित करा दिया। नै० ६-१५७-१५६।

श्रीहर्ष के द्वारा किये गये उपयुक्त दोनो परिवर्तनो को समुचित ही कहा जायेगा। क्योंकि नल का दमयन्ती के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना नलगत शिष्टता का द्योतक तथा दमयन्तीगत रति-वासना का उद्बोधक है। उसी प्रकार नल के द्वारा देवताओं के सामने समस्त वृत्तान्त की आवृत्ति न कराकर श्रीहर्ष ने अनावश्यक पुनरावृत्तिजन्य दोष से नैषध को बचा लिया है।

नल-दौत्य-सम्बन्धी उपयुक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने महाभारत का अनुसरण करते हुए भी नल-दमयन्ती के चरित्र-चित्रण मे पर्याप्त सूझ-बूझ से काम लिया है। महाभारत का नल देवताओं से भयभीत दृष्टिगत होता है। परन्तु नैषध का नल निर्भीक है। नैषध का नल देवताओं के दौत्य कार्य को भी महाभारत के नल की अपेक्षा अधिक कुशलता पूर्वक तथा मनोयोग से सम्पन्न करता है। महाभारत की दमयन्ती पर्याप्त मुखर है वह नल को भी मार्ग दिखाती है। परन्तु नैषध की दमयन्ती चतुर होते हुए भी लज्जाशील है। महाभारत मे दमयन्ती की सखियो का केवल उल्लेख मात्र किया गया है अग्रिम कथानक मे सखियो से कोई लाभ नही उठाया गया है। परन्तु श्रीहर्ष ने उन सखियो को दमयन्ती की लज्जाशीलता का कवच बनाकर नैषध के कथानक का उन्हे अभिन्न अग बना दिया है।

दशम सर्ग

महाभारत के अनुसार भीम शुभ मुहूर्त मे राजाओ को स्वयवर मे बुलाते हैं। दमयन्ती को चाहने वाले सभी राजा भीम के निमत्रण को सुनकर शीघ्र ही वहाँ आ जाते है और अनकृत स्वयवर-मण्डप मे प्रवेश करने लगते है। स्वयवर-मण्डप मे उपस्थित सभी राजा बलिष्ठ तथा सौदय-सपन्न थे। वे भू लोक के विभिन्न भागो से आए हुए थे। वही ५८-१७।

महाभारत मे भीम के निमत्रण के आधार पर दमयन्ती के स्वयवर मे भाग लेने के लिए आने वाले राजाओ की गति, वेषभूषा तथा सेना आदि का वणन ५१ वें अध्याय मे पहले ही किया जा चुका था। अत यहा पर राजाओ को वितरित किये गये निमत्रण का पुनरुल्लेख अनावश्यक ही प्रतीत होता है। श्रीहर्ष ने भी चूकि पचम सग के प्रारम्भ मे यह सकेत कर दिया था कि भीम राजाओ की प्रतीक्षा कर रह थे, अत उन्होने यहा पर राजाओ को पुन निमन्त्रण आदि न दिलाकर राजाओ के स्वयवर मे आगमन का वर्णन प्रारभ कर दिया है जोकि समुचित ही है। श्रीहर्ष के अनुसार पृथ्वी के सभी राजा दमयन्ती स्वयवर मे भाग लेने के लिए आ रहे थे। उन्होने उन राजाओ के आगमन से उपस्थित भीड का वणन करते हुए राजाओ के मनोभावो तथा नागो एव इन्द्रादि देवताओ के आगमन की ओर भी सकेत किया है। उन्होने इन्द्रादि देवताओ के अतिरिक्त वायु तथा कामदेव अन्य आदि देवताओ, राक्षसो, शकर, जी शेषनाग एव ब्रह्मा जी के दमयन्ती-स्वयवर मे न आने के विभिन्न कारणो का निर्देश भी किया है। देवताओ को यह ज्ञात हो चुका था कि दमयन्ती उनका वरण नही करेगी। अत वे उदासीन भाव से स्वयवर मे नल का रूप धारण कर जाते हैं। भीम स्वयवर मे आये हुए सभी राजाओ का स्वागत-सत्कार करते है। दूसरे दिन भीम के सदेश के अनुसार सभी स्वयवर मण्डप म आ जाते है। जब नल उस मण्डप म प्रवेश करता है तो सभी उसे देखकर उत्कण्ठित तथा ईर्ष्यायुक्त हो जाते ह। नल अपने पास ही बैठे हुए छद्मरूपधारी इन्द्रादि देवताओ से उनका परिचय पूछता है। परन्तु वे नल को अपना वास्तविक परिचय नही बताते। नल भी दमयन्ती-चिन्तन म लीन होने के कारण उनकी बातो की ओर ध्यान नही देता। विष्णु आदि देवता उस दिव्य सभा का दशन करने के लिए आकाश मे आकर स्थित हो जाते हैं। सूताचाय उस सभा का वणन भी करते हैं। भीम उस अपार राज-समाज को देखकर उनका परिचय बताने मे किसी व्यक्ति को समर्थ न पाकर चिन्ता करने लगते हैं। वे जब अपने कुल-देवता का स्मरण कर चिन्ता को दूर करने का प्रयत्न करते है तो विष्णु भीम के ध्यान मे सन्तुष्ट होकर उस सभा के राजाओ का वर्णन करने के लिए सरस्वती को नियुक्त कर देते है। फलत अद्भुत स्वरूप-सपन्न सरस्वती उस सभा के

मध्य मे अवतरित होकर भीम की चिन्ता को दूर कर देती है । भीम पहले सरस्वती की पूजा करते है उसके उपरात वे दमयन्ती को राज समाज मे बुलाते है । नै० १०-१-६० ।

नैषधगत उपर्युक्त कथानक पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने महाभारत के सकेतो को विस्तार प्रदान करने के साथ-साथ इस सदर्भ मे अनेक उदभावनाएँ भी की है । और श्रीहर्ष उन सभी नूतन उद्भावनाओ एव विस्तृत वर्णनो को भावप्रवण एव औचित्ययुक्त बनाये रखने मे भी पूर्णतया सफल रहे है, इसमे कोई सदेह नही ।

महाभारत के अनुसार दमयन्ती के स्वयवर मण्डप म प्रवेश करते ही सभी राजा उसके सौंदर्य को देखकर स्तब्ध रह जाते है । वही ५४ ८-६ ।

श्रीहर्ष ने महाभारत के इस सकेत को भी पर्याप्त विस्तार के साथ उपनिबद्ध किया है । उन्होने पहले स्वयवर-मण्डप मे प्रवेश करती हुई दमयन्ती के अलकृत सौदर्य का स्वय वर्णन किया है । उसके उपरान्त दमयन्ती सौदर्य-दर्शनजन्य राजाओ की अवस्था पर दृष्टिपात करते हुए उन राजाओ के द्वारा भी दमयन्ती के अवयवो मे निहित लावण्यराशि का विस्तृत वर्णन कराया है ।

नै० १०-६१ १३६ ।

श्रीहर्ष के द्वारा उपनिबद्ध दमयन्ती का यह दृष्ट तथा वर्णित सौंदर्य भी रति भाव की व्यजना करने मे पूर्णतया समर्थ है । राज-समूहगत इस रति भाव को भले ही आभासता मे युक्त होने के कारण शृगार रस के समान महत्त्व न दिया जाए परन्तु इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता कि दमयन्ती को देखने मे विह्वल राजाओ की मन स्थिति का श्रीहर्ष ने सफलतापूर्वक अकन किया है । यद्यपि दमयन्ती के सौन्दर्य का पहले ही दो बार विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका था । परन्तु राजाओ के द्वारा किया गया यह सौदर्य-वर्णन पुनरावृत्ति मात्र नही है । इस सौंदर्य-वर्णन मे दमयन्ती की उस रूप-राशि को रूपायित करने का प्रयास किया गया है जबकि वह अलकृत होकर अपने काम्य पति का वरण करने जा रही थी । और यह सौदर्य-वर्णन कराया भी उन राजाओ के द्वारा गया है जिनका दमयन्ती को देखकर स्तब्ध रह जाना तथा उसकी प्रशसा करने लगना अनिवार्य सा था । क्योकि वह सौंदर्य सौंदर्य ही क्या जो दर्शकों को स्तब्ध न कर दे तथा दर्शक जिसकी प्रशसा न करने लगे ।

एकादश सर्ग

महाभारत के अनुसार जब स्वयवर मे उपस्थित राजाओ का वर्णन किया

जा रहा था उसी समय दमयन्ती पाँच समानाकृति वाले पुरुषों को एक स्थान पर बैठा हुआ देखती है। वही ५४-१०।

श्रीहर्ष ने महाभारत के इस संकेत को आधार बनाकर सरस्वती के द्वारा स्वयंवर में उपस्थित राजाओं का विस्तृत प्रभाव-वर्णन कराया है। उन्होंने स्वयंवर-मण्डप के अन्तराल पर विहंगम दृष्टिपात करने के उपरान्त सरस्वती तथा दमयन्ती को राजसभा के मध्य में लाकर खड़ा कर दिया है। सरस्वती वहाँ उपस्थित सभी देवताओं की ओर संकेत करती हुई दमयन्ती को सर्वप्रथम उनमें से किसी का वरण करने के लिए कहती है परन्तु देवता दमयन्ती को भयभीत देखकर उसे आगे जाने की अनुमति दे देते हैं। शिविका-वाहक देवताओं में दमयन्ती की रुचि न देखकर राक्षसों, विद्याधरों, गन्धर्वों तथा यक्षों के पास से गुजरते हुए वासुकि के पास उसे ले जाते हैं। सरस्वती वासुकि का वर्णन करती हुई दमयन्ती को उनका वरण करने के लिए कहती है। परन्तु दमयन्ती वासुकि के फैले हुए फन देखकर डर जाती है। वासुकि के सेवक दमयन्तीगत कम्प को सात्त्विक समझकर जब नाचने लगते हैं तो वासुकि को लज्जित होकर स्वयं उन सेवकों को मना करना पड़ता है। वासुकि का वरण न करने से निश्वास छोड़ते हुए अन्य सर्पों की ओर शिविका-वाहक भय से जाते ही नहीं। तदनन्तर वे दमयन्ती को राजसमूह के मध्य में ले जाते हैं। सरस्वती दमयन्ती तथा राजाओं दोनों को ही एक दूसरे को देखने के लिए प्रेरित करती हुई क्रमशः पुष्कर, शाक, क्रौंच, कुश, शाल्मल तथा प्लक्ष द्वीप के शासकों एवं जम्बू द्वीप के अनेक शासकों में अवन्तीश, गौडाधिपति, मथुराधिनाथ तथा काशिराज के प्रभाव एवं यश आदि का वर्णन करती है। सब राजाओं के प्रभावादि का वर्णन करने के उपरान्त सरस्वती दमयन्ती को उन राजाओं का वरण करने तथा उनके साथ विहार करने के लिए कहती है। परन्तु दमयन्ती उन राजाओं में किसी राजा का वरण करना स्वीकार नहीं करती। फलतः शिविका-वाहक सरस्वती के द्वारा वर्णित राजाओं में दमयन्ती की अरुचि देखकर आगे की ओर बढ़ते रहते हैं और सरस्वती भी बिना किसी भेदभाव अथवा शिथिलता के अन्य राजाओं का वर्णन करने लगती है।

नै० ११-१-१२६।

यद्यपि विभिन्न राजाओं के इस विस्तृत प्रभाव-वर्णन में कथानक का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, परन्तु विभिन्न वर्णनों के मध्य में सरस्वती के वचन विन्यासों, दमयन्ती की विभिन्न गुणों से सम्पन्न राजाओं में अरुचि, राजाओं तथा उनके अनुचरों की भाव-भंगिमाओं एवं शिविका वाहकों के कौशल आदि का यत्र-तत्र अंकन कर श्रीहर्ष ने इन विस्तृत प्रभाव-वर्णनों को भी घटनाओं से युक्त-सा कर दिया है। इसी प्रकार राजाओं का प्रभाव-वर्णन

तथा उस प्रभाव-वर्णन के मध्य मे अनुस्यूत सभी घटनाएँ विभिन्न भावो की व्यजना करने मे भी समर्थ है ।

द्वादश सर्ग

नैषध के अनुसार सरस्वती जब काशि-नरेश का वर्णन कर रही थी उसी समय कुछ नये शासक स्वयवर-मण्डप मे प्रवेश करते है और शिविका-वाहक दमयन्ती को उन नवागतुक राजाओ के पास ले जाकर खडा कर देते हैं। सरस्वती उन नवागतुक राजाओ मे क्रमश अयोध्या पाण्ड्य, महेन्द्र, काची, नेपाल, मलय, मिथिला, कामरूप, उत्कल तथा मगध देश के नामको का पृथक-पृथक प्रभाव एव यश का वर्णन कर उनका वरण करने लिए दमयन्ती से कहती है परन्तु दमयन्ती उन राजाओ मे भी किसी राजा का वरण करना स्वीकार नही करती । फलत सरस्वती दमयन्ती की वर्णित राजा म अनिच्छा देखकर अथवा दमयन्ती के अभिप्राय को जानने वाली उसकी सखियो के द्वारा उस राजा का उपहास कर दिये जाने पर वह अन्य राजा का यशोगान करने लगती है । अन्त मे दमयन्ती की दृष्टि राज-समूह मे बैठे नल पर जाकर टिक जाती है ।

नै० १२-१-११२ ।

इस सग म भी एकादश सग की भाति कथानक जैसी कोई वस्तु नही है । परन्तु श्रीहर्ष ने विभिन्न राजाओ के प्रभाव-वणन के मध्य मे यत्र-तत्र सरस्वती की वचन-भगिमाओ दमयन्तीगत भय एव अरुचि, सखियो के द्वारा किये गये अनेक राजाओ के उपहास तथा राजाओ एव उनके सेवको की मनोदशा का अकन कर वणनो मे भी प्रवाह लाने तथा विभिन्न भावो की आस्वाद्य व्यजना करने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

त्रयोदश सर्ग

महाभारत मे केवल इस तथ्य का सकेत मात्र किया गया है कि दमयन्ती ने पाँच तुल्य आकृति वाले व्यक्तियो को देखा । वही ५४-१० ।

परन्तु श्रीहर्ष ने उन पाच तुल्याकृतिधारी व्यक्तियो का वणन भी अन्य राजाओ के समान ही सरस्वती के द्वारा विस्तारपूर्वक कराया है । परन्तु सरस्वती उनका वणन साधारण रूप मे न करके श्लिष्ट वाणी मे करती है । ताकि दमयन्ती उन पाचो व्यक्तियो की समानता के पीछे छिपी हुई वास्तविकता को भी समझ जाए । नै० १३-१-३४ ।

महाभारत के अनुसार दमयन्ती पाँच तुल्याकृतिधारी व्यक्तियो को देखकर सदेह मे पड जाती है । वह उनमे वास्तविक नल का नही पहचान पाती । वह देवताओ को उनके चिह्नो से पहचानने का प्रयत्न करती है । परन्तु उन

व्यक्तियो मे किसी भी व्यक्ति मे उसे देवताओ के चिह्न भी नही परिलक्षित होते। वही ५४-११-१४।

नैषध की दमयन्ती भी सरस्वती की श्लिष्ट वाणी को सुनकर तथा उस वाणी मे निहित रहस्य को न समझ पाकर सदेह से व्याकुल हो जाती है। वह इस आपत्ति से मुक्ति पाने के लिए हस का स्मरण करती है। परन्तु हस वहा था ही कहा जो आकर उसके सदेह का निवारण कर देता। वह पाँचो नलो को ध्यानपूर्वक देखती है और उनमे अन्तर खोजने का प्रयत्न करती है। परन्तु इस कार्य मे उसे सफलता नही प्राप्त होती। और उन समान आकृति वाले व्यक्तियो मे से उसे कोई भी अन्तर नही दिखाई देता। इसके उपरान्त वह अपने मन मे सोचती है कि उसे भ्रम हो रहा है परन्तु भ्रम का कोई कारण उसे नही दिखाई देता। वह यह भी सोचती है कि कही नल ही तो नही माया के रूप बनाकर उसके साथ परिहास कर रहा है अथवा पुरुरवा, कामदेव तथा कुमार तो नही नल के पास बैठे है और वह उन्हे पहचान नही पा रही है या वह अलीक नलो को तो नही देख रही है जैसा कि वह वियोग-दशा मे देखा करती थी। परन्तु अन्त मे वह इस निर्णय पर पहुँच जाती है कि इन्द्रादि देवताओ ने ही उसे वञ्चित करने के लिए नल का रूप धारण कर लिया है और वे ही सत्य नल के पास बैठे है। सरस्वती के द्वारा किया गया देवताओ का श्लिष्ट वर्णन उसके इस निश्चय को और भी पुष्ट कर देता है। अतएव दमयन्ती देवताओ को उनके चिह्नो से पहचानने का प्रयत्न करती है। परन्तु उन व्यक्तियो मे वे चिह्न, उसे परिलक्षित नही होते। वह एक बार देवताओ से नल की याचना करने का विचार भी करती है। परन्तु देवताओ की कठोरता का स्मरण कर वह वैसा करती नही। सरस्वती के हाथ मे माला देकर नल के कण्ठ मे उसको डाल देने का आग्रह करने के बार मे भी वह सोचती है। परन्तु उसे यह भय था कि ऐसा करने से वह देवताओ तथा सरस्वती के मध्य मे द्वेष का कारण बन जायेगी। लज्जावश वह सत्य नल को पुकारकर उसके कण्ठ मे माला डाल देने का साहस भी नही कर पाती। यद्यपि पाँचवाँ नल दमयन्ती को अत्यधिक आनन्द दे रहा था जो वस्तुत नल था भी, परन्तु सन्देहाकुल दमयन्ती किसी निश्चय पर नही पहुँच पाती और उसका मुख सताप से मलिन हो जाता है।
नै० १३-३५५५।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीहर्ष ने महाभारत मे सकेतित पाँच नलो तथा दमयन्तीगत सदेह का विशद अकन कर महाभारत के सकेतो को सजीव बना दिया है। श्लेष अलकार का औचित्यपूर्ण सन्निवेश जैसा इस प्रसग मे श्रीहर्ष ने किया है वैसा प्रयोग तो शायद ही किसी कवि ने किया होगा। सरस्वती देवताओ के द्वेष का भाजन भी नही बनना चाहती थी और दमयन्ती

को वह बञ्चित होने देना भी नही चाहती थी। अत वह श्लेष अलकार का आश्रय लेकर पाँचो नलो का वर्णन करती है। फलत देवताओ के देवतापन का भी वर्णन हो जाता है तथा उनके छद्म पर पर्दा भी पडा रहता है। यदि सरस्वती न श्लेष अलकार का प्रयोग न कर देवताओ के देवतापन का स्पष्ट वर्णन कर दिया होता अथवा उनकी नलरूपता का ही वर्णन किया होता तो वह या तो देवताओ का द्वेष-भाजन बन जाती या दमयन्ती की अविश्वास पात्र। उसके ऊपर जिस गुरुतर दायित्व का भार आ पडा था उसने उस भार का समुचित निर्वाह करने के लिए अपने महत्त्व के अनुरूप मार्ग खोज लिया था। हम आगे देखेंगे कि दमयन्ती सरस्वती के द्वारा किये गये पाच नलो के श्लिष्ट वर्णन का रहस्य अवधारण करने के उपरान्त ही देवताओ तथा नल को पहचान पाती है। देवता दमयन्ती की आराधना से प्रसन्न होकर उसे सरस्वती के श्लिष्ट वर्णन को समझने की शक्ति ही प्रदान करते हैं। अत यह निर्विवादास्पद तथ्य है कि नैषध मे सरस्वती के द्वारा किये गये इस श्लिष्ट पाच नलो के प्रभाव-वर्णन का एक विशेष महत्त्व है। श्लिष्ट होने के कारण यह वर्णन यद्यपि सर्वसाधारण के लिए अनायासगम्य नही है, परन्तु केवल इसीलिए इसे दोषपूर्ण कहना समुचित नही प्रतीत होता।

चतुर्दश सर्ग

महाभारत के अनुसार दमयन्ती पाँच नलो को देखकर चिरकाल तक सदेहाकुल रहने तथा देवताओ को पहचानने का प्रयत्न करने के उपरान्त देवताओ की शरण ग्रहण करने का निश्चय करती है। वह देवताओ को नमस्कार कर अपने नलवरण विषयक पूर्व सकल्प, अपनी पवित्रता, सत्यता, तथा दैवी सयोग का सदर्भ देते हुए देवताओ से प्रार्थना करती है कि वे उसे नल को प्रदान करें तथा अपने रूप को प्रकट कर दें। ताकि वह उन्हे पहचान सके और अपने इष्ट नल का वरण कर सके। देवता दमयन्ती की प्रार्थना, उसकी सत्यता, उसके नल के प्रति अनुराग, उसकी मानसिक शुद्धता, बुद्धि तथा भक्ति आदि से द्रवित हो जाते हैं और अपने चिह्नो को प्रकट कर देते है जिन्हे देखकर दमयन्ती नल को पहचान लेती है। वही ५४-१५-२४।

नैषध की सदेहाकुल दमयन्ती भी नल को प्राप्त करने के लिए देवताओ को प्रसन्न करने का निश्चय करती है। परन्तु वह महाभारत की दमयन्ती की भाति काँपती हुई देवताओ को नमस्कार कर उनसे नल की याचना नही करने लगती, अपितु वह देवताओं की विधि-विधानपूर्वक आराधना ही करती है। वह न तो देवताओ से नल की याचना करती है और न उनसे अपने चिह्न को प्रकट करने के लिए प्रार्थना ही करती है। देवता स्वयं ही दमयन्ती

की भक्ति से सन्तुष्ट होकर उसकी बुद्धि को निर्मल कर देते हैं। फलतः दमयन्ती को सरस्वती के श्लिष्ट वचनों का रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह नल को पहचानने में स्वतः समर्थ हो जाती है। वह सरस्वती के वचनों का रहस्यावधारण कर लेने के उपरान्त सरस्वती की वचनावली तथा अपने मोह पर विस्मित भी होती है। देवताओं ने दमयन्ती की बुद्धि को निर्मल करने के साथ ही अपने चिह्नों को भी स्वयं प्रकट कर दिया था। अतः दमयन्ती उन चिह्नों को देखकर नल को पहचानने के साथ-साथ देवताओं की प्रसन्नता से भी अवगत हो जाती है। नै० १४.१-२८।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत की दमयन्ती अपनी सत्यता के बल पर देवताओं से नल की याचना करने तथा अपने चिह्नों को प्रकट करने की प्रार्थना करती है। परन्तु नैषध की दमयन्ती केवल विधिपूर्वक देवताओं की आराधना ही करती है। किसी देवता की आराधना कर अपने ईप्सित फल को प्राप्त करने की अपेक्षा आराधना से सन्तुष्ट देवताओं के द्वारा वितरित अनुकूल फल को निश्चित रूप से प्रशस्य कहा जाएगा। श्रीहर्ष ने इस प्रसंग में देव-विषयक रति भाव की व्यंजना भी महाभारत की अपेक्षा अधिक आस्वाद्य की है। इसके साथ-साथ दमयन्ती के द्वारा सरस्वती के वचनों का रहस्यावधारण तो श्रीहर्ष की स्वकल्पित एवं महत्त्वपूर्ण योजना है ही।

महाभारत की दमयन्ती लज्जित होते हुए भी नल को पहचान लेने के उपरान्त उसका वस्त्र पकड़ लेती है और उसके कण्ठ में माला डालकर उसका वरण कर लेती है। वही ५८-२५-२६

परन्तु श्रीहर्ष ने दमयन्तीगत लज्जा की ओर केवल संकेत मात्र ही नहीं किया है। नैषध की दमयन्ती लज्जा तथा कामदेव की द्वन्द्व-भूमि बन जाती है, वह नल के कण्ठ में वरमाला डालने का प्रयास करती है। परन्तु उसके हाथ आगे की ओर बढ़ते ही नहीं। प्रयत्न करने के उपरान्त जब वह अपने हाथों को कुछ आगे बढ़ा भी लेती है तो उसी क्षण माला से युक्त उसका हाथ पुनः वापस आ जाता है। वह नल को देखने का प्रयास करती है। परन्तु उसके नेत्र नल के मुख की आधी दूरी तक जाने के उपरान्त पुनः वापस हो जाते हैं। जब वह किसी न किसी प्रकार से नल का मुख क्षणमात्र के लिए देख लेती है तो उसे सरस्वती की ओर देखने का साहस नहीं होता। सरस्वती भी इस अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकती। वह दमयन्ती से कहती है कि वह उसका आशय नहीं समझ सकी है। अतः वह अपने मन्तव्य को स्पष्ट रूप से कहे। फलतः दमयन्ती सरस्वती के कान में नल का नाम कहने का उपक्रम करती है, परन्तु वह नल नाम के 'न' इस अर्ध भाग का उच्चारण करने के उपरान्त ही लज्जित हो जाती है और अन्तिम अंश भाग का उच्चारण नहीं कर पाती। फिर क्या था,

सरस्वती को विनोद करने का अवसर मिल जाता है और वह जान बूझकर दमयन्ती के द्वारा कहे गए 'न' अर्थ को निषेधात्मक मान लेती है और दमयन्ती को इन्द्र की ओर लेकर चल देती है। दमयन्ती सरस्वती के इस कार्य से चौंक-सी पड़ती है और वह सरस्वती के हाथ से अपना हाथ खींचकर नल की ओर जाने लगती है। जब सरस्वती नल की ओर जाती हुई दमयन्ती को पुनः लौटाकर देवताओं की ओर ले जाने का प्रयत्न करने लगती है तो वह सरस्वती का आलिंगन छोड़कर उससे अलग खड़ी हो जाती है। परन्तु सरस्वती हँसकर जब उसे नल का वरण करने से पहले देवताओं की प्रार्थना करने का परामर्श देती है तब कहीं दमयन्ती आश्वस्त होती है और देवताओं के पास जाकर उन्हें प्रणाम करती है। सरस्वती देवताओं को दमयन्ती की भक्ति, उनकी अनकना तथा भीम के अन्तःपुर में ब्रह्मा के द्वारा कराये गये नल-दमयन्ती के परस्परा-लिंगनादि का स्मरण दिलाते हुए उनसे निवेदन करती है कि वे दमयन्ती को नल का वरण करने की अनुमति प्रदान करें। जब देवता अपने स्मित तथा भ्रूविभ्रमादि से अपनी अनुमति प्रकट कर देते हैं तब सरस्वती दमयन्ती को नल के पास ले जाती है। अब भी दमयन्ती को नल के कण्ठ में माला डालने का साहस नहीं होता। सरस्वती को ही उसके मालायुक्त हाथ को नल के कण्ठ के पास ले जाना पड़ता है। अन्ततः नल के कण्ठ में माला डालने को तो वह डाल देती है, परन्तु उसका मुख फिर भी लज्जावनत ही रहता है।

नै० १४-२५-५०।

कहना न होगा कि श्रीहर्ष ने महाभारत के संकेत का अनुसरण करते हुए भी दमयन्तीगत लज्जा एवं रति-वासना तथा सरस्वतीगत परिहास की सुमधुर व्यंजना कर इस प्रसंग को शाश्वत रूप प्रदान कर दिया है।

महाभारत के अनुसार दमयन्ती के द्वारा नल का वरण कर लिए जाने पर अन्य राजा हा-हा करने लगते हैं तथा देवता एवं महर्षि साधुवाद करने लगते हैं। इन्द्रादि लोकपाल भी प्रसन्न होकर नल को आठ वर देते हैं।

वही ५४-२७-२८।

परन्तु नैषध की दमयन्ती के द्वारा नल का वरण कर लिए जाने के उपरान्त श्रीहर्ष ने पुरसुन्दरियों के द्वारा मंगलाच्चार कराया है। और नल दमयन्तीगत सात्त्विक भावों का अंकन करने के उपरान्त उन्होंने निराश राजाओं की ओर संकेत किया है। नैषध के अन्य राजा महाभारत के राजाओं के समान हाहाकार भी नहीं करते। वे केवल अश्रुपूर्ण रक्त नयनों से नल को देखते ही लगते हैं। नैषध के देवता भी नल-दमयन्ती को वर देते हैं। परन्तु श्रीहर्ष ने उनके द्वारा दिये गये वरों का उल्लेख करने से पहले उनके द्वारा किये गये दिव्य-स्वरूप-ग्रहण का वर्णन तथा उनके दिव्य स्वरूपों को देख

कर सभासदों की विस्मयाभिव्यंजक अवस्था पर भी दृष्टिपात किया है।

नै० १४-५१-८०।

स्पष्ट है कि श्रीहर्ष के द्वारा किये गये उपर्युक्त परिवर्तन भी विवाह-कालीन मानसिक आधार मूलक महाभारतगत न्यूनता की पूर्ति करने के साथ-साथ नलदमयन्तीगत सात्त्विक भावों, देवताओं के विस्मयाभिव्यंजक दिव्य रूपों तथा सभासदों के विस्मय को स्थापित करने में पूर्णतया सफल रहे हैं।

महाभारत के अनुसार सभी देवता केवल नल को दो दो वरदान देकर स्वर्ग को चले जाते हैं। वे दमयन्ती को कोई वरदान नहीं देते उसके हाथ केवल एक उत्तम-सुगन्ध-युक्त माला ही लगती है जिसे उन्होंने नल तथा दमयन्ती दोनों को दिया था। वही ५४-२९-३२।

परन्तु श्रीहर्ष ने नल तथा दमयन्ती दोनों को ही पृथक्-पृथक् तथा समन्वित रूप में देवताओं एवं सरस्वती के द्वारा महाभारत की अपेक्षा अधिक वर दिलाए हैं। महाभारत की अपेक्षा नैषध में देवताओं के द्वारा दिलाये गये इन वरों के स्वरूप में भी अन्तर है। नैषध के अनुसार देवताओं के स्वर्ग को चले जाने के उपरान्त उस सभा में कोलाहल होने लगता है। अन्य राजा ईर्ष्यालु होते हुए भी अपने रोष को न प्रकट कर केवल निश्वासों को लेकर ही रह जाते हैं। दमयन्ती उन राजाओं के दुःख से द्रवित हो जाती है और वह अपने पिता के द्वारा सभी राजाओं को अपनी एक एक सखी दिला देती है। स्वर्ग को जाते हुए देवता भी अपने अंश-स्वरूप नल को छोड़कर जाने में दुःखित-से हो जाते हैं और सरस्वती तो बार-बार लौटकर दमयन्ती को देखती जाती है। अन्त में भीम, नल, दमयन्ती तथा अपने शिविरों को जाते हुए राजा अनिष्ट निवारण के लिए मंगलोच्चार भी करते हैं।

नै० १४ ७१-१००।

नैषधगत उपर्युक्त कथानक पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने इस प्रसंग में भी महाभारत के संकेतों में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन कर समस्त प्रसंग को अधिक सजीव बना दिया है। इस प्रसंग में श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती के प्रति देवताओं की अनुकूलता, राजाओं के मनोभावों, दमयन्ती की दयालुता तथा सरस्वतीगत वात्सल्य की मर्मस्पर्शी व्यंजना करने के साथ-साथ स्वयंवरावसान कालीन-वातावरण को भी साकार बना दिया है।

पञ्चदश सर्ग

महाभारत के अनुसार देवताओं के स्वर्ग को चले जाने के उपरान्त स्वयंवर में आये हुए राजा नल-दमयन्ती के विवाह का सुख अनुभव कर अपने-अपने स्थानों को चले जाते हैं। वही ५४-३३।

श्रीहर्ष ने महाभारत के इस संकेत को भी पर्याप्त विस्तृत किया है। नैषध के अनुसार स्वयंवर-मण्डप में अपने शिविर को जाता हुआ नल बन्दियों के सम्मुख रत्नों की वर्षा करता है। उस समय कुछ निराश राजाओं के बन्दी नल की निन्दा भी करते हैं। भीम स्वयंवर मण्डप में दमयन्ती का अन्तःपुर में ले जाते हैं और रानी के सम्मुख नल जैसे योग्य पति का वरण करने के कारण दमयन्ती की प्रशंसा करते हैं। वे उसी समय वैवाहिक समारम्भों को सम्पन्न करने के लिए अन्तःपुर की सुन्दरियों को आवश्यक निर्देश देकर स्वयं ज्योतिषियों से विवाह का मुहूर्त तय करते हैं और उस मुहूर्त पर उपस्थित होने के लिए नल के पास अपना सन्देश भेज देते हैं। नल दूत के मुख से भीम के सन्देश को सुनकर शीघ्र ही वहाँ उपस्थित होने के लिए तत्पर हो जाता है। इधर भीम नल के आगमन की प्रतीक्षा करने लगते हैं। वे उसका स्वागत करने के लिए अन्तःपुर का आवश्यक निर्देश देकर नगर के मार्गों तथा भवनों को अलंकृत करा देते हैं। उस अवसर के लिए वे अनेक वाद्यों का भी प्रबन्ध करते हैं। अन्तःपुर की सुन्दरियाँ दमयन्ती को स्नान कराकर उसे अलंकृत कर देती हैं। दूसरी ओर नल के सेवक उसे विवाहकालोचित अलंकारों से मण्डित कर देते हैं और वह रथ पर आरूढ होकर भीम-भवन की ओर चल देता है। नल जिस मार्ग से जा रहा था उस मार्ग के दोनों ओर पुरबालाएँ उसे देखने के लिए आकर खड़ी हो जाती हैं और नल को देखकर उसके सौंदर्य का पान करने के अन्त में उसके तथा दमयन्ती के संयोग की प्रशंसा करने लगती हैं। नै० १५-१-९२।

यद्यपि इस सर्ग में भी अन्य अनेक सर्गों की भाँति कथानक में प्रवाह नहीं है। परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस समस्त सर्ग में वैवाहिक समारम्भों तथा विस्मयादि भावों का चित्रांकन करने में श्रीहर्ष पूर्णतया सफल रहे हैं।

षोडश सर्ग

श्रीहर्ष ने पुरसुन्दरियों के द्वारा नल-दमयन्ती संयोग की प्रशंसा कराने के उपरान्त नल के सेवकों के कार्यकलापों तथा बारातियों की भीड़ का भी सूक्ष्म वर्णन किया है। जब नल भीम-भवन के द्वार पर पहुँच जाता है तो वह रथ से उतरकर पैदल चलने लगता है। दमयन्ती का भाई दम नल की अगवानी करता है और उसको भीम के पास ले जाता है। भीम नल का आलिंगन कर उसका स्वागत करते हैं।

विधि विधानपूर्वक नल-दमयन्ती का पाणिग्रहण सम्पन्न कराने के उपरान्त श्रीहर्ष ने भीम के द्वारा नल को यौतक में दी गई विभिन्न दिव्य वस्तुओं का भी

विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे उन्होंने पुरोहित के द्वारा सपादित विवाह की शेष विधियो का वर्णन करते हुए बीच-बीच मे नल-दमयन्तीगत सात्विक भावों पर भी दृष्टिपात किया है। सभी विवाह-कालीन विधियो के पूर्ण हो जाने पर नल दमयन्ती के साथ कौतुकागार को चला जाता है।

जिस समय नल दमयन्ती का अन्त पुर मे विवाह हो रहा था उसी समय बारातियो का दूसरी ओर भोज भी चल रहा था। दमयन्ती ने बारातियो को भोजनादि परोसने वाली परिचारिकाओं को हास परिहास की छूट दे रखी थी। अतएव बाराती षड्-रस भोजन के अतिरिक्त सातवें शृगार मिश्रित परिहास रस का भी छककर आस्वादन करते हैं। विवाह के उपरान्त नल भीम-भवन मे पाच-छ दिन तक रहता है। उसके बाद वह निषध देश को चल देता है। भीम नल-दमयन्ती के वियोग से दु खी होते हुए भी उन्हे विदा करते है।

जब नल अपने नगर के निकट पहुँच जाता है तो उसका सामान्य वर्ग आकर उसे मार्ग मे मिलता है। नल सक्षेप मे उन्हे अपना समाचार बताकर उनसे देश का समाचार पूछता है। नगर मे पहुँच जाने पर पुरकुमारिकाएँ नल का स्वागत करती हैं तथा पुरबालाएँ अपने भवनों के ऊपर से नल के दर्शन करती हैं। अन्त मे नल दमयन्ती के लिए बनाए गये भवन मे दमयन्ती के साथ प्रवेश करता है और देवता भी जोकि अभी तक आकाश से नल-दमयन्ती के विवाह एव उनकी यात्रा आदि का अवलोकन कर रहे थे, स्वर्ग को चल देते हैं। नै० १६-१-१२६।

यह समस्त सर्ग श्रीहर्ष की प्रतिभा की देन है। महाभारत मे केवल नल-दमयन्ती के विवाह की ओर सकेतमात्र किया गया है। इस सर्ग मे भी कथानक जैसी कोई वस्तु नही है। केवल वैवाहिक विधियो, यौतक मे नल को दी गई दिव्य वस्तुओं, बारात-भोज तथा नल-दमयन्ती की निषध-यात्रा का ही विस्तृत वर्णन किया गया है। परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि उन वर्णनो मे प्रवाह होने के साथ-साथ विस्मयादि भावों का सश्लिष्ट चित्र अकित करने की शक्ति भी है। यत्र तत्र उपनिबद्ध नल-दमयन्तीगत मनोभाव, भीम का वात्सल्य भाव तथा परिचारिकाओं एव बारातियो का हास-परिहास तो आस्वाद्य है ही।

सप्तदश सर्ग

महाभारत मे नल-दमयन्ती के विवाह की ओर सकेत करने के उपरान्त पहले नल के सुख-भोग, प्रजापालन तथा धार्मिक आचरणो की ओर सकेत किया गया है (वही ५८-३८-३८) और उसके उपरान्त देव कलि-सवाद को स्थान दिया गया है। वही ५५वाँ सर्ग।

परन्तु श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती के विवाह तथा निषध देश मे उनके आगमन का वर्णन करने के उपरान्त पहले देव-कलि-सवाद की योजना की है और उसके

उपरान्त नल-दमयन्ती के सुख भोगों का अंकन किया है।

श्रीहर्ष के द्वारा किया गया यह क्रम परिवर्तन समुचित ही प्रतीत होता है। क्योंकि उन्होंने यदि नल-दमयन्ती के सुख-भोगों का अंकन करने के उपरान्त देव-कलि-संवाद कराया होता तो नैषध में उसे बाईसवें सर्ग में स्थान मिल पाता। परन्तु स्वयंवर सम्पन्न हो जाने के उपरान्त इतने बड़े व्यवधान के बाद स्वर्ग को जाते हुए देवताओं का स्वयंवर में भाग लेने के लिए आते हुए कलि से साक्षात्कार कराना उपहासास्पद ही प्रतीत होता।

हम देख चुके हैं कि महाभारत के नलोपाख्यान का प्रमुख उद्देश्य नल के दुःखमय जीवन का अंकन करना था। अतः उसमें नल के सुखी जीवन की ओर इंगित करने के उपरान्त नल-जीवन को दुःखमय बनाने वाले कलि की चर्चा की गई है। परन्तु नैषध में यदि कलि की चर्चा बाईसवें सर्ग में की गई होती तो नैषध का अवसान एक ऐसे दुःख-मिश्रित के तट पर हुआ होता जो समस्त नैषध में अनवरत प्रवाहित रहने वाली शृंगार धारा को दूषित बना देता।

महाभारत के चौवनवें अध्याय का अनुसरण करते हुए नल-दमयन्ती विवाह के उपरान्त उनके सुख भोगादिकों का अंकन करते हुए भी नैषध का अवसान किया जा सकता था। परन्तु श्रीहर्ष देव कलि-प्रसंग का सर्वथा परित्याग भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि ऐतिहासिक इतिवृत्त में निष्प्रयोजन परिवर्तन भी अनुचित होता है (यदृक्तम—कथामार्गे न चातिक्रम। ध्व० पृ० ३१०)। महाभारत के अनुसार स्वयंवर से स्वर्ग को जाते हुए देवताओं को कलि मार्ग में ही मिलता है। अतः श्रीहर्ष ने यदि स्वर्ग मार्ग में देवताओं की कलि से भेंट न कराई होती तो ऐतिहासिक कथांश का निष्प्रयोजन परित्याग करने के लिए वे दोषी बन जाते। इसके साथ-साथ हम देखेंगे कि देव-कलि-संवाद नैषध का महत्त्वपूर्ण अंश है। अतः उसका सर्वथा परित्याग उसके महत्त्व को भी न्यून कर देता।

महाभारत तथा नैषध में अपनाये गए कथानक के उपर्युक्त क्रम पर विचार करने के उपरान्त अब हम नैषध में स्वीकृत क्रम के अनुसार ही अग्रिम कथानक पर प्रकाश डालेंगे।

महाभारत के अनुसार देवता जब दमयन्ती स्वयंवर से वापस जा रहे थे तो मार्ग में वे द्वापर तथा कलि को आता हुआ देखते हैं। वही ५४-१।

श्रीहर्ष ने भी देवताओं की गति पर दृष्टिपात करने के उपरान्त इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। परन्तु नैषध के देवता द्वापर तथा कलि को तो कुछ देर के बाद दृष्टिगत करते हैं पहले उन्हें एक श्याम-वर्ण जन समूह उनकी ओर आता हुआ दिखाई देता है। यह समूह कलि की सेना थी। देवता उस समूह में अपने परिचारिकों से घिरे हुए काम, क्रोध, लोभ तथा मोह को तो पहचान लेते हैं, क्योंकि उनके साथ उनकी पुरानी पहचान जो थी। परन्तु शेष लोगों को वह

नहीं पहचान पाते। जब वह सेना देवताओं के निकट आ जाती है तो उन्हें वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा मर्यादाओं के उच्छेदक कलि-चारण के कर्ण-कर्कश शब्द सुनाई देने लगते हैं। फलतः इन्द्रादि देवता उस प्रतापी के आक्षेपों का खण्डन करते हुए उसकी भर्त्सना करने लगते हैं। देवताओं की ललकार को सुनकर वह सेना निश्चल होकर खड़ी हो जाती है और उस सेना से एक व्यक्ति बाहर निकलकर आता है तथा अपना परिचय बताते हुए हाथ जोड़कर देवताओं से क्षमा याचना करने लगता है। उसी समय देवताओं की दृष्टि रथारूढ़ कलि तथा द्वापर की ओर जाती है। कलि भी अपनी ग्रीवा को उन्नत कर देवताओं की ओर देखता है। परन्तु उन्हें देखकर वह अपनी ग्रीवा को नत कर लेता है। नै० १७-१ १११।

नैषधगत उपर्युक्त कथानक महाभारत पर आधारित होते हुए भी श्रीहर्ष की नूतन उद्भावनाओं से परिपूर्ण है। श्रीहर्ष ने इस सदर्भ में कलि के अनुयायियों, कलि के बन्दी के द्वारा गाये गए चाटुवाक्यों तथा कलि के स्वरूप का संश्लिष्ट वर्णन कर कलि का पूर्ण बिम्ब उपस्थित कर दिया है। इसके साथ ही देवताओं की अद्भुत गति, काम तथा क्रोधादि के घृणित स्वरूप, वर्णाश्रम-व्यवस्था के उच्छेदक वचनों, इन्द्रादि देवताओं की उत्तेजना, कलि के बन्दी की दीनता तथा कलि के स्वरूप का अङ्कन कर श्रीहर्ष ने विस्मय, जुगुप्सा, हास, क्रोध तथा भयादि भावों की भी विशद व्यंजना की है।

महाभारत के अनुसार कलि तथा द्वापर को देखकर इन्द्र कलि से पूछते हैं कि वे दोनों कहाँ जा रहे हैं? और कलि उन्हें यह बता देता है कि वे दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए उसके स्वयंवर को जा रहे हैं। कलि की इस बात को सुनकर जब इन्द्र हँसकर उसे बताते हैं कि दमयन्ती का स्वयंवर तो सम्पन्न हो चुका है तथा दमयन्ती ने राजा नल का वरण कर लिया है तो कलि क्रुद्ध हो जाता है और देवताओं के सामने किसी पुरुष का वरण करने के कारण दमयन्ती को दण्ड देने का निश्चय कर लेता है। परन्तु देवता कलि के इस निश्चय की निन्दा करते हैं और उससे यह कहकर कि दमयन्ती ने उनकी आज्ञा से नल का वरण किया है तथा अनेक गुणों से युक्त नल को जो व्यक्ति दण्ड देने का विचार करेगा वह अवश्यमेव अधोगति को प्राप्त करेगा, स्वर्ग को चले जाते हैं। वही ५५-२-११।

नैषध के अनुसार कलि अवज्ञा-मिश्रित स्वर में देवताओं की कुशल पूछता हुआ उन्हें स्वयं ही यह बताता है कि वह दमयन्ती स्वयंवर में भाग लेने के लिए जा रहा है। देवता कलि के अहङ्कार की अवहेलना कर तथा मुस्कराकर एक-दूसरे की ओर देखने लगते हैं और पहले तो वे ब्रह्मचर्य का परित्याग करने के लिए उद्यत होने के कारण उसकी निन्दा करते हैं क्योंकि ब्रह्मा ने उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहने का आदेश दिया था। तदनन्तर वे उसे यह भी बता देते हैं कि दमयन्ती का स्वयंवर तो सम्पन्न हो चुका है और उसने नल का वरण कर लिया है।

देवताओ की उपर्युक्त बातो को सुनकर कलि जल-भुन जाता है। और पहले तो वह ब्रह्मा को जिन्होने उसे ब्रह्मचारी रहने का नियम बनाया था तथा देवताओ को जिन्होने उस नियम का उसे स्मरण दिलाया था, खरी खोटी सुनाता है तथा उनके कुत्सित कार्यों के प्रति अपनी रोष मिश्रित घृणा प्रकट करता है। उसके बाद वह दमयन्ती के स्वयवर से खाली हाथ लौट आने के कारण देवताओ का उपहास करने लगता है। उसे यह आश्चर्य होता है कि देवताओं ने नल के साथ दमयन्ती का विवाह होने ही क्यो दिया ? उन्होने उस विवाह मे विघ्न क्यो नही डाला ? जब कि उनमे ऐसा करने की शक्ति भी थी। अन्त मे वह देवताओं से यह भी कह देता है कि वह नल के पास से दमयन्ती का छलपूर्वक हरण कर लाएगा। इस कार्य को सम्पन्न करने के हेतु वह देवताओ से सहायता करने की अपील भी करता है तथा देवताओ के सामने एक सन्धि-प्रस्ताव रखता है कि यदि वे दमयन्ती का हरण करने मे उसकी सहायता करें तो वह स्वय तथा चारो देवता मिलकर दमयन्ती का भोग कर सकते है। परन्तु सरस्वती के भर्त्सित करने पर वह देवताओ के साथ मिल-जुलकर दमयन्ती का भोग करने का विचार तो छोड देता है परन्तु नल के प्रति उसका रोष नही शान्त होता और वह देवताओ के सामने ही नल को दण्ड देने की प्रतिज्ञा कर लेता है। द्वापर कलि के निश्चय का अनुमोदन कर उसके क्रोध को और भी अधिक प्रदीप्त कर देता है। जब देवता कलि के इस निश्चय की निन्दा करने लगते है तो कलि तथा देवताओ मे पुन उपहास मिश्रित नोक-झोक होने लगती है। अन्त मे जब देवता देखते हैं कि वे कलि को उसके निश्चय से निवृत्त नही कर सकते तथा वह लगातार उनका उपहास करता चला जा रहा है तो वे उससे उलझना छोडकर स्वर्ग की ओर चल देते हैं। नै० १७-११२-१५८।

नैषध के उपर्युक्त प्रसग पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने महाभारत के शुष्क देव-कलि-सवाद मे प्राण सचार कर दिया है। श्रीहर्ष का सदाचार के प्रति जितना अनुराग है कुत्सित आचरण का वे उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखते है। कुत्सित आचरण करने वाले चाहे वे देवता ही क्यो न हों, उनकी सहानुभूति नही प्राप्त कर सकते। इसीलिए हम देखते है कि नैषध मे देवताओ के प्रति आदर प्रकट करते हुए भी श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती को वचित करने के लिए देवताओं के द्वारा की गई कुचेष्टाओ के कारण नल के द्वारा उनकी विनम्र भर्त्सना कराई है और कलि के द्वारा उनकी निन्दा तथा उपहास तक कराया है। भाव-प्रेषणीयता की दृष्टि से इस समस्त प्रसग को नैषध मे प्रवाहित अजस्र रस-धारा का अभिन्न अग कहा जा सकता है।

महाभारत के अनुसार देवताओ के समझाने पर भी कलि का रोष शान्त नही होता और वह देवताओ के स्वर्ग को चले जाने पर नल को राज्यभ्रष्ट करने का निश्चय कर लेता है। वह द्वापर को अपने सकल्प से परिचित कराता है तथा उससे

आग्रह करता है कि वह अक्षो मे प्रविष्ट होकर नल का पतन करने मे उसकी सहायता करे। वही ५५-१२-१३।

इस प्रकार द्वापर के साथ सन्धि कर कलि नल के नगर मे आ जाता है और उसके किसी स्खलन की प्रतीक्षा करता हुआ चिरकाल तक वहाँ रहता है। बारह वर्ष के उपरान्त कलि को नल का स्खलन दृष्टिगत हो जाता है और वह नल मे प्रविष्ट हो जाता है। वही ५६-१-३।

नैषध के अनुसार देवताओ के चले जाने पर कलि केवल द्वापर के साथ निषध देश की ओर चल देता है। जब वह नल की राजधानी मे पहुँच जाता है तो वहा वह नल-नगर वासियो को विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानो मे सलग्न देखकर बहुत अधिक कष्ट पाता है। वह अपने ठहरने के लिए स्थान की खोज करता हुआ जहा कही भी जाता है वहा उसे निराशा तथा वेदना ही हाथ लगती है। अन्त मे वह नल के क्रीडा-वन मे स्थित एक विभीतक वृक्ष पर स्थित हो जाता है। नल-दमयन्ती के दोषो को खोजता हुआ कलि अनेक वर्षो तक उसी वृक्ष पर ठहरा रहता है और द्वापर नल के दोषो की खोज मे पृथ्वी पर भ्रमण करने लगता है। नै० १७-१५६-२२१।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत का कलि अक्षो मे प्रविष्ट होकर नल का पतन करने के लिए द्वापर से सन्धि करता है। परन्तु श्रीहर्ष ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है। महाभारत के अनुसार कलि को बारहवें वर्ष मे नल का दोष प्राप्त हो जाता है। परन्तु श्रीहर्ष ने इस अवधि तथा कलि के द्वारा नल के किसी दोष का प्राप्त कर लिये जाने की ओर भी सकेत नही किया है। श्रीहर्ष के द्वारा इन तथ्यो का किया गया अनुल्लेख भी उनकी योजना के अनुरूप एव औचित्य-युक्त है। नैषध शृगार-प्रधान महाकाव्य है। अत यदि श्रीहर्ष ने उपर्युक्त तथ्यो का उल्लेख किया होता तो नैषध का अगी रस आगामी दुखो की छाया से आक्रान्त रहने के साथ-साथ बारह वर्ष की सीमा मे आबद्ध हो जाता। अतएव श्रीहर्ष ने महाभारत के छप्पनवें सर्ग के द्वितीय श्लोक के अर्ध भाग तक के कथानक को ही नैषध मे आत्मसात किया है, शेष कथानक का परित्याग कर दिया है

एव स समय कृत्वा द्वापरेण कलि सह।
आजगाम ततस्तत्र यत्र राजा स नैषध ॥
स नित्यमन्तरप्रेक्षी निषधेष्ववसच्चिरम्।
अथास्य द्वादशे वर्षे ददर्श कलिरन्तरम्॥ म० भा० आ० प० ५६-१-२।
तमालम्बनमासाद्य वैदर्भीनिषधेन्द्रयो।
कलुष कलिरन्विष्यन्नवात्सीद्दुमराजयहन्॥ नै० १७-२१३।

इसी प्रकार उन्होने कलि तथा द्वापर के मध्य मे सम्पन्न हुई अक्ष-प्रवेशादि जैसी किसी सन्धि का उल्लेख न कर केवल द्वापर के पृथ्वी पर भ्रमण करने का सकेत कर दिया है। क्योकि श्रीहर्ष को नल की अक्षप्रियता तथा उसके दुष्परिणामो

का वर्णन करना इष्ट ही नहीं था

दोष नलस्य जिज्ञासुदग्राम द्वापर क्षितौ।
अदोष कोऽपि नोक्स्य मुखेऽस्तीति दुराशया ।। नै० १७ २१६।

इन परिवर्तनों के साथ-साथ श्रीहर्ष ने इस सदर्भ मे नल नगर के नागरिकों की धर्मपरायणता का विस्तृत अकन कर कलिगत भय तथा नल की धार्मिकता की भी विशद व्यजना की है।

अष्टादश सर्ग

महाभारत के अनुसार विवाह हो जाने के उपरान्त नल दमयन्ती के साथ रमण करता हुआ प्रजा का पालन करने लगता है। वही ५८-३८३७।

नैषध मे नल अपना राज्यभार तो मंत्रियो पर छोड देता है और स्वय कामदेव की आराधना मे रात-दिन व्यतीत करने लगता है। नै० १८-१३।

परन्तु श्रीहर्ष महाभारत की भाति नल-दमयन्ती के रमण की ओर केवल सकेत मात्र कर ही अग्रसर नहीं हो जाते। उन्होंने पहले कामाराधना मे उपयोगी उपकरणो से सुसज्जित नल के उस भवन का विस्तृत वर्णन किया है जिसमे नल-दमयन्ती दोनो कामदेव की आराधना मे सलग्न हुए थे। उसके बाद उन्होंने उस भवन मे नल दमयन्ती के द्वारा सपन्न की गई विभिन्न काम-क्रीडाओ का विशद अकन किया है। श्रीहर्ष ने स्वय सूक्ष्म रूप से पहले नल-दमयन्ती के द्वारा अभ्यस्त कामाराधनापरक विधियो की ओर सकेत कर दिया है। बाद मे उन्होंने नल-दमयन्ती के द्वारा उन विधियो का सपादन कराकर अपने सूत्र की व्याख्या-सी कर दी है

तत्र सौधसुरभूभृत तयोराविरासुरथकामकेलय ।
ये महाकविनिरूपवीक्षिना पामुलाभिरपि ये न शिक्षिता ।। नै०२८-२६।

विभिन्न प्रकार की सुरत क्रीडाओ से भरपूर होने के कारण इस सर्ग मे भी कथानक का प्रवाह अवरुद्ध-सा हो जाता है। परन्तु वर्णित विषय की रोचकता के कारण यह अवरोध प्रतीत नहीं होता। इस सर्ग के पूर्व श्रीहर्ष ने नैषध मे प्रधान रूप से विप्रलम्भ शृगार की ही विशद योजना की थी। परन्तु इस सर्ग मे तथा अग्रिम सर्गो मे उन्होंने सभोग शृगार की अजस्र धारा प्रवाहित की है।

एकोनविंश सर्ग

नैषध के इस सर्ग मे वर्णित प्रभात-वर्णन की ओर महाभारत मे प्रत्यक्ष रूप से कोई सकेत तक नहीं किया गया है। अत इस समस्त सर्ग को श्रीहर्ष की प्रतिभा की देन कहा जा सकता है। अट्ठारहवें सर्ग के अन्त मे श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती के शयन की ओर सकेत किया था। अत बीसवें सर्ग के प्रारम्भ मे सकेतित नल की

प्रात सन्ध्या कालीन कृत्यो के प्रति तत्परता का अकन करने से पूर्व श्रीहर्ष को प्रात सन्ध्या का वर्णन कर लेना अधिक समुचित प्रतीत हुआ। फलत उन्होने अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए नल को जगाने के व्याज से वैतालिको के द्वारा प्रभात वर्णन कराया है।

यद्यपि इस समस्त सर्ग मे कथानक जैसी कोई वस्तु नही है परन्तु प्राभातिक सुषमा के शृगारमिश्रित वर्णनो मे एक सूक्ष्म क्रम अवश्य विद्यमान है। प्रात-कालीन प्रकाश के साथ साथ वैतालिको के द्वारा किया गया यह प्रभात-वर्णन भी अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होता रहा है।

श्रीहर्ष ने अट्ठारहवें तथा बीसवें सर्ग मे शृगार रस की योजना की है। यदि उन दोनो सर्गो के मध्य मे प्रभात वर्णन-मय इस सर्ग की अवतारणा न की गई होती तो कदाचित उन दोनो सर्गों मे उपनिबद्ध शृगार रस उतना अधिक हृद्य नही प्रतीत होता जितना कि वह अब प्रतीत होता है। हम आगे देखेंगे कि परिपुष्ट रस की पुन पुन दीप्ति को दोष माना गया है। अत अट्ठारहवें तथा बीसवें सर्ग की अव्यवहित शृगार-योजना को सदोष भी घोषित किया जा सकता था। इस दृष्टि से भी इस सर्ग का अपना विशेष महत्त्व है। महाकाव्य मे प्रभात तथा सन्ध्या आदि का वर्णन करना लक्षण-ग्रन्थकारो के अनुसार आवश्यक भी होता है। इस सर्ग को उस नियम का पूरक भी कहा जा सकता है। परन्तु इन विशेषताओ के होते हुए भी इस सर्ग मे श्रीहर्ष के द्वारा की गई नवार्थ घटनाएँ यत्र-तत्र दुरूह हो गई हैं तथा वैतालिको की वाणी वैसी प्रतीत नही होती जैसी श्रीहर्ष उसे स्वय स्वीकार करते है—स्फुटरसाम्यकता वैतालिकैर्जगिरे गिर। नै० १९-१।

विंश सर्ग

महाभारत के अनुसार प्रजापालक नल विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानो को भी सम्पन्न करता है। वही ५८-३६।

श्रीहर्ष ने महाभारत मे सकेतित विभिन्न धार्मिक क्रियाओं को नल के द्वारा सम्पन्न न कराते हुए भी नल की धर्मपरायणता की ओर अनेक स्थानो पर सकेत किया है। श्रीहर्ष नल के द्वारा यदि विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराये होते तो नैषध शृगार प्रधान काव्य न रहकर धर्मवीर-प्रधान काव्य बन जाता। अत श्रीहर्ष ने उतनमता मे उपयोगी होने के कारण नल की धर्मपरायणता की ओर यत्र-तत्र सकेत ला दिया है परन्तु उन्होने नल को धार्मिक कृत्यो मे सर्वत्र सलग्न न कर कामपुरुषार्थ साधक व्यापारो मे ही सलग्न किया है। क्योंकि वे नैषध को शृगार-रस-प्रधान काव्य जो बनाना चाहते थे।

महाभारत के अनुसार नल प्रजापालन तथा धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न करने के साथ साथ दमयन्ती के साथ रमणीक उपवनो तथा वनो म भी विहार करता

है। वहीं ५४-३७-३८।

श्रीहर्ष ने भी अट्ठारहवें सर्ग मे इस लक्ष्य की ओर संकेत किया है

न स्थली न जलधिन काननं नाद्रि भून विषयो न विष्टपम्।

क्रीडिता न सह यत्र तेन सा मा विनैव न यया यया न वा॥ नै० १८-८४।

परन्तु उन्होने नल-दमयन्ती को वनो तथा उपवनो मे न घुमाकर उन्हे भवन मे आमोद-प्रमोद करने के लिए अधिक अवसर प्रदान किया है। वन-विहार की अपेक्षा भवन मे विहार करना भी कम शृगारिक नही होता। नल तथा दमयन्ती को वन विहारादि मे प्रवृत्त न करने का एक कारण यह भी था कि श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती की निषध-यात्रा का अकन करने के उपरान्त केवल नौ प्रहरो के कथानक को ही नैषध मे उपनिबद्ध किया है। अट्ठारहवें सर्ग मे प्रथम रात्रि के, उन्नीसवे सर्ग मे उस रात्रि के प्रात काल के, बीसवें सर्ग में प्रात काल से लेकर मध्याह्न दिन वेला तक के, इक्कीसवें सर्ग मे मध्याह्न से लेकर सायकाल तक के तथा बाईसवे सर्ग में सन्ध्या समय से लेकर चन्द्रोदय तक के व्यापारो का ही उन्होने वर्णन किया है। अत इस स्वल्प अवधि मे नल-दमयन्ती को वन-विहारादि मे प्रवृत्त भी नहीं किया जा सकता था। परन्तु जैसा कि हम आगे देखेंगे श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती के आमोद-प्रमोद का अकन किया ही है।

नल प्रात कालिक स्नानादि से निवृत्त होकर जब दमयन्ती भवन मे पहुँचता है तो दमयन्ती उसका स्वागत करती है। परन्तु प्रात कालीन शेष विधियों को सम्पन्न करने के लिए नल के चले जाने पर वह रुष्ट हो जाती है। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर नल उसकी चाटुकारिता कर उसका मान नाश कर लेता है और वह दमयन्ती की सखी कला को साक्षी बनाकर दमयन्ती के साथ परिहास करने लगता है। वह दमयन्ती पर अनेक परिहासपूर्ण आक्षेप लगाता है। परन्तु कला नल के उन आक्षेपो का परिहास-मिश्रित स्वर मे ही खण्डन कर देती है। फिर नल सम्भोग-सम्बन्धी कुछ रहस्यो को प्रकट करता हुआ कला से पूछता है कि दमयन्ती रात्रि के समान दिन मे भी उसके साथ सम्भाषणादि क्यो नही करती? नल की उन बातो को सुनकर कला के कान खडे हो जाते हैं और वह पहले तो अपना रहस्य न बताने के कारण दमयन्ती को आखें दिखाती है, उसके उपरान्त नल के मुख से ही सभी रहस्य की बातें प्रकट कराने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। वह छल का अभिनय करती हुई नल से कहती है कि दमयन्ती आपको नल रूप-धारी इन्द्र समझ रही है। इसीलिए वह आपसे रात्रि के समान दिन मे सम्भाषणादि नहीं कर रही है। यदि आप गुप्त रहस्यो को प्रकट कर यह सिद्ध कर दे कि आप सच्चे नल है तो वह आपसे सम्भाषणादि करने लगेगी। कला का यह तीर ठीक निशाने पर बैठ जाता है और नल दमयन्ती सम्भोग-सम्बन्धी रहस्यों को प्रकट करने लगता है।

जब दमयन्ती देखती है कि नल मौन नहीं हो रहा है और वह अनेक रहस्यों को प्रकट कर देने के बाद जो बातें नहीं प्रकट करनी चाहिए थीं उन्हें भी प्रकट करता जा रहा है तो वह कला के कान बन्द कर लेती है। अत कला अपनी एक अन्य सखी को बुला लेती है। फलत जिन रहस्यों को कला नहीं सुन पा रही थी उन्हें वह सुन लेती है। कला राजा की शपथ लेकर तथा सब कुछ स्वय सुन लेने का बहाना बनाकर नल की प्रार्थना से जब अपने कानों को दमयन्ती के हाथों से छुटा लेती है तो वह उस दूसरी सखी के साथ कुछ दूर जाकर परस्पर सुने हुए रहस्यों का विनिमय करने लगती है। नल उसको दूसरी सखी के साथ रहस्य का विनिमय करता हुआ देखकर समझ जाता है कि कला ने मिथ्या शपथ लेकर उसे धोखा दिया है। अत वह कला को दण्ड देने के लिए तैयार हो जाता है। परन्तु कला कम चतुर नहीं थी। वह कानों के बन्द होने से सुनाई पड़ने वाले गुम् गुम् शब्द के आधार पर अपनी शपथ सत्य सिद्ध कर देती है। इसके साथ ही वह यह भी कहती है कि जब आप लोग स्वय अपने रहस्यों को छिपाकर हमें धोखा देते हैं तो उसने भी यदि धोखा देकर रहस्य जान लिया तो कौन अपराध कर दिया। नल कला के इस उत्तर को सुनकर उन सखियों का विश्वास न करने के लिए दमयन्ती को आगाह करने लगता है। परन्तु कला नल के इस निर्देश पर भी फबती कसने से बाज नहीं आती। वह दमयन्ती से उसी समय कह देती है कि वह अपने पति पर अवश्य विश्वास करती रहे क्योंकि वह उसकी गुप्त बातों को कहीं नहीं कहते। नल कला के इन व्यग्य को सुनकर तिलमिला जाता है और वह रहस्य सुनने वाली उन दोनों सखियों को वहाँ से भगा देने की दमयन्ती से अनुमति माँगता है। दमयन्ती जब नल को अपनी अनुमति दे देती है तो वह उन सखियों पर पानी फेंककर उन्हें पूर्ण रूप से भिगो देता है। भीग जाने के कारण वे सखियाँ वहाँ से चली तो जाती हैं परन्तु जाते जाते कला एक चुटकी भी लेती जाती है। बाहर जाते हुए वह कहती है कि वे बाहर जाकर और कुछ नहीं कहेंगी केवल इतना ही बतायेंगी कि वे दोनों बाहर क्यों निकाल दी गई हैं। उन सखियों की बात सुनकर कचुकी आकर उन्हें भगा देता है। परन्तु दमयन्ती उनकी उस बात को सुनकर लज्जित हो जाती है।

सखियों के चले जाने के उपरान्त नल दमयन्ती को फुसलाने लगता है। परन्तु जब दमयन्ती देखती है कि नल शनैं-शनैं धृष्टता करते जा रहा है तो वह नल के पास से उठकर सखियों के पीछे जाने लगती है। परन्तु द्वार को पार कर जाने के उपरान्त नल को प्रार्थना करता हुआ देखकर उसे न तो आगे जाते बनता है और न पीछे लौटते ही बनता है। उसी समय वैतालिक सुन्दरी आकर माध्यन्दिन वेला हो जाने का निवेदन करती है। अत नल माध्यन्दिन कृत्यों को सम्पन्न करने के लिए चल देता है। नै० २०-१-१६१।

इस समस्त सर्ग में श्रीहर्ष ने नल के प्रातःकालीन दैनिक कृत्य की ओर संकेत करने के उपरान्त शृंगारिक हास परिहास का अंकन किया है। अतः इस सर्ग में भी कथानक आगे की ओर अग्रसर नहीं होता। परन्तु नल के द्वारा प्रकट किये गये रहस्य अनेक घटनाओं की ओर ध्यान अवश्य आकृष्ट करते है। इसके साथ ही परिहास के मध्य में घटनाओं का घात-प्रतिघात लाकर श्रीहर्ष ने इस सर्ग को प्रवाहयुक्त भी बना दिया है। महाभारत में उपर्युक्त कथानक की ओर स्पष्ट संकेत भले ही न किया गया हो परन्तु उसमें नल दमयन्ती के विहार की चर्चा तो की ही गई है। अतः श्रीहर्ष की कल्पना पर आधारित होते हुए भी इस सर्ग के कथानक को पूर्णतया नवीन नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक नैषध के कथानक में इस सर्ग की उपयोगिता का प्रश्न है यह सभी स्वीकार करेंगे कि इस समस्त सर्ग में मनोरम शृंगार की जो परिहास मिश्रित विशद व्यंजना की गई है वह असहृदयों को भी सहृदय बनाकर आनन्दविभोर कर देने में समर्थ है।

एकविंश सर्ग

महाभारत में नल के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले धार्मिक कृत्यों का भी उल्लेख किया गया है। वही ५४-३६।

हम देख चुके है कि श्रीहर्ष ने नल को महाभारत में संकेतित धार्मिक कृत्यों में पूर्णतया संलग्न नहीं किया है। परन्तु यत्र तत्र उसको नित्य नैमित्तिकादि कर्मों में संलग्न कर उसकी धर्मपरायणता पर प्रकाश डाला ही है। इक्कीसवाँ सर्ग नल की तत्त्वज्ञता तथा धर्मपरायणता का पूर्णतया व्यंजन कर देता है।

दमयन्ती-भवन से निकलकर नल जब बाहर आ जाता है तो उस भवन के बाहर खड़े हुए राजा उसे प्रणाम करते हैं तथा अपनी अपनी भेंट समर्पित करते हैं। नल उस भेंट को स्वीकार तो कर लेता है परन्तु उसी समय वह भेंट में प्राप्त समस्त रत्न-राशि को नवागन्तुक राजाओं में वितरित कर देता है। सभी राजाओं की कुशल-मंगल पूछकर वह उन्हें विदा कर देता है। उसके उपरान्त शिष्यों को शस्त्र-संचालन का अभ्यास कराता है। राज्य तथा शस्त्राभ्यास सम्बन्धी उपर्युक्त दैनिक विधियों को सम्पन्न कर चुकने के बाद वह विधि विधानपूर्वक स्नान करता है और उसके उपरान्त माध्यन्दिन सन्ध्योपासन करने लगता है। इस माध्यन्दिन कृत्य के अंग के रूप में वह विष्णु के विभिन्न अवतारों की स्तुति भी करता है। इन समस्त विधियों के अन्त में वह ब्राह्मणों को दान देकर महल में चला जाता है और भोजनादि करता है।

जब दमयन्ती भी भोजनादि से निवृत्त हो जाती है तो उसकी सखियाँ नल-दमयन्ती का मनोविनोद करने के लिए शुक तथा कोकिल पक्षियों को लेकर उनके पास आ जाती हैं। दमयन्ती की वे सखियाँ पहले स्वयं वीणा बजाकर नल-दमयन्ती

की प्रशस्ति का गान करती हैं उसके उपरान्त शुक पक्षी उस प्रशस्ति की पुनरावृत्ति कर सब को प्रसन्न कर देता है। अन्त में शुक के संकेतानुसार जब सखियाँ सन्ध्या-समय के ब्याज से वहाँ से उठकर जाने लगती हैं तो दमयन्ती उनकी ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगती है। सखियों के चले जाने पर दमयन्ती की दृष्टि अचानक परस्पर वियुक्त होते हुए एक चक्रवाक-मिथुन पर पड़ जाती है। फलत वह उनके दुःख से द्रवित होकर उनकी कष्टदायक स्थिति का वर्णन करने लगती है। नल उस वर्णन को सुनकर विमुग्ध हो जाता है और वह दमयन्ती की वाणी की प्रशंसा करता हुआ उसे अपनी छिपी हुई सखियों को खोजने के लिए उत्सुक बनाकर स्वयं सन्ध्याकालीन नित्यकर्म करने के लिए चला जाता है। नै० २१-१-१६०।

उपर्युक्त समस्त कथानक महाभारत के संकेतों के अनुरूप होते हुए भी श्रीहर्ष की अपनी कल्पना पर आधारित है। इस सर्ग में उन्होंने मध्याह्न काल से लेकर सायंकाल तक के मध्य में नल के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कृत्यों का वर्णन किया है। अत इस सर्ग में भी कथानक का अवरुद्ध हो जाना स्वाभाविक था। परन्तु कथानक के प्रवाह से पूर्णतया युक्त न होते हुए भी इस समस्त सर्ग में नल की अन्य राजाओं के प्रति दक्षिणता, उसकी शस्त्र-संचालन निपुणता, तत्त्वज्ञता, नित्यकर्मों के प्रति अनुरक्ति तथा अवसर के अनुरूप सम्भाषण-कुशलता आदि का सम्यक् निदर्शन किया गया है। इस समस्त सर्ग के अधिकांश भाग में श्रीहर्ष के द्वारा की गई शान्त-रस योजना इस सर्ग के महत्त्व को और भी अधिक द्विगुणित कर देती है।

द्वाविंश सर्ग

हम देख चुके हैं कि महाभारत में नल-दमयन्ती के विहार की ओर संकेत किया गया है। और श्रीहर्ष ने उस संकेत का अनुसरण करते हुए नैषध में भी नल-दमयन्ती के द्वारा किये गये आमोद-प्रमादों का विस्तृत वर्णन किया है। इस बाईसवें सर्ग को भी नल-दमयन्ती के द्वारा अनुभूत उन सुखोपभोगों का अंग कहा जा सकता है।

नल सायं सन्ध्या से निवृत्त होकर पुन अपने भवन के सप्तम भूमिभाग पर पहुँच जाता है और दमयन्ती को शय्या पर अपने अंक में बिठाकर क्रमशः सायं सन्ध्या, अन्धकार तथा चन्द्रोदय का वर्णन करने लगता है। स्वयं चन्द्रोदय वर्णन कर चुकने के उपरान्त वह दमयन्ती को चन्द्रमा का वर्णन करने लिए प्रेरित करता है। दमयन्ती भी नल के आग्रह की अवहेलना न कर चन्द्रमा का वर्णन करने लगती है। दमयन्ती के द्वारा की गई चन्द्र-प्रशस्ति को सुनकर नल हर्ष से जड़ हो जाता है और वह दमयन्ती की वाणी की प्रशंसा करते हुए उसके मुख का चुम्बन कर लेता है। जब दमयन्ती देखती है कि नल ने उसे चन्द्र-वर्णन में उलझा दिया है और

स्वय मौन बैठा हुआ है तो वह भी नल को पुन चन्द्र-वर्णन मे आसक्त करने के लिए वाक्-चातुर्य का आश्रय लेकर उसे चन्द्र वर्णन करने के लिए विवश कर देती है। परन्तु नल इस बार केवल आकाशस्थ चन्द्र का ही वर्णन नही करता अपितु उसके साथ साथ दमयन्ती के मुखचन्द्र का भी वर्णन करता रहता है। अन्त मे वह यह कामना करता है कि दमयन्ती उसे परिचारक बनाकर कामदेव की उपासना प्रारम्भ कर दे। क्योकि उपासना का समय उपस्थित हो चुका था। उसके साथ साथ वह यह भी कामना करता है कि कामदेव की उपासना करने वाले उन दोनो का देवता हिमकर मगल करें। नल की इस कामना के साथ ही इस सर्ग की दूसरे शब्दो मे नैषध की समाप्ति हो जाती है। नै० २२-१-१४८।

उपर्युक्त कथानक पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने इस सर्ग मे सायकाल से लेकर चन्द्रमा के पूर्णतया उदित हो जाने तक के प्राकृतिक वातावरण का शृगारमिश्रित वर्णन किया है। अत इस सर्ग मे भी घटनाओ के सघात का न होना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु उपर्युक्त अवधि के मध्य मे आने वाले सन्ध्या काल, अन्धकार, चन्द्रोदय तथा पूर्णतया समुदित चन्द्रमा आदि का क्रमिक वर्णन कर श्रीहर्ष ने इस सर्ग मे भी प्रवाह लाने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि यह समस्त सर्ग वर्णनमय है। परन्तु वर्णनो के मध्य मे अनुस्यूत नल-दमयन्ती का वार्तालाप समस्त सर्ग को सवादरूपता प्रदान कर देता है। शृगार-रस-व्यजना की दृष्टि से तो इस सर्ग का अपना विशेष महत्त्व है ही। यद्यपि इस सर्ग के वर्णन लक्षणग्रन्थ-कारो की मर्यादा के अनुरूप है। परन्तु उसमे कोई सदेह नही कि इस सर्ग की सभी कल्पनाएँ एक जैसी सरस नही हैं।

कथानक का अवसान

महाभारत मे नल के अग्रिम जीवन का भी विशद अकन किया गया है। परन्तु हम देखते हैं कि नैषध की समाप्ति नल-दमयन्ती के विहार के साथ ही हो जाती है। किसी कवि के लिए यह आवश्यक नही होता कि वह ऐतिहासिक कथानक पर आधारित अपने काव्य मे समस्त कथानक को आत्मसात् करे ही। अत महाभारत मे निहित नलोपाख्यान के समस्त कथानक को आत्मसात् न करने के कारण नैषध को अपूर्ण काव्य नही कहा जा सकता।

लक्षण-ग्रन्थकारो की मर्यादाओ तथा श्रीहर्ष की योजना के अनुसार नैषध को पूर्ण महाकाव्य ही कहा जायेगा। क्योकि श्रीहर्ष ने यदि नैषध को और अधिक आगे बढाया होता या उनकी वैसी योजना होती जिसे वे किसी कारणवश पूर्ण न कर सके होते तो नैषध शृगार-प्रधान काव्य नही रह सकता था जैसाकि श्रीहर्ष उसे बनाना चाहते थे। क्योंकि महाभारत मे उपनिबद्ध नल का अग्रिम जीवन अनेक कष्टों से भरा है। अत श्रीहर्ष ने भी यदि नल-जीवन के उस दु खदपक्ष का अकन

किया होता तो वर्तमान नैषध में उपनिबद्ध शृंगार रस के आलम्बन स्वरूप नल-दमयन्ती को ही करुण रस का आलम्बन बनाना पड़ता। और इस प्रकार श्रीहर्ष को परस्पर विरुद्ध दो रसों के एकत्र समावेश के लिए दोषी बनना होता। नैषध में उपनिबद्ध शृंगार रस को नल जीवन के अग्रिम करुण भाग का अंग बना सकना भी दुःसाध्य था। यदि श्रीहर्ष ने अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर वैसा कर भी दिया होता तो नैषध शृंगार प्रधान नहीं रहता और इसके साथ-साथ श्रीहर्ष को ऐतिहासिक कथानक में आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए दोषी भी ठहराया जाता। क्योंकि महाभारत में उपनिबद्ध नलोपाख्यान एक करुण कथा है, न कि शृंगार कथा। हम देख चुके हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध में नल की द्यूत-प्रियता का वर्णन नहीं किया है। यदि श्रीहर्ष को नल के अग्रिम जीवन का अंकन करना अभीष्ट होता तो उन्होंने नल के इस दुर्व्यसन की ओर कहीं न कहीं पर संकेत अवश्य किया होता। क्योंकि नल के समस्त जीवन व्यापी दुःखों का कारण उसका यह दुर्व्यसन ही था। अतः उसका प्रदर्शन बिना किये नैषध को आगे बढ़ाया ही नहीं जा सकता था। उपर्युक्त तथ्यों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान नैषध पूर्ण काव्य है। श्रीहर्ष को नैषध का कथानक न तो आगे बढ़ाना अभीष्ट था और न यह उनकी योजना के अनुरूप था।

उपर्युक्त समस्त विवेचन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने महाभारत के कथानक का अनुसरण करते हुए भी उसमें यत्र तत्र परिवर्तन तथा परिवर्धन कर नैषध में उसे आत्मसात किया है, श्रीहर्ष के द्वारा किये गये वे परिवर्तनादि उनकी योजना के अनुरूप समुचित तथा रसादिकों की व्यंजना में समर्थ हैं।

सन्धि-संघटन

परस्पर अंगों से सन्धीयमान महाकाव्य के अर्थावयवों अर्थात् अर्थभागों को सन्धि नाम से अभिहित किया जाता है

तेनार्थावयवा सन्धीयमाना परस्परमंगैश्च सन्धय इति समाख्या निरुक्ता। तदेषा सामान्यलक्षणम्।—अर्थभागराशि सन्धिरित्युक्तम्।

ना० शा० अभि० सर्ग पृ० २३, ३१।

भरत ने भी सन्धियों को इतिवृत्त का विभाग ही कहा है

इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितम्।

पंचभिः सन्धिभिस्तस्य विभागः सम्प्रकल्पितः ॥ ना० शा० १९-१।

सन्धियों तथा सन्ध्यंगों को भी रसाभिव्यंजक स्वीकार किया गया है। परन्तु सन्धियों तथा सन्ध्यंगों का यदि रसाभिव्यक्ति की अपेक्षा से संघटन किया जाता है तभी अभिव्यक्त रस की चारुता में वृद्धि होती है। अन्यथा केवल शास्त्र मर्यादा

की रक्षा के लिए किया गया सन्धियो तथा सन्ध्यगो का सन्निवेश काव्यात्मा का अपकर्ष करने लगता है

रसादिव्यजकत्वे प्रबन्धस्य चेदमन्यन्मुख्य निबन्धन यत् सन्धीना मुख-प्रतिमुख-गर्भावमर्शनिर्वहणाख्याना, तदगाना चोपक्षेपादीना घटन रसाभिव्यक्त्य-पेक्षया। न तु केवल शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया। ध्व० पृ० ३१२, ३१८।

वैचित्र्य रस-व्यजना का प्रधान हेतु होता है और सधिया वैचित्र्य-कल्पना-मय होती है

प्रकारवैचित्र्यकल्पनामया एव सन्धय । ना० शा० अभि० अ० १६, पृ० २।

अत सन्धियो की रस-व्यजकता के बारे म सदेह नही किया जा सकता। परन्तु सभी सन्धिया का सर्वत्र सन्निवेश भरत को भी अभीष्ट नही है

पूर्णसन्धि च कर्तव्य हीनसन्ध्यपि वा पुन ।

नियमात् पूर्णसन्धि स्याद्धीनसन्ध्यथ कारणात् ॥ ना० शा० १६-१७।

भरत ने मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण नामक पाच सन्धियो का निर्देश किया है।

नैषधगत सन्धियाँ

नैषधीयचरित के कथानक पर दृष्टिपात करने म प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने नैषध मे पाचो सधियो का सघटन किया है और यह सघटन रसाभिनिवेशी भी है।

मुख-सन्धि

बीज की उत्पत्ति तथा विभिन्न रसो मे युक्त इतिवृत्त क प्रारम्भिक भाग को मुख-सन्धि के नाम स अभिहित किया जाता है

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससभवा।

काव्ये शरीरानुगता तन्मुख परिकीर्तितम ॥ ना० शा० १६-३६।

एतदुक्तम्—प्रारम्भोपयोगी यावानर्थराशि प्रसक्तानुप्रसक्तया विचित्रास्वाद आपतति तावान् मुख-सन्धि । वही अभि० पृ० २३।

नैषध क प्रारम्भिक तीन सर्गो के कथाश को मुख-सन्धि के नाम से अभिहित किया जायगा। क्योकि इन सर्गो मे नल-दमयन्ती के अन्योन्यानुराग स्वरूप बीज का सम्यक् प्रदर्शन कर दिया गया है और यह कथानक विप्रलम्भ शृगार, अद्भुत तथा हास्यादि रसो स भी युक्त है।

प्रतिमुख-सन्धि

जिस कथाश मे बीज की फलानुगुण दशा दृष्टिगत होने के उपरान्त पुन विरोधिया की सन्निधि मे नष्ट-सी हो जाये उसे प्रतिमुख-सधि कहते हैं

बीजस्योद्घाटन यत्र दृष्टनष्टमिव क्वचित्।
मुखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुख स्मृतम्॥ ना० शा० १९-४०।

तस्मादयमत्रार्थ—बीजस्योद्घाटन तावत् फलानुगुणो दशाविशेष तद् दृष्टमपि विरोधिसन्निधेनष्टमिव, पांसुनापिहितस्येव बीजस्याङ्कुररूपमुद्घाटनम्।
वही अभि० पृ० २४।

नैषध के तृतीय सर्ग के अन्तिम भाग से लेकर पचम सर्ग तक के कथाश को प्रतिमुख-सन्धि के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योकि इस कथाश मे नल-दमयन्ती को एक-दूसरे की प्राप्ति करने के लिए उद्यत अकित कर अर्थात् प्रारम्भ मे समुत्पन्न बीज की फलानुगुण दशा का प्रदर्शन करने के उपरान्त इन्द्र के द्वारा की गई याचना तथा नल के द्वारा दौत्य कार्य की स्वीकृति की योजना की गई है जो उस फलानुगुण दशा को नष्ट-सा कर देती है।

गर्भ सन्धि

उत्पत्ति तथा उद्घाटन दो दशाओ से युक्त बीज के उद्भेद को गर्भ-सन्धि के नाम से अभिहित किया जाता है। यह कथाश प्राप्ति, अप्राप्ति तथा अन्वेषणात्मक अवस्थाओ से युक्त होता है। इस कथाश मे प्राप्ति की सभावना तो रहती है परन्तु अप्राप्त्यश की प्रधानता रहती है

उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा।
पुनश्चान्वेषण यत्र स गर्भ इति सज्ञित॥ ना० शा० १९-४१।

तस्येति उत्पत्त्युद्घाटनदशाद्वयाविष्टस्य बीजस्य यत्रोद्भेद फलजननाभि-मुख्यत्व स गर्भ। उद्भेदमेव निवर्णाति प्राप्तिरित्यादिना प्राप्तिर्नायकविषया, अप्राप्ति प्रतिनायकचरिते पुनश्चान्वेषणमित्युभयसाधारणम्।—प्राप्ति, अप्राप्ति-रन्वेषणमित्येव भूतात्मिरवस्थाभि पुन पुनर्भवन्तीभिर्युक्तो गर्भ-सधि प्राप्ति-सभवाप्त्ययावस्थया युक्तत्वेन फलस्य गर्भीभावात्।—अप्राप्त्यशश्चात्रावश्यभावी अन्यथा हि सभावनात्मा प्राप्तिसम्भव कथ निश्चय एव हि स्यात्।
वही अभि० पृ० २५-२६।

गर्भ-सधि के उपर्युक्त लक्षण के अनुसार नैषधगत षष्ठ सर्ग के कथाश को गर्भ सन्धि के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योकि इस कथाश मे भीम के अन्त पुर मे पहुचे नल-दमन्ती का समागम हो जाता है। परन्तु भ्रान्ति उन दोनो को पुन पृथक् कर देती है, फिर भी नल दमयन्ती को खोजने का प्रयत्न करता रहता है। इसी प्रकार दमयन्ती के द्वारा देवदूतियो के प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिये जाने से नल को दमयन्ती की प्राप्ति की आशा बँध जाती है। परन्तु इन्द्र-दूती के प्रस्ताव को सुनकर तथा इन्द्र के द्वारा प्रेषित पारिजात की माला को दमयन्ती को सादर ग्रहण करता हुआ देखकर नल को पुन निराशा घेर लेती है और उसे यह निश्चय

हो जाता है कि अब वह दमयन्ती को नही प्राप्त कर सकेगा। परन्तु दमयन्ती के द्वारा किये गये इन्द्र-दूती के प्रस्ताव तथा सखियो के अनुमोदन का निराकरण सुनकर नल को दमयन्ती-प्राप्ति की पुन सभावना हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समस्त सर्ग का कथानक प्राप्ति, अप्राप्ति तथा अन्वेषणात्म अवस्थाओ म युक्त है तथा प्रधानता भी अप्राप्त्यश की ही अधिक है।

विमर्श-सन्धि

जिस कथाश मे प्रदर्शित-मुख बीजफल का लोभ, क्रोध अथवा व्यसनादि के कारण पुन प्रतिरोध हो जाता है उसे विमर्श अथवा अवमर्श-सधि के नाम से अभिहित किया जाता है। *इस सन्धि मे प्राप्त्यश की प्रधानता तथा अप्राप्त्यश की अप्राधानता रहती है*

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थो विलोभनकृतोऽथवा।
क्रोधव्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृत ॥ ना० शा० १९-४२।

स च व्याख्याने बीजशब्देन तद्बीजफल तस्य योऽर्थो निवृत्ति पुनस्तनैव सपादन निष्प्रत्यूहप्राणनया फलप्रसूति, तच्छब्देन यत्रेत्याक्षिप्तम्, सा च निवृत्ति क्रोधेन च निमित्तेन लोभेन वा व्यसन शापादिना वा। अपि शब्दाद् विघ्नान्तराणा प्रतिपदमशक्यनिर्देशाना सग्रह। वही अभि० पृ० २७।

अवमर्शो तु प्राप्तेरेव प्रधानता, अप्राप्त्यशस्य च न्यूनता। वही अभि० पृ० २६।

विमर्श-सधि के उपर्युक्त लक्षण के अनुसार नैषधगत सप्तम सर्ग से लेकर त्रयोदश सर्ग तक के कथाश को *विमर्श-सन्धि के नाम से अभिहित किया जायेगा।* चिरकाल तक अन्तर्हित अवस्था मे दमयन्ती-सौन्दर्य का अवलोकन करते रहने के कारण नल ही दमयन्ती मे अनुरक्त नही हो गया था अपितु प्रकट हो जाने के उपरान्त नल को देखकर दमयन्ती की भी वही दशा हो गई थी (नै० ८ ४)। परन्तु नल के द्वारा स्वीकृत दौत्य उन दोनो का समागम नही होने देता। नल की उद्-भ्रान्ति तथा स्वयवर म सम्मिलित होने के लिए दमयन्ती के द्वारा स्वय दिये गए निमन्त्रण को नल के स्वीकार कर लेने म नल दमयन्ती समागम की सभावना तो बढ जाती है। परन्तु स्वयवर-मण्डप मे उपस्थित नल रूपधारी इन्द्रादि देवता उस सभावना को पुन सदेहपूर्ण बना देते है। फिर भी उपर्युक्त समस्त कथाश म प्रधानता नल दमयन्ती समागम सभावना की ही रहती है।

निर्वहण-सन्धि

बीज की उत्पत्ति, उद्घाटन, उद्भेद तथा गर्भ निर्भेद नामक अवस्थाओ से युक्त तथा ह्रास एव शोकादिक भावो से उत्कर्ष को प्राप्त मुखादिक सन्धियो के अथभाग जिस अर्थराशि मे समाहित कर दिये जाते है अर्थात् फलनिष्पत्ति मे

संयुक्त कर दिये जाते हैं उसे निर्वहण सन्धि के नाम से अभिहित किया जाता है

समानयनमर्थानां मुखाद्यानां सबीजिनाम्।

नानाभावोत्तराणां यद्भवेन्निर्वहणं तु तत् ॥ ना० शा० १९-४३।

मुखाद्यानां चतुर्णां सन्धीनां येऽर्था प्रारम्भाद्या तेषां सह बीजिभिः बीजविकारैः क्रमेण यस्यां चतुष्टयेन भवद्भिः उत्पत्त्युद्घाटनोद्भेदगर्भनिर्भेदलक्षणैः वर्तमानानां नानाविधैः सुखदुःखात्मकैः हासशोकक्रोधादिभिर्भावैरुत्तराणां चमत्कारास्पदत्वे जातोत्कर्षाणां यत्समानयनं यस्मिन्नर्थराशौ समानीयन्ते फलनिष्पत्तौ योज्यन्ते तन्निर्वहणं फलयोगावस्थया व्याप्तम्। वही अभि० पृ० २९।

नैषधगत चतुर्दश सर्ग से लेकर बाईसवें सर्ग तक के कथांश को निर्वहण-सन्धि के नाम से अभिहित किया जायगा। क्योंकि इस कथांश में नल-दमयन्ती को एक दूसरे का समागम प्राप्त कराने के साथ साथ हासादिक विभिन्न भावों की भी उत्कृष्ट योजना की गई है तथा नैषधगत समस्त कथांशों का समाहार भी नल-दमयन्ती की समागमोपलब्धि में कर दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने नैषध के कथानक को मुखादिक सन्धियों के अनुरूप संघटित करने का ही प्रयास किया है। परन्तु उन्होंने सभी सन्धियों से सम्बद्ध कथांशों को समान रूप में न उपनिबद्ध कर आवश्यकता के अनुरूप ही विस्तार प्रदान किया है।

सन्ध्यंग-संघटन

अभिनव ने मुखादिक सन्धियों में विभक्त अर्थराशि के अवान्तर भागों को सन्ध्यंग नाम से अभिहित किया है

तस्यार्थराशेरवान्तरभागा उपक्षेपादीनि सन्ध्यंगानि।

ना० शा० अभि० पृ० २३।

भरत ने स्वयं भी सन्ध्यंगों का लक्षण उपन्यस्त किया है। उनके अनुसार आदि, मध्य तथा अन्त में अंगी संधि को निष्पन्न करने वाले संविधान-खण्डों को सन्ध्यंग नाम से अभिहित किया जाता है

सन्धीनां यानि वृत्तानि प्रदेशेष्वनुपूर्वशः।

स्वसम्पद्गुणयुक्तानि तान्यंगान्युपधारयेत् ॥ ना० शा० १९-५०।

अभिनव ने कारिकागत 'अनुपूर्वशः' पद की व्याख्या करते हुए इस बात पर अधिक बल दिया है कि सन्ध्यंगों की योजना करते समय क्रम-निर्वाह मुख्यप्रयोजन अर्थात् भाव-प्रवणीयता की दृष्टि से करना चाहिए, लक्षण-निरूपण की दृष्टि से नहीं

अनुपूर्वश इति मुख्यप्रयोजनसंपादनविलोपननेन क्रमेण, न तु लक्षणनिरूपण-प्रसंगपरिकल्पितेन। वही अभि० पृ० ३१।

भरत ने सन्ध्यंगों के लक्षणों का निर्देश करने से पूर्व भी उनका क्रमिक निर्देश करने की प्रतिज्ञा की है

पुनरेषा प्रवक्ष्यामि लक्षणानि यथाक्रमम् । ना० शा० १९-६९।

अभिनव ने इस अवसर पर भी भरत के द्वारा प्रतिज्ञात क्रम-निर्वाह पर टिप्पणी करते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि भरत के द्वारा स्वीकृत क्रम केवल लक्षण-निर्देश तक ही सीमित समझना चाहिए। काव्य में सन्ध्यंगों की क्रमिक योजना समुचित नहीं होती

लक्षण एवायं क्रमो न निबन्धन इति यावत्। तेन यदुद्भटप्रभृतयोऽङ्गानां सन्धौ क्रमे च नियममाहुस्तद्युक्त्यागमविरुद्धमेव। तथा हि-सप्रधारणमर्थानां युक्ति-रित्यभिधीयते इति यन्मुखसन्धौ पंचममंगं वक्ष्यति तत्सर्वेषु सन्धिषु तावन्निब-न्धनयोग्य, न च तथा निवेश्य बध्यमानमदृष्टकृतं विदध्यात्। वही अभि०पृ० ३६।

विश्वनाथ ने भी सन्ध्यंगों की रसानुरूप, अक्रमिक तथा अंगी-सन्धि भिन्न स्थानों में योजना का समर्थन किया है

चतुःषष्टिविधं ह्येतदंगं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥

कुर्यादनियते तस्य सन्धावपि निवेशनम् ।

रसानुगुणतां वीक्ष्य रसस्यैव हि मुख्यता॥ सा० द० ६ ११५-११६।

हम देख चुके हैं कि आनन्दवर्धन ने भी सन्धियों तथा सन्ध्यंगों का रसाभि-व्यक्ति की अपेक्षा से सन्निवेश करने पर बल दिया है। अतः यह निश्चित हो जाता है कि सन्ध्यंगों की क्रमिक योजना आवश्यक नहीं होती।

सन्ध्यंगों का महत्त्व एवं संख्या

सन्धियों के समान सन्ध्यंगों का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। भरत ने सन्ध्यंगों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है

अंगहीनो नरो यद्वन्नैवारम्भक्षमो भवेत् ।

अंगहीनं तथा काव्यं न प्रयोगक्षमं भवेत् ॥

उदात्तमपि यत्काव्यं स्यादंगैः परिवर्जितम् ।

हीनत्वाद्धि प्रयोगस्य न सतां रंजयेन्मनः ॥

काव्यं यदपि हीनार्थं सम्यगंगैः समन्वितम् ।

दीप्तत्वात्तु प्रयोगस्य शोभामेति न संशयः ॥ ना० शा० १९-५३-५५।

भरत ने विभिन्न सन्धियों के चौंसठ सन्ध्यंगों का निर्देश किया है

चतुष्षष्टिं बुधैर्ज्ञेयान्येतान्यंगानि सन्धिषु ॥ ना० शा० १९-६७।

सन्ध्यंगों का नियामक

भरत ने सन्ध्यंगों के लक्षणों का निर्देश करने के उपरान्त काव्य में उन अंगों

की यथासन्धि रसभावापेक्षी योजना करने का निर्देश किया है

यथासन्धि तु कर्त्तव्यान्येतान्यगानि नाटके ॥

कविभि काव्यकुशलै रसभावमपेक्ष्य तु। ना० शा० १६-१०४-१०५।

अभिनव ने यथार्सा घ को स्पष्ट करते हुए सन्ध्यन्तरोक्त सन्ध्यगो की सन्ध्यन्तर मे योजना करने के लिए कवि को स्वतन्त्र कर दिया है

यथासन्धि स्थिति यो यस्मिन् सन्धौ योग्य इत्यर्थ । योग्यता च कविरेव जानाति, न च मुक्तककवि, किंतु प्रबन्धयोजनासमर्थ तदाह कविभिरित्यादि।

ना० शा० अभि० पृ० ६० ।

हम देख चुके हैं कि विश्वनाथ भी इस तथ्य के समर्थक हैं।

नैषधगत सन्ध्यग

नैषध पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने सन्ध्यगो का नैषध मे रसभावानुरूप ही सन्निवेश किया है। उन्होने सन्ध्यगो का सन्निवेश करते हुए उनकी क्रमिक योजना न कर विषय के अनुरूप योजना की है और सन्ध्यन्तरोक्त सन्ध्यगो का सन्ध्यन्तर मे प्रदर्शन भी पर्याप्त मात्रा म किया है। सन्ध्यगो के उपर्युक्त विवेचन के अनुसार श्रीहर्ष के द्वारा उपर्युक्त उभयरूप मे की गई सन्ध्यगो की योजना को यदि वह रसभावाभिनिवेशी हो तो समुचित ही कहा जाएगा। नैषधगत सन्ध्यगो पर दृष्टिपात करते हुए आगे हम देखेंगे कि श्रीहर्ष के द्वारा सघटित सन्ध्यग रसभावापेक्षी भी है या नहीं ?

मुख-सन्ध्यग

श्रीहर्ष ने मुख स धि-स्वरूप नैषधगत प्रारम्भिक तीन सर्गों मे मुख-सन्धि के समस्त अगो की योजना भी की है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है।

१-३ उपक्षेप, परिकर तथा परिन्यास

काव्य के प्रधान प्रतिपाद्य अर्थात् अगी रस की उत्पत्ति को उपक्षेप, उसकी वृद्धि को परिकर तथा उसकी सम्यक् निष्पत्ति को परिन्यास सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृत ॥

यदुत्पन्नार्थबाहुल्य ज्ञेय परिकरस्तु स ।

तन्निष्पत्ति परिन्यासो विज्ञेय कविभि सदा॥ ना० शा० १६-६६-७०।

नैषध के प्रथम सग मे अकित नल दमयन्ती के अन्योन्यानुराग की उत्पत्ति मे मुख स धि के उपर्युक्त सभी अगो का सम्यक् सन्निवेश किया गया है।

४ विलोभन

गुणवर्णनादि विलोभन के हेतु होते हैं। अत उन्हें विलोभन सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

गुणनिवर्णन चैव विलोभनमिति स्मृतम्। ना० शा० १६-७१।

दमयन्ती का दूतादिकों के मुख से नलगुण श्रवण करना तथा नल का लोकमुख से दमयन्तीगुण श्रवण करना विलोभन सन्ध्यगयुक्त है। नै० १-३४, ३७, ४२।

५ युक्ति

प्रयोजन का निर्धारण युक्ति सन्ध्यग होता है

सम्प्रधारणमर्थाना युक्तिरित्यभिधीयते॥ ना० शा० १६-७१।

दूतादिकों के मुख से नल-गुण वर्णन सुनकर तथा चित्र में अपनी तथा नल की प्रतिकृति देखकर अपनी तथा नल की समनुरूपता का दमयन्ती के द्वारा किया गया निर्धारण युक्ति-सन्ध्यग-गर्भित है। नै० १-३३, ३८।

६ प्राप्ति

सुखजनक वस्तु की प्राप्ति को प्राप्ति सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

सुखार्थस्याभिगमन प्राप्तिरित्यभिसज्ञिता। ना० शा० १६-७२।

हस के द्वारा नल के सम्मुख किये गये दमयन्ती-गुण-वर्णन मे तथा दमयन्ती के सम्मुख किये गये नल-गुण-वर्णन मे प्राप्ति सन्ध्यग का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

७ समाधान

नायक अथवा नायिका मे सम्यक् रूप से बीज का आहित करना समाधान-सन्ध्यग होता है

बीजार्थस्योपगमन समाधानमिति स्मृतम्। ना० शा० १६-७२।

हस के द्वारा प्रत्युपकार करने की इच्छा से नल के सम्मुख निवेदित दमयन्ती-प्राप्ति-विषयक प्रस्ताव तथा दमयन्ती के मन मे नल की अभिलाषा को उत्पन्न करने के लिए उसके द्वारा अपनी दिव्यता के सदर्भ मे किया गया नल गुण-वर्णन समाधान सन्ध्यगयुक्त है।

८ विधान

जहाँ सुख तथा दुःख का मिश्रित वर्णन हो वहाँ विधान सन्ध्यग होता है

सुख दुःख कृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम्। ना० शा० १६-७३।

हस के द्वारा किये गये दमयन्ती-गुण-वर्णन को सुनकर नल का पहले प्रसन्न हो जाना परन्तु अपनी वियुक्त अवस्था का स्मरण कर दु खयुक्त हो जाना विधान-सन्ध्यग-युक्त है। नै० २-४६-६०।

९ परिभावना

कौतुक से मिश्रित आवेग को परिभावना नाम से अभिहित किया जाता है
कुतूहलोत्तरावेगा विज्ञेया परिभावना। ना० शा० १६ ७३।

दमयन्ती का सखियो के मुख से नल नाम सुनकर अन्य कार्यों का परित्याग कर देना तथा नलविषयक चर्चा सुनने के लिए आतुर हो जाना परिभावना-सन्ध्यगयुक्त है। नै० १-३५।

१० उद्भेद

बीजार्थ के उदघाटन को उद्भेद सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया गया है
बीजार्थस्य प्ररोहो य स उदभेद इति स्मत। ना० शा० १६-७४।

नल का हस के सम्मुख अपने दमयन्ती-विषयक अनुराग का प्रकाशन कर देना तथा दमयन्ती का हस के सम्मुख स्वसकल्प निवेदन करने लगना उद्भेद-सन्ध्यग युक्त है। नै० २-५८-६०, ३-७८-७६।

११ करण

प्रकृत अर्थ के आरम्भ को करण सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है
प्रकृतार्थसमारम्भ करण नाम तद भवेत॥ ना० शा० १६ ७४।

हस के मुख से दमयन्ती गुण-वर्णन सुनकर नल का दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाना तथा नल-गुण-वणन सुनकर दमयन्ती का नल को प्राप्त करने के बारे में कृतसकल्प हो जाना करण-सन्ध्यग-युक्त भी ।

१२ भेद

पात्र सघात के भेदन को भेद सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है
सघातभेदनार्थो य स भेद इति कीर्तित॥ ना० शा० १६-७५।

दमयन्ती का अपनी सखियो पर क्रुद्ध होकर अपना अनुगमन न करने के लिए सचेत कर देना भेद-सन्ध्यग युक्त है। नै० ३-६-७।

प्रतिमुख-सन्ध्यग

श्रीहर्ष ने प्रतिमुख-सन्ध्यगो की योजना समस्त नैषध मे की है। परन्तु उनके द्वारा की गई उनकी यत्र-तत्र योजना भी सोद्देश्य है।

१ विलास

रत्यादि भावो के हेतुभूत नायक-नायिकादि की समीहा को विलास नाम से अभिहित किया गया है

समीहा रतिभोगार्था विलास इति सज्ञित । ना० शा० १६-७६ ।

इह च रतिग्रहण पुमर्थोपयोगिरसगतस्थायिभावोपलक्षणम् ।

वही अभि० पृ० ४२ ।

श्रीहर्ष ने विलास सन्ध्यग की योजना अनेक स्थानो पर की है। प्रारम्भिक चार सर्गों मे किया गया नल-दमयन्ती उभयगत अन्योन्यविषयक समीहा का सघटन विशेष रूप से सुचारु एव प्रभविष्णु है।

२ परिसर्प

दृष्ट वस्तु के नष्ट हो जाने पर उसका किया जाने वाला अनुसरण परिसर्प सन्ध्यग होता है

दृष्टनष्टानुसरण परिसर्प इति स्मृत ॥ ना० शा० १६-७६ ।

भीम के अन्त पुर मे भ्रमण करते हुए अन्तर्हित नल का दमयन्ती से समागम हो जाता है। परन्तु भ्रमवश दोनो एक-दूसरे से पृथक् हो जाते हैं और पृथक् हो जाने के उपरान्त दोनो पुन एक दूसरे का आलिंगन प्राप्त करने के लिए चिरकाल तक प्रयत्न करते रहते हैं। नै० ६ /८-५६ ।

इस प्रकार पहले समागम हो जाना तदनन्तर वियुक्त हो जाना उसके बाद पुन समागम के लिए प्रयत्न करने के कारण नैषधगत उपर्युक्त प्रसग को परिसर्प-सन्ध्यग-युक्त कहा जाएगा।

३ विधूत

पहले की गई प्रार्थना को स्वीकार न करना परन्तु बाद मे उसे स्वीकार कर लेना विधूत सन्ध्यग होता है

कृतस्यानुनयस्यादौ विधूत ह्यपरिग्रह । ना० शा० १६-७७ ।

आदौ प्रथमत कृतस्यानुनयस्य सामवचसो नागीकरण विधूतम्, पश्चात् पुनरगीकरणमिति। वही अभि० पृ० ४३ ।

धनजय के अनुसार अरति को विधूत नाम से अभिहित किया जाता है।

द० रू० १-३३ ।

विधूत के भरत-सम्मत लक्षण के अनुसार जिस सर्गगत नल के द्वारा किये गये दमयन्ती के अनुनय को तथा धनजय के अनुसार समस्त चतुर्थ सर्ग को विधूत सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जायेगा।

४ तापन

समागमादि को न प्राप्त होने देने वाले विघ्नो की उपस्थिति को तापन सन्ध्यग के नाम मे अभिहित किया जाता है

अपायदर्शन यत्तु तापन नाम तद् भवेत् ॥ ना० शा० १६-७७ ।

श्रीहर्ष ने तापन सन्ध्यग की योजना त्रयोदश सर्ग के अन्त मे की है । दमयन्ती वास्तविक नल को पहचानने के अनेक प्रयत्न करती है । परन्तु नल-रूपधारी इन्द्रादि देवताओ की माया उसे नल को पहचानने नही देती । नै० १३-३६-५५ ।

नैषधगत यह प्रकरण तापन सन्ध्यग से युक्त है ।

५ नर्म

क्रीडाथ विहित हास्य को नर्म नाम से अभिहित किया जाता है

क्रीडाथ विहित यत्तु हास्य नर्मेति तत्स्मृतम ॥ ना० शा० १६-७८ ।

विंश सग म परिहासोत्सुक नल के द्वारा दमयन्ती पर अनेक परिहास-गर्भित आक्षेप किय जाते हैं । नल के उन सभी आक्षेपो को नम सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाएगा । नै० २०-२६-३६ ।

६ नर्मद्युति

जिन वचनो के द्वारा दोषो को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है हास्य-गर्भित उन वचनो को नमद्युति सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

दोषप्रच्छादनार्थं तु हास्य नमद्युति स्मृता ॥ ना० शा० १६-७८ ।

दोषो येनोक्तन प्रच्छादयितुमिष्यते तस्यापि हास्यजननन्वेन नर्म च सुतरा द्योतित भवतीति नर्मद्युति । वही अभि० पृ० ४४ ।

नल के द्वारा दमयन्ती पर किये गए सभी आक्षेपो को सुनकर तथा उनका निराकरण कर दमयन्ती की सखी कला दमयन्ती को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करती है । परन्तु कला के वे वचन परिहासगर्भित भी हैं । नै० २०-३७-४६ ।

कला के इन वचनो को नमद्युति के नाम से अभिहित किया जाएगा ।

७ प्रगयण

उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप वचनो को प्रगयण सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाना है

उत्तरोत्तरवाक्य तु भवेत्प्रगयण पुन ॥ ना० शा० १६-७९ ।

नवम सर्ग के प्रारम्भ मे अकित नल-दमयन्ती के सरस सवाद को प्रगयण सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाएगा ।

८ निरोध

व्यसनप्राप्ति को निरोध सध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है
या तु व्यमनसप्राप्ति स निरोध प्रकीर्तित ॥ ना० शा० १६-७६ ।
इन्द्रादि देवताओ के द्वारा दमयन्ती-स्वयवर मे भाग लेने के लिए जाते हुए नल से की गई याचना मे निरोध सन्ध्यग का सम्यक् निर्वाह हुआ है ।

९ पर्युपासन

क्रुद्ध व्यक्ति की प्राथना को पर्युपासन स-यग के नाम मे अभिहित किया जाता है
क्रुद्धस्यानुनयो यस्तु भवत्तत्पर्युपासनम् ॥ ना० शा० १६-८० ।
प्रणयकुपित दमयन्ती की नल के द्वारा की गई प्राथना का पर्युपासन सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाएगा । नै० २०-१४-२५ ।

१० पुष्प

विशिष्ट वचनो को पुष्प नाम मे अभिहित किया जाता है
विशेपवचन यत्तु तत्पुष्पमिति सज्ञितम् ॥ ना० शा० १६-८० ।
श्रीहर्ष ने पुष्प सन्ध्यग की नैषध मे अनेक स्थानो पर प्रचुर मात्रा मे योजना की है । सप्तम सर्गगत नल के द्वारा किया गया दमयन्ती का शिख-नख सौंदर्यवणन तथा दमयन्ती के अन्य सौंदर्यवणन पुष्प सन्ध्यग स युक्त हैं ।

११ वज्र

प्रत्यक्षनिष्ठुर वचनो को वज्र सन्ध्यग के नाम मे अभिहित किया जाता है
प्रत्यक्षरूक्ष यद्वाक्य वज्र तदभिधीयते । ना० शा० १६-८१ ।
पुन -पुन आग्रह करने पर भी देवताओ म किसी का वरण करने के लिए तैयार न होने पर नल के द्वारा की गई दमयन्ती की भत्सना वज्र सन्ध्यग से युक्त है । नै० ९ ३६-४६ ।
इसी प्रकार इन्द्रादि देवताओ के कपट से परिचित हो जाने के उपरान्त नल के द्वारा देवताओ की की गई गहणा भी वज्र सन्ध्यग से युक्त है । नै० ५-१०७ ।

१२ उपन्यास

किसी अथ को युक्तियुक्त सिद्ध कर देना उपन्यास सन्ध्यग होना है
उपपत्तिकृतो योऽर्थ उपन्यासश्च स स्मृत । ना० शा० १६-८१ ।
प्रियदर्शन नल को दूत बनाकर भेजने वाले इन्द्रादि देवताओ के बारे मे

दमयन्ती के द्वारा किये गये अधोलिखित विचारों को उपन्यास सन्ध्यगके नाम से अभिहित किया जाएगा

जलाधिपस्त्वामदिशन्मयि ध्रुव परेतराज प्रजिघाय स स्फुटम् ।
मरुत्वतैव प्रहितोऽसि निश्चित नियोजितश्चोर्ध्वमुखेन तेजसा ॥ नै० ९-२३ ।

१३ वर्ण-सहार

चारो वर्णो का उपगमन वर्णसहार सन्ध्यग होता है

चातुर्वर्ण्योपगमन वर्णसहार इष्यते । ना० शा० १९-८२ ।

श्रीहर्ष ने स्वयवर मे उपस्थित सभासदो का वर्णन करते हुए वर्णसहार सन्ध्यग की भी योजना की है। अभिनव के अनुसार वर्ण शब्द को यदि पात्रो का बोधक स्वीकार किया जाय (चातुर्वर्ण्यशब्देन पात्राण्युपलक्ष्यन्ते—वही अभि० पृ० ४७) तो नल-दमयन्ती तथा दमयन्ती की सखियों के एकत्रावस्थानकालीन स्थलो को वर्णसहार सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाएगा ।

प्रतिमुख सन्ध्यगो से गर्भित नैषधगत उपर्युक्त स्थलो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष ने मुख-सन्धि के अगो के समान प्रतिमुख सन्ध्यगो की भी अक्रमिक योजना की है। इसके साथ-साथ उन्होने अनेक प्रतिमुख सन्ध्यगो की प्रतिमुख-सन्धि से भिन्न अन्य सन्धियो के अन्तर्गत योजना भी की है। परन्तु हम देख चुके हैं कि इन विशेषताओ को लक्षण-ग्रन्थकारो ने औचित्ययुक्त ही स्वीकार किया है। जहा तक उपर्युक्त स्थलों की रसभावापेक्षिता का प्रश्न है इस में कोई सन्देह नही कि उपर्युक्त सभी स्थल रसभावापेक्षी भी हैं। श्रीहर्ष ने नैषध के पूर्वभाग मे प्रधान रूप से विप्रलम्भ शृगार की तथा उत्तरभाग मे सभोग शृगार की योजना की है। यदि उन्हो ने नैषध के पूर्व भाग मे प्रतिमुख-सन्धि के अन्तर्गत विधूत, नम तथा नमद्युति आदि प्रतिमुख सन्ध्यगो की विशद योजना की होती तो विप्रलम्भ शृगार का प्रभाव ही नही क्षीण हो जाता, अपितु उनकी योजना भी अप्रासगिक एव दोषपूर्ण सी प्रतीत होने लगती। अत श्रीहर्ष के द्वारा समुचित अवसर म की गई प्रतिमुख-सन्ध्यगो की सन्ध्यन्तरगत योजना को भी समुचित ही कहा जायगा। भरत ने स्वय भी समुचित अवसर मे सन्ध्यगो की योजना करने का निर्देश दिया है और अभिनव तो उसके समर्थक हैं ही

सम्मिश्राणि कदाचित्तु द्वित्रियोगेन वा पुन ।

ज्ञात्वा कार्यमवस्था च कार्याण्यगानि सन्धिषु ॥ ना० शा० १९-१०५-१०६ ।

सम्मिश्राणीति सन्ध्यन्तरोक्त सन्ध्यन्तरेऽपीत्यर्थ । यथा युक्तिर्मुखेऽप्युक्ता गर्भेऽप्युपनिबद्धा वितर्कव्यभिचारीशापोषकभावेन वेणीसहारे। वही अभि०पृ० ६२।

हम देख चुके हैं कि विश्वनाथ भी उपर्युक्त तथ्य के समर्थक हैं।

गर्भ-सन्ध्यग

१ अभूताहरण

व्याजयुक्त वचनो को अभूताहरण नाम से अभिहित किया जाता है
कपटापाश्रय वाक्यमभूताहरण विदु ॥ ना० शा० १९-८२ ।
दमयन्ती के द्वारा आतिथ्य के व्याज मे की गई नल-गुण-स्तुति अभूताहरण सन्ध्यग स्वरूप है । नै० ८-३२-४६ ।

२ मार्ग

सत्य कथन मार्ग सन्ध्यग होता है
तत्त्वार्थवचन चैव मार्ग इत्यभिधीयते । ना० शा० १९-८३ ।
दमयन्ती की सखी के द्वारा नल के सम्मुख निवेदित दमयन्ती का निश्चय मार्ग सन्ध्यग स्वरूप है । नै० ९ ३१-३७ ।

३ रूप

विभिन्न अर्थो की सभावना मे सभी अर्थों के विरुद्ध तर्कों के उदय को रूप सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है
चित्रार्थसमवाये तु वितर्को रूपमिष्यते ॥ ना० शा० १९-८३ ।
सरस्वती के द्वारा वर्णित पाच नलो को एकत्र उपस्थित देखकर नल को पहचानने के लिए प्रयत्नशील दमयन्ती के द्वारा की गई तकणाएँ रूप सन्ध्यग स्वरूप है । नै० १३-४१-४५ ।

४ उदाहरण

लोकप्रसिद्ध वस्तु की अपेक्षा किसी का उत्कर्षकथन उदाहरण सन्ध्यग होता है
यत्सातिशयवद्वाक्य तदुदाहरण स्मृतम् । ना० शा० १९-८४ ।
श्रीहर्ष ने इस सन्ध्यग का नैषध मे अनेक स्थानो पर प्रयोग किया है । उदाहरण स्वरूप नल-दमयन्ती के सौंदर्य-वर्णन को उद्धृत किया जा सकता है जो नैषध मे अनेकत्र उपनिबद्ध है ।

५ क्रम

किसी व्यक्ति का भावज्ञान क्रम सन्ध्यग होता है
भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रम इत्यभिधीयते ॥ ना० शा० १९-८४ ।

इन्द्र के याचनावचनो को सुनकर नल का उनकी कपट योजना से परिचित हो जाना क्रम सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ५-१०३।

६ सग्रह

साम तथा दानादि की सम्पन्नता का सग्रह सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

सामदानादिसपन्न सग्रह परिकीर्तित। ना० शा० १९-८५।

इन्द्रादि देवताओ के द्वारा नल के प्रति कहे गये चाटुकारिता से पूर्ण वचन तथा नल को दिय गये अन्तर्धि-सिद्धि वरदान आदि सग्रह सन्ध्यग स्वरूप हैं।

नै० ५-११९-१३७।

७ अनुमान

विशिष्ट चिह्न के द्वारा किसी तथ्य की ऊहा को अनुमान सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

रूपानुरूपगमनमनुमानमिति स्मृतम्। ना० शा० १९-८५।

नल के द्वारा सखियो से आवृत दमयन्ती को उसके रूपातिशय के द्वारा पहचाना जाना (नै० ७३) तथा देवताओ के चिह्नो को देखकर दमयन्ती के द्वारा देवताओ को पहचाना जाना अनुमान सन्ध्यग स्वरूप है। नै० १४-१८-२४।

८ प्रार्थना

रति-हर्षोत्सव आदि की अभ्यर्थना को प्रार्थना सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

रतिहर्षोत्सवाना तु प्रार्थना प्रर्थना भवेत्। ना० शा० १९-८६।

श्रीहर्ष न प्रार्थना सन्ध्यग का अठारहवें तथा बीसवें सर्ग मे अनेकश प्रयोग किया है। कुछ विवेचको ने प्रार्थना सन्ध्यग तथा निर्वहण सन्धि के प्रशस्ति नामक सन्ध्यग मे एक सन्ध्यग को ही स्वीकार किया है, दूसरे को नही

इद च प्रार्थनाख्यमगम्, यन्मते निर्वहणे भूतावसरत्वात्प्रशस्तिनामाग नास्ति तन्मतानुसारेणोक्तम्। अन्यथा पचपष्टिप्रसगात्। सा० द० पृ० ११९।

९ आक्षिप्ति

रहस्योद्भेद आक्षिप्ति सन्ध्यग होता है

गर्भस्योद्भेदन यत्साक्षिप्तिरित्यभिधीयते। ना० शा० १९-८६।

दमयन्ती को मूर्च्छित देखकर मन्त्री तथा वैद्य के द्वारा भीम से कहे गये वचन आक्षिप्ति सन्ध्यग स्वरूप हैं। नै० ४-११९।

१० तोटक

हर्षत्रासादिजन्य अवेग-वचनो को तोटक सन्ध्यग के नाम मे अभिहित किया जाता है

सरम्भवचन चैव तोटक त्विति सज्ञितम् । ना० शा० १६-८७ ।

दमयन्ती के करुण विलाप को सुनने से उत्पन्न नल का उन्मत्त प्रलाप तोटक सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ६-१०३-१२० ।

११ अधिबल

छल से किया गया अतिसधान अधिबल सन्ध्यग होता है

कपटेनातिसधान ब्रुवतेऽधिबल बुधा ।। ना० शा० १६-८७ ।

कला के कपटपूर्ण वचनो पर विश्वास कर नल के द्वारा किया गया दमयन्ती-सभोग-सम्बन्धी रहस्यभेदन अधिबल सन्ध्यग स्वरूप है। नै० २०-६८-६७ ।

१२ उद्वेग

नृप, अरि तथा दस्यु से उत्पन्न भय उद्वेग सन्ध्यग होता है

भय नृपारिदस्यूत्थमुद्वेग परिकीर्तित । ना० शा ० १६-८८ ।

नल-नगरवासियो के धार्मिक आचरणो को देखने से उत्पन्न कलिगत भय उद्वेग सन्ध्यग स्वरूप है। नै० १८-१६३-२०२ ।

१३ विद्रव

शका, भय तथा त्रासजन्य उपद्रव को विद्रव सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है

शकाभयत्रासकृतो विद्रव समुदाहृत । ना० शा ० १६-८८ ।

नवम सर्गगत दमयन्ती का करुण विलाप नलसमागम की अप्राप्तिमूलक शका तथा त्रास से उत्पन्न होने के कारण विद्रव सन्ध्यग स्वरूप है।

अवमर्ष सन्ध्यग

१ अपवाद

दोषो का प्रख्यापन अपवाद सन्ध्यग होता है

दोषप्रख्यापन यत्तु सोऽपवाद इति स्मृत । ना० शा० १६-८६ ।

अपना परिचयादि न बताने के कारण दमयन्ती के द्वारा नल को दिया गया उलाहना अपवाद सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ६-३-४ ।

२ सफेट

रोषयुक्त वाक्य सफेट सन्ध्यग स्वरूप होते हैं
रोषग्रथितवाक्य तु सफेट परिकीर्तित ॥ ना० शा० १९-८९।

दूत नल के मुख से कण-कटु शब्दों को सुनकर दमयन्ती के मुख से नि सृत रोषपूर्ण वचन सफेट सन्ध्यग स्वरूप हैं। नै० ९-६२-६३।

३ द्रव

शोकावेगादि के कारण गुरुजनों का व्यतिक्रमण करना द्रव सन्ध्यग होता है
गुरुव्यतिक्रमो यस्तु स द्रव परिकीर्तित । ना० शा० १९-९०।
द्रवो गुरुव्यतिक्रान्ति शोकावेगादिसभवा। सा० द० ६-१०३।

देवताओं की आज्ञा लिये बिना ही नल के कण्ठ में वरमाला डालने के लिए दमयन्ती का उद्यत हो जाना तथा सरस्वती के हाथ से हाथ छुड़ाकर देवताओं की ओर जाने से विमुख होकर नल की ओर जाने लगना द्रव सन्ध्यग स्वरूप है।
नै० १४-३४, ४१।

४ शक्ति

विरोधशमन शक्ति सन्ध्यग होता है
विरोधिप्रशमो यश्च सा शक्ति परिकीर्तिता ॥ ना०शा० १९-९०।

नल के निश्छल दौत्य कार्य तथा दमयन्ती की स्तुति से प्रसन्न होकर देवताओं का उन्हें वर प्रदान करना शक्ति सन्ध्यग स्वरूप है।

५ व्यवसाय

प्रतिज्ञात अर्थ के हेतुओं की प्राप्ति को व्यवसाय सन्ध्यग कहा जाता है
व्यवसायश्च विज्ञेय प्रतिज्ञाहेतुसभव । ना० शा० १९-९१।
प्रतिज्ञातस्यागीकृतस्यार्थस्य हेतवो ये तेषा सभव प्राप्ति व्यवसाय ।
अभि० पृ० ५४।

नल का वरण करने के लिए कृतसंकल्प दमयन्ती के सम्मुख हंस का उपस्थित हो जाना तथा दमयन्ती के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए उसके द्वारा की गई प्रतिज्ञा व्यवसाय सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ३ ५२।

६ प्रसग

गुरुजनों का कीर्तन प्रसग सन्ध्यग होता है
प्रसगश्चैव विज्ञेयो गुरूणा परिकीर्तनम् ॥ ना० शा० १९-९१।

इस के द्वारा दमयन्ती-सौदर्य-वर्णन के पूर्व नल के सम्मुख किया गया भीम का वर्णन (नै० २-१६-१७) तथा नल के द्वारा इन्द्र के सम्मुख किया गया अपने पूर्व पुरुषो की महत्ता का वर्णन (५-६५)प्रसग सन्ध्यग स्वरूप है।

७ द्युति

आधषयुक्त वाक्यो को द्युति सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है
वाक्यमाधर्षसंयुक्त द्युतिस्तज्ज्ञैरुदाहृता । ना० शा० १६-९२ ।

अनेक प्रयत्न करने पर भी दमयन्ती को देवताओ का वरण करने के लिए तैयार न कर पाने पर नल के द्वारा दमयन्ती से कहे गये भर्त्सनापूर्ण वचन द्युति सन्ध्यग स्वरूप हैं। नै० ९-३९-४१।

८ खेद

मानसिक तथा शारीरिक चेष्टाओ से निष्पन्न श्रम खेद सन्ध्यग होता है
मनश्चेष्टाविनिष्पन्न श्रम खेद उदाहृत । ना० शा० १६-९२ ।

कामदेव को उपालम्भ देती हुई दमयन्ती के मुख का शुष्क हो जाना तथा अधिक बोलने म असमर्थ हो जाना खेद सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ४-१००-१०१।

इसी प्रकार भीम के अन्त पुर मे पैदल भ्रमण करते हुए नल का भवनो के पास विश्राम करने लगना भी खेद सन्ध्यग स्वरूप है। नै० ६-३६।

९ प्रतिषेध

ईप्सित अथ का प्रतिघात प्रतिषेध सन्ध्यग होता है
ईप्सितार्थप्रतीघात प्रतिषेध प्रकीर्तित । ना० शा० १६-९३ ।

दूत नल के द्वारा कीर्तित देवताओ की शक्ति का स्मरण कर तथा नल की प्राप्ति से निराश होकर दमयन्ती के द्वारा किया गया विलाप प्रतिषेध सन्ध्यग स्वरूप है।

१० विरोधन

काय मे विघ्न का उपागमन विरोधन सन्ध्यग होता है
कार्यात्ययोपगमन विरोधनमिति स्मृतम् । ना०शा० १६-९३ ।

इन्द्रादि देवताओ का दमयन्ती के स्वयवर मे नल का रूप धारण कर पहुँच जाना विरोधन सन्ध्यग स्वरूप है।

११ आदान

बीजफल की समीपता की प्राप्ति को आदान सन्ध्यग कहा जाता है

बीजकार्योपगमनमादानमिति संज्ञितम् ॥ ना०शा० १९-९४।

देवताओं का दमयन्ती की आराधना से प्रसन्न होकर अपने चिह्नों को प्रकट कर देना तथा दमयन्ती का नल के कण्ठ में वरमाला पहनाने के लिए उत्सुक हो जाना आदान सन्ध्यंग स्वरूप है। नै० १४-२४-२५।

१२ छादन

अपने कार्य के लिए किसी के द्वारा किये गये अपमानादि का सहन छादन सन्ध्यंग होता है

अपमानकृत वाक्यं कार्यार्थं छादनं भवेत्। ना० शा० १९-९४।

स्वयंवर-मण्डप में उपस्थित राजाओं के द्वारा कहे गये ईर्ष्यापूर्ण वचनों की ओर तथा नलरूपधारी इन्द्रादि देवताओं के द्वारा दिये गये अपने प्रश्न के उत्तर की ओर दमयन्ती-लाभ के लिए उत्सुक नल का ध्यान न देना छादन सन्ध्यंग स्वरूप है। नै० १०-४१-४८।

१३ प्ररोचना

निर्वाह्यमाण अर्थ का प्रदर्शन प्ररोचना सन्ध्यंग होता है

प्ररोचना च विज्ञेया संहारार्थ प्रदर्शिनी। ना० शा० १९-९५।

नल के साथ दमयन्ती का परिणय सम्पन्न कराने के लिए भीम के द्वारा अपने अन्तःपुर को दिये गए आदेश प्ररोचना सन्ध्यंग स्वरूप हैं। नै० १५-७।

निर्वहण-सन्धि

१ सन्धि

मुख-संधि में उक्त बीज की उद्भावना को संधि सन्ध्यंग के नाम से अभिहित किया जाता है

मुखबीजोपगमनं संधिरित्यभिधीयते ॥ ना० शा० १९-९७।

सरस्वती के द्वारा देवताओं से निवेदित नल-दमयन्ती का पष्ठ सर्गगत आकस्मिक समागम संधि सन्ध्यंग स्वरूप है। नै० १४-६६।

२ निरोध

युक्तिपूर्वक कार्यान्वेषण निरोध सन्ध्यंग होता है

कार्यस्यान्वेषणं युक्त्या निरोध इति कीर्तितः। ना० शा० १९-९८।

सरस्वती के द्वारा दमयन्ती को नल का वरण करने से पूर्व देवताओं को प्रणामादि करने की दी गई सम्मति निरोध सन्ध्यंग स्वरूप है। नै० १४-४१।

३ ग्रथन

कार्यो का उपन्यास ग्रथन सन्ध्यग होता है

उपक्षेपस्तु कार्याणा ग्रथन परिकीर्तितम्। ना० शा० १६-६८।

दमयन्ती-परिणय-कालीन वैवाहिक समारम्भ ग्रथन सन्ध्यग स्वरूप है।

४ निर्णय

अनुभूत अर्थ का कथन निर्णय सन्ध्यग होता है

अनभूतार्थकथन निर्णय समुदाहृत ।। ना० शा० १६-६६।

नल के द्वारा दमयन्ती की सखी कला के सम्मुख रात्रि-सभोग से सम्बन्धित प्रकट किया गया रहस्य निर्णय सन्ध्यग स्वरूप है। नै० २०-५४-६१।

५ परिभाषण

अपराधोद्घाटनपरक वार्तालाप परिभाषण सन्ध्यग होता है

परिवादकृत यत्स्यात्तदाहु परिभाषणम्। ना० शा० १६-६६।

कलि का दमयन्ती के स्वयवर मे भाग लेने के लिए जाता हुआ देखकर देवताओ के द्वारा की गई कलि के निश्चय की निन्दा तथा कलि के द्वारा की गई देवताओ की निन्दा परिभाषण सन्ध्यग स्वरूप है। नै० १७-११६-१२३।

६ द्युति

लब्ध अर्थ की शान्ति को द्युति सन्ध्यग के नाम से अभिहित किया जाता है।

लब्धस्यार्थस्य शमन द्युतिमाचक्षते पुन । ना० शा० १६-१००।

स्वयवर मे आये हुए राजाओ के द्वारा दमयन्ती की सखियो को प्राप्त कर लेने के उपरान्त दमयन्ती की अप्राप्ति से उत्पन्न दुख का परित्याग कर दिया जाना द्युति सन्ध्यग स्वरूप है। नै० १४-६७।

७ आनन्द

अर्थ-समागम आनन्द सन्ध्यग होता है

समागमस्तथार्थानामानन्द परिकीर्तित । ना० शा० १६-१००।

भीम को अपनी पुत्री दमयन्ती के परिणय के लिए नल जैसे जामाता की प्राप्ति हो जाना आनन्द सन्ध्यग स्वरूप है। नै० १५-५-६।

८ समय

दुखो का अपगम समय सन्ध्यग होता है

दु खस्यापगमो यत्तु समय स निगद्यते । ना० शा० १६-१०१ ।

करुण विलाप करती हुई दमयन्ती का नल के उन्मत्त प्रलाप को सुनकर आश्वस्त हो जाना समय सन्ध्यग स्वरूप है । नै० ६-१३६-१३७ ।

६ प्रसाद

शुश्रूषादिजन्य प्रीति को प्रसाद नाम से अभिहित किया जाता है

शुश्रूषाद्युपसम्पन्न प्रसाद प्रीतिरुच्यते । ना० शा० १६-१०१ ।

नल के द्वारा दिये गये कमल-पुष्प को प्राप्त करने के अनन्तर उत्पन्न दमयन्ती-गत हर्ष प्रसाद सन्ध्यग स्वरूप है । नै० २०-४५ ।

१० उपगूहन

अद्भुत वस्तु की प्राप्ति को उपगूहन नाम से अभिहित किया जाता है

अद्भुतस्य तु सम्प्राप्तिरुपगूहनमिष्यते । ना० शा० १६-१०२ ।

नल को हर्ष से जड बना देने वाला दमयन्ती के द्वारा किया गया चन्द्र-वर्णन उपगूहन सन्ध्यग स्वरूप है । नै० २२-५६-१०१ ।

११ भाषण

साम तथा दानादि की सम्पन्नता को भाषण नाम से अभिहित किया जाता है

सामदानादिसपन्न भाषण समुदाहृतम् ॥ ना० शा० १६-१०२ ।

देवताओ के द्वारा नल को दिये गये अनेक वरदान भाषण सन्ध्यग स्वरूप हैं । नै० १४-७२-६५ ।

१२ पूर्ववाक्य

यथोक्त अर्थों का प्रकाशन पूर्ववाक्य नामक सन्ध्यग होता है

पूर्ववाक्य तु विज्ञेय यथोक्तार्थप्रदर्शनम् । ना० शा० १६-१०३ ।

नल-दमयन्ती के द्वारा सपादित सुरत-क्रियाओ की ओर श्रीहर्ष के द्वारा किये गये सकेत पूर्ववाक्य स्वरूप हैं । नै० १८-२६, ८३-८४ ।

१३ काव्यसहार

वरदानो की प्राप्ति को काव्यसहार सन्ध्यग कहा जाता है

वरप्रदानसम्प्राप्ति काव्यसहार इष्यते । ना० शा० १६-१०३ ।

देवताओं के द्वारा नल-दमयन्ती को दिये गए वरदान काव्यसहार सन्ध्यग स्वरूप भी हैं ।

१४ प्रशस्ति

नृप तथा देशादि की शान्ति प्रशस्ति नामक सन्ध्यग होता है

नृपदेशप्रशान्तिश्च प्रशस्तिरभिधीयते। ना० शा० १६-१०४।

नैषधीयचरित के अन्तिम श्लोक मे नल के द्वारा प्रकट किये गए भाव प्रशस्ति सन्ध्यग स्वरूप हैं। नै० २२-१४८।

उपर्युक्त स्थलो के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर सघटित कुछ अन्य सन्ध्यगोको भी खोजा जा सकता है। नैषधगत सन्ध्यगो की अक्रमिकता तथा उनके सन्ध्यन्तर-सन्निवेश-मूलक औचित्य पर विचार किया जा चुका है। भरत ने एक प्रकरण मे अनेक सन्ध्यगो का सघटन करने का भी निर्देश दिया है

समिश्राणि कदाचित्तु द्वित्रियोगेन वा पुन । ना० शा० १६-१०५।

अत यत्र-तत्र श्रीहर्ष के द्वारा की गई अनेक सन्ध्यगो की एकत्र योजना को भी समुचित कहा जायेगा। सन्ध्यगो के रूप मे उदाहृत उपर्युक्त स्थलो मे प्राय सभी स्थलो को रसो या भावो के उदाहरणो के रूप मे भी उपन्यस्त किया जा चुका है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नैषधगत सन्ध्यग रसभावापेक्षी भी हैं।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि नैषधगत सधियाँ तथा सन्ध्यग रसभावापेक्षी होने के कारण पूर्णतया रसादिको की व्यजना करने मे समर्थ हैं।

रसो का उद्दीपन तथा प्रशमन

महाकाव्य म विनियोजित प्रबन्धगत अनेक रसो का अवसरोचित उद्दीपन तथा प्रशमन भी रसाभिव्यजक होता है

इद चापर प्रबन्धस्य रसव्यजकत्वे निमित्तम् यदुद्दीपनप्रशमने यथावसर रसस्य। ध्व० पृ० ३१५।

श्रीहर्ष ने रसो का उद्दीपन तथा प्रशमन नैषध मे समुचित अवसर मे ही किया है। उदाहरण स्वरूप नैषधगत रसात्मक स्थलो पर दृष्टिपात किया जा सकता है। नलगुण-श्रवणजन्य दमयन्तीगत नलाभिलाषा हस के द्वारा वर्णित नल के गुणो एव नल के वियोग को सुनकर प्रदीप्त हो जाती है और नल का वियोग उसके लिए असह्य हो जाता है। परन्तु पिता भीम को उपस्थित देखकर उसकी काम-व्यथाजन्य मूर्च्छा तत्काल ही शान्त हो जाती है। नै० ४-११८।

इसी प्रकार दमयन्ती की अभिलाषा से उत्पन्न नलगत वियोग उपवन-विहार से तो प्रदीप्त होता रहता है परन्तु स्वर्ण हस को देखकर वह उसे क्षणभर के लिए भूल-सा जाता है (नै० १-११६) और हस से दमयन्ती-गुण-वर्णन सुनकर उसकी वियोग-व्यथा पुन प्रज्वलित हो उठती है। नै० २-५४-६०।

नवम सर्ग में अंकित शृंगार का उद्दीपन एवं प्रशमन भी समुचित अवसर में किया गया है। दमयन्ती के करुण विलाप को सुनकर नल का उन्मत्त हो जाना और दमयन्ती के सम्मुख अपने उद्दाम प्रणय का निवेदन करने लगना तथा दमयन्ती को प्रमूर्छित देखकर नल के उन्माद का शान्त हो जाना अवसरोचित ही है।

राज्य की चिन्ता से निवृत्त तथा वरभवन में स्थित नल के द्वारा निशामुख में किया गया दमयन्ती-सम्भोग का प्रारम्भ एवं शयनकालीन श्रृंगार भी अवसरोचित है। इसी प्रकार षोडश एवं विंश सर्गगत शृंगार तथा हास-परिहास का भी समुचित अवसर में ही उद्दीपन तथा प्रशमन किया गया है।

शृंगार के समान अन्य रसों का उद्दीपन तथा प्रशमन भी श्रीहर्ष ने समुचित अवसर में ही किया है। जैसे दमयन्ती की सखियाँ दमयन्ती के द्वारा हंस को पकड़ने के लिए किये गए प्रयासों के निष्फल हो जाने में तो हँस पड़ती है परन्तु दमयन्ती को रोषयुक्त देखकर उनका हास शान्त हो जाता है (नै० ३-६-९)। नल-समागम की सम्भावना के नष्ट हो जाने से दमयन्ती का हृदय शोक से विगलित होने लगता है। परन्तु नल का प्रेमपूर्ण उन्मत्त प्रलाप उसके शोकावेग को शान्त कर देता है (नै० ९-८४-१०० १२१)। नल के हाथों से मुक्त न हो पाने के कारण अपने परिवार की दुर्दशाओं की कल्पना करने से हंस का शोक प्रदीप्त हो जाता है। परन्तु नल के हाथों से मुक्त हो जाने पर वह शान्त हो जाता है। नै० १-१३५-१४४।

श्रीहर्ष ने रौद्रादि रसों का उद्दीपन तथा प्रशमन भी अवसर के अनुसार किया है। जैसे कलिचारण के अनर्गल प्रलापों को सुनकर इन्द्रादि देवता क्रुद्ध हो जाते हैं। परन्तु चारण को क्षमा-प्रार्थना करता हुआ देखकर उनका क्रोध शान्त हो जाता है (नै० १७-८४-१०६)। देवताओं को याचक के रूप में उपस्थित देखकर नलगत दान-विषयक उत्साह प्रदीप्त हो जाता है। परन्तु देवताओं की कपट-योजना से परिचित होते ही उसका उत्साह शान्त हो जाता है (नै० ५-७६-९७, १०२-१०७)। सप्तदश सर्गगत कलिचारण तथा कलिगत भय एवं काम-क्रोधादि के स्वरूप को देखने से उत्पन्न इन्द्रादि देवगत जुगुप्सा की व्यंजना का उदय तथा उपशमन भी समुचित अवसर में ही किया गया है। इसी प्रकार प्रथम सर्गगत स्वर्णहंस-दर्शनजन्य नलगत विस्मय तथा षोडश सर्गगत वरयात्रा-दर्शनजन्य पुरसुन्दरीगत विस्मय एवं नल के दैनिक कृत्यों का वर्णन करते हुए की गई शान्त रस की विशद व्यंजना का उद्दीपन तथा प्रशमन भी श्रीहर्ष ने समुचित अवसर में ही किया है।

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में निःसंकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष के द्वारा नैषधगत विभिन्न रसों का किया गया उद्दीपन तथा प्रशमन अवसरोचित होने के कारण रस-व्यंजनानुकूल है।

अगी रस का अनुसधान

महाकाव्यगत अगी रस का प्रारम्भ से अन्त तक किया गया अनुसधान भी रसाभिव्यक होता है

पुनरारब्धविश्रान्ते रसस्यागिनोऽनुसधिश्च। ध्व० पृ० ३१६।

श्रीहर्ष ने अगी श्रृगार रस का अनुसधान भी नैषध मे आदि से अत तक किया है। हम देखते हैं कि नैषध का प्रारम्भ नल-दमयन्तीगत श्रृगारिक अभिलाषा की भूमिका से होता है और अवसान उस अभिलाषा की सुखद पूर्ति मे। नैषध के आरम्भ मे ही अकित नल-दमयन्तीगत अन्योन्य-समागम-कामना जब तक पूर्ण नही हो जाती तब तक नैषधगत समस्त व्यापारो का केन्द्रबिन्दु बनी रहती है और उसके पूर्ण हो जाने के अनन्तर उपस्थित होने वाली घटनाये उस कामना की पूर्ति से उत्पन्न सुखभोग की उपकारक बनकर अवतरित होती रहती हैं। अत नल-दमयन्तीगत अन्योन्य-समागमाभिलाषा नैषधगत किसी भी सदर्भ मे पूर्णतया विस्मृत नही हो पाती। यह हो सकता है कि कही पर वह अप्रत्यक्ष रूप मे भासित रही हो, परन्तु वह विद्यमान अवश्य रहती है।

प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक तो उस नल-दमयन्तीगत समागमा-भिलाषा का अनेक प्रकार से विशद अकन किया ही गया है, पचम सर्गगत विषयान्तर मे भी नारद के द्वारा दमयन्ती-सौंदर्य की चर्चा करा कर तथा नल के द्वारा दमयन्तीविषयक तद्गत अनुराग का निवेदन करा कर उसका स्मरण करा लिया गया है।

इसी प्रकार षष्ठ सर्ग से नवम सर्ग तक पुन धारावाहिक रूप मे नल-दमयन्तीगत अन्योन्यानुराग की ही मार्मिक व्यजना की गई है। नल-दमयन्ती दोनों ही एक-दूसरे मे अनुरक्त थे और दोनो ही एक-दूसरे के सम्मुख अपना अनुराग निवेदन करने के लिए आतुर भी थे। परन्तु दोनो की अपनी-अपनी मर्यादायें थीं जो दोनो को पास होते हुए भी दूर, परस्पर अनुरक्त होते हुए भी विरक्त, परिचित होते हुए भी अपरिचित तथा उद्दाम भावनाओ से युक्त होते हुए भी सयत बनाये हुए थी। अत मे मर्यादाओं का वह सेतु टूटता तो है, परन्तु तब जब कि दोनो ही अपनी-अपनी मर्यादाओ को भूल चुके होते है।

दशम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक यद्यपि प्रधान रूप से स्वयवर मे उपस्थित राजाओ के प्रभावादि का ही वर्णन किया गया है। परन्तु दमयन्ती की शिविका तथा उसकी उन वर्णित राजाओं के प्रति अनिच्छा आदि का अकन कर नल की अनुराग-भूमि दमयन्ती को इन वर्णनो मे भी स्मृति से ओझल नही होने दिया गया है। इसके साथ-साथ दशम सर्ग के अधिकाश भाग मे तथा त्रयोदश सर्ग के अन्त मे दमयन्ती की प्रधान रूप मे चर्चा की ही गई है।

इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग से षोडश सर्ग तक के व्यापार भी नल-दमयन्ती के आस-पास ही केन्द्रित रहते हैं। सप्तदश सर्ग मे भी देवताओ के द्वारा दमयन्ती के काम्य नल की विशेषताओ का वर्णन करा कर तथा कलि के द्वारा नलनगर-वासियो की धर्मपरायणता का दर्शन करा कर नल-दमयन्ती के समागम की अनुरूपता तथा अविच्छेद्यता की व्यजना की गई है जिसे अगी रस का पोषक एव स्मारक ही कहा जायेगा।

अठारहवें, बीसवें तथा बाईसवें सर्ग मे तो नल दमयन्ती के सुखोपभोगो का स्पष्ट अकन किया ही गया है। उन्नीसवें सर्ग मे उपनिबद्ध वैतालिको के द्वारा किया गया प्रभातवर्णन भी शयन करत हुए नल-दमयन्ती को सम्बोधित होने के कारण शृगारिकता से अनुस्यूत है। इसी प्रकार इक्कीसवें सर्ग मे भी नल को दैनिक धार्मिक कृत्यो से निवृत्त कर दमयन्ती के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए भेज दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त नैषध मे अगी शृगार रस को ही प्रधान रूप से योजना की गई है और यदि कहीं-कहीं पर अन्य प्रसग आये भी हैं तो उन प्रसगो मे अगी शृगार रस का अनुसधान अवश्य कर लिया गया है। अत नैषधगत अगी शृगार रस को भी प्रबन्ध-व्यजकता की दृष्टि से औचित्ययुक्त कहा जायेगा।

अलकार-योजना

अलकारो को रसादिको मे चारुता का आधान करने वाला हेतु कहा जाता है

अलकारो हि चारुत्वहेतु प्रसिद्ध । ध्व० पृ० १०५ ।

परन्तु येन केन प्रकारेण उपनिबद्ध सभी अलकार रसादिको का उत्कर्षवर्धन करते हो ऐसी बात नही। अनेक कवि अलकार-निबन्धन मात्र मे अनुरागी होने के कारण रसादिको की उपेक्षा कर देते हैं। अत रसादिको के अनुरूप उपनिबद्ध अलकारो को ही रसादिको की चारुता के हेतु स्वीकार किया गया है

प्रबन्धविशेषस्य नाटकादे रसव्यक्तिनिमित्त चावान्तरयम्—यदलङ्कृतीना शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम्। शक्तो हि कवि कदाचिदलङ्कारनिबन्धने तदाक्षिप्ततयैवानपेक्षितरसबन्ध प्रबन्धमारभते, तदुपदेशार्थमिदमुक्तम्।

ध्व० पृ० ३१८ ।

आनन्दवर्धन के अनुसार तो अलकारो की अलकारता का साधक ही उनका रसभावादि की अपेक्षा से किया गया सन्निवेश है अन्यथा रसभावानपेक्षी अलकारो को तो केवल सादृश्य वश अलकार कह दिया जाता है

रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।
अलङ्कृतीना सर्वासामलङ्कारत्वसाधनम् ॥ ध्व० २-२८ ।

क्वचिद्रसादितात्पर्यविरहेऽप्यलकारत्वव्यपदेशस्तु सादृश्यहेतुकत्वादौपचारिक एव। वही दीधिति पृ० १०६।

अलकारो का वर्गीकरण

किसी काव्य मे उपनिबद्ध अलकार दो प्रकार के होते है व्यजक तथा व्यग्य। इन दोनो प्रकारो से उपनिबद्ध अलकार रसादिकों की चारुता के हेतु बन सकते है। व्यजक रूप मे उपनिबद्ध अलकारो को व्यग्य के विभिन्न रूपो के आधार पर तीन भागो मे विभाजित किया गया है रस-व्यजक अलकार, वस्तु-व्यजक अलकार तथा अलकार-व्यजक अलकार। स्वगत वैशिष्ट्य पर आधारित रस-व्यजक अलकार सात प्रकार के होते हैं १ अनुप्रासादि शब्दालकार, २ शब्दचित्र, ३ अर्थचित्र, ४ उपमादि अर्थालकार, ५ रसवदादि अलकार, ६ ध्वनिसज्ञक अलकार ७ गुणीभूतव्यग्यसज्ञक अलकार।

व्यग्य अलकारो को व्यग्य की प्रधानता तथा गौणता के आधार पर दो भागो मे विभाजित किया गया है ध्वनिसज्ञक अलकार तथा गुणीभूतव्यग्यसज्ञक अलकार। ध्वनिसज्ञक अलकारो को भी व्यजको की विशेषताओ के आधार पर दो भागो मे विभाजित किया गया है शब्दशक्तिव्यग्य अलकार तथा अर्थशक्तिव्यग्य अलकार। अर्थ भी दो प्रकार का होता है वस्तुरूप अर्थ तथा अलकाररूप अर्थ। अत अर्थशक्ति से व्यग्य अलकारो को दो अन्य भागो मे भी विभक्त किया गया है वस्तुरूप अर्थशक्ति से व्यग्य अलकार तथा अलकाररूप अर्थशक्ति से व्यग्य अलकार। गुणीभूतव्यग्यसज्ञक अलकारो को भी स्वगत विशेषताओ के आधार पर चार भागो मे विभाजित किया गया है समस्ताअलकारगर्भित अलकार, २ विनेपालकारगर्भित अलकार, ३ अलकार-सामान्यगर्भित अलकार, ४ परस्परगर्भित अलकार।

अग्रिम पृष्ठो मे उपर्युक्त विभिन्न प्रकार से उपनिबद्ध किये जाने वाले अलकारो की विशेषताओ का निर्देश करते हुए तैंपधगत उनकी योजना पर विचार किया जायेगा।

रस-व्यजक शब्दालकार

ऊपर रस-व्यजक अलकारो के जिन दो रूपो का निर्देश किया गया है उनमे शब्दचित्र सज्ञक प्रयत्न-विनियोजित अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा विभिन्न प्रकार के बध रस-व्यजना की अपेक्षा रसादिको का अपकर्ष ही किया करते हैं। क्योकि किसी भी अलकार की आग्रहपूर्वक योजना करने से कवि का ध्यान रसादिको की ओर से हट जाता है। अतएव एकरूप अनुप्रास, यमक तथा सभग श्लेषादिक अलकारो को विप्रलम्भ शृगार का अपकर्षक माना गया है

पर नही की है। यही बात एकरूप अनुप्रास के बारे मे भी कही जा सकती है। नैषध शृगार-प्रधान महाकाव्य है। अत श्रीहर्ष ने यदि एकरूप अनुप्रास की योजना भी नियमित रूप से की होती तो श्रीहर्ष को दोषी ठहराया जा सकता था।

श्रीहर्ष को अन्तिम वर्ण की आवृत्ति जनित अनुप्रास अधिक प्रिय था

प्रथमचरमयोर्वा शब्दयोर्वर्णसख्ये विलसति चरमेऽनुप्रासभाषा विलास ।

नै० १३-५४।

श्रीहर्ष ने उपर्युक्त प्रकार से अनुप्रास की योजना भी प्रचुर मात्रा मे की है। तथापि उन्होने उसकी नियमित रूप से अनवरत योजना न कर अनुप्रास के सभी रूपो की विशद योजना की है। वस्तुत अनुप्रास तथा यमक अलकारो के सुचारु प्रयोग म श्रीहर्ष इतने अधिक कुशल हैं कि सस्कृत साहित्य के कुछ गिने-चुने जयदेवादि कवियो को ही उनकी तुलना मे बिठाया जा सकता है। नैषधगत वर्णों तथा पदो की आवृत्ति नर्तन करती हुई सी प्रतीत होती है और नैषधगत माधुर्य का श्रेय बहुत कुछ इन आवृत्तियो पर ही निर्भर करता है। नैषध की यह एक ऐसी विशेषता है जो उसके नीरस प्रकरणो को भी सुगेय तथा सरस बना देती है। उपर्युक्त तथ्यो की पुष्टि मे नैषध के किसी भी प्रकरण को उद्धृत किया जा सकता है। श्रीहर्ष ने किसी विशेष प्रकरण को इस विशेषता से सुसज्जित किया हो ऐसी बात नही।

श्रीहर्ष ने श्लेष अलकार का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे किया है। परन्तु श्लेष अलकार के विभिन्न भेदो म उन्होने अभगश्लेष तथा असभग शब्दश्लेष का ही अधिकतर प्रयोग किया है। सभग शब्दश्लेष का जहाँ कही पर उन्होने प्रयोग किया है वहाँ उन्होने उसे सरल बनाये रखने का भी प्रयास किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त सभग शब्दश्लेष कही-कही पर ता इतना अधिक विषय के अनुरूप होने से चमत्कार-पर्यवसायी बन गया है कि अन्य श्लेष-भेदो को उसकी तुलना मे नही बिठाया जा सकता। उदाहरण स्वरूप दमयन्ती की उक्तियो को ही देखिये

का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहणाभिलाषम् कथयेदलज्जा।।

चेतो नल कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्।। नै० ३-५९, ६७।

यही बात स्वयबर मे उपस्थित पाच नलो का वर्णन करने म प्रयुक्त श्लेष अलकार के बारे मे भी कही जा सकती है। इस प्रसग मे श्लेष अलकार का जैसा अवसरोचित प्रयोग किया गया है शायद ही वैसा प्रयोग किसी अन्य कवि ने किया होगा।

यद्यपि क्लिष्ट श्लेष, नियमित यमक-योजना तथा विभिन्न प्रकार के बन्ध भी पूर्णतया रसभावादि से शून्य नही होते परन्तु बन्धादिको की योजना मे सलग्न कवि का विवक्षित रस नही होता। इसीलिए बन्धादिको से युक्त प्रकरणो को नीरस कहा जाता है

न तादृक् काव्यप्रकारोऽस्ति, यत्र न रसादीनामप्रतिपत्ति । किन्तु, यदा रस-भावादिविवक्षाशून्य कवि शब्दालकारमर्थालकार वोपनिबध्नाति, तदा तद्विवक्षा-पेक्षया रसादिशून्यतार्थस्य परिकल्प्यते। ध्व० पृ० ५४८।

श्रीहर्ष ने रसभावादि-विवक्षाशून्य शब्दालकारो अथवा अर्थचित्रसज्ञक अर्था-लकारो की नैषध में कहीं पर भी योजना नहीं की है जैसा कि नैषध के अध्ययन तथा चरित्रवर्धन की टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है

अत्र श्रीहर्षेर्यमकमुरजसर्वतोभद्रप्रमुखान् बन्धानर्थापुष्टिकराननादृत्यार्थपुष्टि-करोऽनुप्रासाभिधशब्दालकार प्राय प्रयुयुजे, इति चारित्रवर्धनविरचिततिलक-व्याख्या। नै० प्रकाश व्या० टिप्पणी १-१।

रसव्यजक अर्थालकार

रूपकादि अर्थालकारों का भी शब्दालकारो के समान समीक्षापूर्वक किया गया विन्यास ही रसादिकों की चारुता की अभिवृद्धि करता है

ध्वन्यात्मभूते शृगारे समीक्ष्य विनिवेशित ।
रूपकादिरलकारवर्ग एति यथार्थताम् ।। ध्व० २-४०।

अन्यथा हम देख चुके हैं कि केवल चमत्कार-प्रदर्शनमात्र के लिए अर्थालकारो को भी रसभावादिको से पूर्णतया असम्पृक्त न होते हुए भी रसभावादि से शून्य ही स्वीकार किया जाता है।

समीक्षको ने रूपकादि अलकारो के विनिवेशनोपायो का भी निर्देश किया है

एषा चास्य विनिवेशने समीक्षा—
विवक्षा तत्परत्वेन नागित्वेन कथचन ।
काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ।।
निर्व्यूढावपि चागत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणम् ।
रूपकादेरलकारवर्गस्यागत्वसाधनम् ।। ध्व० २-४१-४२।

यद्यपि उपर्युक्त समीक्षा को केवल शृगार रसात्मक काव्यो में उपनिबद्ध किये जाने वाले अलकारो तक ही सीमित रखा गया है। परन्तु अलकार-योजना में पूर्ण स्वतन्त्रता किसी भी रस का चारुत्ववर्धन नहीं कर सकती। रसभावापेक्षी अल-कार ही उनका परिपोष कर सकते हैं। उपर्युक्त समीक्षा के विपरीत सघटित अल-कार तो कदाचित् ही किसी रस का परिपोष कर सकेंगे।

नैषध शृगार-प्रधान महाकाव्य है। अत नैषधगत अर्थालकारो की समीक्षा के लिए तो उपर्युक्त निकष एकमात्र व्यवस्थित निकष है ही। परन्तु नैषधगत समस्त अलकारो की उपर्युक्त निकष पर परीक्षा करना निश्चित रूप से एक पृथक् प्रबन्ध का विषय है। अत यहाँ पर हम नैषधगत कुछ अलकारो की समीक्षा तक ही सीमित रहेगे।

अगत्वेन विवक्षा

अलकारो की अग रूप मे विवक्षा को सर्वप्रथम अलकार सन्निवेशविषयक उपाय स्वीकार किया गया है। नैषध पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने प्राय रसात्मक स्थलो मे अलकारो की योजना अग रूप मे ही की है। उदाहरण स्वरूप करुण-रसाभिव्यजक हस की वचनावली को उद्धृत किया जा सकता है

मुहूर्तमात्र भवनिन्दया दयासखा सखाय स्रवदस्रवो मम।
निवृत्तिमेष्यन्ति पर दुरुत्तरस्त्वयैव मात सुतशोकसागर ॥
कथ विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिन ।
वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा॥

नै० १-१३६, १३८।

हस की उपर्युक्त अभिव्यक्तियाँ रूपक तथा विषम अलकारो से युक्त है। और इसमे कोई सदेह नही कि उपर्युक्त अलकार शोक भाव के अग हैं तथा उसको तीव्र बनाते हैं। एक वृद्धा के लिए शोक का सागर पार कर पाना निश्चित रूप से कठिन था। अत वह हस के लिए अधिक शोककारक भी था। जिन करकमलो ने हसिनीगत शैत्य तथा मृदुत्व का निर्माण किया था उन्ही हाथो से लिखा गया निष्ठुराक्षरो का लेख क्या न सतापदायक होता।

इसी प्रकार हसिनी की सभावित मृत्यु का उसके शिशुओ की मृत्यु का कारण बन जाने की कल्पना मे हस का शोक द्विगुणित हो जाता है

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विचित्राङ्गि विपद्यसे यदि।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हत स्फुट यतस्ते शिशव परासव ॥ नै० १-१४०।

यहाँ पर काव्यलिंग अलकार की अग के रूप मे की गई योजना हसगत शोक की परिपोषक है। श्रीहर्ष ने अर्थालकारो की योजना प्राय इसी रूप मे की है।

समुचित अवसर मे ग्रहण

अवसर के अनुरूप किया गया अलकार-सन्निवेश रसोपयोगी अलकार-सघटन-विषयक द्वितीय उपाय होता है। श्रीहर्ष ने अनेक स्थानो पर अवसर के अनुरूप अलकारो का भी सघटन किया है। उदाहरण स्वरूप दमयन्ती के श्लिष्ट निवेदनो को लिया जा सकता है

मनस्तु य नोज्झति जातु यातु मनोरथ कण्ठपथ कथ स ।
का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहणाभिलाष कथयेदलज्जा॥
इतीरिता पत्ररथेन तेन ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी।
चेतो नल कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्॥ नै० ३-५६, ६७।

इसी प्रकार त्रयोदश सर्गगत सरस्वती के द्वारा किया गया इन्द्रादि देवताओं तथा नल का श्लिष्ट वर्णन भी अवसरोचित है।

अवसर पर परित्याग

पहले से सघटित अलकार का समुचित अवसर पर परित्याग अलकार-सघटन-मूलक तृतीय उपाय होता है। प्रथम अलकार का परित्याग प्रसगानुरूप अन्य अलकार की अपेक्षा से किया जाता है

गृहीतमपि च यमवसरे त्यजति, तद्रसानुगुणतयालकारान्तरापेक्षया।

ध्व० पृ० १४०।

श्रीहर्ष अलकारों के प्रयोग मे बहुत ही कुशल हैं। नैषध में उन्होंने अपना यह कौशल सर्वत्र प्रदर्शित किया है। वे प्राय अलकार-योजना के पूर्व प्रारब्ध विषय की आत्मा को जान लेते हैं उसके उपरान्त अलकार-योजना करते हैं। अत उनके सामने ऐसे अवसर कम ही आये हैं जहाँ पर उन्होंने पहले से सघटित अलकारों को प्रकृत विषय के अनुरूप न समझ कर उनका परित्याग कर दिया हो। परन्तु यदि कहीं पर उन्हें यह आवश्यक प्रतीत हुआ है तो वहा पर उन्होंने पहले से सघटित अलकार का परित्याग करने तथा नवीन अन्य अलकार का सघटन करने मे भी सकोच नहीं किया है। उदाहरण स्वरूप इन्द्र के श्लिष्ट वर्णन को उद्धृत किया जा सकता है

लक्ष्मा निनम्बिनि बलादिसमृद्धराज्यप्राज्योपभोगपिशुना दधते सरागम्।
एतस्य पाणिचरण तदनेन पत्या सार्धं शचीव हरिणा मुदमुद्वहस्व॥

नै० १३-७।

इन्द्र तथा नल का लगातार चार श्लोकों मे श्लिष्ट वर्णन करने के अनन्तर उपर्युक्त श्लोक के प्रथम तीन चरणों तक श्रीहर्ष ने श्लेष अलकार का निर्वाह किया है। परन्तु अन्तिम चरण मे प्रसग के अनुरूप उपमा अलकार का सघटन कर पहले से प्रारब्ध श्लेष का परित्याग कर दिया है।

पर्यन्त तक निर्वाह न करना

पहले से सघटित अलकार का पर्यन्त तक निर्वाह करने का प्रयास न करना अलकार-योजना-नियामक चतुर्थ उपाय होता है। अलकारों के समुचित प्रयोग के धनी श्रीहर्ष के सामने किसी अलकार की पर्यन्त तक निर्वाह करने तथा न करने जैसी समस्या भी कम ही आई है। परन्तु उन्होंने यदि कहीं पर किसी अलकार को आगे खींचना अनुपयोगी समझा है तो उन्होंने उसे और आगे तक निर्वाहित न कर सीमित रूप में ही सघटित किया है। जैसे अधोलिखित श्लोक मे विनियोजित श्लेष तथा रूपक अलकार सीमित रूप मे ही उपनिबद्ध हैं

काम कौसुमचापदुर्जयममुं जेतुं नृप त्वां धनु-
वल्लीमव्रणवंशजामधिगुणामासाद्य मायत्यसौ।
ग्रीवालङ्कृतिपट्टसूत्रलतया पृष्ठे कियल्लम्बया
भ्राजिष्णु कृपरेखयेव निवसत्सिंदूरसौंदर्यया॥ नै० ३-१२६।

यदि उत्तम धनुवल्ली को प्राप्त कर लेने से प्रसन्न कामदेव के द्वारा उसकी प्रसन्नता के अनुरूप नल के वधादि के प्रयास का प्रदर्शन भी कर दिया गया होता तो वह प्रकृत विषय के पूर्णतया विरुद्ध हो जाता। अतः श्रीहर्ष ने रूपक अलंकार का अत्यन्त निर्वाह न कर उत्प्रेक्षा से रमणीय अर्थ को पूर्ण कर लिया है।

अंगत्वेन अन्त तक निर्वाह

किसी प्रारब्ध अलंकार का अन्त तक अंगत्वेन निर्वाह अलंकार-योजना-नियामक पंचम उपाय होता है। श्रीहर्ष ने उपर्युक्त रीति से अलंकारों का प्रयोग अधिकांश स्थलों में किया है। वे यदि किसी अलंकार का संघटन प्रारम्भ कर देते हैं तो उसका अन्त तक निर्वाह करने में कोई कठिनाई उनके समक्ष नहीं आती। अतः नैषध में या तो उपर्युक्त प्रथम उपाय के अनुसार उपनिबद्ध अलंकारों का बाहुल्य है या इस पंचम उपाय के अनुसार संघटित अलंकारों का। तृतीय तथा चतुर्थ उपाय के अनुसार नैषध में अलंकार-योजना यत्र-तत्र की ती गई है परन्तु नैषधगत अधिकांश अलंकारों का सन्निवेश प्रथम उपाय के अनुसार, उससे कम पंचम तथा द्वितीय उपायों के अनुसार तथा सबसे कम तृतीय तथा चतुर्थ उपायों के अनुसार किया गया है। इसका कारण श्रीहर्ष की अलंकार-प्रयोग-कुशलता है। वे किसी ऐसे अलंकार का संघटन प्रारम्भ ही कम करते हैं जो विषय के अनुरूप नहीं होता।

अंगत्वेन पर्यन्त तक निर्वाहित अलंकारों के उदाहरणों के रूप में अधोलिखित सन्दर्भों को उद्धृत किया जा सकता है

अहो तप कल्पतरुर्नलीयस्त्वत्पाणिजाग्रस्फुरदङ्कुरश्री।
त्वद्भ्रूयुगं यस्य खलु द्विपत्री तवाधरो रज्यति यत्कनम्ब॥
यस्ते नव पल्लवितः कराभ्यां स्मितेन यः कोरकितस्तवास्ते।
अंगम्रदिम्ना तव पुष्पितो यः स्तनश्रिया यः फलितस्तवैव॥
कसीकृतासीत्खलुमण्डलीन्दोः संसक्तरश्मिप्रकरा स्मरेण।
तुला च नाराचलता निजैव मिथोऽनुरागस्य समीकृतौ वाम्॥
नै० ३-१२०-१२२।

कौमारगन्धीनि निवारयन्ती वृत्तानि रामावलिवेत्रचिह्ना।
सालिस्य तेनैक्ष्यत यौवनीयद्वा स्थामवस्था परिचेतुकामा॥ नै० ६-३८।

उपर्युक्त उद्धरणों में संघटित रूपक अलंकार का पर्यन्त तक निर्वाह किया गया है। परन्तु वह अंग के रूप में ही संघटित है, स्वतन्त्र रूप में नहीं।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रीहर्ष ने रस-व्यंजनोपयोगी उपायों के अनुसार ही नैषध में अलंकारों का सघटन किया है। अत नैषध में उपनिबद्ध अर्थालंकारों को शब्दालंकारों के समान ही नैषधगत रसादिकों के चारुत्व का हेतु स्वीकार किया जायगा।

रसवदादि अलंकार

गुणीभूतव्यंग्य स्वरूप रसवदादि अलंकारों का सभी विवेचकों ने अलंकार स्वरूप नहीं स्वीकार किया है। परन्तु आनन्दवर्धन के द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त अलंकार-लक्षण के अनुसार रसवदादिकों को भी अलंकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है। हम आगे देखेंगे कि अन्य अलंकारों के समान रसवदादि अलंकार भी रसादिकों के व्यंजक होते है।

जहाँ पर अन्य अर्थ वाक्यार्थ स्वरूप हो तथा रसादि उस वाक्यार्थ स्वरूप अर्थ के अंग के रूप में उपनिबद्ध किये गये हों वहाँ पर अंग स्वरूप रसादिकों को रसवदादि अलंकार के नाम से अभिहित किया जाता है

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्ग तु रसादय

काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मति ॥ ध्व० २-२७ ॥

ध्वन्यालोक के वृत्तिभाग में उद्भटादिकों के द्वारा स्वीकृत रसवदादि अलंकारों के स्वरूप का खंडन देते हुए रसवदादि अलंकारों के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है

यद्यपि रसवदलंकारस्यान्यैर्दर्शितो विषय, तथापि यस्मिन् काव्ये प्रधानतयान्योऽर्थो वाक्यार्थीभूत, तस्य चाङ्गभूता ये रसादय, ते रसादेरलंकारस्य विषया इति मामकीन पक्ष। ध्व० पृ० १००।

अभिनव के अनुसार उपर्युक्त उद्धरणगत वाक्ययोजना कुछ असगत है। अत उन्होंने उसे सुसगत करने का प्रयास किया है

यस्मिन् काव्ये इति। स्पष्टत्वेनागत वाक्यमित्थ योजनीयम्। यस्मिन् काव्ये त पूर्वोक्ता रसादयोऽङ्गभूता वाक्यार्थीभूतस्यान्योऽर्थ च शब्दस्तु शब्दार्थे।

ध्व० लोचन पृ० ८०४।

यद्यपि लोचन में वृत्तिभागगत वाक्य को सुघटित कर रसवदादि अलंकारों के स्वरूप को स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। परन्तु कारिका तथा वृत्तिगत प्रधान पद के बारे में लोचन में कुछ नहीं कहा गया है। ध्वन्यालोक में प्रधान पद का प्रयोग अन्यवाक्यार्थ के विशेषण के रूप में हुआ है। इस प्रधान पद के दो अर्थ हो सकते हैं—चमत्कारात्मक प्रधानता तथा वाक्यार्थपूर्णतामूलक प्रधानता। परन्तु यहाँ पर प्रधान पद का प्रथम अर्थ ग्रहण करना समीचीन न होगा। क्योंकि रसवदादि अलंकारात्मक स्थलों में चमत्कारात्मक

प्राधान्य वाक्यार्थस्वरूप अर्थ का न होकर अंग स्वरूप रसात्मक वाक्य का ही होता है और चमत्कार-पर्यवसायी होने के कारण ही उन अंग स्वरूप रसात्मक वाक्यों से युक्त स्थलों को 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' इस न्याय का अनुसरण करते हुए रसवदादि अलंकारों के नाम से अभिहित किया जाता है। वाक्यार्थ स्वरूप रसादि की अपेक्षा अंगस्वरूप रसादि के अधिक चमत्कारयुक्त न होने पर तो रसवदादि अलंकारों का विषय ही समाप्त हो जाता है, उस वाक्यार्थ स्वरूप रसादि के नाम से ही रसवदादि अलंकारात्मक स्थलों का नामकरण किया जा सकता है। वामनी टीका में उपर्युक्त तथ्य को सोदाहरण स्पष्ट कर दिया गया है

यत्र यन्मुखेन चमत्कारस्तत्र तेनैव व्यवहार इत्यर्थः। प्राधान्यं च चमत्कार-प्रयोजकत्वम्। तदुक्तम् प्राधान्यं च अतिशयचमत्कृतिमत्तया। इति। तथा च अंगभूतरसादीनां चमत्कृत्यतिशये गुणीभूतव्यंग्यत्वम् अंगिनस्तथात्वे ध्वनित्वमिति भावः। एवं च अयं स रसनोत्कर्षी इत्यादौ करुणध्वनावपि गुणीभूतव्यंग्यश्रृंगारेणैव चमत्कार इति तेनैव व्यवहारो न ध्वनित्वेनेति सहृदयहृदयसाक्षिकमिति यावत्। एतेन अयं स रसनोत्कर्षी इत्यादौ मुख्यत्वेन करुणस्यैव प्राधान्यमिति निरस्तम्। श्रृंगारवर्णने कवेः मरम्भादिति सारबोधिनीनरसिंहमनीषादिषु स्पष्टम्।

का० प्र० वामनी पृ० २०२।

ध्वन्यालोकगत प्रधान पद के समान रसादि जिस वाक्यार्थ के अंग होते हैं उस वाक्यार्थ के स्वरूप को स्पष्ट कर लेना भी आवश्यक है। लोचन में उस वाक्यार्थ की त्रिविधिता की ओर संकेत किया गया है

अ यत्रेति। रसस्वरूपे, वस्तुमात्रे, अलंकारतायोग्ये वा। लो० पृ० ४०३।

अभिनव की इस टिप्पणी से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग रसादि वाक्यार्थ स्वरूप रस, वस्तु या किसी अलंकार के अंग होते हैं। परन्तु अभिनव के द्वारा संकेतित वस्तु तथा अलंकार वाच्य तथा व्यंग्य दोनों प्रकार के हो सकते हैं। अभिनव ने उनकी वाच्यता तथा व्यंग्यस्वरूपता का स्पष्ट निर्देश नहीं किया है। परन्तु अभिनव के संकेत को दोनों प्रकार के वस्तु तथा अलंकारों का बोधक स्वीकार किया जा सकता है। दीधितिकार ने उभयविध वस्तु तथा अलंकारों की वाक्यार्थ स्वरूपता का प्रतिपादन किया ही है

तु पुनः यत्र काव्ये, अन्यत्रान्यस्मिन् स्वभिन्ने वस्त्वलंकाररसादिरूपे व्यंग्ये, वाच्ये वा वस्त्वलंकारलक्षणे, वाक्यार्थे तदर्थबोधे प्रधाने सति रसादयो नाति-चमत्कारितयागम् तस्मिन् काव्ये रसादि अलंकारो भवतीति मे मतिरित्यर्थः।

ध्व० दीधिति पृ० ६६।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष में रसवदादि अलंकारों का लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है। स्वाभिन्न रसादिकों तथा व्यंग्य एवं वाच्य उभयविध वस्तु

तथा अलंकारों के अंग स्वरूप रसों को रसवत्, भावों को प्रेयस्, रसाभासों तथा भावाभासों को ऊर्जस्वि, भावशान्ति को समाहित तथा भावोदय एवं भावशबलता को भावोदय तथा भावशबलता नाम से अभिहित किया जाता है। जैसाकि वामनी में अभिहित किया गया है

रसस्यांगत्वे रसवदलंकारः, भावस्यांगत्वे प्रेयोऽलंकारः, रसाभासस्य भावाभासस्य चांगत्वे ऊर्जस्विनामालंकारः, भावशान्तेरंगत्वे समाहितं। एवमादिपदात् भावोदयादेरंगत्वेऽलंकारान्तराणि ज्ञेयानि। का० प्र० वामनी पृ ८५।

श्रीहर्ष ने रसवदादि अलंकारों की योजना भी अनेक स्थानों पर की है। विनाश में उपस्थित नल के द्वारा अपनी नलरूपता का तत्थापन करने के लिए निवेदित अनेक पूर्वानुभूत रतिक्रिया-कलापों को रसवत् अलंकार के नाम से अभिहित किया जायेगा। क्योंकि नल के सभी निवेदन रतिवासना के व्यंजक तो हैं। परन्तु व्यक्त रतिवासना नल के द्वारा तत्थापित की जाने वाली नल-रूपता-स्वरूप वाच्य वस्तु की अंग बन जाती है। यद्यपि नल के उन समस्त निवेदनों में पूर्वानुभूत रतिक्रिया-कलाप-परक वाक्यांश चमत्कार-पर्यवसायी है। परन्तु वाच्य वस्तु के अंग होने के कारण उन्हें रसवत अलंकार के नाम से ही अभिहित किया जायगा। पर्यन्त में वह चमत्कार-पर्यवसायी वाक्यांश तथा वाक्यार्थ कलागत हास स्थायी भाव के व्यंजक बनकर हास्य के अंग बन जाते हैं।

रसवत अलंकार के समान प्रेयस अलंकार की योजना भी श्रीहर्ष ने यत्र-तत्र की है। नैषध के प्रारम्भ में विभिन्न भावों की व्यंजना करते हुए राजा नल के प्रभाव का वर्णन किया गया है (नै० १-१-२५)। यद्यपि प्रभाववर्णन में व्यक्त ये विभिन्न भाव चमत्कारपूर्ण हैं। परन्तु ये सभी भाव वस्तुरूप नल के प्रभावातिशय के अंग ही हैं। अतः उन्हें भी प्रेयस् अलंकार के नाम से अभिहित किया जायेगा। पर्यन्त में नल का प्रभाव तथा ये विभिन्न भाव दमयन्तीगत रतिवासना के व्यंजक बनकर शृंगार रस के अंग बन जाते हैं।

उपर्युक्त सन्दर्भ में ही नल के प्रभाव का वर्णन करते हुए त्रिलोक-सुन्दरीगत नल-विषयक रतिवासना की व्यंजना भी की गई है (१-२६-३०)। सुन्दरियों की इस वासना को अनुभयनिष्ठ होने के कारण आभास कोटि में ही स्थान दिया जायेगा। अतः ये सुन्दरियों की यह वासना भी नल के प्रभावातिशय तथा सौन्दर्यातिशय का अंग बन जाती है। अतः उसे ऊर्जस्वि अलंकार के नाम से अभिहित किया जायेगा। पर्यन्त में सुन्दरीगत रति तथा नल का सौन्दर्य दमयन्तीगत रति के व्यंजक बनकर शृंगार रस के अंग बन जाते हैं।

अन्त में सुन्दरियों के मद भाव का शमन प्रदर्शित कर और उसे नल के सौन्दर्य का अंग बना कर श्रीहर्ष ने इसी प्रसंग में समाहित अलंकार की भी योजना कर दी है (नै० १-३१)।

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने भावोदयादि अलकारो की भी यत्र-तत्र योजना की है। हम आगे देखेंगे कि रसवदादि अलकार भी गुणीभूतव्यग्य स्वरूप होने के कारण पर्यन्त मे रसादिको की व्यजना किया करते हैं। इसी लिए यहा पर उनकी रस-व्यजकता का प्रतिपादन किया गया है।

रस-व्यजक व्यग्य तथा गुणीभूतव्यग्य-सज्ञक अलकार

ध्वनिसज्ञक व्यग्य अलकार तथा गुणीभूतव्यग्य अलकार एव रसवदादि अलकार भी जो गुणीभूतव्यग्य स्वरूप ही होते है, पर्यन्त मे रस की व्यजना किया करते है

प्रकारोऽय गुणीभूतव्यग्योऽपि ध्वनिरूपताम् ।
धत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुन ।। ध्व० ३-६७ ।

न च केवल गुणीभूतव्यग्यान्येव पदान्यलक्ष्यक्रमव्यग्यध्वनेर्व्यंजकानि, यावदर्थान्तर-*सक्रमितवाच्यानि ध्वनिप्रभेदरूपाण्यपि।* ध्व० पृ० ५३० ।

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणो मे गुणीभूतव्यग्य तथा अर्थान्तर-सक्रमितवाच्य नामक ध्वनि की ही स्पष्ट रूप से रस-व्यजकता का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु वृत्तिभाग मे ध्वनि-भेदो के सब प्रथम भेद अर्थान्तर सक्रमित वाच्य का उल्लेख करने के अनन्तर प्रयुक्त 'प्रभेदरूप' पद तथा उसके अन्त म किया गया बहुवचन का प्रयोग यह सूचित करता है कि आनन्दवर्धन को सभी ध्वनि-भेदो की विमम ध्वनिसज्ञक व्यग्य अलकार भी आ जाते हैं रस व्यजकता अभीष्ट है। और फिर अलकार वह चाहे व्यग्य हो या वाच्य रूप अलकार के नाम से अभिहित करने का मूल ही उसकी रसादिको [illegible] चारुत्व हेतुता होती है। अत व्यग्य अलकारो की रस-व्यजकता को स्वीकार कर लेने म कोई अनुपपत्ति नही दृष्टिगत होती।

अभिनव ने आनन्दवर्धन के 'काव्यस्यात्मा ध्वनि' इस वाक्याश को स्पष्ट करते हुए अलकार-ध्वनि सहित समस्त ध्वनि-भेदो की रस-पर्यवसायिता का स्पष्ट उल्लेख कर ही दिया है

स एवेति। प्रतीयमानमात्रेऽपि प्रक्रान्ते तृतीय एव रसध्वनिरिति मन्तव्यम्। इतिहासबलात् प्रक्रान्तवृत्तिग्रन्थबलाच्च। तेन रस एव वस्तुत आत्मा। वस्त्वलकारध्वनी तु सर्वथा रस प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभि-प्रायेण 'ध्वनि काव्यस्यात्मेति' सामान्येनोक्त । ध्व० लोचन पृ० १५५ ।

यद्यपि यहा पर अन्य रस-व्यजक अलकारो के सदर्भ मे व्यग्य अलकारो की रस-व्यजकता के बारे म कुछ चर्चा कर दी गई है। परन्तु विवेचन-क्रम के अनुसार नैषधगत व्यग्य अलकारो पर दृष्टिपात करने के पूर्व वस्तु तथा अलकार व्यजक अलकारो का विवेचन कर लेना अधिक समीचीन होगा।

वस्तु-व्यंजक अलंकार

जिन अर्थालंकारों से किसी वस्तु की व्यंजना हो रही हो वे वस्तु व्यंजक अलंकार होते हैं। ध्वन्यालोक में व्यंग्य तथा व्यंग्य उभयविध अलंकारों की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की गई है

शरीरीकरण येषां वाच्यत्वे न व्यवस्थितम्।

तेऽलंकाराः परां छायां यान्ति ध्वन्यंगतां गताः ॥ ध्व० २-५१।

ध्वन्यंगता चोभाभ्यां प्रकाराभ्यां व्यंजकत्वेन व्यंग्यत्वेन च। वही पृ० २१४।

श्रीहर्ष ने नैषध में अनेक अलंकारों के द्वारा विभिन्न वस्तुओं की व्यंजना भी की है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित स्थलों को उद्धृत किया जा सकता है

दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए हंस उनके कुचों की कामदेव तथा यौवन के प्लवकुम्भों से उत्प्रेक्षा करता है और इस उत्प्रेक्षा के द्वारा दमयन्ती के कुचों की विशालता तथा उत्कृष्टता स्वरूप वस्तु की व्यंजना होती है

अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोर्गमिते कान्तिझरैरगाधताम्।

स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचावुभौ ॥ नै० २-३१।

इसी प्रकार नल के द्वारा चुम्बन करने के लिए गृहीत दमयन्ती के कुचों की कुम्भ के रूप में तथा नल के मुख की चन्द्रमा के रूप में उत्प्रेक्षा कर दमयन्ती के कुचों की विशालता, कठोरता तथा गौरवपूर्णता स्वरूप वस्तु की तथा नल-मुख की अमृततुल्य मधुररसपूर्णता स्वरूप वस्तु की व्यंजना की गई है

चुम्बनाय कलितं प्रियाकुचं वीरसेनसुतवक्त्रमण्डलम्।

प्राप भर्तुममृतं सुधांशुना सत्तहाटकघटेन निश्चिताम् ॥ नै० १८-१०५।

भीम की नगरी का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा उस नगर में स्थित भवनों के औन्नत्य की व्यंजना भी कलात्मक रूप में की है

व्रजते दिवि यद्गृहावलीचलचेलाञ्चलदण्डताडनाः।

व्यतरन्नरुणाय विभ्रमं कुचते हेलिहयालिवालनाम् ॥ नै० २-८०।

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने हंस के द्वारा नल की गान-निपुणता स्वरूप वस्तु की व्यंजना भी अतिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से कराई है

स्वर्लोकमस्माभिरितः प्रयातैः केलीषु तद्गानगुणान्निपीय।

हा हेति गायन् यदशोचि तेन नाम्नैव हाहा हरिगायनोऽभूत् ॥ नै० ३-२७।

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने दृष्टान्त अलंकार के द्वारा नल की गम्भीरता तथा दमयन्ती के चन्द्र-सदृश सौन्दर्य स्वरूप वस्तु की भी हृदयग्राही व्यंजना की है

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।
इत स्तुति का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ॥ नै० ३-११६ ।

उपर्युक्त सभी अलकार वस्तु-व्यजना के साथ-साथ पर्यन्त मे रसादिको के चारुत्व का समुन्नयन भी करते है। रस व्यजक अलकारो का निर्देश करते हुए वस्तु-व्यजक अलकारो की रस-व्यजकता का पृथक् निर्देश नही किया गया है। क्योकि पहले वस्तु व्यजक अलकारो की परिणति वस्तु की व्यजना मे होती है। तदनन्तर व्यक्त वस्तु का ही रस मे पर्यवसान स्वीकार किया गया है। इस प्रकार वस्तु-व्यजना के द्वारा रस-व्यजक होने के कारण वस्तु-व्यजक अलकार परम्परया रस-व्यजना करते है।

अलकार-व्यजक अलकार

जो अलकार स्वभिन्न किसी अन्य अलकार के व्यजक होते हैं वे अलकार-व्यजक अलकार होते हैं। यह व्यक्त अलकार व्यग्य स्वरूप होते हैं। हम देख चुके हैं कि व्यक्त वस्तु के समान व्यग्य अलकारो को भी रस-पर्यवसायी माना गया है। क्योंकि यह भी अन्य अर्थालकारो के समान रसादिको की व्यजना पर्यन्त मे किया करते है। परन्तु अलकारव्यजक अलकारो की परिणति अलकार व्यजना-मात्र होती है। रस-व्यजना वे परम्परया ही करते हैं। श्रीहर्ष ने नैषध मे अलकार-व्यजक अलकारो की योजना प्रचुर मात्रा मे की है। व्यग्य अलकारो के स्वरूप तथा नैषधगत व्यग्य अलकारो पर प्रकाश डालते हुए अलकार-व्यजक अलकारो का विवेचन भी स्वत हो जायेगा। अत यहाँ पर पृथक् रूप से अलकार-व्यजक अलकारो का आकलन अनावश्यक ही होगा।

व्यग्य अलकार

व्यग्य अलकारो को व्यग्य की प्रधानता तथा गौणता के आधार पर ध्वनि-सज्ञक तथा गुणीभूतव्यग्यसज्ञक दो भागो मे विभाजित किया जा चुका है। काव्य-ममज्ञो के अनुसार यदि अलकारो की व्यग्य स्वरूपता प्राधान्येन विवक्षित हो तभी व्यग्य अलकारो को ध्वनि के नाम मे अभिहित किया जा सकता है अन्यथा उन्हे गुणीभूतव्यग्य के नाम से ही अभिहित किया जाना चाहिये

व्यग्यत्वेऽप्यलकाराणा प्राधान्यविवक्षायामेव सत्या, ध्वनावन्त पात । इतरथा तु गुणीभूतव्यग्यत्व प्रतिपादयिष्यते। ध्व० पृ २१५।

ध्वनि-सज्ञक अलकारो को भी व्यजको की अनेकरूपता के आधार पर शब्दशक्ति-व्यग्य तथा अर्थशक्ति-व्यग्य अलकारो के नाम से दो भागों मे विभाजित किया गया है।

शब्द-शक्ति-व्यंग्य अलंकार

जहाँ पर अनेकार्थक शब्दों के प्रकरणादिवश प्रस्तुत अर्थ में नियन्त्रित हो जाने के उपरान्त अभिधामूल-व्यंजना के द्वारा द्वितीय अप्रस्तुत अर्थ का बोध कराने के साथ-साथ दोनों अर्थों के उपमानोपमेय भाव स्वरूप उपमा अलंकार की प्रतीति भी कराई जाती है उसे शब्द-शक्ति-व्यंग्य अलंकार का विषय कहा गया है

आक्षिप्त एवालंकार शब्दशक्त्या प्रकाशते।
यस्मिन्ननुक्तः शब्देन शब्दशक्त्युद्भवो हि स ॥ ध्व० २.४४।

श्रीहर्ष ने शब्दशक्ति-व्यंग्य उपमा अलंकार की योजना भी यत्र-तत्र नैषध में की है। दमयन्ती हंस के सम्मुख अपने अनुराग का निवेदन करती हुई कहती है कि उसे नल की प्राप्ति उस हंस की सहायता से ही हो सकती है

श्रुतश्च दृष्टश्च हरित्सु मोहाद् ध्यातश्च नीरन्ध्रितबुद्धिधारम्।
ममाद्य तत्प्राप्तिरसुव्ययो वा हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः ॥ नै० ३-८२।

दमयन्ती के द्वारा प्रयुक्त द्वयर्थक पद इस प्रासंगिक अर्थ का बोध कराने के अनन्तर विरतव्यापार हो जाते हैं कि उसने नल का सुना है, भ्रमवश दिशाओं में देखा है तथा एकचित्त होकर उसका ध्यान किया है। अब उसे या तो नल की प्राप्ति होगी या उसका प्राणान्त हो जायगा और यह दोनों बातें उस हंस के हाथ में हैं। इस प्रासंगिक अर्थ का बोध होने के अनन्तर अभिधामूल-व्यंजना के द्वारा इस अप्राकरणिक अर्थ की प्रतीति होती है कि श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन-सम्पन्न व्यक्ति को ब्रह्म की प्राप्ति गुरु आदि के ही आधीन होती है। इस प्रकार प्राकरणिक तथा अप्राकरणिक दोनों अर्थों का बोध हो जाने के अनन्तर उपर्युक्त दोनों अर्थों के उपमानोपमेयभाव की प्रतीति भी व्यंजना-वृत्ति के द्वारा हो जाती है अर्थात् जैसे श्रवणादि-सम्पन्न व्यक्ति को भी ब्रह्म की प्राप्ति गुरु आदि की कृपा से ही होती है उसी प्रकार उसे (दमयन्ती को) नल-गुण-श्रवणादि के उपरान्त भी नल की प्राप्ति हंस की कृपा से ही हो सकती है। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों अर्थों में उपमानोपमेयभाव सम्बन्ध स्थापित हो जाने से यहाँ पर उपमा अलंकार की व्यंजना होती है।

इसी प्रकार भीम के द्वारा नल को दमयन्ती का दान किये जाने के औचित्य का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने शंकर जी को पार्वती तथा विष्णु जी को लक्ष्मी के दान स्वरूप अप्राकरणिक अर्थ की भी व्यंजना की है

यथावदस्मै पुरुषोत्तमाय तां स साधुलक्ष्मीं वहुवाहिनीश्वरः।
शिवामथ स्वस्य शिवाय नन्दिनीं ददे पतिं सर्वविदे महीभृताम् ॥
नै० १६.१२।

यहाँ पर भी व्यजना वृत्ति के द्वारा दमयन्ती-दान तथा पार्वती एव लक्ष्मी-दान मे उपमानोपमेयभाव सम्बन्ध की प्रतीति हो जाती है। अत यहाँ पर भी उपमा अलकार व्यग्य है। इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों मे भी श्रीहर्ष ने शब्दशक्ति के द्वारा अलकार-व्यजना की है।

अर्थ-शक्ति-व्यग्य अलकार

जिन ध्वनि-सज्ञक अलकारो की व्यजना अर्थ-शक्ति से होती है वे अलकार अर्थ शक्ति व्यग्य अलकार होते हैं

अथशक्तेरलकारो यत्राप्यन्य प्रतीयते।

अनुस्वानोपमव्यग्य स प्रकारोऽपरो ध्वने ॥ ध्व० २ ४८।

अर्थ शक्ति से व्यग्य अलकारो को व्यजको की उभयरूपता के आधार पर वस्तु-व्यग्य अलकार तथा अलकार व्यग्य अलकार नामक दो भागो मे विभाजित किया गया है

अगित्वेन व्यग्यतायामप्यलकाराणा द्वयी गति, कदाचिद्वस्तुमात्रेण व्यज्यन्ते कदाचिदलकारेण। ध्व० पृ० २१५।

नैषध मे वस्तुरूप अर्थ-शक्ति से व्यग्य अलकारो की भी कमी नहीं है। उदाहरण स्वरूप अधोलिखित सन्दर्भों को उद्धृत किया जा सकता है

अन्तर्हित नल दमयन्ती का मनोविनोद करने के लिए सारिका के द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर सशकित हो जाता है कि हे दमयन्ती, इस नल को देखो तथा पीडा का परित्याग कर दो। नल को शका यह हो जाती है कि शायद सखियो ने उसे देख लिया है

एत नल त दमयन्ति! पश्य त्यजार्तिमित्यालिकुलप्रबोधान।

श्रुत्वा स नारीकरवर्तिनारीमुखात स्वमाशक्त यत्र दृष्टम्॥ नै० ६-६०।

यहाँ पर नल को सारिका के वचनों मे नारी-वाक्य का भ्रम हो जाता है। अत यहा पर वस्तु-स्वरूप सारिका-निवेदन से भ्रान्तिमान् अलकार की व्यजना होती है।

इसी प्रकार प्लक्ष द्वीप के राजा का वर्णन करते हुए सरस्वती दमयन्ती से कहती है कि यदि वह प्लक्ष द्वीप के राजा का वरण कर ले तो उस द्वीप मे रहने वाले चन्द्रभक्तो का अमावास्या मे भी दमयन्ती के मुख का दर्शन कर भोजन कर लेने से व्रत-भग नही होगा

सूर न सौर इव नेन्दुमवेक्ष्य तस्मि-

न्नश्नाति यस्तदितरत्रिदशानभिज्ञ।

तस्यैन्दवस्य भवदास्यनिरीक्षयैव

दर्शेऽश्नतोऽपि न भवत्ववकीर्णिभाव ॥ नै० ११-७६।

प्लक्ष द्वीप के निवासियों को दमयन्ती के मुख में इन्दु का भ्रम हो जाने के कारण वस्तुरूप अर्थ से भ्रान्तिमान् अलंकार की व्यंजना होती है।

वस्तुरूप अर्थशक्ति के समान अलंकाररूप अर्थशक्ति से भी नैषध में अलंकारों की व्यंजना अनेकत्र की गई है। जैसे हंस के द्वारा किये गये दमयन्ती के अतिशयोक्ति-पूर्ण सौंदर्य-वर्णन से उपमा अलंकार की व्यंजना होती है

नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे।
अपि खंजनमंजनाञ्चिते विदधाने रुचिगर्वदुर्विधम् ॥ नै० २-२३।

यहाँ पर दमयन्ती के नेत्रों के द्वारा नलिनादि का मलिनीकरण न किये जाने पर भी वैसा अभिधान कर असम्बन्ध में भी सम्बन्ध की स्थापनास्वरूप अतिशयोक्ति की योजना की गई है जिस से उपमा अलंकार की व्यंजना होती है अर्थात् यह प्रतीत होता है कि दमयन्ती के नेत्र कमलादि के समान हैं।

इसी प्रकार हंस के द्वारा किया गया दमयन्ती के मुख का वर्णन भी उपमा अलंकार का अभिव्यंजक है

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिमा ॥ नै० २-२५।

यहाँ पर दमयन्ती के मुख का निर्माण करने के लिए चन्द्रमण्डल के सार को निकालने की उत्प्रेक्षा कर उसके द्वारा दमयन्ती का मुख चन्द्रसार के समान था। इस उपमा अलंकार रूप अर्थ की व्यंजना की गई है।

दमयन्ती के द्वारा किये गये उत्प्रेक्षा अलंकार से गर्भित नल के वाक्चातुर्य के वर्णन में भी उत्प्रेक्षा अलंकार उपमा अलंकार की व्यंजना करता है

अदृश्यमाना क्वचिदीक्षिता क्वचिन्ममानुयोगे भवतः सरस्वती।
क्वचित्प्रकाशा क्वचिदस्फुटाणसः सरस्वतीं जेतुमना सरस्वतीम् ॥
नै० ९-४।

नल भीम के अन्तःपुर में इधर-उधर भ्रमण करने के उपरान्त दमयन्ती के पास उसके महल में पहुँच जाता है। अन्तर्हित होने के कारण उसे कोई देख नहीं पाता और न उसकी छाया को ही कोई लक्षित कर पाता है। क्योंकि सखियों ने पहले से ही दमयन्ती का मनोविनोद करने के लिए भूमि पर नल की अनेक प्रतिकृतियाँ बना रखी थी

भैमीविनोदाय मुदा सखीभिस्तदाकृतीनां भुवि कल्पितानाम्।
नातर्कि मध्ये स्फुटमप्युदीतं तस्यानुबिम्बं मणिवेदिकायाम् ॥ नै० ६-७४।

यहाँ पर नल की प्रतिकृति तथा नल के प्रतिबिम्ब में साम्य का कथन कर सामान्य अलंकार की योजना की गई है। सखियों के द्वारा नल के प्रतिबिम्ब को नल की प्रतिकृति समझ लिए जाने से यह सामान्य अलंकार भ्रान्तिमान् अलंकार का व्यंजक बन जाता है।

इसी प्रकार अन्य स्थानो पर भी अन्य अनेक अलकारो की व्यजना अलकारो के द्वारा की गई है। जैसे नल की दृष्टि दमयन्ती के मुख का दर्शन करने के उपरान्त अत्यधिक अनुराग बढ जाने के कारण दमयन्ती के कुचो पर जाकर टिक जाती है

वेलामतिक्रम्य पृथु मुखेन्दोरालोकपीयूषरसेन तस्या ।
नलस्य रागाम्बुनिधौ विवृद्धे तुगा कुचावाश्रयति स्म दृष्टि ॥ नै० ७-४।

यहाँ पर उपयुक्त अर्थ के साथ साथ यह भी प्रतीत होता है कि चन्द्रोदय के समय समुद्र के बढ जाने से उसमे डूब जाने के भय के कारण व्यक्ति किसी ऊचे स्थान का आश्रय ग्रहण करता है। इस प्रकार यहा पर समासोक्ति अलकार की योजना की गई है। इस समासोक्ति अलकार से उत्प्रेक्षा अलकार स्वरूप इस अर्थ की व्यजना होती है कि नल ने दमयन्ती के तुग कुचो का आश्रय ग्रहण किया मानो वे उस के अनुराग-समुद्र मे डूब जाने के भय से डर गये हो।

गुणीभूतव्यग्य सज्ञक अलकार

रस, वस्तु तथा अलकार तीनो प्रकार के व्यग्य गौण होने पर गुणीभूतव्यग्य के नाम से अभिहित किये जाते है। रसादि के गौण होने पर उन्हे रसवदादि अलकारो के नाम से अभिहित किया जाता है जिनके स्वरूप पर हम विचार कर चुके है। वस्तु की गुणीभूतव्यग्यता पर विचार करना यहा अप्रासगिक होगा। अत केवल अलकारो की गुणीभूतव्यग्यता पर ही यहाँ यत्किंचित् प्रकाश डाला जायेगा।

व्यजको की दृष्टि से तीन प्रकार के ध्वनि-सज्ञक अलकारो का निर्देश किया गया है—शब्द-शक्ति-व्यग्य, वस्तुरूप अर्थशक्ति-व्यग्य तथा अलकाररूप *अर्थ-शक्ति-व्यग्य*। इन तीनो प्रकारो मे शब्द-शक्ति-व्यग्य अलकार का यदि एक पद से भी अभिधान कर दिया जाता है तो वह ध्वनि-सज्ञक अलकार न रहकर वक्रोक्ति आदि वाच्य अलकारो की कोटि मे आ जाता है।

स चाक्षिप्तोऽलकारो यत्र पुन शब्दान्तरेणाभिहितस्वरूप, तत्र शब्दशक्त्युद्भवानुरणनरूपव्यग्यध्वनिव्यवहार (नैव, किंतु) तत्र वक्रोक्त्यादिवाच्यालकारव्यवहार एव। ध्व० पृ० १६३।

शब्दार्थशक्त्या वाक्षिप्तो व्यग्योऽर्थ कविना पुन ।
यत्राविष्क्रियते स्वोक्त्या सान्यैवालकृतिर्ध्वने ॥ ध्व० २-४६।

वस्तुरूप अर्थशक्ति-व्यग्य अलकार ध्वनि-सज्ञक ही होते हैं। क्योकि वहा पर अलकाररूप व्यग्यार्थ का बोध कराना ही अभीष्ट होता है

व्यज्यन्ते वस्तुमात्रेण यदालकृतयस्तदा।
ध्रुव ध्वन्यगता तासाम्, (अत्र हेतु) काव्यवृत्तेस्तदाश्रयात् ॥ ध्व० २-५२।

परन्तु अलंकार-व्यंग्य अलंकार यदि चमत्कार-पर्यवसायी नहीं होते तो व्यंग्य होते हुए भी उन्हें ध्वनि नाम से नहीं अभिहित किया जाता

अलंकारान्तरस्यापि प्रतीतौ यत्र भासते ।

तत्परत्वं न वाच्यस्य नासौ मार्गो ध्वनेर्मतः ।। ध्व० २-५० ।

उपर्युक्त रीति से उपनिबद्ध गौणरूपेण व्यंग्य अलंकारों को गुणीभूतव्यंग्य संज्ञक अलंकारों के नाम से अभिहित किया जाता है ।

गुणीभूतव्यंग्य-संज्ञक अलंकारों को व्यंग्यार्थ की उभयरूपता के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—गौण-वस्तु-व्यंग्य-युक्त अलंकार तथा गौण अलंकार-व्यंग्ययुक्त अलंकार । इन दोनों प्रकारों में प्रथम प्रकार के अलंकारों पर यहाँ प्रकाश डालना भी हमारा अभीष्ट नहीं है । क्योंकि गौण-वस्तु-व्यंग्य-युक्त समासोक्ति आदि अलंकार व्यंग्य वस्तु की गौणता से युक्त होने के कारण गुणीभूत-व्यंग्य संज्ञक तो होते हैं परन्तु ऐसे अलंकारों को रस या वस्तु व्यंजक अर्थालंकारों के अन्तर्गत स्थान दिया जा चुका है । *यहाँ पर केवल उन अलंकारों पर ही विचार किया जायगा जो किसी अलंकार* से व्यंग्य होते हुए भी अप्राधान्येन प्रतीत हुआ करते हैं । ऐसे अलंकारों के चार प्रकारों का निर्देश किया गया है—समस्तालंकार-गर्भित, विशेषालंकार-गर्भित, अलंकार सामान्य-गर्भित तथा परस्पर-गर्भित अलंकार ।

समस्तालंकार-गर्भित अलंकार

जो अलंकार सभी अलंकारों में गर्भित रहे उसे समस्तालंकार गर्भित अलंकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है जैसे अतिशयोक्ति अलंकार । आनन्दवर्धन के अनुसार अतिशयोक्ति अलंकार सभी अलंकारों में गर्भित हो सकता है । क्योंकि अतिशययोगिता काव्य में किसी विचित्र विच्छित्ति का आधान कर देती है । इसीलिए कवियों ने सभी अलंकारों की अतिशयोक्ति-गर्भित योजना की है

यत्तु प्रथमं तावदतिशयोक्तिगर्भता सर्वालंकारेषु शक्यक्रिया । कृतैव च सा महाकविभिः कामपि काव्यच्छविं पुष्यतीति कथं ह्यतिशययोगिता स्वविषयौचित्येन क्रियमाणा सती काव्ये नोत्कर्षमावहेत् । ध्व० पृ० ५०२ ।

आनन्दवर्धन ने अतिशयोक्ति की त्रिविध अलंकारान्तर-संकीर्णता का निर्देश किया है

तस्याश्चालंकारान्तरसंकीर्णत्वं कदाचिद् वाच्यत्वेन, कदाचिद् व्यंग्यत्वेन, व्यंग्यत्वमपि कदाचित् प्राधान्येन, कदाचिद् गुणभावेन । ध्व० पृ० ५०५ ।

उनके अनुसार जो भी अलंकार कविप्रतिभोत्थापित अतिशयोक्ति अलंकार से युक्त होते हैं वे चारुत्वातिशय से युक्त हो जाते हैं

तत्रातिशयोक्तिप्रमलकारमधिलिष्ठति, कविप्रतिभावशात् तस्य चारुत्वातिशययोग । वही पृ० ५०३ ।

उपयु क्त विवेचन के सदर्भ मे यदि नैषधगत अलकार-योजना पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्वीकार करने मे किसी को कोई अनुपपत्ति नही हो सकती कि नैषध चारुत्वातिशय के हेतुभूत अतिशयोक्ति अलकार से भरपूर महाकाव्य है। नैषध मे कदाचित् ही कोई श्लोक ऐसा होगा जिसमे श्रीहर्ष की प्रतिभा के प्रत्यायक किसी अलकार का प्रयोग न किया गया हो।

अतिशयोक्ति के समान ही उपमा अलकार की व्यापकता को भी स्वीकार किया गया है

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिका भेदात् ।
रजयति काव्यरगे नृत्यन्ती तद्विदा चेत ।। चित्रमीमासा पृ० ४१ ।

परन्तु उपमादि अलकार समस्तालकार-गर्भित नही होते । केवल अतिशयोक्ति अलकार को ही समस्तालकार गर्भित कहा गया है

अय च प्रकारोऽन्येषामप्यलकाराणामस्ति, तथा न सर्वविषय । अतिशयोक्तेस्तु सर्वालकारविषयोऽपि सम्भवतीत्यय । ध्व० पृ० ५०५ ।

रूपक, तुल्ययोगिता निदर्शना तथा अपह्नुति आदि अलकारो मे केवल उपमा गर्भित ही नही रहती अपितु वह शोभातिशायी होती है। नैषध मे इस प्रकार के उपमागर्भित अलकारो का भी प्रचुर मात्रा मे सघटन किया गया है।

विशेषालकार-गर्भित अलकार

कुछ अलकारो मे किसी विशेष अलकार के गर्भित होने का नियम है। ऐसे अलकारो को विशेषालकार-गर्भित अलकार कहा गया है। जैसे व्याजस्तुति मे प्रेयोऽलकार नियमित रूप से गर्भित होता है

तत्र च गुणीभूतव्यग्यतायामलकाराणा केषाचिदलकारविशेषगर्भतायां नियम यथा—व्याजस्तुते प्रेयोऽलकारगर्भत्वे । ध्व० पृ० ५०७ ।

श्रीहर्ष ने व्याजस्तुति अलकार की भी यत्र-तत्र योजना की है। जैसे दमयन्ती की सखी के निम्नलिखित कथन को उद्धृत किया जा सकता है

अस्य क्षोणिपते पराधपरया लक्षीकृता सख्यया
प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणतिमिरप्रख्या किलाकीर्तय ।
गीयन्ते स्वरमष्टम कलयता जातेन वन्ध्योदरा-
न्मूकाना प्रकरेण कूमरमणीदुग्धोदधे रोधसि ।। नै० १२-१०६ ।

यद्यपि सखी का उपर्युक्त कथन प्रकट रूप से निन्दापरक है। परन्तु अन्त मे उससे राजा की स्तुति की व्यजना होती है। अत सखी के कथन को व्याजस्तुति अलकार स्वरूप कहा जायेगा। सखी के द्वारा की गई यह राजस्तुति

अन्त में सखीगत राज-विषयक रतिभाव की व्यंजना करती है। परन्तु व्यक्त रति भाव वाक्यार्थस्वरूप न होकर अंग स्वरूप ही है। अतः उसे भाव नाम से न अभिहित कर प्रेयोऽलंकार के नाम से अभिहित किया जायेगा।

अलंकार-सामान्य-गर्भित अलंकार

कुछ अलंकार अलंकारमात्र गर्भित होते हैं जैसे सन्देहादि अलंकार उपमा-गर्भित होते हैं

केषाचिदलंकारमात्रगर्भतायां नियमः। यथा—सदेहादीनामुपमागर्भत्वे।

ध्व० पृ० ५०८।

नैषध में उपमा-गर्भित सन्देहादि अलंकारों की भी यत्र-तत्र योजना की गई है। उदाहरण स्वरूप दमयन्ती की अधोलिखित अभिव्यक्ति को उद्धृत किया जा सकता है

भृश वियोगानलतप्यमान किं विलीयसे न त्वमयोमय यदि।

स्मरेषुभिर्भेद्य न वज्रमस्यसि ब्रवीपि न स्वान्त कथं न दीयसे॥ नै० ९-८९।

इसी प्रकार ईर्ष्यालु राजाओं की अधोलिखित उक्ति भी सदेहालंकार स्वरूप है

सुधांशुरेष प्रथमो भुवीति स्मरो द्वितीयः किमसाविलीमम्।

दस्रस्तृतीयोऽयमिति क्षितीशाः स्तुतिच्छलान्मत्सरिणो निनिन्दुः॥

नै० १०-४१।

सदेहालंकार युक्त उपर्युक्त दोनों श्लोक उपमा-गर्भित हैं।

परस्पर-गर्भित अलंकार

दीपक तथा मालोपमा अलंकार परस्पर-गर्भित होते हैं

केषाचिदलंकाराणां परस्परगर्भतापि सम्भवति। यथा—दीपकोपमयोः। तत्र दीपकमुपमागर्भत्वेन प्रसिद्धम्। उपमापि कदाचिद् दीपकछायानुयायिनी। यथा मालोपमा। ध्व० पृ० ५०९।

श्रीहर्ष ने यत्र-तत्र परस्परगर्भित अलंकारों की भी योजना की है। उदाहरण स्वरूप अधोलिखित श्लोक को उद्धृत किया जा सकता है

विष्टर तटकुशालिभिरद्भिः पाद्यमर्घ्यमथ कच्छरहाभिः।

पद्मवृन्दमधुभिर्मधुपर्कं स्वर्गसिन्धुरदितातिथयेऽस्मै॥ नै० ५-७।

यहाँ पर उपनिबद्ध दीपक अलंकार उपमा गर्भित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने गुणीभूतव्यंग्य संज्ञक अलंकारों को भी उपर्युक्त चारों प्रकारों से नैषध में योजना की है। उपर्युक्त सभी प्रकार के व्यंग्य अलंकार पर्यन्त में रसादि की व्यंजना भी करते हैं।

श्रीहर्ष की अलकार योजना

श्रीहर्ष के द्वारा नैपधीयचरित मे अलकारो के प्रयोग के बारे मे अपनाई गई सरणि जिसका सिंहावलोन गत पृष्ठो में किया जा चुका है, नि सन्देह ही ध्वनि मार्गसम्मत एव नैपधीयचरितगत रस-योजना के अनुरूप है। परतु डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने उन्हें भामह, कुन्तक अथवा दण्डी का अनुयायी माना है। जैसाकि उनके वचनो से ज्ञात होता है

चमत्कार के विषय में भामह कुन्तक के पूर्वोक्तमत से पूर्ण सहमत समझ पडते हैं। उन्होंने ध्वनिमार्ग मे वक्रोक्ति की प्रधानता स्वीकार की है। निषेधवेष इस श्लोक द्वारा श्रीहर्ष न वडे कौशल के साथ अपने नैपध की रचना शैली का परिचय दे दिया है। श्रीहर्ष इसी वक्रोक्ति अलकार के पूर्ण-पक्षपाती समझ पडते हैं। चमत्कार प्रदशन के लिए श्रीहर्ष ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है। नैषध की अतिशयोक्ति ठीक भामहोक्त ही है जिसे वक्रोक्ति का पर्याय कह सकते हैं। किन्तु श्रीहर्ष ने उस अतिशयोक्ति को सभी अलकारो का मूल नही माना है। क्योंकि भणितिभगी को अपनाने वाले भामह कुन्तक द्वारा अस्वीकृत स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, हेतु, सूक्ष्य, लेश आशी आदि अलकारो का भी सौदर्य प्राधान्य नैषध मे पर्याप्त मात्रा म देखने को मिलता है और उन सरलोक्तियो मे काव्य सौंदय भी भरपूर है। श्रीहर्ष इस विषय मे दण्डी के अनुयायी समझ पडते हैं। एक स्थान पर तो उन्होने स्पष्ट शब्दो मे श्लेष के कारण ही वचनभगी की उत्कृष्टता स्वीकार की है।' नैषध-परिशीलन पृ० २५३।

डॉ० शुक्ल के उपयुक्त मन्तव्य के अनुसार तो श्रीहर्ष को अलकार सम्प्रदाय के अनुयायी उन कवियो की श्रेणी मे ही स्थान मिल सकेगा जिनकी चर्चा उन्होंने स्वय ही इस प्रकार की हैं

'कवि अप्रसिद्ध से अप्रसिद्ध अलकारो की योजना करते। अत उन्हे वैचित्र्य के पक्षपाती अलकारवादी आचार्यों के सिद्धान्त अधिक प्रिय लगते। भणितिभगी उनका प्रधान लक्ष्य होता था। वे उसी के लिए यत्न करते थे। यदि उनके द्वारा ध्वनि तथा रस की भी कुछ निष्पत्ति हो जाती तो भले ही हो जाए परन्तु कवियो का उसके लिए न तो कोई प्रयत्न होता न कोई अपेक्षा।'

नैषध-परिशीलन पृ० २५।

परन्तु नैपधीयचरित को अलकार सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाला चमत्कारवादी महाकाव्य स्वीकार कर लेना एक बडी भूल होगी। नैषधीय-चरित वस्तुत एक रसप्रवण महाकाव्य है और उसमे किया गया अलकार-सन्निवेष रसव्यजना के अनुरूप ही है न कि चमत्कार-प्रदर्शन-परक या भणिति-वैचित्र्यमूलक। जैसाकि डॉ० शुक्ल कहते है।

यद्यपि नैषधीयचरित मे अलकारो का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। परन्तु एक महाकाव्य की अर्थ-वैचित्र्य के बिना सरचना ही कैसे सम्भव हो सकती है। इस अर्थ-वैचित्र्य को ही तो अलकार कहा जाता है। अत केवल अलकार नाम दे देने से ही विशिष्ट अर्थो को अनीप्सित नही कहा जा सकता। श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती कवि या उनके समकालीन अन्य कवि भले ही चमत्कार को ही काव्य का लक्ष्य मानकर रचनाए करते रहे हो परन्तु श्रीहर्ष का उद्देश्य वैसा नही था। वे एक ओर तो कालिदासादिक कवियो के मुख्य कर्म को अपनी दृष्टि मे रखे हुए थे तो दूसरी ओर भारवि एव माघ का सम्मान भी उनकी दृष्टि से ओझल नही था। वे किसी ऐसे मार्ग की खोज मे थे जिसपर कालिदास, भारवि तथा माघ की त्रिवेणी को प्रवाहित किया जा सकता। सौभाग्य से वह मार्ग उन्हे आनन्दवर्धन तथा अभिनव ने दिखा दिया। उसी पथ पर प्रवाहित श्रीहर्ष का यह नैषधीयचरित महाकाव्य कालिदास, भारवि तथा माघ की काव्यधाराओ का एकीभूत प्रवाह है। इसीलिए नैषधीयचरित मे प्रतिभा तथा पाण्डित्य का अपूर्व सगम दृष्टिगत होता है। पाण्डित्य केवल शास्त्रज्ञान को ही नही कहा जा सकता। पाण्डित्य का निकष तो अभिव्यक्ति की विधा ही हो सकती है। एक पण्डित किसी सामान्य विषय को भी इस प्रकार प्रस्तुत कर सकता है कि दर्शक देखता रह जाए। एक पण्डित कवि अपनी प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति के बल पर काव्य की आत्मा को ऐसा रूप दे देता है जो सवेद्य ही नही आकर्षक भी होता है। श्रीहर्ष ऐसे ही प्रतिभाशाली पण्डित कवि थे उन्होने जिस अतिशयोक्ति का नैषध मे प्रयोग किया है वह भामह की अतिशयोक्ति न होकर आनन्दवर्धन तथा अभिनव सम्मत अतिशयोक्ति है। अतएव वह चमत्कार प्रदर्शन-हेतुस्वरूप न होकर रसात्मकता की आधायक है। जैसाकि लोचनकार ने स्वीकार किया है

तथाहि—अनया अतिशयोक्त्या, अथ सकलजनोपयोग पुराणीकृतोऽपि विचित्रतया भाव्यते। तथा प्रमदोद्यानादिभि विभावता नीयते। विशेषेण च भाव्यते रसमयी क्रियते इति तावत्तेनोक्त तत्र कोऽभावर्थ इत्यत्राह-अभेदोपचारात् सैव सर्वालकाररूपेति। ध्व० लोचन पृ० ११६५।

अत डॉ० शुक्ल न श्रीहर्ष को अधोलिखित श्लोक के आधार पर जो वक्रोक्तिमार्ग का अनुयायी स्वीकार किया है वह समुचित नही प्रतीत होता

निषेधवेषो विधिरेष तेऽथवा तवैव युक्ता खलु वाचि वक्रता।
विजृम्भित यस्य किल ध्वनेरिद विदग्धनारी-वदन तदाकर ॥ नै० ६-५०।

वस्तुत यहाँ पर वक्रोक्ति की ध्वनिमार्ग मे प्रधानता विवक्षित न होकर निषेध मे विधिस्वरूप अर्थ का जोकि ध्वनिकाव्य का एक विशिष्ट प्रकार होता है, दमयन्ती की वाणी म होना विवक्षित है। जैसाकि मल्लिनाथ ने स्वीकार किया है

हे विदग्घे ! अथवा तव इन्द्रादिनिषेधो निषेधवेधो निषेधाकारो विधिरंगीकार एव । तथाहि वाचि वचने वक्रता वक्रोक्तिचातुरी व्यंग्योक्तिचातुरीति यावत् सा तवैव युक्ता खलु । कुत इद वक्रवाक्य वञ्चनाचातुर्य यस्य ध्वनेर्व्यजकत्वे विजृम्भितम् विजृम्भण विदग्धनारीवदन सूक्तिचतुरस्त्रीमुख तदाकर तस्य ध्वनेरुत्पत्तिस्थानमिति अर्थान्तरन्यास । नै० जीवातु ६-५० ।

इसी प्रकार डॉ० शुक्ल ने जो अधोलिखित श्लोक को श्लेष के कारण ही वचनभगी की उत्कृष्टता का द्योतक माना है, वह भी समीचीन नही है

सा भगिरस्या खलु वाचि कापि यद्भारती मूर्तिमतीयमेव ।
श्लिष्ट निगद्यादृत वासवादीन्, विशिष्य मे नैषधमप्यवादीत् ।।

नै० १४-१४ ।

यहाँ पर श्रीहर्ष ने श्लेष के कारण वचनभगी की उत्कृष्टता का प्रतिपादन कर वक्रोक्ति की प्रधानता को न स्वीकार कर सरस्वती के उस कौशल की प्रशसा की है जिसके फलस्वरूप वह इन्द्रादि देवताओं तथा दमयन्ती दोनो की ही प्रिय बनी रहती है । अत इस श्लोक के आधार पर ही उन्हे दण्डी का अनुयायी मान लेना भी सगत नही प्रतीत होता । भले ही दण्डी न श्लेष को वक्रोक्ति मे शोभाधायक क्यो न माना हो ।

श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्राया वक्रोक्तिषु श्रियम । काव्यादर्श-२-३६३ ।

दण्डी के इस कथन के अनुसार श्लेष वक्रोक्ति मे श्रीवृद्धि करता है । इसका अर्थ यह हुआ कि श्लेष तथा वक्रोक्ति एक नही भिन्न-भिन्न है । परन्तु उपर्युक्त श्लोक मे सरस्वती की जिस वाणीगत भगिमा की प्रशसा की गई है वह श्लेष मे भिन्न नही है । जैसा कि प्रकाश व्याख्याकार ने स्पष्ट किया है •

यद्यस्मादस्या वाचि कापि लोकोत्तरा भगि रचनास्ति तस्यादित्यर्थ । यस्मादियमेव मूर्तिमती भारती तस्मादस्या वचन निश्चित सा कापि भगिरस्तीति वा । तामेव भगीमाह—यत् श्लिष्टमुभयसम्बद्ध वचा निगद्यास्पष्टमुक्त्वा वासवादीनादृत गौरवेणावणयत् । नै० प्रकाश व्याख्या १८-१८ ।

उपर्युक्त विवेचन तथा नैषधीयचरितगत अलकार-योजना पर दृष्टिपात करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि नैषधीयचरित मे श्रीहर्ष ने भामह, कुन्तक या दण्डी का अनुसरण न कर रस सम्प्रदाय के अनुयायी आनन्दवर्धन तथा अभिनव द्वारा निर्दिष्ट उपायो के अनुरूप ही अलकार-योजना की है । उन्होने केवल चमत्कार-प्रदर्शन हेतु अलकार-सघटना नही की है । त्रयोदश सर्ग मे श्लेष अलकार का अधिक प्रयोग भी परिस्थितियो के अनुरूप है । तथापि यह स्वीकार करना ही होगा कि श्रीहर्ष केवल कवि ही नही है, वे एक उच्चकोटि के पण्डित भी हैं । अत उनकी रचना मे पाण्डित्य का आभास होना स्वाभाविक ही है ।

अविरुद्ध रसों का ही नैषध मे समावेश किया है। यदि उन्होंने वहाँ पर विरुद्ध रसों की योजना की भी है तो लक्षण-ग्रन्थकारों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण कर उन विरुद्ध रसों का विरोध शमन कर लिया है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित सदर्भों को उद्धृत किया जा सकता है

शृगार तथा अदभुत यह दोनों रस परस्पर विरुद्ध होते हैं। परन्तु यदि इनकी अगागिभाव के रूप मे योजना की जाती है तो विरोध-प्रतीति नही होती

ननु येषा रसाना परस्परविरोध यथा—शृगाराद्भुतयोर्वा तत्र भवत्वगागिभाव। ध्व० पृ०६८६।

श्रीहर्ष ने प्रथम सर्ग मे उपर्युक्त दोनों रसों का क्रमिक सन्निवेश किया है। उन्होंने ३१वें श्लोक मे ५५वें श्लोक तक नल-दमयन्तीगत रतिवासना की व्यजना करने के अनन्तर ५३वें श्लोक से ७५वें श्लोक तक नल के विस्मयाभिव्यजक अश्व तथा उपवन-गमनादि का वर्णन किया है। परन्तु नल की यह विस्मय-जनकता नल की काम्यता की व्यजना कर शृगार रस की अग बन जाती है। इस प्रकार अग बन जाने से ही उपर्युक्त सदर्भगत विस्मय शृगार का पोषक बन जाता है। परन्तु श्रीहर्ष ने केवल विस्मय को शृगार का अग बनाकर ही उन दोनों रसों के परस्पर विरोध का शमन नहीं किया है, अपितु विस्मय तथा शृगार की भिन्न भिन्न आश्रयों मे योजना कर उन्होंने उस विरोध के लिये किंचिन्मात्र भी अवकाश नही रहने दिया है। उपर्युक्त सदर्भ मे उन्होंने शृगार रस की नल-दमयन्ती को आश्रय बनाकर तथा विस्मय की पुरवासियों को आश्रय बनाकर योजना की है। भिन्नाश्रयों मे उपनिबद्ध होने के कारण उनका विरोध-शमन हो जाता है। इसके साथ-साथ परस्पर विरुद्ध रसों मे यदि अगी-भिन्न रस का सम्यक् परिपोष नही किया जाता तो भी विरोध प्रतीत नही होता

अविरोधी विरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे।
परिपोष न नेतव्यस्तथा स्यादविरोधिता ॥ ध्व० ३-८०।

नैषधगत उपर्युक्त सदर्भ पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यह स्वत स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने यहाँ पर शृगार रस की तुलना म अद्भुत रस का परिपोष भी कम ही किया है।

इसी प्रकार प्रथम सर्ग के अग्रिम भाग मे भी श्रीहर्ष ने श्लोक सख्या ७८ मे १०४ तक नलगत रतिवासना की व्यजना की है तथा उसके उपरान्त श्लोक सख्या १२४ तक नलगत विस्मय की व्यजना की है। परन्तु यहाँ पर भी श्रीहर्ष ने शृगार की अपेक्षा अद्भुत रस का न्यून मात्रा मे ही परिपोष किया है। इसके साथ साथ नलगत रतिवासना तथा विस्मय का उद्बोध भी विभिन्न विभावों के द्वारा किया है। रतिवासना का उद्बोध दमयन्ती की स्मृति तथा उपवनादि के दर्शन से होता है तथा विस्मय का उद्बोध तडाग एव हस के दर्शन से होता है। अतएव

विभिन्न विभावों के साक्षात्कार से उद्बुद्ध होने के कारण तथा शृंगार की प्राधान्येन एवं अद्भुत की अपरिपुष्ट योजना करने के कारण यहाँ पर भी शृंगार तथा अद्भुत रसों का विरोध-शमन हो जाता है।

शान्त तथा शृंगार रस का नैरन्तर्य विरोध होता है। अतः इनकी योजना किसी अन्य रस का व्यवधान लाकर की जाती है

य पुनरेकाधिकरणत्वे निर्विरोधी, नैरन्तर्ये तु विरोधी, स रसान्तरव्यवधानेन प्रबन्धे निवेशयितव्यः। यथा शान्तशृंगारौ नागानन्दे निवेशितौ। ध्व० पृ० ८०१।

श्रीहर्ष ने इन विरुद्ध रसों की योजना भी नैषध में की है। परन्तु उन्होंने उपर्युक्त रीति से इन दोनों रसों के मध्य में अन्य रस की योजना कर शृंगार तथा शान्त रस में विरोध नहीं आने दिया है। इक्कीसवें सर्ग के प्रारम्भ में श्रीहर्ष ने शान्त रस की विशद योजना की है। उस सर्ग का अवसान उन्होंने नलगत रतिवासना की व्यंजना करते हुए किया है। परन्तु इन दोनों रसों के मध्य में विस्मयाभिव्यञ्जक सखियों के वीणा-वादन तथा शुक के द्वारा किए गए नल-दमयन्ती के स्तव का सन्निवेश कर देने के कारण शान्त तथा शृंगार रसों में किसी प्रकार की विरोध-प्रतीति नहीं होती।

इसी प्रकार शृंगार तथा करुण रस भी विरुद्ध रस होते हैं। श्रीहर्ष ने इन दोनों रसों का क्रमिक सन्निवेश भी किया है। परन्तु युक्तिपूर्वक उन दोनों रसों का किया गया सन्निवेश नैषध के रसात्मक महत्त्व को द्विगुणित कर देता है। दमयन्ती को जब यह निश्चित हो जाता है कि वह नल को नहीं प्राप्त कर सकेगी और देवता उसके मनोरथ को सफल नहीं होने देंगे तो वह अपनी समीहा के निष्फल हो जाने के कारण करुण विलाप करने लगती है (६-८८-१००)। श्रीहर्ष ने दमयन्ती के इस करुण विलाप के अव्यवहित अनन्तर में ही नलगत उद्दाम रतिवासना की विशद व्यंजना की है (नै० ६-१००-१२०)। श्रीहर्ष ने यहाँ पर करुण रस के आश्रय को शृंगार रस का आलम्बन बनाया है। यद्यपि सामान्य स्थिति में करुण रस के आश्रय को शृंगार रस का आलम्बन बनाना असमुचित ही होता है। परन्तु उपर्युक्त प्रकरण में उपनिबद्ध यह दोनों रस निश्चित रूप से भाव प्रवण बन गये हैं। जिस नल को प्राप्त करने की आशा के नष्ट हो जाने के कारण दमयन्ती विलाप रही थी उसी नल को दमयन्ती के करुण-क्रन्दन को सुनने से उन्होंने उनाकर तथा उसके संयम को छिन्न-भिन्न कर नैरन्तर्य में प्राण-संचार कर दिया गया है। इस प्रकार यहाँ पर करुण शृंगार का अंग बनकर उसका अंग हो जाता है। अतः इन दोनों रसों में विरोध नहीं प्रतीत होता

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने अन्यत्र भी विरुद्ध रसों का समावेश विरोधशमनकारी उपायों का अनुसरण करते हुए ही किया है। फलतः नैषधगत विरुद्ध रस भी मित्र रसों की भांति नैषध के रसयोजनात्मक महत्त्व की अभिवृद्धि ही करते हैं।

नैषधीयचरित का मूल्यांकन

साहित्यिक महत्त्व

नैषधगत रसादिकों तथा रसादिकों के व्यंजक विभिन्न तत्त्वों से सम्बद्ध समस्त विवेचन पर दृष्टिपात करने के अनन्तर यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष अपनी योजना के अनुरूप नैषध में शृंगार-प्रधान सरसता का आधान करने में पूर्ण सफल रहे हैं। आदि से अंत तक उन्होंने लक्षण-ग्रन्थकारों के द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न पथों का अनुसरण करते हुए अपनी बहुरंगी कल्पनाओं के द्वारा नैषध में रमणीयता का समाहार कर लिया है।

श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दी के कवि हैं। बारहवीं शताब्दी तक साहित्य-क्षेत्र में भरत, आनन्दवर्धन तथा अभिनव जैसे काव्य-ममज्ञ-मनीषियों का प्रादुर्भाव हो चुका था। नैषधीयचरित के गठन तथा नाट्य-शास्त्र, अभिनव-भारती, ध्वन्यालोक एवं लोचन पर युगपत् दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने भरत, आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त के द्वारा प्रदर्शित उपायों के आधार पर नैषधीयचरित की रचना की है। पूर्ववर्ती अध्यायों में उद्धृत भरत, आनन्दवर्धन तथा अभिनव के निर्देशों तथा उन निर्देशों की पृष्ठभूमि में की गई नैषध की रस-योजना मूलक समीक्षा पर दृष्टिपात करने के अनन्तर इस तथ्य की सत्यता स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि श्रीहर्ष ने उपयुक्त तीनों मनीषियों को अपना आधार बनाया है परन्तु चूंकि अभिनव की व्याख्याओं में मूल-ग्रन्थकारों की अपेक्षा विभिन्न विषयों को अधिक उभार कर प्रस्तुत किया गया है। अतएव नैषध में अभिनव के निर्देश प्रधान रूप से अनुगत दृष्टिगत होते हैं। और यह तथ्य निर्विवाद है कि अभिनव रसतत्त्व समीक्षकों में अद्यावधि अभिनव बने हुए हैं। अतः उनके उन निर्देशों के अनुरूप जिनका मूल रसमार्ग-प्रवर्तक भरत तथा आनन्दवर्धन की अमूल्य कृतियों में निहित है, सघटित किसी रचना के साहित्यिक महत्त्व के बारे में दो मत नहीं हो सकते।

नैषधीयचरित की अनेकों टीकाएँ की गई हैं। टीकाएँ केवल विशिष्ट ग्रन्थ की ही की जाती हों, ऐसी बात नहीं। जो ग्रन्थ लोक-प्रचलित न होता दूसरे शब्दों में जो ग्रन्थ बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय न होता उस ग्रन्थ की टीका कर कोई समय एवं श्रम का अपव्यय ही क्यों करता। इसी प्रकार अनेकों प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों ने नैषधीयचरित की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। यह दोनों तथ्य भी नैषधीयचरित की महत्ता के सूचक हैं।

परन्तु श्रीहर्ष ने अपनी प्रतिज्ञाओं के अनुरूप नैषध में सरसता का सञ्चार करने के साथ-साथ यत्र-तत्र ग्रन्थियों के विन्यास एवं नवार्थ-घटनाओं के प्रति अपना

आग्रह भी प्रदर्शित किया है। अनेक विस्तृत वर्णन तथा दुरूह कल्पनाओं के अम्बार उनकी इस धुन के जीवित उदाहरण हैं। यद्यपि उन्होंने उन वर्णनों तथा सूक्ष्म कल्पनाओं की पृथक् रूप से योजना न कर एक महाकाव्य के अंग के रूप में ही उनकी योजना की है। परन्तु विभिन्न भाव-भंगिमाओं से समन्वित होने हुए भी उन विस्तृत वर्णनों तथा दुरूह कल्पनाओं के गुल्मों में सामान्य पाठक ऊब सकता है। अतएव एक ओर नैषधगत सरस प्रसंग जिनका नैषध में बाहुल्य है, यदि पाठक को आनन्द-विभोर कर सकने में समर्थ होने के कारण अनुपमेय हैं तो दूसरी ओर उसके विस्तृत वर्णन तथा सूक्ष्म कल्पनाओं की संकीर्ण वीथियां सामान्य पाठक के लिए अनीप्सित हैं। श्रीहर्ष ने जिस श्रेणी के पाठकों को ध्यान में रखकर नैषध में विस्तृत वर्णनों तथा सूक्ष्म कल्पनाओं का संघटन किया है उन पाठकों को नैषध के समस्त प्रकरण भले ही मन्त्र-मुग्ध कर दें परन्तु सामान्य पाठक उन वर्णनों तथा दुरूह कल्पनाओं में रसास्वादन करने की अपेक्षा नैषधगत सरस प्रसंगों में रमना अधिक पसंद करेगा।

दार्शनिक महत्त्व

दार्शनिक दृष्टि से भी नैषधीयचरित महाकाव्य संस्कृत साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। श्रीहर्ष का प्रगाढ़पाण्डित्य इस महाकाव्य में सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है। समस्त आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों के अनेकानेक सन्दर्भ इस महाकाव्य में भरे पड़े हैं। परन्तु नैषधीयचरित की रचना करते समय श्रीहर्ष का लक्ष्य एक दार्शनिक काव्य की रचना करना न होकर एक सरस महाकाव्य की रचना करना ही था। अतः इस महाकाव्य में किसी दर्शन का सांगोपांग समायोजन न होकर अनेक दर्शनों का प्रासंगिक विवरण मात्र ही उपलब्ध होता है। अपने दार्शनिक ज्ञान को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने खण्डन-खण्ड खाद्य जैसी अमर रचना को जन्म दिया है। तथापि यह स्वीकार करना ही होगा कि नैषधीयचरित हमें तत्कालीन अनेक दर्शनों की कुछ जानकारी ही नहीं प्रदान करता अपितु वह अनेक दार्शनिक मान्यताओं की आधार शिला पर स्थित एक भव्य प्रासाद का प्रतिरूप प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक महत्त्व

महाकाव्य ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहास ग्रन्थ नहीं होता। उसकी ऐतिहासिकता कवित्व से अनुरागित होती है। अतः किसी महाकाव्य से यह आशा करना कि वह ऐतिहासिक होने के कारण इतिहास के बारे में बहुत कुछ कहेगा ही, समुचित न होगा। नैषधीयचरित का अध्ययन भी हमें इसी दृष्टिकोण से करना चाहिए।

नल-दमयन्ती के जीवन पर आधारित नैषधीयचरित में महाभारत के नलोपाख्यान का प्राधान्येन अनुसरण किया गया है। अत महाभारत के अनुरूप नल-दमयन्ती के जीवन की जो घटनाएँ नैषधीयचरित में अंकित की गई हैं उन्हें ऐतिहासिक ही कहा जाएगा। इसी प्रकार दमयन्ती-स्वयवर के सन्दर्भ में किया गया अनेक राजाओं का वर्णन पुराणों के अनुरूप होने हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। श्रीहर्ष ने इन राजाओं में अनेक राजाओं के नाम, राज्य तथा राजधानियों आदि का भी उल्लेख किया है। कान्यकुब्जेश्वर का नैषधीयचरित के अन्त में सकीर्तन तथा विजयप्रशस्ति नामक रचना का नैषध में उल्लेख असन्दिग्ध ऐतिहासिक महत्त्व का है। इसी प्रकार नैषध के प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने स्वय अपने, अपनी रचनाओं तथा माता एव पिता आदि के बारे में जो कुछ कहा है उसके आधार पर श्रीहर्ष के स्वय तथा उनके परिवार के बारे में हमें बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है। तथापि यह स्वीकार करने में हमें कोई सकोच नहीं होना चाहिए कि नैषध हमें पर्याप्त ऐतिहासिक जानकारियाँ नहीं प्रदान करता।

पौराणिक सन्दर्भों के उल्लेखों में भी श्रीहर्ष ने पौराणिक दृष्टि को ही अपनाया है ऐतिहासिकता की उपेक्षा की है। जैसे कृतयुग में उत्पन्न नल के द्वारा त्रेता-युगीन हनुमान के दौत्यकार्य का स्मरण किया जाना ऐतिहासिक दृष्टि से असगत है

स्वनाम यन्नाम मुधाभ्यधामह
महेन्द्रकार्यं महदेनदुज्झितम्।
हनूमदाद्यैर्यशसा मया पुन-
र्द्विषा हसैर्दूतपथ सितीकृत ॥ नै० ९-२२।

इसी प्रकार अनेक स्थानों पर श्रीहर्ष ने इतिहास-विरुद्ध तथ्यों का वर्णन किया है। परन्तु पौराणिक दृष्टि सृष्टि को अनादि मानती है। अत पूर्ववर्ती कल्पों की घटनाओं का स्मरण इतिहास-विरुद्ध नहीं माना जाता। जैसा कि पूर्व प्रसग में मल्लिनाथ ने स्वीकार किया है

अत्र हनुमद्ग्रहण पूर्वकल्पाभिप्रायमन्यथा कृतत्रेतावतारपुरुषयो पौर्वापर्यविरोधादिति भाव। नै० जीवातु ९-२२।

यही स्थिति अन्य अनेक स्थानों पर है।

भौगोलिक महत्त्व

ऐतिहासिक तथ्यों के समान भौगोलिक विवरण भी नैषधीयचरित में कम उपलब्ध होते हैं। दमयन्ती-स्वयवर में उपस्थित राजाओं का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने सात द्वीपों का वर्णन किया है। परन्तु उनका यह वर्णन भौगोलिक कम पौराणिक आवृत्ति अधिक है। जम्बू-द्वीप के राजाओं का वर्णन करते हुए उनकी

राजधानियो का भी वर्णन किया गया है। परन्तु इन वर्णनो मे भौगोलिक स्थिति का ध्यान नही रखा गया है। अवन्ती मे गौड देश तथा वहाँ से मथुरा एव मथुरा से काशी तथा वहाँ से अयोध्या मे वे पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार अन्य राजधानियो के वर्णन मे भी किसी प्रकार का क्रम-निर्वाह नही है। परन्तु इसके लिए उन्हे दोषी नही ठहराया जा सकता क्योकि वे स्वयवर मे उपस्थित राजाओं का वर्णन उसी क्रम से कर रहे थे जिस क्रम मे वे बैठे थे, राजधानियो के क्रमिक अवस्थान की दृष्टि से नही। इस सन्दर्भ मे श्रीहर्ष ने अवन्ती के साथ उज्जयिनी नगरी तथा शिप्रा नदी, मथुरा के साथ यमुना, वृन्दावन एव गोवधन पर्वत तथा अयोध्या के साथ सरयू का उल्लेख भी किया है जो निश्चित रूप से भौगोलिक महत्त्व का है। निषध प्रदेश तथा विदर्भ प्रदेश एव उसकी राजधानी कुण्डिनपुर का वर्णन भी भौगोलिक महत्त्व का है।

बदरिकाश्रम के निकट स्थित कल्पग्राम की सत्ता (२०—१०५) तथा काशी के निकट असी के पार नलपुर का बसना (१४-७५) भी भौगोलिक तथ्य है। इसी प्रकार सरस्वती (६ ४), यमुना (२-१०३), ताम्रपर्णी (२०-२१) तथा गगा (२०-१५६) आदि नदियो का सकीर्तन तथा गोवर्धन (११-१०७), हिमालय (१२-४७), मेरु (२१-२८), कैलास (२१-२८), मलय (२-५७) तथा विन्ध्याचल (५-१३०) आदि पर्वतो के सन्दभ तथा विभिन्न समुद्रो (२०-२, २१-५७) एव दारुवन (१८-२४) तथा वृन्दावन का उल्लेख भी भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषधीयचरित मे महत्त्वपूर्ण भौगोलिक सामग्री भी यत्किंचित् मात्रा मे उपलब्ध हो जाती है।

सास्कृतिक महत्त्व

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। भरत मुनि ने अनेकश इस तथ्य की आवृत्ति की है

लोकवृत्तानुकरणम् नाट्यमेतन्मया कृतम। ना० शा० १-११२।
योऽय स्वभावो लोकस्य सुख-दु ख समन्वित ।
साऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते॥ ना० शा० १-११६।
नानाशीला प्रकृतय शीले नाट्य प्रतिष्ठितम्। ना० शा० २५-१२३।

यदि उपर्युक्त दृष्टिकोण से नैषधीयचरित का सास्कृतिक अध्ययन किया जाए तो यह स्वीकार करने मे किंचित् मात्र भी सकोच नही होना चाहिए कि नैषधीयचरित से तत्कालीन समाज की स्पष्ट छवि ज्ञात हो जाती है तथा श्रीहर्ष ने अपने युग की अनेकानेक विशेषताओ को अपने इस महाकाव्य म ज्ञात अथवा अज्ञात रूप मे समाहित किया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित विषयो को लिया जा सकता है।

आवास-व्यवस्था

श्रीहर्ष के समय में भवन-निर्माण-कला पर्याप्त विकसित अवस्था में विद्यमान थी। श्रीहर्ष ने कुण्डिनपुर का जो वर्णन नैषध में किया है वह नितान्त काल्पनिक न होकर तत्कालीन राजधानियों का परिचायक है। कुण्डिनपुर के भवन या यों कहें कि तत्कालीन राजभवन जिन्हें श्रीहर्ष सौध नाम से अभिहित करते हैं, ऊँचे-ऊँचे तथा सुधा-धवल होते थे (२-७२, ६-४७)। भवनों पर पताकाएँ फहराती रहती थीं (२-८०)। ज्ञात होता है कि भवनों पर पताकाओं का फहराना उस समय काफी लोक-प्रिय था। अतएव श्रीहर्ष ने इसका अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है (२-६६, १०३, १०-७, ११-६)। भवन के स्तम्भ शालभञ्जिकाओं से सुसज्जित होते थे तथा भवनों के ऊपर भी सिंहादिकों की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं (२-८३)। भवनों पर कलश बनवाने की प्रथा थी (१०-१२१)। राजधानियों को प्राकार से परिवेष्टित किया जाता था। प्रवेश के लिए उसमें विशाल कपाटों से युक्त द्वारों का प्रबन्ध होता था (२-८६-८७)। परकोटे के बाहर एक गहरी तथा चौड़ी परिखा भी बनाई जाती थी (२-८९)। इन सब का सुरक्षा की दृष्टि से निर्माण किया जाता था। नगर के मध्य में बाजार होता था जिसमें विविध वस्तुओं का क्रय-विक्रय हुआ करता था (२-८८ ९२)। भवनों की दीवारों को सजाने के लिए उन पर चित्र बनाए जाते थे (२-९८)। राजभवनों के द्वार पर पहरेदार सन्तरी खड़े रहते थे (६-१०-११)। नगरों में आवागमन के लिए राजपथ होते थे (१०-४, १६-८३)। यत्र-तत्र चतुष्पथ भी होते थे (६-२८-२७)। भवन पंक्तियों में बने होते थे (६-३६, ११-६)। शुभ अवसर पर भवनों व राजपथों को तोरणों, मालाओं तथा चित्रों आदि से सजाने की भी प्रथा प्रचलित थी (१६ १३ १८, १२१, १५ १२-१४)।

कुण्डिनपुर के उपर्युक्त वैभव के समान ही श्रीहर्ष ने नल के नगर का भी वैभवपूर्ण वर्णन किया है। नल-नगर का उद्यान जोकि तत्कालीन राजभवनों से सम्बद्ध आरामों का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है, विशेष रूप से रमणीय था। उस उपवन में स्थित विविध वृक्षों, लताओं तथा क्रीडा-सरोवर का श्रीहर्ष ने जो सन्निविष्ट चित्रण किया है उसे श्रीहर्ष के द्वारा अनुभूत उपवन विहार का प्रतिफलन समझना चाहिए (१-७४-११६)। उपवन का राज-भवन के निकट होना वैभव एवं विलासिता का द्योतक समझा जाता था। राज-परिवार के लोग मनोविनोद तथा विहार के लिए इसका उपयोग करते थे। इसी लिए श्रीहर्ष ने उपवन-वर्णन केवल नल-नगर के सम्बन्ध में ही नहीं किया है, अपितु कुण्डिनपुर के वर्णन में भी उन्होंने वैदर्भी के विहार के लिए एक उपवन की व्यवस्था की है (२-१०६)। नल का नगर भी राजपथों से युक्त था। जब वह दमयन्ती को स्वयंवर में प्राप्त कर उसके साथ

अपने नगर में प्रवेश करता है तो उसका नगरवासी भाव-भीना स्वागत करते हैं। नगर-शालायें भवनों में निर्मित वातायनों से जो तत्कालीन भवनों में विशेष रूप से बनाए जाते थे, नल का दर्शन करती हैं (१६-१२५-१२८)। दमयन्ती के साथ नल जिस नवनिर्मित भवन में प्रवेश करता है उसकी शोभा तथा साज-सज्जा तो अनुमेय थी (१८-५-२८)। उसका अपना यह भवन सात तल्ला का था (२२-१)। काम-शास्त्र में निर्दिष्ट सभी उपकरणों से उसे अलङ्कृत किया गया था। नल-नगर एवं भवन-वर्णन को भी श्रीहर्ष-कालीन नगरों एवं भवनों का प्रतिबिम्ब समझना चाहिए।

इन समस्त सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजभवन तथा राजधानियाँ सुरक्षा की दृष्टि से विश्वसनीय एवं साज-सज्जा की दृष्टि से सुरुचि एवं विलासिता की द्योतक होती थीं। यद्यपि ग्रामीण बस्तियों की ओर नैषध में संकेत नहीं किया गया है परन्तु राजधानियों में रहने वाले व्यक्तियों के भवनों तथा उनमें स्थित वातायनों, राजपथ एवं बाजारों आदि का श्रीहर्ष ने जो वर्णन किया है वह शहरी आवास-व्यवस्था की झलक उपस्थित ही कर देता है।

राजकर्मचारी

नैषधीयचरित के अनुसार उस समय अनेक कर्मचारी राज्य तथा राजभवनों में कार्य किया करते थे। राज्य का प्रधान कर्मचारी अमात्य होता था। यह इतना अधिक योग्य तथा विश्वास-पात्र होता था कि राजा अपने समस्त उत्तरदायित्व को उस पर छोड़ देता था (१८ ३)। अमात्यों की संख्या एक से अधिक होती थी। यह मन्त्री राजा के राज्य से बाहर होने पर समस्त कार्यों की देख-रेख स्वयं करते थे तथा राजा के वापस आने पर पुर में प्रवेश करने के पहले ही उससे मार्ग में जाकर मिलते थे तथा उन्हें राज्य का समाचार सुनाते थे तथा राजाओं के समाचार को भी सुनते थे (१६-१२३-१२४)। श्रेष्ठ मन्त्री आवश्यकता पड़ने पर राजा के साथ उसके अन्तःपुर तक में आ-जा सकते थे (४ ११६)। श्रीहर्ष के द्वारा मन्त्रिप्रवर शब्द का प्रयोग किए जाने से ज्ञात होता है कि कुछ सहायक मन्त्री भी होते थे। मन्त्री अन्य कर्मचारियों की सहायता से राज्य के कार्य किया करते थे।

राज भवनों में कार्य करने वाले सेवकों में कञ्चुकी मुख्य कर्मचारी होता था। अन्य सेवक तथा सेविकाएँ उसकी आज्ञा का पालन किया करती थीं (२०-१३८-१३९)। द्वारपाल का कार्य रक्षाधिकारी किया करते थे। यह सशस्त्र रक्षक सर्वदा चौकन्ने रहते थे (६ १०)। अन्तःपुर में इनकी दृष्टि से बचकर प्रविष्ट हो जाना आसान काम नहीं होता था (८ २६)। प्रतीहारों के समान ही अन्तःपुर के अन्दर प्रतीहारियाँ होती थीं जो दण्ड धारण किये रहती थीं (६-३८)। सन्देश-प्रेषणादि के लिये दूत तथा दूतियाँ होती थीं। दूत पर्याप्त कुशल तथा मेधावी होते थे। यह

राज्य के महत्त्वपूर्ण सदेशों का आदान-प्रदान भी करते थे। दूतियाँ अन्तःपुर मे सदेश ले जाने का कार्य करती थी (५-५६-६६)। राज-परिवारो में कुल-पुरोहित भी होता था। यह धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न करने में राजा की सहायता किया करता था (२१-८)।

अन्तःपुर के अन्दर अनेक दासियाँ होती थी। राजकुमारियाँ इनके साथ सखियो जैसा व्यवहार किया करती थी। अतः वे मौका मिलने पर राजकुमारियों की हँसी तक उड़ा सकती थी (३-६ ६, २०-१२१, १२३, १३७)। स्वास्थ्य की देखभाल के लिये राजवैद्य भी होते थे (४-११६)। वैतालिक राजाओ को प्रातःकाल मे स्तुति के द्वारा जगाने का कार्य किया करते थे (१९ १)। इसी प्रकार वृद्ध-सुन्दरियाँ भी होती थी जो अन्तःपुर मे स्थित राजा के पास समयादि की सूचना ले जाने का कार्य किया करती थी (२०-१५८)। वस्त्रादि के प्रक्षालन के लिये रजक तथा रजकी होते थे (२२-१११)। रथ हाँकने के लिये सूत(सारथी) होते थे (५ ६०)। इसी प्रकार शिविका ढोने के लिये इस कार्य मे कुशल यानवाहक रखे जाते थे (११-१२ ३४)। इसी प्रकार अन्य उपयोगी कर्मचारी भी राजभवनो तथा राज्य मे कार्य किया करते थे।

उपयोगी उपकरण

तत्कालीन दैनिक जीवन के लिए उपयोगी अनेक उपकरणो की जानकारी भी नैषधीयचरित से प्राप्त होती है। बाजारो मे चलने वाली चक्कियाँ (घरट्ट) सत्तू आदि पीसने के काम आती थी (२-८५)। तेल आदि निकालने के काम मे आने वाले कोल्हू जैसे यन्त्र का उपयोग भी प्रचलित था (१० ६)। विशेष प्रकार के पत्थरो का प्रयोग कर राजपथो को शीततापनियन्त्रित कर दिया जाता था (२-६३-६४)। नदियो तथा समुद्रादि को पार करने के लिये तरी व पोतो का उपयोग किया जाता था (३-५१, २ ६० १८-१)। ताप-निवारण के लिये किसलय शय्या का प्रयोग किया जाता था (३-१३३)। लेखन-कार्य तथा मसी (स्याही) का प्रयोग प्रचलित था (६-६३)। यत्र-तत्र अस्थायी रूप से सफेद खडिया से भी लिखे जाते थे (२२-५२)। मद्यपान के लिए कलात्मक चषक होते थे (२२-१४४)। शयन मे अच्छे-अच्छे पर्यङ्कों का भी प्रयोग होता था (२०-२३, २२-२)। कलश का अनेक स्थानो पर उल्लेख किया गया है। लेन-देन के लिये बहुमूल्य रत्न से लेकर कौडियो तक का उपयोग किया जाता था (२-८८)। घटादिका का निर्माण चक्र (चाक) पर होता था (२-३२)। यौतक (दहेज) मे चिन्तामणिमाला, असि, कृपाण, असिपुत्रिका (छुरी), रथ, अश्व, पतद्ग्रह (पीकदानी), भोजन-भाजन (थाली) तथा हाथी आदि का दान किया जाता था (१६-१६-३४)। इसी प्रकार दैनिक जीवन मे काम आने वाली अन्य अनेक वस्तुओ का नैषध मे उल्लेख है।

भोज्य-पदार्थ

नैषधीयचरित मे तत्कालीन अनेक भोज्य पदार्थों का भी वर्णन किया गया है। नल की बारात को परोसे गये अनेक स्वादिष्ट, चरफरे एव मधुर पदार्थों मे ओदन, पायस, घृत, दधि, विभिन्न पशुओ का मास, सिता (शर्करा), पानक, गोनक, लड्डू एव शार्करी-पुत्रिका आदि पदार्थ तत्कालीन बारातो मे परोसे जाते थे (१६-६६-१०३)। सत्तू जो तत्कालीन तथा तद्देशीय सामान्य एव विशिष्ट सभी व्यक्तियो का प्रिय भोज्य पदार्थ रहा होगा, बहुत लोकप्रिय था। बाजारो म सत्तू पीसने की चक्किया लगी होती थी (२-८५)। हैयगवीन (नवनीत) एव मधु का भी प्रयोग किया जाता था (३-१३०)। पपट (पापड) एव अपूप का भी श्रीहर्ष ने उल्लेख किया है (२२-१८७, १५-१२)। ताम्बूल का उपयोग तो आम रहा होगा। बारातो मे भी इसे भोजन के बाद दिया जाता था (१६-१०९)। श्रीहर्ष को आदर-स्वरूप कान्यकुब्जेश्वर से ताम्बूल का जोडा प्राप्त होता था। शौकीन लोग पानदान भी रखते थे (६-७२)। पान के चलन के कारण दहेज मे पीकदानी भी दी जाती थी (१६-२७)। इक्षु (गन्ना), खण्ड (खाँड) तथा द्राक्षा भी तत्कालीन भोज्य पदार्थ थे (२१-१५२)। मदिरापान भी चलता था (२१-१४९)। गुडपाक भी चलता था (२१-१५३)। शर्करा-चक्रिकाओ (जलेबियो) का आस्वादन भी किया जाता था (२१-१५५)। दुग्ध तथा द्राक्षासव विशिष्ट पेय थे (२१-१६०)। फलो मे दाडिम, अगूर, आम, बेल, जामुन, केला आदि का भी प्रयोग किया जाता था (१-८२-८३, ८९, ९४, २-३७, ९६, ७-९२ ९३, ११-८५-८६, २१-१५२)। भोजन षड्रस तक होता था (१६ १०८)। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहर्ष ने तत्कालीन समाज मे उपयोग किए जाने वाले अनेक भोज्य एव पेय पदार्थों की चर्चा भी नैषधीयचरित मे की है।

आवागमन के साधन

श्रीहर्ष के समय मे आवागमन का मुख्य साधन रथ था। रथ-सचालन कौशल का द्योतक माना जाता था। सारथी (सूत) रथ का सचालन करते थे। परन्तु राजा लोग स्वय भी इस कला मे निपुण होते थे। अत वे स्वय भी इस कार्य को सम्पन्न करते थे (५-६०, १०-१)। बारात आदि शुभ अवसरो पर भी इस सवारी का प्रयोग किया जाता था (१५-७२, १६-१)। घोडे व हाथी भी सवारी के काम आते थे (१०-८, १६-६-७)। घुडसवार विशिष्ट गति से चलते थे तथा मण्डल बनाकर खडे होते थे (१-६६-७३)। शिविका भी सवारी के काम आती थी। इस पर मुख्य रूप से स्त्रियाँ यात्रा किया करती थी। शिविका को कुछ सेवक जिनकी सख्या चार रहती होगी अपने कन्धो पर ढोया करते थे (११-१२)। श्रीहर्ष ने विमानो

का उल्लेख भी किया है (१५-३-४)। परन्तु इस उल्लेख का आधार पौराणिक प्रतीत होता है। इतिहास १२वीं शताब्दी मे विमानो की सत्ता का समर्थन नही करता। समुद्र एव नदियो मे पोत तथा नौकाएँ यातायात के काम आती थी (२ ६०, ३-५१, १८-१)। यातायात के लिए राजपथ भी होते थे तथा यात्राएँ पर्याप्त मात्रा मे की जाती थी (१०-२-५)।

ज्ञान-विज्ञान

श्रीहर्ष के समय तक भारतीय ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओ का प्रादुर्भाव हो चुका था। दमयन्ती-स्वयवर मे उपस्थित राजाओ का वर्णन करने के लिए उपस्थित सरस्वती का श्रीहर्ष ने जो स्वरूप वर्णन किया है उसे श्रीहर्ष के अपने ज्ञान तथा तत्कालीन ज्ञान विज्ञान की विभिन्न धाराओ का परिचायक कहा जा सकता है (१०-७३-८७)। सरस्वती के अवयवो का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने निम्नलिखित विषयो का उल्लेख किया है

१ गन्धर्व विद्या, २ त्रयी, ३ साहित्य, ४ अथर्ववेद, ५ वेदाग अर्थात् शिक्षा, ६ कल्प, ७ निरुक्त, ८ छन्द, ९ व्याकरण, १० ज्योतिष, ११ मीमासा, १२ न्याय, १३ पुराण, १४ धर्मशास्त्र, १५ बौद्धो के विभिन्न दार्शनिक वाद। श्रीहर्ष के समय मे इन सब विषयो का अध्ययनाध्यापनादि प्रचलित था। प्राय इन विषयो का ही उन्होने चौदह विद्याओ तथा अठारह विद्याओ के रूप मे उल्लेख किया है

अगानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्यायविस्तर ।
धर्मशास्त्र पुराणञ्च विद्या ह्य तादचतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय ।
अर्थशास्त्र चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादश स्मृता ॥ नै० जीवातु १-४-५।

पराध सख्या तक परिगणन किया जाता था (३-८०)। इसी प्रकार जिन चौसठ कलाओ का कामसूत्र आदि ग्रन्थो मे निर्देश किया गया है उनमे अधिकाश कलाओ का प्रदर्शन एव वर्णन भी नैषधीयचरित मे किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष के समय पर इन कलाओ का भी प्रचलन था। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित कलाओ को लिया जा सकता है

१ गानम (१-५२)	२ वाद्यम् (१-१२८)
३ नृत्यम (१-१०२)	४ आलेख्यम् (१८-१२, २०)
५ विशेषकच्छेद्यम् (१५-६२)	६ तण्डुलकुसुमबलिविकारा (२१-३२)
७ पुष्पास्तरणम् (१८-८)	८ दशनवसनागराग (१-५१)
९ मणिभूमिकाकर्म (१८-११)	१० शयनरचनम् (३ १३३)
११ उदकवाद्यम् (१-१०२)	१२ उदकाघात (१-१०६)

१३ चित्रयोग (१३-४३)
१४ माल्यग्रथनविकल्पा (६-६७)
१५ शेखरकापीडयोजनम् (१५-२६, ३१)
१६ ऐन्द्रजाला (१४-७०)
१७ हस्तलाघवम् (२१-६)
१८ विचित्रशाक्पूपभक्ष्यविकार-क्रिया (१६-१०८)
१९ पानकरसरागासवयोजनम् (२१-१६०)
२० सूत्रक्रीडा (१८-१३)
२१ वीणाडमरुकवाद्यानि (१८-१७)
२२ नाटकाख्यायिकादशनम् (१८-२३)
२३ वास्तुविद्या (१८-१२)
२४ मणिरागाकरज्ञानम् (१२-६६)
२५ वृक्षायुर्वेदयोगा (१८-६)
२६ शुकसारिकाप्रलापनम् (१८-१५-१६)
२७ उत्साहन सवाहन केशमर्दने च कौशलम् (२०-७)
२८ निमित्तज्ञानम् (२-६५)
२९ मानसीकाव्यक्रिया (१ १७ १०-५८)
३० समस्यापूर्ति (४-१०१)
३१ छन्दोज्ञानम् (नैपधगत छन्द-प्रयोग)
३२ क्रियाकल्प (१३-५४)
३३ छलितकयोग (१३-४६)
३४ वस्त्रगोपनानि (१५-२१)
३५ द्यूतविशेष (६-७१)
३६ आकर्षक्रीडा (१२-८०)
३७ बाल-क्रीडनकानि (६ ३६)
३८ वैनयिकी (५-१०३)
३९ व्यायामिकी (१०-१)

वात्स्यायन ने इन समस्त कलाओ को अग विद्या माना है (का०सू० पृ० ८४)। नैषध मे इन कलाओं का उल्लेख तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान का परिचायक है।

प्रसाधन

नैषधीयचरित एक सौदर्यमूलक महाकाव्य है। अत सौदयवर्धक साधनो का उसमे प्राचुर्य होना स्वाभाविक ही है। प्रसाधन शोभा की अभिवृद्धि करने के साथ-साथ सुरुचि के भी द्योतक होते है। श्रीहर्ष ने पुरुष तथा स्त्री दोनो की श्रीवृद्धि मे सहायक प्रसाधन-सामग्री का नैषधीयचरित मे अनेकत्र उपयोग किया है।

पुरुष-प्रसाधन

विवाह-मण्डप मे जाने से पूर्व राजा लोग किस प्रकार सजाए जाते थे, श्रीहर्ष ने उसका सुरुचि-पूर्ण अकन किया है। केश-पाशा का सवार कर उनम पुष्पो की कलियाँ गूथी जाती थी। तदनन्तर शिर पर बहुमूल्य रत्न-जटित मुकुट लगाया जाता था। मस्तक पर रत्न-जटित सुवर्ण पट्टिका बाँधकर भ्रकुटियो के पास मध्य मे वर्तुल चन्दन तिलक लगाया जाता था। कानो मे कुण्डल एव कण्ठ मे मुक्तावली पहनी जाती थी। हाथो मे ककण तथा भुजाओ मे मणिबन्ध पहने जाते थे (१५-५७-७१)। मुक्तावली के स्थान पर कभी-कभी मणिमाला भी धारण की जाती

थी (१८-४)। इन आभूषणो के अतिरिक्त चामर, छत्र तथा मालाओ का भी उपयोग किया जाता था (१०-३३, १६-२, २२-१२८)। राजा प्राय क्षौम-वस्त्र पहनते थे। कभी-कभी चीनी रेशमी वस्त्र उनके मार्ग मे भी बिछाया जाता था (२१-२)। स्नानादि के पूर्व यक्ष-कर्दम का शरीर पर तथा कस्तूरी का सिर पर प्रलेप कर वे स्नान करते थे (२१-७)। पूजन के समय पर वे उज्ज्वल तथा झालरयुक्त वस्त्र पहनते थे (२१-१४)। ऊपर से उत्तरीय ओढा जाता था (२१-१५)। वे पैरो मे उपानह धारण करते थे (१-१२३)। विशेष अवसरो पर सेवक भी भली प्रकार सुसज्जित रहते थे (१०-३२)। इसी प्रकार जनसामान्य भी विशेष अवसरो पर अलकृत रहता था (१५-१५)।

नारी-प्रसाधन

श्रीहर्ष ने तत्कालीन स्त्रियो की प्रसाधन-विधि का भी विशद अकन किया है। दमयन्ती-प्रसाधन मे कदाचित् उन्होने तत्कालीन समस्त प्रसाधन-सामग्री का उपयोग कर लिया होगा। विवाहादि के पूर्व राजकुमारिया को कलशो से स्नान कराकर उज्ज्वल दुकूल पहनाए जाते थे तथा कोमल वस्त्र से शरीर पोछकर आमोदयुक्त विलेपन लगाए जाते थे। तदनन्तर मण्डन-क्रिया-कुशल सखियाँ उन्हे अलकृत किया करती थी। सर्व प्रथम मन शिला (मैनसिल) का तिलक लगाया जाता था। तदनन्तर केशो मे पुष्पमञ्जरियाँ एव कलियाँ गूँथी जाती थी। मस्तक पर हाटक-पट्टिका बाधी जाती थी। नेत्रो मे अञ्जन लगाया जाता था। कानो पर कमल के पुष्प लगाकर मणिकुण्डल पहनाए जाते थे। ओष्ठो पर यावक लगाया जाता था। गले मे सात लडो की मौक्तिक-माला पहनाई जाती थी। भुजाओ मे शख-वलय पहने जाते थे। पैरो मे भी यावक लगाया जाता था। अलकृत कर देने के बाद दर्पण भी दिखाया जाता था (१५-१६-५२)।

यह मण्डन तो विवाह-कालीन है। विवाह के पूर्व भी सामान्यतया अञ्जन या काजल का प्रयोग किया जाता था (२-२३, ९-८४)। दर्पण देखना तो साधारण बात थी (१-३१, ४-५९)। हेमकाञ्ची भी पहनी जाती थी (२-३५)। तिलक लगाया जाता था (६-६२)। कर्णफूल (७ ६२), माणिक्यहार (७-७६) तथा मौक्तिकहार (७ ७८) भी धारण किये जाते थे। केशो मे पुष्प गूँथना (७-८७) भी प्रचलित था। वस्त्र अगो मे लिपटे रहते थे (७-९६)। सामान्य व्यक्तियों की स्त्रियाँ प्राय आरकूट के आभरण पहनती थी (९-७८)। अनुलेप तथा कुंकुम आदि का प्रयोग सामान्यरूप से प्रचलित था (९-१३, २०, २९)।

स्वयवरादि के विशेष अवसरो पर राजकुमारियो के मण्डन मे कुछ और विशेषता आ जाती थी। जैसे रत्न-जटित मसृण वस्त्रो का धारण करना (१०-९३), सुगन्धित विलेपन तथा कर्णफूल का उपयोग (१०-९४, ११७), गोरोचन, चन्दन,

कुंकुम तथा कस्तूरी का अनुलेप (१०-९७), रत्न-जटित आभूषण (१०-९८), एवं ताटङ्कयुग्म धारण (१०-११६) तथा चमर (१०-१०४) आदि ऐसे विशिष्ट अवसरों के मुख्य प्रसाधनोपकरण थे।

विवाहोपरान्त सिन्दूर का प्रयोग भी किया जाता था (७-९९, १५-२५, २२-३)। कुमारिकाएँ सिन्दूर का प्रयोग नहीं करती थीं। एकावली सामान्य अवस्था में भी पहनी जाती थी (२०-४७)। चीनी रेशमी वस्त्र स्त्रियों का प्रिय वस्त्र था (२०-१४९)। नगरवालाएँ भी विशेष अवसरों पर अलंकृत हुआ करती थीं (१५-७३, ७५, ८०)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषध तत्कालीन राजपरिवारों एवं सामान्यजनों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्रसाधन-सामग्री की विस्तृत जानकारी हमें प्रदान करता है।

धार्मिक कृत्य

श्रीहर्ष के समय में जन साधारण तथा राजपरिवार दोनों की ही धार्मिक क्रिया-कलापों में आस्था थी। इहलोक तथा परलोक में लोगों का विश्वास था। संसार को क्षण-भङ्गुर तथा मिथ्या माना जाता था तथा धर्म एवं यश आदि के लिए जीवन तक को उत्सर्ग कर देना आदर्श था (५-११८)। लोगों का जीवन-दृष्टिकोण भाग्यवादी था (१-१२०)। देवताओं के पूजन का अभीष्ट संपादक समझा जाता था (१४-१-२)। देवताओं की आराधना प्रणाम, ध्यान, पूजन तथा स्तुति आदि से की जाती थी (१४-३-७)। उन्हें एक ओर कल्पद्रुम (अभीष्ट-संपादक) समझा जाता था तो दूसरी ओर यदि वे विपरीत हों तो सबसे बड़ा विघ्न माना जाता था (९-८३)। विभिन्न सिद्धियों के वे दाता माने जाते थे (१५-१३७)। दैनिक कृत्य को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त था (२०-६, १४)। दैनिक कृत्य के रूप में विधिविधानपूर्वक गंगा आदि के जल में स्नान करने के उपरान्त पवित्र एवं उज्ज्वल वस्त्र धारण कर सर्वप्रथम सूर्य को अर्घ्यदान किया जाता था। तदनन्तर वेद-मन्त्रों का जप करते हुए जल, तिल तथा जौ से पितृतर्पण किया जाता था। दैनिक कृत्य के लिए किसी पवित्र स्थान की व्यवस्था होती थी। देव-पूजन में पुष्पमाला, अगरु, दीप, तिल, कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, शर्करा, दधि, ओदन, विविध पुष्प, विभिन्न नैवेद्य, आभूषण तथा वस्त्र आदि सामग्री का उपयोग किया जाता था (२१-७-३०)। सूर्य की उपासना में श्रौत व स्मार्त मन्त्रों का जप तथा पूजन-सामग्री का उपयोग किया जाता था। तदनन्तर शंकर जी का पूजन किया जाता था। शंकर जी के त्र्यम्बक रूप की उपासना का प्रचलन था। शंकर जी के पूजन में धतूरे का पुष्प, नागकेसर, नीलकमल एवं धूपदीपादि का उपयोग होता था। पूजनोपरान्त ध्यान, साष्टांग, प्रणाम, रुद्रीपाठ, तथा रुद्राक्ष-माला से जप आदि

किया जाता था (२१-३१-४०)। केतकी का पुष्प शंकर-पूजन मे नहीं लगाया जाता था (१-७८)। शिवपूजन के उपरान्त विष्णु-पूजन किया जाता था। विष्णु के पूजन मे पुरुष-सूक्त का पाठ, पूजन-सामग्री से पूजन तथा विष्णु के विभिन्न अवतारो की स्तुति की जाती थी (२१-८१-११७)। पूजनोपरान्त ध्यान एवं दानादि किया जाता था (२१-११८-११६)।

उस समय पर विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान भी सम्पन्न किये जाते थे। नल-नगर मे कवि ने जिन इष्ट तथा पूर्त आदि धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न होता हुआ देखा था व केवल श्रीहर्ष की कल्पना मात्र नहीं हैं। उन व्यापारो का यत्र-तत्र यदा-कदा अनुष्ठान भी अवश्य होता रहा होगा। वेद-पाठ, महिला तथा क्रमपाठ, यज्ञ, अतिथि-सत्कार, धार्मिक स्नान के लिए निर्मित तालाब, पितृतर्पण, स्नान, तिलक, यज्ञयूप, पराक्व्रत, गायत्री-आवाहन, सामयज्ञ, मौन-धारण, कुशासन, आचमन, मौजी-मेखला, पलाश-दण्ड, पुरोडाश, ध्रुवा, सौत्रामणियज्ञ, स्नातक, सर्वमेधयज्ञ, वेदयष्टि, पवित्री, मृगचर्म, अक्षमाला, अघमर्षण आदि का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने नल-नगरवासियो की जिस धर्मपरायणता का अंकन किया है वह सब तत्कालीन समाज मे भी विद्य-मान रही होगी (१८-१६३-१६१)।

इन सब धार्मिक व्यापारो के साथ-साथ श्रीहर्ष ने कलि-चारण के द्वारा जिस चार्वाक सिद्धान्त का प्रतिपादन कराया है उसे भी श्रीहर्ष-कालीन समाज का अंग मानना चाहिए। एक ओर उपर्युक्त धार्मिक कृत्य होते थे तो दूसरी ओर उसी समय ऐसे लोग भी थे जो वेदो की असत्यता के प्रतिपादक, अग्निहोत्र आदि का उपहास करने वाले, वंश-शुद्धि को चुनौती देने वाले, परस्त्रीगामी, पापाचारी, कामी, स्वच्छाचारी, मुनिपूजा के खण्डनकर्ता तथा स्मृतियो, ऋषियो, मुनियो एवं देवताओं की खिल्ली उड़ाने वाले लोग भी थे (१७-३७-८३)। श्रीहर्ष ने इन लोगो के आचार-विचार की भी विस्तृत रूप-रेखा प्रस्तुत की है। कलि के चारण को केवल प्रलापी तथा उसके प्रलापो को केवल श्रीहर्ष के दार्शनिक ज्ञान का द्योतक मान लेना भारी भूल होगी। यह सब कुछ श्रीहर्ष ने देखा सुना था। इसीलिए उन्होंने इसकी योजना भी कर दी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषध हमे तत्कालीन धार्मिक आचार-विचारो की भी पर्याप्त जानकारी प्रदान करता है।

मनोविनोद के साधन

नैषध मे मनोविनोद के अनेक साधनो का भी उल्लेख है। तौर्यत्रिक (नृत्य, गीत तथा वाद्य) उस समय का मुख्य मनोविनोद का साधन था (१-१०२)। श्रीहर्ष ने इसका अनेक स्थानो पर उल्लेख किया है। स्त्री-पुरुषो के सामूहिक नृत्य भी होते थे (१८-१७)। मृगया तथा उपवन-विहार भी विनोदार्थ किये जाते थे (१-५५, २-६)। अन्तःपुर मे विनोदार्थ हंस, सारिका, शुक तथा कोकिल आदि पक्षियो को भी रखा

जाता था (३-४१-४३, ४-७१, २१-१२२-१२३, १२६, १४२)। वाद्यों में वीणा को प्रमुखता प्राप्त थी (२१-१२४)। विवाहादि शुभ अवसरों पर मृदंग (११-६), विपञ्ची, वेणु, झर्झर, हुडुक्क, ढक्का, मर्दल (१८-१७), तूय (तुरही)(१६-८), घन (झांझ), वीणा, वंशी तथा ढोल (१५-१६) आदि वाद्य भी बजाए जाते थे। इन्द्रजाल भी विनोद का साधन समझा जाता था। कुछ लोगों ने इस कार्य को पेशा बना रखा था (१७ ३०)। स्त्रियां कन्दुक से खेलकर मनोविनोद किया करती थीं (६-२६,८२)। कभी कभी अभिनय के द्वारा भी मनोविनोद किया जाता था (६-६१)। बच्चे कपूर-चूर्ण से भूमि पर घरोंदा आदि बनाकर खेलते थे (६-३८)। चित्रकला तथा मूर्तियां मनोविनोद के लिए साधन समझी जाती थीं (६-६४,७४,२०-३७, १८-२६)। अक्षदाय (शतरंज या चौसर) भी प्रचलित था (६-७१)। नर्म (परिहास क्रीडा) तथा नर्मसुचिव का भी सुसम्पन्न व्यक्तियों में प्रयोग होता था (२०-२८-५३)। मधुगोष्ठियों का आयोजन भी प्रचलित था (२०-८०)। कठपुतली नृत्य के द्वारा भी मनोविनोद किया जाता था (१८-१३)। सम्पूर्ण नाटकों के भिन्न-भिन्न चित्र भी इस उद्देश्य से बनाए जाते थे (१८-२३)। कविता-पाठ तथा विद्वद्-गोष्ठियां भी होती थीं (१ १७)। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषध में तत्कालीन मनो-विनोद के अनेक साधनों की सूचना हमें प्राप्त होती है।

विभिन्न प्रथाएँ

नैषधीयचरित में तत्कालीन प्रथाओं का भी पर्याप्त मात्रा में समावेश है। विवाह की स्वयंवर प्रथा उस समय पर भी प्रचलित थी। स्वयंवर में कन्या अपने अभीष्ट वर के गले में वरमाला डालकर उसे अपना पति बनाने की इच्छा प्रकट किया करती थी। बाद में उस व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दिया जाता था। वरमाला दूर्वांकुरों या युक्त बन्धूक-पुष्पों की बनी होती थी (१४-४८)। वरमाला गले में पड़ते ही सारी अन्य स्त्रियां उलूलु ध्वनि किया करती थीं (१४ ५१)। किसी एक व्यक्ति के गले में वरमाला पड़ते ही अन्य राजा निराश हो जाते थे। कभी-कभी यह निराशा युद्ध का रूप भी ले लेती थी (५-८२,१४ ६६)।

श्रीहर्ष ने वैवाहिक प्रथाओं का विशद अंकन किया है। वरयात्रा का उस समय पर भी प्रचलन था। नगर से बाहर ही बारात की अगवानी की जाती थी। कन्या-दान विधि विधानपूर्वक किया जाता था। मधुपर्क का आस्वादन, कुशबन्धन कन्या के हाथ को वर के हाथ के ऊपर रखा जाना, यौतक के रूप में विभिन्न उपहारों का दान (जिनमें कुछ उपहार व्यवहार स्वरूप अन्य लोगों से प्राप्त होते थे तथा कुछ का प्रबन्ध कन्या का पिता स्वयं करता था) अग्नि का दक्षिण दिशा में स्थापन, पत्थर पर खड़े होना, ध्रुव-दर्शन, अरुन्धती-दर्शन, होम, सङ्कल्प तथा दक्षिणा आदि का वैवाहिक व्यापारों में समावेश था (१६ ८-४५)।

समस्त वैवाहिक विधियों के सम्पन्न हो जाने के उपरान्त वरवधू कौतुकागार मे जाते थे तथा तीन दिन तक वहाँ सभोग न करते हुए रहते थे (१६-४६-४७)।

बारात भोज के अवसर पर हास परिहास खूब चलता था बारातियो का उपहास करने के लिए यथासम्भव सब कुछ न्याय्य माना जाता था परन्तु उनके सम्मान तथा उनकी प्रसन्नता एव अप्रसन्नता का भी ध्यान रखा जाना था। ऐसा लगता है कि बारातियो को प्रसन्न रखने तथा उनका उपहास करने का एक घुला-मिला आयोजन बारात-भोज के अवसर पर होना था। बारातियों को स्वादिष्ट भोजन परोसा जाता था। रुचि को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न प्रकार के सामिष तथा निरामिष, मीठे तथा चरपरे पदार्थ उन्हें परोसे जाते थे (१६-४८-१११)। बारात पाच या छ दिन तक ठहरती थी (१६-११२)। माता-पिता दोनो ही पुत्री को विदा करने के अवसर पर भाव विह्वल हो जाते थे। कन्या का विवाह के उपरात पिता से सामान्यतया सम्बन्ध समाप्त-सा हो जाता था(१६-११५-११७)।

इन प्रथाओ के अतिरिक्त श्रीहर्ष ने अन्य अनेक विश्वासो एव प्रथाओ की ओर भी सकेत किया है। जैसे किसी को जल पर्यन्त भेजना प्रचलित था (३-१३१)। सती-प्रथा का भी उल्लेख है (४-४६)। अतिथि-सत्कार का पर्याप्त गौरव प्राप्त था (५-६)। युद्ध-भूमि मे वीरगति प्राप्त करना स्वर्ग-प्राप्ति का द्योतक माना जाता था (५ १५)। दान देने मे लोगो की रुचि थी (५-८१)। दान सकल्प-जल के साथ दिया जाता था (५-८५)। मधुकरी भिक्षा भी देखी सुनी जाती थी (७-१०३)। मैत्री मे अग्नि को साक्षी बनाया जाता था (६-६८)। विशेष आयोजनो मे जहा पर अनेक देशो के लोग इकट्ठे हुआ करते थे, सस्कृत भाषा मे वार्तालाप होता था (१०-३८)। सताप निवारणार्थ शीतोपचार का प्रचलन था (४-१११-११२)। इस कार्य के लिए औषधियां का प्रयोग भी किया जाता था (४-११६)। दण्डधारी भिक्षुक इतस्तत भ्रमण किया करते थे (२२-१२)। प्रेम-पत्रों द्वारा प्रेयसियाँ सन्देश प्रेषण किया करती थी। प्रेम-पत्र पुष्प अथवा पत्रादि पर लिखकर भेजे जाते थे (६-६३)। वन्दियो तथा स्तुति-पाठको को दान दिया जाता था (१५-१)। शुभ कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त का विचार भी किया जाता था (१५-८)। इसी प्रकार विशेष व्यक्ति के आगमन पर भवनों तथा राजमार्गों को सजाया जाता था तथा विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाए जाते थे। (१५-१६-१७)। नव वधुएँ गुरुजनो, ब्राह्मणो तथा पतिव्रताओं का आशीर्वाद प्राप्त किया करती थी (१५-५०)। नगर-बालाएँ वर का अवलोकन करने के लिए सज-धज कर भवनो की छत पर अथवा मार्गो के किनारे आकर खडी हो जाती थीं (१५-७३)। मागलिक कलश स्थापित किए जाते थे (१५-७४)। स्त्रियां तथा कन्याएँ लाजमोक्षण भी करती थी (१५-७५, १६-१२५ १२८)। आश्रित राजा कर देते थे (२१ १)। जलपूर्ण कलश का दर्शन शुभ माना जाता था (२-६५)।

शकुन मे विश्वास था । नीराजन क्रिया (उतारा) भी प्रचलित थी । इस कार्य मे गोमययुक्त तथा ऐपन मे लिप्त शराब का प्रयोग किया जाता था (१२-२६) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नैषधीयचरित तत्कालीन समाज की विभिन्न विशेषताओ की जो झलक प्रस्तुत करता है उसके आधार पर हम उस समय के रहन-सहन, आचार विचार, आहार-विहार तथा ज्ञान विज्ञान आदि के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। इस सम्बन्ध म श्री आनी जी का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है

The NC suplies the cousiderable information for the coustruction of the social, cultural and religious history of medival india A Critical study of NC F 195

नैषधगत दोष

नैषधीयचरित की रस-योजना-मूलक समीक्षा यदि नैषधगत दोषो पर दृष्टि-पात न कर लिया जाय तो अधूरी रहेगी । अत नैषधगत दोषों पर भी एक-विहगम दृष्टिपात कर लिया जाय ।

काव्यगत आत्मतत्त्व के अपकर्षक हेतुओ को दोष नाम से अभिहित किया जाता है रसापकर्षका दोषा (सा०द०पृ० ३२७) । अतएव लक्षण-ग्रन्थकारो ने काव्य का रसप्रवण बनाने वाले उपायो का निर्देश करने के साथ-साथ रसापकर्षक दोषो का उल्लेख करते हुए कवियो को उन दोषो के प्रति भी सावधान कर दिया है । पद, पदाश, वाक्य, अर्थ तथा रस सभी म विद्यमान रहने के कारण दोषो का पाच भागों म विभाजित किया गया है और इन पाचो प्रकार के दोषो की रसापकर्षता का प्रतिपादन किया गया है । इन पाच प्रकार क दोषो का दो भागो म विभाजित किया गया है —परम्परया रसापकर्षक दोष तथा साक्षात् रसापकर्षक दोष । पद, पदाश वाक्य तथा अर्थगत दोषो को परम्परया रसापकर्षक एव रसगत दोषों को साक्षात् रसापकर्षक स्वीकार किया गया है

श्रुतिदुष्टापुष्टार्थत्वादय काणत्वखञ्जत्वादय इव शब्दार्थद्वारेण देहद्वारेणेव व्यभिचारिभावाद स्वशब्दवाच्यत्वादयो मूर्खत्वादय इव साक्षात्काव्यस्यात्मभूत रसमपकर्षयत काव्यस्यापकर्षका इत्युच्यन्ते । सा० द० पृ० २१ ।

आनन्दवर्धन ने दो प्रकार के दोषो का निर्देश किया है—अव्युत्पत्तिजन्य तथा अशक्तिज य । उनके अनुसार अव्युत्पत्तिजन्य दोष कवि की प्रतिभा से तिरोहित हो जाते हैं । परन्तु अशक्तिज य दोष तत्काल ही प्रतीत हो जाता है

द्विविधा हि दोष कवे, अव्युत्पत्तिकृतोऽशक्तिकृतश्च । तत्राव्युत्पत्तिकृतो दोष शक्तितिरोहितत्वात् कदाचिन्न लक्ष्यते, यस्त्वशक्तिकृतो दोष, स झटिति प्रतीयते । परिकरश्लोकश्चात्र—

अव्युत्पत्तिकृतो दोष शक्त्या संव्रियते कवे ।
यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य स झटित्येव भासते ।। ध्व० पृ० २७०-२७१ ।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि यदि कवि प्रतिभा-सम्पन्न हो तो उसकी सदोष रचना भी रस प्रवण होगी । दोष उसके आत्मतत्त्व का दूषित नहीं कर सकते । क्योकि यदि कवि प्रतिभाशाली होगा तो उसकी रचना पाठक को इतना अधिक आकृष्ट कर लेगी कि उसे दोष प्रतीत ही नहीं होंगे । और प्रतीति पथ पर आए बिना वे रसादिको को दूषित ही कैसे कर सकते है ?

हम देख चुके है कि नैषध विभिन्न रसो, भावादिको तथा अनरूप व्यजको से सम्वलित एक महाकाव्य है और श्रीहर्ष की शक्ति-सम्पन्नता के बारे मे भी सदेह नही किया जा सकता । अत यदि नषधगत कुछ पदादिको की सदोषता का प्रयत्न-पूर्वक अन्वेषण कर भी लिया जाये तो उसके आधार पर श्रीहर्ष की नवनवोन्मेष-शालिनी बुद्धि के प्रतिफलन-स्वरूप नैषध के महत्त्व पर प्रश्न-चिह्न लगाना असमुचित ही होगा । परन्तु साक्षात् रूप से रसापकर्षक रसगत दोषो का सर्वथा अपलाप भी नही किया जा सकता । परम्परया रसापकर्षक पदादिगत दोषो का प्रभाव कवि-प्रतिभा से क्षीण भले ही हो जाय परन्तु साक्षाद्रूप से रसापकर्षक रस दोषो की अवहेलना को उचित नही कहा जा सकता । अत यहा पर नैषधगत रस दोषो पर दृष्टिपात कर लेना अनावश्यक न होगा ।

रस दोष नौ होते हैं—१—व्यभिचारी भाव, रस अथवा स्थायी भावो का कथन, २ विभाव तथा अनुभावो की क्लिष्ट कल्पना, ३ विरोधी रस के विभावो का ग्रहण, ४ रस की पुन -पुन दीप्ति, ५ अनवसर मे रस का विस्तार अथवा विच्छेद, ६ अगभूत रसादिको का अत्यधिक विस्तार, ७ अगी रस का अननुसधान, ८ प्रकृति-विपर्यय, ९ अनग का अभिधान

व्यभिचारिरसस्थायिभावाना शब्दवाच्यता ।
कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभावविभावयो ।।
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्ति पुन पुन ।
अकाण्डप्रथनच्छेदौ अगस्याप्यतिविस्तृति ।।
अगिनोऽननुसधान प्रकृतीना विपर्यय ।
अनगस्याभिधान च रसे दोषा स्युरीदृश ।। का० पृ० ७-६२ ।

नैषधगत प्रबन्ध-व्यजकता पर दृष्टिपात करते हुए हम देख चुके है कि उपर्युक्त दोषो मे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम, सप्तम तथा अष्टम दोषो के विपर्यय को रसाभिव्यजक हेतु स्वीकार किया गया है । और नैषध मे उपर्युक्त दोषो के विपर्यय स्वरूप रस-व्यजक हेतुओ की औचित्ययुक्त विशद योजना की गई है । अत नैषध मे उन रस-व्यजक हेतुओ के विपर्यय स्वरूप उपर्युक्त दोषो के सद्भाव का प्रश्न ही

नहीं उठता। अतएव यहाँ पर उपर्युक्त दोषों में केवल प्रथम, षष्ठ तथा सप्तम दोष की दृष्टि से ही नैषध की समीक्षा की जायेगी।

श्रीहर्ष ने व्यभिचारी भावों, रसों तथा स्थायी भावों का शब्दतः अभिधान अनेक स्थानों पर किया है। उदाहरण स्वरूप अधोलिखित सन्दर्भों को उद्धृत किया जा सकता है

तरंगिणी भूमिभृतः प्रसूता जानामि शृंगाररसस्य सेयम्। नै० ७ ११।
रसस्य शृंगार इति श्रुतस्य क्व नाम जागर्ति महानुदन्वान्। नै० ११-११४।
धुतापनत् पुष्पशिलीमुखाशुगं शुचेस्त्वदासीत सरसी रसस्य या। नै० ६ ८६।
ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विचित्राऽपि विपद्यते यदि। नै० ६ १४०।
कथं कथञ्चिन्निषधेश्वरस्य कृत्वास्यपद्मं दरकीलितश्रि।
वाग्देवतायाः वदनेन्दुबिम्बं जपावती साकूतं सामिदष्टम्।। नै० १४-२०।

परन्तु उपर्युक्त स्थलों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने प्रथम चार उदाहरणों में किसी पात्र के द्वारा अथवा स्वयं किसी दूसरे पात्र के बारे में किए गये संकल्पों का कथन किया है। नल दमयन्ती को शृंगार रस की तरंगिणी समझता है, राज-समूह को दमयन्ती शृंगार रस के समुद्र से उत्पन्न प्रतीत होती है, श्रीहर्ष को स्वयं दमयन्ती करुण रस की सरसी ज्ञात होती है। इसी प्रकार हंस अपनी हंसिनी के स्वविनाशजन्य शोक में विदीर्ण होने की कल्पना करता है। उपर्युक्त सन्दर्भों में न तो नल अथवा राजसमूह ने स्वगत रति वासना अर्थात् शृंगार का शब्दतः कथन किया है और न दमयन्ती ने अथवा हंस ने स्वगत शोक का शब्दतः अभिधान किया है। अतः उपर्युक्त सन्दर्भों में प्रथा रूप में प्रतीति होती है अतः इन सन्दर्भों में किए गए शृंगारादि के उल्लेख को दोष नाम से अभिहित करना समीचीन न होगा। पंचम उदाहरण में लज्जा का शब्दतः कथन किया गया है। दमयन्ती को लज्जावती बताया गया है और स्मय की मुद्रा भी व्रीडा की व्यंजना करती है। परन्तु व्यभिचारियों का शब्दतः कथन सर्वत्र दोषावह नहीं होता

क्वचित्तु कथितः स्वशब्देन न दोषो व्यभिचारिणः।
अनुभावविभावाभ्यां रचना यत्र नाश्रिता।। सा० द० ७-२६।

इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में भी श्रीहर्ष ने यत्र तत्र व्यभिचारी भावादिकों का कथन कर दिया है। परन्तु उनकी सदोषता के लिए आग्रह पूर्वक भले ही प्रतिपादित कर दी जाय वस्तुतः वे सारे दोषावह प्रतीत नहीं होते।

अंगभूत रसादिकों की अंगी रस की अपेक्षा विस्तारपूर्वक की गई योजना भी रसापकर्षक होती है। परन्तु नैषध पर दृष्टिपात करने से यह अनायास ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अंगी शृंगार रस की ही प्राधान्येन योजना की गई है। अन्य रसों की योजना यत्र-तत्र तथा प्रसंग में की गई है। यदि कहीं पर श्रीहर्ष ने

किसी अग रस की भावप्रवण विशद योजना की भी है तो उसे इतना अधिक विस्तार नही दिया है कि वह शृगार रस मे अधिक विस्तृत हो गई हो। अत इस दोष के लिए भी नैषध मे अवकाश नही रह गया है।

अनग-कीर्तन की रसापकर्षकता के बारे म सन्देह नही किया जा सकता। यहाँ तक कि प्रस्तुत रसादि म सम्बद्ध होन पर भी किसी वस्तु का विस्तार-पूर्वक किया गया कीतन प्रकृत रस के विपरीत होता है

विस्तरेणान्वितस्यापि वस्तुनोऽन्यस्य वणनम।

रसस्य स्याद्विरोधाय — — — —॥ ध्व० ३-७४ ७५।

अय चान्यो रसभगहेतुर्यन प्रस्तुतरसापेक्षया वस्तुनोऽन्यस्य कथचिदन्वितस्यापि विस्तरेण कथनम्। यथा विप्रलम्भशृगारे नायकस्य कस्यचिद् वर्णयितुमुपक्रान्तस्य कवेयमकाद्यलकारनिबन्धे रसिकतया महता प्रबन्धेन पवतादिवणन।

ध्व० पृ० ३५७।

श्रीहप ने नैषध मे उपर्युक्त दोष के प्रति उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया है। नैषध म अनेक स्थानो पर विभिन्न वस्तुओं का विस्तृत वणन किया गया है। यद्यपि श्रीहर्ष के वणन विप्रलम्भ शृगार म किसी नायक का वणन आरम्भ कर मध्य म ही यमकादि अलकार के मोह म प्रारब्ध पवतादि के वर्णन के समान प्रकृत रसादि स असम्बद्ध नही है जिसे रसभग का हेतु माना गया है। परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि वर्ण्य वस्तुओ का विस्तार यत्र-तत्र उद्वेजक बन गया है। उदाहरण स्वरूप द्वितीय सगगत कुण्डिनपुर वणन, स्वयवर म उपस्थित राजसमूह वणन, पचदश सगगत नव दमयन्ती मण्डन वर्णन, नल को भीम के द्वारा यौतक म दी गई वस्तुओ का वणन तथा एकोनविंश सर्गगत प्रभात-वणन आदि को उद्धृत किया जा सकता है। इसी प्रकार सप्तम सगगत दमयन्ती सौन्दय-वणन कलि-चारण के आगमन प्रसंग का वणन, एकविंश सर्गगत नल के स्नान तथा देवार्चनादि का वणन तथा द्वाविंश सर्गगत सन्ध्या-वणनादि भी अपेक्षाकृत विस्तृत है। इन विभिन्न वर्णनो म श्रीहर्ष की शैली भी यत्र तत्र दुरूह बन गई है। इसी प्रकार इन वणनो म अनेक कल्पनाएँ भी दूरारूढ एव पुनरावृत्ति-मात्र प्रतीत होती हैं।

यह विस्तृत वणन तथा दूरारूढ कल्पनाएँ श्रीहर्ष ने अनायास रूप से उपनिबद्ध की हो ऐसा नही प्रतीत होता। उनकी अधोलिखित अभिव्यक्तियो से तो यही ज्ञात होता है कि उन्होंने जान बूझकर सायास उनकी योजना की है

एकामत्यजतो नवार्थघटनामेकोनविंशो महा-

काव्ये तस्य कृतौ नलीयचरिते सर्गोऽयमस्मिन्नगात्॥ नै० १९-६७।

अन्याक्षुण्णरसप्रमेयभणितौ विंशस्तदीये महा-

काव्येऽयं व्यगलन्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल॥ नै० २०-१६२।

यही नही श्रीहर्ष ने ग्रन्थियो का विन्यास भी नैषध मे जान-बूझकर किया है
ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञ मन्यमना हठेन पठिनी मास्मिन् खल खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथकृतदृढग्रन्थि समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन ॥ नै० २२-१५२।

नैषधीयचरित की रचना के अन्त मे अभिव्यक्त विचारो के अनुसार श्रीहर्ष ने विशेष प्रकार के पाठको को ध्यान मे रखकर नैषध की रचना की है
यथा यूनस्तद्वत् परमरमणी गपि रमणी
कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरुते।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधिय
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै ॥ नै० २२-१५०।

भले ही श्रीहर्ष ने कुछ विशिष्ट पाठको को ध्यान मे रखकर उपयुक्त वर्णनो की योजना की हो परन्तु उन वर्णनो म रसास्वादन करने वाले पाठक कदाचित् उनके युग म भी थोडे ही रहे होगे। अत उनके उपर्युक्त वर्णन तत्कालीन विद्वानो म भी अधिकतर उनकी विद्वता तथा कल्पनाओ की सूक्ष्म उडानो की धाक जमाकर ही रह गये होंगे। कितना अच्छा होता यदि श्रीहर्ष न विभिन्न वर्णनो तथा सूक्ष्मतम कल्पनाओ एव ग्रन्थियो के विन्यास म अपनी दक्षता का प्रदर्शन करने के लिए किसी अन्य स्थान का चयन कर लिया होता और नैषधीयचरितगत रस मन्दाकिनी म इन अन्तरीपो का निर्माण न किया होता।

यद्यपि श्रीहर्ष ने उपयुक्त वर्णनो मे सरसता का आधान करने का प्रयास किया है। परन्तु उनके यह वर्णन अन्य रसात्मक सदर्भो की अपेक्षा नीरस से प्रतीत होते है। फिर भी इसम कोई सदेह नहीं कि यह वर्णन श्रीहर्ष की मनोरम कल्पनाओ तथा वैचित्र्यपूर्ण व्यजनाओ स भी भरपूर है।

इस प्रकार हम देखते है कि नैषधीयचरित उपयुक्त एक दोष के अतिरिक्त अन्य दोषो से असम्पृक्त महाकाव्य है। अन्य दोष नैषध म यदि कही पर आये भी हैं तो श्रीहर्ष की कवित्व-निपुणता उन्ह प्रतीतिपथ पर अवतरित नही होने देती। यहा तक कि नैषध के अनेक स्थलो म उपलब्ध होने वाला उपर्युक्त अनग-कीर्तन नामक दोष भी श्रीहर्ष की प्रतिभा से अनुप्राणित होने के कारण उतना अधिक रस-व्याघातक नही प्रतीत होता जितना कि उसे होना चाहिए था।

कवि की प्रतिभा की महत्ता पर सदेह किसे हो सकता है और श्रीहर्ष प्रतिभा सम्पन्न कवि है इस विषय म भी दो मत नही हो सकते। अतएव उपर्युक्त दोष से युक्त होते हुए भी उनकी सूक्तियो स विद्योतित श्रीहर्ष जसे कवि की प्रतिभा के निष्यन्द-स्वरूप नैषध जैसे महाकाव्य को सदोष घोषित करना आत्म-दोष-प्रकाशन मात्र ही होगा।

नैषधीयचरित की पूर्णता

नैषधीयचरित की पूर्णता के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। कुछ विद्वान नैषधीयचरित को पूर्ण काव्य मानते हैं तो कुछ अपूर्ण। सर्वश्री नीलकमल भट्टाचार्य व कृष्णमाचारियर आदि विद्वानों ने नैषधीयचरित की अपूर्णता के द्योतक अनेक प्रमाण उपन्यस्त किए हैं। नैषधीचरित की अपूर्ण स्वीकार करने वाले विद्वानों के मुख्य तर्क इस प्रकार हैं

१—२२ सर्गों के नैषधीयचरित महाकाव्य में नाम के अनुरूप नल के जीवन का सर्वाङ्गीण अंकन नहीं हो सका है जैसा कि महाभारत में उपलब्ध है तथा नैषध में भी जैसा होना चाहिए था।

२—नैषधीयचरित में नल के जीवन की कुछ आगामी घटनाओं की ओर संकेत किया गया है। परन्तु वर्तमान नैषधीयचरित में वे घटित नहीं हो सकी हैं। जैसे—कारिष्यत परिभव कलिना नलस्य। नै०१३-२७।

चन्द्रदारविरहेक्षणभणे बिम्बाती धवङ्माय स्यमभवत्।

केवा/पि वस्तुनि भवत्यनागत चित्तमुच्यर्दनिमित्तर्वङ्गम्॥ नै० १८-६६।

३—देवताओं के द्वारा नल दमयन्ती को दिए गए वरदानों में वृद्धि की गई है परन्तु उनके जीवन में उनका उपयोग वतमान नैषधीयचरित में नहीं किया गया है।

४—नैषधीयचरित के सप्तदश तथा अष्टादश सर्ग में की गई कलि की चर्चा।

५—परम्परागत विश्वास। आदि।

उपर्युक्त कारणों पर जोर देते हुए श्री भट्टाचार्य श्री नैषधीयचरित को पूर्ण स्वीकार करने के पूर्णतया विपरीत हैं

"The conclusion, therefor, is inevitable that the current Naisadha is incomplete"

सरस्वतीभवन स्टडीज वॉलूम ३-१९२४ पृ० १९४-१९५।

इसी प्रकार भट्टाचार्य जी के अनुयायी डॉ० कृष्णमाचारियर जी भी पूर्ण नैषधीयचरित के प्राप्त होने की आशा लगाए हुए हैं

"It is hoped that it is still eurking in som corner of Bangal and may one day be restord to us"

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० १५०।

उपर्युक्त विद्वानों के सन्दर्भ में खोज करने के उपरान्त श्री जानी जी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नैषधीयचरित पूर्ण महाकाव्य नहीं है

It is, there for, proper to conclude that the present poem is incomplete and shows some indications that its author had in his mind to poetise the whole of the Mph epicobe dut he

could notdo so for one reason or another

A critical study of sriharsa's N C P 25

डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने अपने शोध-ग्रन्थ नैषध परिशीलन में भट्टाचार्य जी के उपर्युक्त तर्कों का विस्तार-पूर्वक विवेचन तथा निराकरण किया है। उनके अनुसार उपर्युक्त तर्क नैषधीयचरित को अपूर्ण सिद्ध कर सकने में पूर्णतया समर्थ नहीं है। चरित काव्यों में जीवन का सर्वाङ्गीण अङ्कन अनिवार्य नहीं होता। अनेक चरित काव्यों में जीवन के किसी भाग मात्र का अङ्कन किया गया है। जैसे पद्म गुप्तकृत नवसाहसाङ्कचरित। कलि-प्रसंग तथा नल के जीवन की आगामी घटनाओं की ओर संकेत होने के बारे में शुक्ल जी का मत यह है कि इनकी सत्ता मात्र से नैषधीयचरित को और अधिक आगे ले चलने की श्रीहर्ष के समक्ष कोई विवशता नहीं थी। ऐतिहासिक कथानकों में प्रायः इस प्रकार की घटनाओं का परिवर्तन करने में कवि स्वतन्त्र होता है। इसी प्रकार नल ने अपने जीवन में कुछ वरदानों का उपयोग भी किया ही है (१८ ८७-८६, ६२ २०-१२८ १२)।

डॉ० शुक्ल के द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त तर्कों तथा उनके समाधान के सन्दर्भ में यह और कहा जा सकता है कि महाकाव्य का नैषधीयचरित नामकरण वस्तुतः नल जीवन के उस पूर्व भाग का द्योतक है जिस भाग में नल निषधा के राजा रहे थे, न कि नल-जीवन के उस उत्तर भाग का जबकि नल राज्य भ्रष्ट हो गये थे। जैसाकि उसके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में स्पष्ट है निषधानां राजा नैषधः तदीयम् चरितम् नैषधीयचरितम्। नल-जीवन की जो घटनाएँ लोक प्रसिद्ध थीं, उनकी ओर किए गए यत्किंचित प्रासंगिक गौण संकेतों को नैषधीयचरित के प्रधान प्रतिपाद्य का नियामक नहीं स्वीकार किया जा सकता। महाभारत के अनुसार स्वयंवर से वापस जाते हुए देवताओं की कलि से मार्ग में भेंट हुई थी। श्रीहर्ष इस ऐतिहासिक तथ्य को बिल्कुल झुठला देने के पक्ष में नहीं थे। अतः उन्होंने इसकी योजना तो की परन्तु जैसाकि हम देखेंगे अपने लक्ष्य के अनुरूप उसे उन्होंने ढाल लिया। वरदानों में वृद्धि कर देना श्रीहर्ष के लिए मामूली बात थी। क्योंकि वृद्धि तो उन्होंने सर्वत्र की है। रही उनके उपयोग की बात सो उनके बारे में मेरा विचार यह है कि किसी शक्ति का संचय उसके उपयोग से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। जहाँ तक परम्परागत विश्वास का प्रश्न है उसके बारे में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि किसी की विशेषताओं का वर्णन करना तो उसे आसमान तक चढ़ा देना तथा कमियों को दिखाना तो धज्जियाँ उड़ा देना प्राचीन विद्वानों का जन्म-जात अधिकार सा रहा है।

नैषधीयचरित की पूर्णता के पक्ष में भी अनेक तर्क प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। यहाँ पर ऐसे तर्कों को उपन्यस्त न करना समुचित होगा जिनकी चर्चा प्रायः होती रही है। परन्तु कुछ ऐसे तर्क नहीं, तथ्य हैं जिन्हें न तो अस्वीकार किया

जा सकता है और न उनका समाधान ही अपेक्षित है, यहाँ पर उनकी चर्चा कर लेना अनावश्यक न होगा।

१ नैषधीयचरित का श्रीहर्ष ने शृगार-प्रधान महाकाव्य बनाया है

शृगार-भग्यामहाकाव्य० । नै० १-१४५ ।

शृगारामृतशीतगौ० । ११ १३० ।

अत महाभारत म वर्णित शृगार रस के विरोधी नल-जीवन के दुःख-पूर्ण उत्तरार्ध भाग का नैषधीयचरित म सम्मलित ही नही किया जा सकता था। नल के समग्र जीवन की सर्वाधिक दुःखपूर्णता एक निदर्शन थी

शृणु राजन्नवहित सह भ्रातृभिरच्युत ।

यस्त्वत्तो दुःखिततरो राजासीन् पृथिवीपते ! ॥

निषधेषु महीपालो वीरसेन इति स्म ह ।

तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थदर्शिवान् ॥

म० भा० आ० प० ४६-३८-३६ ।

२ महाभारत मे नल के अनेक गुणो का वर्णन करते हुए प्रारम्भ म ही उसकी द्यूतप्रियता का भी वर्णन कर दिया गया है

अक्षप्रिय सत्यवादी महानक्षौहिणीपति । वही ५०-३ ।

श्रीहर्ष ने नल के इस गुण या अवगुण का कही पर प्रत्यक्ष उल्लेख नही किया है। नल की द्यूतप्रियता लोकप्रसिद्ध थी तथा इस गुण या अवगुण के कारण ही नल का अग्रिम जीवन कष्टपूर्ण बन गया था। द्यूत मे सब कुछ हारकर ही नल राज्यभ्रष्ट हुए थे। श्रीहर्ष भी यदि नैषधीयचरित म नल के अग्रिम जीवन का अकन करना चाहते होते तो उन्होने नल के अनेक गुणो के सन्दर्भ मे कही न कही नल की द्यूत-प्रियता का उल्लेख अवश्य किया होता। क्योकि इसके प्रदर्शन के बिना आगे कथानक बढ ही नही सकता था। परन्तु आगे कथानक बढाना श्रीहर्ष को अभीष्ट ही नही था। अत शृगार रस के विपरीत भाव व्यजना करने वाले नल के लोकप्रसिद्ध द्यूत-व्यसन के बारे म श्रीहर्ष मौन हो गये।

३ महाभारत मे नल दमयन्ती के विवाह की ओर सकेत करने के उपरान्त पहले नल के सुखभोग प्रजापालन तथा धार्मिक आचरणो की ओर सकेत किया गया है (वही ५४-३८-३९)। तदनन्तर देव-कलि-सवाद कराया गया है (वही ५५ सग)। परन्तु श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती के विवाह तथा निषध देश मे उसके आगमन का वर्णन करने के बाद देव कलि सवाद की योजना की है तथा उसके उपरान्त नल-दमयन्ती के सुख-भोगो का अकन किया है।

वस्तुत महाभारत का उद्देश्य नल के दुःखमय जीवन का अकन करना था। युधिष्ठिर यह सोचते थे कि उनसे बढकर दुःखी व्यक्ति ससार मे कोई नही हुआ

न मत्तो दुःखिततर पुमानस्तीति मे मति । वही ४९-३४ ।

परन्तु बृहदश्व के कथनानुसार नल का जीवन युधिष्ठिर से भी अधिक दुखमय था। युधिष्ठिर को आश्वस्त करने के लिए ही उन्होंने नलोपाख्यान युधिष्ठिर को सुनाया था। अत महाभारत मे नल के जीवन के सुखभोगो की ओर सकेत करने के उपरान्त उसके दुखमय जीवन को प्रारम्भ करने के हेतुभूत कलि की चर्चा की गई है। परन्तु नैषध म यदि कलि की चर्चा बाईसवें सर्ग म की गई होती तथा नैषध को और आगे बढाना श्रीहर्ष को इष्ट होता तो उसका अवसान एक ऐसे शोक सागर के मध्य म करना पडता जो समस्त नैषध मे प्रवाहित शृगार रस की अजस्रधारा का आत्म-सात कर उसे क्षार बना देता। और कलि प्रसग का सर्वथा परित्याग ऐतिहासिकता के विपरीत होता। इसीलिए श्रीहर्ष ने महाभारत के क्रम के विपरीत कलि की चर्चा पहले की है तथा नल दमयन्ती के सुख भोगो का अकन बाद म किया है।

४ महाभारत के अनुसार नल को राज्य-भ्रष्ट करने का सकल्प कर कलि-द्वापर से अक्षों म प्रविष्ट होकर सहायता करने के लिए कहता है

त्वमप्यक्षान समाविश्य कर्तु साहाय्यमर्हसि। वही ५५-१३।

द्वापर से मत्रणा करने के बाद कलि नल के पास पहुँच जाता है तथा छिद्रान्वेषण करते हुए बारह वर्ष तक निषध देश म रहने के उपरान्त कलि को नल का पतन करने म सहायक उसका कोई दोष दृष्टिगत हो जाता है

एव स समय कृत्वा द्वापरेण कलि सह।
आजगाम ततस्तत्र यत्र राजा स नैषध ॥
स नित्यमन्तरप्रेक्षी निषधेष्ववसच्चिरम्।
अथास्य द्वादशे वर्षे ददर्श कलिरन्तरम्॥ वही ५६-१ २।

श्रीहर्ष ने कलि तथा द्वापर म सम्पन्न किसी सन्धि का उल्लेख नही किया है। वे उसके पृथ्वी पर भ्रमण करने मात्र का उल्लेख करते है। उन्होने कलि के नलोपवन म निवास करने की न तो कोई अवधि बताई है और न नल के किसी दोष-दर्शन आदि का ही उल्लेख किया है

तमालम्ब्य वनमासाद्य वैदर्भीनिषधेशयो।
कलुष कलिरन्विष्यन्नवात्सीद्वत्सरान्बहून् ॥
दोष नलस्य जिज्ञासुर्बभ्राम द्वापर क्षितौ।
अदोष कोऽपि लोकस्य भवत्यस्तीति दुराशया॥ नै० १७-२१७ २१६।

हम देखते है कि श्रीहर्ष ने अपने प्रयोजन के अनुरूप महाभारत की द्वापर तथा कलि म सम्पन्न मत्रणा विषयक घटना को परिवर्तित कर लिया है तथा छप्पनवे अध्याय के द्वितीय श्लोक के भी केवल अर्द्धभाग का ही आत्मसात् किया है, शेष का परित्याग कर दिया है। इस प्रकार उन्होने एक ओर अपने महाकाव्य की योजना के अनुरूप कथानक का चयन कर लिया है तो दूसरी ओर नल जीवन के उत्तर

भाग की ओर ले जाने वाले कथानक का परित्याग कर दिया है।
५ नैषधीयचरित को श्रीहर्ष ने शृंगार-रस-प्रधान माना है, अथवा यों कहिए उन्होंने उसे वैसा बनाया है। यदि उन्होंने नलोपाख्यान के अग्रिम भाग को भी नैषधीयचरित में आत्मसात् किया होता या वैसा करने की उनकी योजना होती तो एक ओर तो उन्हें महाभारतकार को आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए उन्हें दोषी बनना पड़ता, क्योंकि महाभारतगत नल जीवन की करुण कथा को उन्हें परिवर्तित कर सुख भोग-प्रधान प्रदर्शित करना पड़ता। तभी नैषधीयचरित शृंगार प्रधान बन सकता था अन्यथा नहीं तथा दूसरी ओर उन्हें शृंगार तथा करुण इन दोनों परस्पर विरोधी रसों का एकत्र समावेश करने के लिए दोषी माना जाता। श्रीहर्ष जैसा कवि इन दोषों को ओढ़ने के लिए कथमपि तैयार नहीं हो सकता था।
६ उपर्युक्त कारणों के साथ साथ नैषधीयचरित के सघटन, नैषधीचरित के बाईसवें सर्ग के अन्तिम श्लोक (२२-१४८) तथा अन्त में उपलब्ध चारों श्लोकों पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रतीत होता है कि नैषधीयचरित एक पूर्ण महाकाव्य है। न तो श्रीहर्ष ने उसे और अधिक विस्तार प्रदान किया था और न उनकी योजना ही थी।

कीथ जैसे विद्वान भी नैषधीयचरित को पूर्ण मानने के पक्ष में हैं

It is happily incredible that even sriharsa should have thought it worthwhile further Elaborating this theme

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० १४०।

इसी प्रकार नैषधीयचरित के टीकाकार नारायण तथा विद्याधर भी नैषध को पूर्ण महाकाव्य मानते हैं

"तत्र द्वाविंशस्य सर्गस्यान्ते श्रूयमाणा श्रीरस्तुनस्तुष्टय इत्यवरूपा मंगलाशंसा काव्यस्यैतावन्मात्रत्वमेव ज्ञापयति।" नै० प्र० व्याख्या।

"ननु महाभारते नलोपाख्यानस्यैव वक्तुमुचितत्वात् श्रीहर्षेण नलस्यानेकदेशे काव्यविश्रान्ति कथं कृता। सकलनलोपाख्यानस्यैव वक्तुमुचितत्वात्। सत्यम्। काव्यं हि सहृदय-हृदयानामावर्जकं भवति। हृदयावर्जकं च काव्यं स्वरसेन नियतं। तत्र च पुनरैतिह्यं एतद्देशे सरसत्वं दृश्यते। तदेतावतापि विश्रान्तिः कृतेति भावः।

विद्याधरी।

परिशिष्ट

श्रीहर्ष

समय

श्रीहर्ष के समय के बारे में विद्वानों में मतभेद होते हुए भी अन्तःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर श्रीहर्ष का समय बारहवीं शताब्दी निश्चितप्राय है।

श्रीहर्ष ने अपने खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक ग्रन्थ में उदयन का अनेक स्थानों पर खण्डन किया है। नैषधीयचरित के टीकाकार चण्डूपण्डित के अनुसार उदयन ने श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर को शास्त्रार्थ में पराजित किया था

प्रथमं तावत्कविपितुः कथायां स्वपितृपराभावुकमुदयनमन्यमपाया कटाक्षयस्तद्ग्रन्थग्रन्थीनुद्ग्रथ्नन् खण्डने प्रारिप्सुस्तत्तुर्बिलपुरुषार्थैरभिमानम-बन्धीश्रमात्मविधीय मानसमेकतानतां निनाय। नैषध-दीपिका

यद्यपि श्रीहर्ष ने स्वयं उदयन का खण्डन करते हुए उनका नामोल्लेख नहीं किया है। परन्तु उन्होंने उदयन के न्याय-कुसुमाञ्जलि तात्पर्य-परिशुद्धि तथा बौद्धाधिकार नामक ग्रन्थों के विभिन्न सदर्भों को उद्धृत कर उनका खण्डन अवश्य किया है।

उदयनाचार्य ने लक्षणावली नामक ग्रन्थ की रचना शक ९०६ अर्थात् संवत् १०४१ (९८४-८५ ई०) में की थी

तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥

उदयन ने श्रीहर्ष के पिता को शास्त्रार्थ में पराजित किया था या नहीं? यह विषय विवादास्पद हो सकता है। परन्तु खण्डन में उदयन के ग्रन्थों का जो श्रीहर्ष ने खण्डन किया है उससे यह निश्चित हो जाता है कि श्रीहर्ष ९८५ ई० के बाद ही हुए।

एक जनश्रुति के अनुसार श्रीहर्ष को नैषधीयचरित की ग्राह्यता का प्रमाण-पत्र लेने के लिए कश्मीर तक जाना पड़ा था। काशी के विद्वान की रचना को कश्मीर से प्रमाण पत्र प्राप्त होने पर स्वीकृत किया जाना एक विचित्र बात लगती

है। काशी में विद्वानों का उसी समय पर भी कमी नहीं रही होगी। कहते हैं कि मा शारदा ने नैषधीयचरित को हाथ में लेकर उसकी प्रशंसा की थी। वस्तुत मा शारदा के द्वारा नैषधीयचरित की श्रेष्ठता का सत्यापन तो एक प्रतीकात्मक कथन मात्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में प्रचलित महाकाव्य-नियमों से हटकर जो कुछ उदार मार्ग अपनाई है, काशी के पण्डितों को वह ग्राह्य नहीं थी। परन्तु कश्मीर में अभिनवगुप्त ने आनन्दवर्धन को आधार बनाकर महाकाव्यकारों को कुछ अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। और उनके प्रखर पाण्डित्य का प्रतिवाद भी सरल नहीं था। सम्भव है श्रीहर्ष ने अभिनव समर्थित नियमों का अनुसरण कर नैषधीयचरित की रचना की हो जैसा कि नैषधीय-चरित का अध्ययन करने से सत्य प्रतीत होता है और इसीलिए नैषधीयचरित की ग्राह्यता के प्रमाण-पत्र हेतु उन्हें कश्मीर जाना पड़ा हो। इस संभावना के अनु-सार अभिनवगुप्त का श्रीहर्ष से पूर्ववर्ती होना निश्चित होता है। अभिनवगुप्त का समय १० वीं शताब्दी का उत्तर भाग स्वीकार किया जाता है। अतः श्रीहर्ष का समय भी १० वीं शताब्दी के पूर्व नहीं स्वीकार किया जा सकता।

श्रीहर्ष ने खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक ग्रन्थ में व्यक्तिविवेक के रचयिता महिम भट्ट का उल्लेख किया है

दोषं व्यक्तिविवेकेऽस्य कविलोकविलोचने।
काव्यमीमांसिषु प्राप्तमहिमा महिमादत॥ खण्डन पृ० १३२७।

महिम भट्ट का समय निश्चितप्राय है। इन्हें १०२० ई० के लगभग स्थित माना गया है। व्यक्तिविवेक के टीकाकार रुय्यक का समय ११०० ई० के लगभग माना जाता है। अतः व्यक्तिविवेककार महिम भट्ट का भी ११वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में स्थित होना निश्चित हो जाता है और व्यक्तिविवेक को उद्धृत करने वाले श्रीहर्ष भी ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध भाग के पूर्ववर्ती नहीं हो सकते।

नैषधीयचरित के अन्त में श्रीहर्ष ने अपने को कान्यकुब्जेश्वर से सम्मान प्राप्त होते रहने की ओर संकेत किया है

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरा-
द्यः साक्षात् कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्॥ नै० २२-१५३।

श्रीहर्ष ने अपने इस पदप्रदाता कान्यकुब्जेश्वर का कहीं स्पष्ट नामोल्लेख नहीं किया है। १४वीं शताब्दी के जैनकवि राजशेखर सूरि के अनुसार श्रीहर्ष के आश्रयदाता कान्यकुब्जेश्वर का नाम जयन्तचन्द्र (जयचन्द्र), था तथा उन्हें कश्मीर-नरेश माधवदेव से नैषधीयचरित की प्रामाणिकता का प्रमाण-पत्र प्राप्त हुआ था

श्रीहर्षेण पण्डिता उक्तास्तिरस्या ग्रन्थमस्त्याय राज्ञे माधवदेवनाम्ने दर्शयत

श्रीजयन्तचन्द्राय च शुद्धोऽयं ग्रन्थ इति लेख प्रदत्त-इति। प्रबन्धकोश पृ० ५६।

डॉ० बूलर ने राजशेखर के उपर्युक्त सदर्भ के आधार पर नैषध का रचना काल ११६३—११७४ ई० का मध्यभाग निश्चित किया है

Sriharsa was a protege of king Jayantchandra (Jayachandra) This Jayantchandra must have ascended the throne between A D 1163 and 1177, as the last inscription of his father (Vijaychandra) is dated in the former year and the first of his own grants in the latter year Again, according to Rajsekhara, he was a contemporary of Kumarpal (A D 1143—1174) Thus Jayachandra ruled over Banaras between A D 1163 and 1194. Thus the Naisadhiyacharit must have been written between A D 1163 and 1174 i e between the earliest date on which Jaya chandra's accession to the throne may be placed and Kumarpala's death Thus the date of the composition of the Naisadha and hence the date of its author is latter half of the 12th centurty A D JBBRAS X (1871) PP 31-37

A critical study of Sriharsa's Naishadhiyacharitam P 123

परन्तु Justice K T Telang तथा F S Gtowse आदि विद्वान डॉ० बूलर के उपर्युक्त निष्कर्ष से असहमत है। इन लोगो ने श्रीहर्ष को १०वी शताब्दी से पूर्व का निर्धारित करने का प्रयास किया है। फिर भी डॉ० डी० आर० भडारकर जैसे विद्वानो ने डॉ० बूलर का समर्थन किया है

'I agree with Buhler in accepting the statement of Rajsekhara, the author of Prabandhkosa that Sriharsa wrote the Naishadhiyacharit at the bidding of Jayantchandra who can be no other than the Gahadaval King Jayachandra (A D 1172–87) I A 1913 वही पृ० १२६।

प्राचीन लेखमाला के २३वे लेख (दान-पत्र सवत् १२४३) ११८७ ई० आषाढ शुक्ल ७ रविवार के अनुसार जयन्तचन्द्र गोविन्दचन्द्र के पौत्र तथा विजयचन्द्र के पुत्र थे। इस दान-पत्र मे जयन्तचन्द्र को राजा कहा गया है। जबकि बाईसवे लेख (दान-पत्र सवत् १२२५) ११६८ ई० मे जयन्तचन्द्र को युवराज कहा गया है। इन दान-पत्रो से यह निश्चित हो जाता है कि जयन्तचन्द्र ११६८ ई० मे युवराज बन गये थे तथा ११८७ ई० तक वह राजा बन गये थे। अत यदि जयन्तचन्द्र को श्रीहर्ष का आश्रय-दाता स्वीकार कर लिया जाये तो नैषध का रचनाकाल ११८७ ई० के आस-पास ही स्वीकार करना होगा।

नैषधीयचरित को सर्वप्रथम हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्र सूरि ने अनेकार्थसंग्रह की टीका में उद्धृत किया है। हेमचन्द्र का समय १०८८ ई० से ११७२ ई० के मध्य माना जाता है। महेन्द्र सूरि के समय तक नैषधीयचरित अवश्य ही प्रसिद्ध हो गया होगा। तभी महेन्द्र सूरि ने उसे उद्धृत किया होगा। महेन्द्र सूरि ने अनेकार्थसंग्रह की टीका हेमचन्द्र के सामने अथवा उनकी मृत्यु के तत्काल बाद प्रारम्भ कर दी होगी। अतः यदि अनेकार्थसंग्रह की टीका का समय ११७५ ई० के लगभग स्वीकार कर लिया जाए तो नैषधीयचरित का रचना काल उसके पूर्व निश्चित हो जाता है।

श्रीहर्ष ने विजयप्रशस्ति नामक काव्य की भी रचना की थी। यह काव्य सम्भव है जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की प्रशंसा में लिखा गया हो तथा सम्भव है कि श्रीहर्ष को जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र का भी सम्मान प्राप्त होता रहा हो। फलस्वरूप उन्होंने उनकी प्रशंसा में विजयप्रशस्ति की रचना कर दी हो। विजयप्रशस्ति के समान ही अन्य अनेक ग्रन्थों का उल्लेख भी श्रीहर्ष ने नैषध में किया है। अतः यदि नैषध का रचना काल ११७५ ई० के आसपास स्वीकार कर लिया जाता है तथा उससे पूर्व अन्य अनेक ग्रन्थों की रचना के लिए यदि २५ वर्ष का समय भी निर्धारित कर लिया जाये तो श्रीहर्ष के साहित्यिक जीवन का आरम्भ ११५० ई० के लगभग तथा उनका जन्म ११२० ई० के लगभग निश्चित हो जाता है। क्योंकि विजयप्रशस्ति की रचना में ऐसा सोचने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती कि श्रीहर्ष के पाण्डित्य तथा रचना-कौशल ने विजयचन्द्र को भी अवश्य प्रभावित किया होगा जिनका शासन काल जयन्तचन्द्र के यौवराज्य ११६९ ई० के पूर्व से चला आ रहा था।

जीवन-वृत्त

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर तथा माता का नाम मामल्लदेवी था। नैषधीयचरित के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्रीहर्ष ने स्वयं अपने माता, पिता तथा विभिन्न ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है। कहा जाता है कि श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर को किसी पण्डित ने शास्त्रार्थ में पराजित किया था। इस जनश्रुति के अनुसार श्रीहीर भी अपने पुत्र श्रीहर्ष के समान प्रकाण्ड पण्डित रहे होंगे। श्रीहर्ष ने स्वयं अपने पिता को कविराजराजिमुकुटालंकार के रूप में स्मरण किया है—

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्। नै० १-१४५।

हम देख चुके हैं कि चण्डूपण्डित के अनुसार श्रीहीर को पराजित करने वाले पण्डित का नाम उदयन था। राजशेखर ने भी श्रीहीर की पराजय का

उल्लेख तो किया है परन्तु पराभव-कर्ता का नामोल्लेख उन्होंने नहीं किया है। राजशेखर के अनुसार शास्त्रार्थ में पराजित श्रीहीर ने मृत्यु के समय श्रीहर्ष से यह वचन ले लिया था कि वह उनके पराभव-कर्ता को शास्त्रार्थ में पराजित करेगा

तस्य राज्ञो बहवो विद्वांस । तत्रैको हीरनामा विप्र । तस्य नन्दन प्राज्ञचक्रवर्ती श्रीहर्ष । सोऽद्यापि बालावस्थ । सभाया राजकीयेनैकेन पण्डितेन वादिना हीरो राजसमक्ष जित्वा मुद्रितवदन कृत लज्जापके मग्नो वैर बभार । मृत्युकाले श्रीहर्ष बभाषे । वत्सामुकेन पण्डितेनाहमाहत्य राजदृष्टौ जित । तन्मे दु खम् । यदि सत्पुत्रोऽसि तदा त जये क्ष्मापसदसि । श्रीहर्षेणोक्तमोमिति ।

प्रबन्ध-कोष पृ० ५४-५५ ।

जनश्रुति के अनुसार श्रीहर्ष ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप पिता के पराभव-कर्ता को शास्त्रार्थ मे जीतकर पिता की पराजय का बदला चुका लिया था। परन्तु श्रीहीर के पराभव-कर्ता का नाम यदि उदयन स्वीकार कर लिया जाता है तो प्रश्न यह उठता है कि ९८५ ई० के लगभग वर्तमान उदयनाचार्य से बारहवी शताब्दी मे वर्तमान श्रीहर्ष का शास्त्रार्थ सपन्न ही कैसे हो सका ? चण्डूपण्डित के पूर्वोद्धृत विवरण मे यह स्पष्ट नही है कि श्रीहर्ष ने साक्षात्रूप से उदयन का खण्डन करने के लिए अपने मन को एकाग्र किया था, अपितु उनके शब्दों से तो यही प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने उदयन के ग्रन्थो का खण्डन करने के लिए मन को एकाग्र कर खण्डन-खण्ड-खाद्य का प्रारम्भ किया था। और खण्डन मे श्रीहर्ष ने उदयन की मान्यताओ का खण्डन किया ही है। हो सकता है कि ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे कभी युवा पण्डित श्रीहीर का प्रौढ पण्डित उदयन से शास्त्रार्थ हुआ हो और श्रीहीर पराजित हो गये हों। परन्तु अपने जीवन मे उन्होंने उदयन को पराजित कर सकने अथवा उनके ग्रन्थो का खण्डन कर सकने मे अपने को असमर्थ पाकर बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे मृत्यु-शैय्या पर लेटे हुए बालक श्रीहर्ष के सम्मुख अपनी अभिलाषा प्रकट कर दी हों तथा श्रीहर्ष ने उदयन के ग्रन्थो का खण्डन कर उसको पूर्ण कर दिया हो।

जनश्रुति के अनुसार श्रीहर्ष को नैषधीयचरित की शुद्धता का सत्यापन कराने के लिए कश्मीर जाना पडा था। राजशेखर ने इस तथ्य का भी वर्णन किया है। परन्तु यह एक विचारणीय प्रश्न है कि एक काशी के पण्डित को बारहवी शताब्दी मे अपनी रचना की प्रामाणिकता का सत्यापन कराने के लिए काशी से कश्मीर तक की इतनी लम्बी श्रम-साध्य यात्रा क्यो करनी पडी। काशी मे उस समय पारखी पण्डितो का अभाव रहा हो यह सोचा भी नहीं जा सकता। हो सकता है कि नैषधीयचरित महाकाव्य मे प्रचलित महाकाव्यो की परम्परा का पूर्ण अनुगमन न देखकर काशी के विद्वानो ने नैषधीयचरित को एक महाकाव्य के रूप

में स्वीकार करने में आनाकानी की हो। श्रीहर्ष ने स्वयं ही नैषधीयचरित को कविकुल से अदृष्ट मार्ग पर अग्रसर होने वाला महाकाव्य कहा है। यह प्रतिज्ञा उन्होंने जानबूझ कर की है। वह भी तब जबकि नैषध के कुछ भाग की वे रचना कर चुके थे तथा शेष भाग की रचना करने वाले थे

तस्यागादयमष्टमः कविकुलादृष्टाध्वपान्थे महा-
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः ॥ नै० ८-१०९।

नैषधीयचरित के अन्तिम श्लोकों से भी ऐसी झलक मिलती है कि श्रीहर्ष नैषधीयचरित के अध्येताओं के विचारों तथा उनकी समालोचनाओं से निश्चित रूप से आहत हुए थे। फलत उनके स्वाभिमानी पाण्डित्य ने एक ओर ऐसे अध्येताओं को अमहृदय करार दे दिया तो दूसरी ओर सुधी सहृदयों को नैषधीयचरित रूपी क्षीर-सागर का मन्थन कर आनन्ददायक सिद्धान्त-रूपी अमृत का आस्वादन करने की नेक सलाह भी दे दी

यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः ॥
दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्।
स परमपरः क्षीरोदन्वान् यदीयमुदीयते
मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम् ॥ नै० २२-१५०-१५१।

श्रीहर्ष की नैषधीयचरित के अन्तर्गत इसी प्रकार की अन्य गर्वोक्तियाँ भी उपलब्ध हो जाती हैं जैसे वे स्वयं का तर्क में असमश्रम (१०-१३७) तथा नवार्थ-घटनानिपुण (१६-६७), अपनी सूक्तियों को शारदीय-ज्योत्स्ना-तुल्य (१४-१०१) तथा नैषधीयचरित को कृशेतररसस्वादु (१५-९३), अन्याक्षुण्णरसप्रमेयभणिति (२०-१६२), अतिनव्य (२१-१६३) तथा शृंगारामृतशीतगु (११-१३०) आदि विशेषणों के योग्य महाकाव्य होने का दावा करते हैं। हो सकता है कि काशी के विद्वानों ने श्रीहर्ष की इन सब गर्वोक्तियों से कुढ़कर ईर्ष्यावश नैषधीयचरित को एक महाकाव्य की मान्यता प्रदान करना अस्वीकृत कर दिया हो और श्रीहर्ष को इसके लिए उन सज्जनों का दरवाजा खटखटाना पड़ा हो जो नैषध को मान्यता प्रदान करने की सार्वजनिक घोषणा कर न्याय दिला सकती थी। कश्मीरी विद्वान नैषधीयचरित की पहले भी प्रशंसा कर चुके थे

काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिर्महा-
काव्ये तद्भुवि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत् षोडश ॥ नै० १६-१३०।

कश्मीरी पण्डितों की काशी में भी प्रसिद्धि रही होगी। कदाचित् इसीलिए

नैषधीयचरित के महाकाव्यत्व की स्वीकृति हेतु या यों कहो कि अपने वैदुष्य एवं प्रतिभा पर मुहर लगवाने के लिए श्रीहर्ष ने चतुर्दश विद्याओं के मर्मज्ञ कश्मीरी पण्डितों का आश्रय ग्रहण करना उचित समझा तथा इसके लिए उन्होंने इतनी लम्बी श्रमसाध्य यात्रा की थी। नैषधीयचरित में प्रचलित महाकाव्य की सभी विशेषताओं का समावेश करते हुए भी श्रीहर्ष ने नैषध में कुछ लीक से हटकर नया प्रयोग करने का साहस किया था। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित तथ्यों को लिया जा सकता है १—विभिन्न प्रकार के बंधों तथा यमक अलंकार का नियमित संघटन न करना, २—श्लेष अलंकार का अवसरोचित आधिक्य, ३—ऐतिहासिक तथ्यों में परिवर्तन, ४—सूक्ष्मतम कल्पनाओं का आधिक्य, ५—नल के जीवन-व्यापी चरित्र की उपेक्षा तथा केवल परिणय तक की घटनाओं का पल्लवन ६—दिव्य इन्द्रादि देवताओं के चरित्र पर कटाक्ष तथा उनकी अपेक्षा अदिव्य नल के चरित्र का उत्कर्ष-विधान ७—शृंगार रस की उन्मुक्त योजना आदि। यह कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो नैषधीयचरित को अन्य प्राचीन महाकाव्यों से अलग-थलग-सा कर देती हैं। दण्डी आदि प्राचीन लक्षण-ग्रन्थकारों के महाकाव्य-लक्षण में इन विशेषताओं का भले ही स्पष्ट विधि-निषेध न हो, परन्तु प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से अनादृत यह विशेषताएं नैषधीयचरित में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इन विशेषताओं को महाकाव्य के लक्षणों में भले ही महत्त्व प्रदान न किया गया हो परन्तु ध्वन्यालोक तथा उसकी टीका लोचन दोनों में ही इन विशेषताओं को पर्याप्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। हो सकता है कि श्रीहर्ष को लोचन का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया हो जो इन विशेषताओं के बारे में ध्वन्यालोक से भी अधिक उदार प्रतीत होता है और उन्होंने ध्वन्यालोक तथा लोचन की मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही नैषधीय-चरित की रचना की हो तथा अन्त में काशी के पण्डितों द्वारा समुचित समादर न प्राप्त कर पाने के कारण उन्होंने लोचन की जन्मभूमि कश्मीर की यात्रा इस आशा से की हो कि लोचन के अनुयायी कश्मीरी पण्डित तो नैषधीयचरित को मान्यता प्रदान करेंगे ही।

श्रीहर्ष की यह यात्रा भी उनके लिए बड़ी महंगी रही। कहते हैं कि कश्मीरी पण्डितों ने भी एक विदेशी पण्डित का सम्मान करना समुचित न समझा तथा चिरकाल तक श्रीहर्ष को वहाँ राजा के समक्ष अपनी यात्रा का उद्देश्य प्रकट करने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार काव्यप्रकाश के रच-यिता मम्मट श्रीहर्ष के मामा थे। श्रीहर्ष ने जब मम्मट को नैषधीयचरित दिखाया तो उन्होंने उसे देखने के बाद कहा कि यदि उन्हें नैषध पहले देखने को मिल गया होता तो उन्हें काव्यप्रकाश के दोष प्रकरण के लिए अन्य ग्रन्थों से उदाहरणों का चयन करने के लिए श्रम नहीं करना पड़ता। यद्यपि इस घटना का कोई प्रामाणिक

आधार नहीं है और न इस जनश्रुति के आधार पर नैषधीयचरित को समस्त दोषों का उदाहरण ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। फिर भी नैषध दोषों से सर्वथा असम्पृक्त महाकाव्य हो ऐसा नहीं है। नैषध ही क्या, अन्य महाकाव्य भी दोषों से सर्वथा शून्य नहीं हैं। दोषों से काव्य की कमनीयता नष्ट नहीं हो जाती। इस विषय में तो विश्वनाथ का यह अभिमत स्वीकार कर लेना ही समीचीन प्रतीत होता है

नहि कीटानुवेधादयो रत्नस्य रत्नत्व व्याहन्तुमीशाः। सा० द० पृ० १५।

निवास-स्थान

श्रीहर्ष के निवास-स्थान के बारे में भी पर्याप्त विवाद रहा है। कुछ उन्हें बंगाल प्रान्त का मानते हैं तो कुछ कश्मीर अथवा कान्यकुब्ज प्रदेश का। यद्यपि विद्वानों ने इस विषय पर पर्याप्त गवेषणा की है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उनके मूल निवास का सही पता लगा ही लिया गया है। उन्हें कान्यकुब्जेश्वर से दो ताम्बूल तथा आसन प्राप्त होते थे। उनका काशी में निवास करना तथा अपने पिता के पराभव-कर्ता को पराजित करना एवं कश्मीर जाकर नैषधीयचरित की शुद्धता को प्रमाणित करवाना आदि घटनाओं से यह निश्चित हो जाता है कि श्रीहर्ष की कार्यस्थली मुख्यरूप से काशी तथा गौणरूप से कान्यकुब्ज एवं कश्मीर रही होगी। स्वयंवर-वर्णन में उन्होंने काशी का वर्णन जिस अनुराग से किया है तथा इन्द्र के द्वारा नल को दिए गए वरदानों में असी नदी के पार अपने नाम की एक नगरी बसने का वरदान जिस रूप में दिलाया है उससे यह स्पष्ट है कि काशी से उनका विशेष प्रेम था तथा वहाँ उन्होंने काफी समय तक अध्ययन एवं कार्य किया था। उत्तर भारत में काशी प्राचीन काल से ही विद्या का केन्द्र रही है। प्रायः सभी समीपवर्ती प्रदेशों के विद्यार्थी एवं विद्वान काशी में निवास तथा अध्ययन को गौरव प्रदान करते रहे हैं। कदाचित् श्रीहर्ष भी इसीलिए काशी की ओर आकृष्ट हुए होंगे और काशी में भी उन्होंने सर्वदा रहना पसन्द न कर काशी के निकट किसी एक ग्राम में आश्रय लिया होगा जिसे उन्होंने देवताओं का वर-प्राप्त पुर घोषित कर दिया था।

नैषधीयचरित के सोलहवें सर्ग में श्रीहर्ष ने बारात-भोज के अवसर पर जिस हास-परिहास की योजना की है उस प्रकार का हास-परिहास कान्यकुब्ज प्रदेश अर्थात् कन्नौज के आस-पास अभी तक प्रचलित है। बारात-भोज के अवसर पर गाई जाने वाली गालियाँ आज भी बड़ा पसंद की जाती हैं। बारात की ग्राम के बाहर अगवानी करना (१६-१०) तथा बारात का ५ या ६ दिन तक ठहरना (१६-११२) कान्यकुब्ज प्रदेश में आज तक प्रचलित है। इन सब बातों से ज्ञात यह होता है कि श्रीहर्ष मूलतः कान्यकुब्ज प्रदेशीय थे। परन्तु बाद में वे काशी

मे जाकर रहने लगे थे। अपने आश्रय-दाता को कान्यकुब्जेश्वर कहना भी विशेष-प्रयोजन-गर्भित प्रतीत होता है। तत्कालीन कान्यकुब्जेश्वर केवल कान्यकुब्ज का ही नहीं काशी का भी शासक था। श्रीहर्ष का कान्यकुब्ज प्रदेश से अनुराग होने के कारण ही कदाचित् श्रीहर्ष ने अपने आश्रयदाता को कान्यकुब्जेश्वर कहा है काशीश्वर या काशी-नरेश नहीं। कान्यकुब्जेश्वर से श्रीहर्ष को ताम्बूलद्वय तथा आसन की प्राप्ति होती थी। यह आसन तथा ताम्बूलद्वय श्रीहर्ष को कान्यकुब्ज में प्राप्त होते थे या काशी मे ? यह विचारणीय है। वस्तुत ताम्बूलद्वय शब्द का सम्बन्ध काशी से अधिक है कान्यकुब्ज से कम। बनारसी पान का जोड़ा प्रसिद्ध है। शौकीन लोग आज भी बनारसी पान का जोड़ा ही पसन्द करते है। सभव है काशी मे राजसभा में जाने पर श्रीहर्ष को सम्मान स्वरूप आसन तथा ताम्बूलद्वय समर्पित किया जाता हो। परन्तु अपने इस कद्रदान को वे प्रादेशिक अनुराग के कारण कान्यकुब्जेश्वर नाम से ही अभिहित करते हो। डा० चंडिका प्रसाद शुक्ल ने भी श्रीहर्ष के बगाल प्रान्त में निवास करने की धारणा का खण्डन करते हुए कन्नौज के निकट उनका जन्म-स्थान होने का उल्लेख किया है। नैषध-परिशीलन पृ १६।

व्यक्तित्व

श्रीहर्ष एक प्रकाण्ड पण्डित, दार्शनिक एव प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। नैषधीयचरित महाकाव्य तथा खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक ग्रन्थ उनकी प्रतिभा-शालिता तथा विद्वत्ता के जीवन्त उदाहरण है। उनके चरित्र में वे सब महान गुण सन्निविष्ट थे जो किसी एक दिव्यशक्ति सपन्न महापुरुष मे होने चाहिए। *चिन्तामणि मन्त्र उन्हे सिद्ध था। नल का प्रतिदिन नित्यनियम के प्रति जागरूक* रहना तथा उसका सूर्य, त्र्यम्बक तथा विष्णु का विधिविधान पूर्वक पूजन कर विष्णु के विभिन्न अवतारो की स्तुति करते हुए आत्म-विभोर हो जाना श्रीहर्ष की आस्थाओ का द्योतक है। दैवी शक्तियो पर उन्हे प्रगाढ विश्वास था (१४-२)। उनका दृष्टिकोण भाग्यवादी था (१-१२०)। परन्तु उनका आचरण आदर्शवादी यथार्थ पर आधारित था। धर्म के मूल तत्वो के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा थी। इसीलिए एक ओर उन्होंने यदि यथावसर धृति, क्षमा, दम अस्तेय शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध तथा अहिंसादि की प्रशसा की है तो दूसरी ओर नल के आचरण मे उनका समावेश प्रदर्शित किया है। धर्म, अर्थ तथा काम का सामजस्य उन्हे अभीष्ट था। उनका नल-चरित्र इसका ज्वलन्त उदाहरण है। फिर भी मानव-जीवन का चरम पुरुषार्थ वे मोक्ष को ही मानते थे।

इन सब महान गुणो के साथ-साथ श्रीहर्ष मानव-जीवन को व्यावहारिक धरातल पर परखने के प्रबल हिमायती थे। कोई कितना भी महान क्यो न हो परन्तु नीचता पर उतर आने पर भी उसे वरण देना श्रीहर्ष को पसन्द न था। वे

'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' के प्रबल समर्थक थे। इसीलिए उन्होंने नल के द्वारा इन्द्रादि देवताओं की भर्त्सना कराई है। नल से देवताओं की अधिक गर्हणा कराने में नल के चरित्र पर कुछ आक्षेप किए जा सकते थे। अतएव इस कार्य के लिए उन्होंने देवकोटि के ही एक अन्य पात्र कलि को चुन लिया। यह पात्र देवताओं के लिए कुछ भी कह सुन सकता था और उस पर किसी को कोई आपत्ति करने के लिए गुंजाइश भी नहीं थी, क्योंकि वह कलि जो था।

वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की भावना तथा देश-प्रेम श्रीहर्ष की रग-रग में समाया हुआ था। श्रीहर्ष ने दमयन्ती के द्वारा अपनी सखियों को उसके निजी मामले में दखलन्दाजी करने पर जो फटकार दिलाई है वह श्रीहर्ष के स्वातन्त्र्य प्रेम का जीवन्त उदाहरण है। इसी प्रकार उनका देश-प्रेम दमयन्ती के मुख से उस समय फूटकर प्रवाहित होने लगता है जब इन्द्र-दूती दमयन्ती को स्वर्ग का प्रलोभन देती है परन्तु दमयन्ती जन्म-भूमि पर स्वर्ग को भी निछावर कर देती है।

श्रीहर्ष स्वाभिमानी भी थे। नैषधीयचरित से विवाद करने वालों ने उनके स्वाभिमान को ठोकर लगाकर जगाने का दुःसाहस किया था। परन्तु उन्होंने उनकी कोई भी परवाह नहीं की। साथ ही वे दूसरों के गुणों के प्रशंसक भी थे (८-८२)। यद्यपि वे कट्टर सनातनी आस्था वाले व्यक्ति थे, फिर भी जान तथा आदत से विपक्ष रहना उनको पसन्द न था (६-३६)।

रचनाएं

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में अपनी निम्नलिखित अन्य रचनाओं का उल्लेख किया है— १ स्थैर्यविचारणप्रकरण (४-१२३), २ श्रीविजय-प्रशस्ति (५-१३८), ३ खण्डन-खण्ड-खाद्य (६-११३), ४ गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति (७-११०), ५ अर्णव-वर्णन (९-१६०), ६ छन्दप्रशस्ति (१७-२२२), ७ शिव-शक्तिसिद्धि (१८-१५४), ८ नवसाहसाङ्कचरित चम्पू (२२-१४९)। इन आठ ग्रन्थों के अतिरिक्त खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपने ईश्वरा-भिसन्धि नामक एक अन्य ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों में नैषधीय-चरित नामक महाकाव्य तथा खण्डन खण्ड खाद्य नामक दार्शनिक ग्रन्थ का प्रकाशन हो चुका है। राजशेखर के अनुसार श्रीहर्ष ने सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण किया था। परन्तु वे आज अनुपलब्ध हैं।

बहुज्ञता

श्रीहर्ष को भारतीय ज्ञानराशि का सम्भार भाण्डागार यदि कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय ज्ञान की सभी विधाओं का यथावसर उपयोग किया है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित के दशम सर्ग में

सरस्वती के जिन अंगोपागों का वर्णन किया है वे देवी सरस्वती के स्वरूप को रूपायित करने की अपेक्षा भारतीय ज्ञान-राशि की विभिन्न शाखाओं के सूचक एवं श्रीहर्ष की ज्ञानराशि के द्योतक अधिक है। यदि नैषधीयचरित महाकाव्य को श्रीहर्ष की सरस्वती का श्रीविग्रह मान लिया जाये तो उनके द्वारा वर्णित सरस्वती के अंगोपांग हमें वहाँ समुचित स्थानों पर विराजमान मिल जाएंगे।

दार्शनिक ज्ञान

श्रीहर्ष भारतीय दर्शनों के उद्भट विद्वान थे। खण्डन-खण्ड-खाद्य नामक उनका ग्रन्थ दार्शनिक-जगत् में अपना सानी नहीं रखता। नैषधीयचरित में भी भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक सभी दार्शनिक विचारधाराओं का श्रीहर्ष ने अनेक स्थानों पर यथावसर प्रयोग किया है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध, जैन तथा चार्वाक आदि दर्शनों की विभिन्न मान्यताओं को श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित में आत्मसात् कर विभिन्न भावों की व्यंजना की है।

अमृत-भोजी देवताओं के दर्शन में नल की दृष्टि अमृत में निमज्जन करने लगती है

नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः सत्यमन्नजनितो जनदेहः।
वीक्ष्य वः खलु तनूममृताद्रां दृङ्निमज्जनमुपैति सुधायाम्॥ नै० ५.९४।

सांख्यदर्शन का सत्कार्यवाद यहाँ पर नलगत हर्ष का हेतु बन गया है।

योगदर्शन के द्वारा प्रतिपादित सम्प्रज्ञात समाधि का अभ्यास करना नल के नित्य-नियम का अंग था

इत्युदीर्य स हरिं प्रति सम्प्रज्ञातवासिततमः समपादि।
भावनाबलविलोकितविष्णौ प्रीतिभक्तिसदृशानि चरिष्णु॥ नै० २१-११८।

न्याय-सूत्र के 'उत्पत्ति धर्मकस्य द्रव्यस्य गुणा कारणात् उत्पद्यन्ते' (न्यायसूत्र ३-१-२५) अर्थात् 'कारणगुणा कार्यगुणानारभन्ते' इस सिद्धान्त का साक्षात् निदर्शन दमयन्ती स्वयं थी

कलनं त्रिजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमकारितागुणः।
स तदुच्चकुचौ भवन्प्रभावरचक्रभ्रममातनोति यत्॥ नै० २-३२।

नल-दमयन्ती के मनरूपी परमाणुओं के संयोग से कामदेव की रचना का कार्य वैशेषिक दर्शन के सृष्ट्युत्पत्ति सिद्धान्त के आधार पर ही सम्भव माना गया है

अन्योन्यसंगमवशादधुना विभाता
तस्यापि तेऽपि मनसी विकसद्विलासे।
स्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य तनुं प्रवृत्त-
मादाविव द्व्यणुककृत्परमाणुयुग्मम्॥ नै० ३-१२५।

मीमांसकों के स्वतःप्रामाण्यवाद के सहारे पर दमयन्ती हंस को अपना दूतकर्म करने के लिए विवश कर देती है

अथवा भवतः प्रवर्तना न कथं पिष्टमियं पिनष्टि नः।

स्वत एव सतां परार्थता ग्रहणानां हि यथा यथार्थता॥ नै० २-६१।

इसी प्रकार वेदान्तियों के ब्रह्मसाक्षात्कारादिक उपाय श्रीहर्ष के प्रिय विषय रहे हैं

नेत्राणि वैदर्भसुतासखीनां विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि।

प्रापुस्तमेकं निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम्॥ नै० ३-३।

स व्यतीत्य वियदन्तरगाधं नाकनायकनिकेतनमाप।

सम्प्रतीय भवसिन्धुमनादिं ब्रह्म शर्मभरचारु यतीव॥ नै० ५-८।

वेदों को प्रमाण मानने वाले उपर्युक्त दर्शनों के समान ही वेदों को प्रमाण न मानने वाले बौद्ध, जैन एवं चार्वाक दर्शनों का भी श्रीहर्ष ने नैषध में उपयोग किया है। श्रीहर्ष की सरस्वती के उदर की कल्पना बौद्धों के शून्यात्मवाद के आश्रय से ही सम्पन्न हो सकी है

या सोमसिद्धान्तमयाननेव शून्यात्मतावादमयोदरेव।

विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव साकारतासिद्धिमयाखिलेव॥ नै० १०-८७।

इसी प्रकार जैनियों के त्रिरत्न के प्रति दमयन्ती की अटूट श्रद्धा थी

स्वर्वेणि रत्नत्रितयं जिनेन यः स धर्मचिन्तामणिरुज्झितो यया।

कपालिकोपानलभस्मनः कृते तदेव भस्म स्वकुले स्तृतं तया॥ नै० ९-७१।

इसी प्रकार चार्वाक दर्शन की विभिन्न मान्यताओं का श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित के सप्तदश सर्ग में यथोचित सन्निवेश किया है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' यह चार्वाक दर्शन का सर्वविदित सिद्धान्त है। कवि का चारण इस सिद्धान्त के आश्रय से जिस कर्तव्य कार्य के लिए लोगों को प्रेरित करता है, वह अनूठा है

क्व श्रम ! क्रियतां प्राज्ञ ! प्रियाप्रीतौ परिश्रमः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ नै० १७-६९।

इसी प्रकार नैषधीयचरित के अन्य अनेक सदंश श्रीहर्ष के दार्शनिक ज्ञान के परिचायक हैं।

ऐतिहासिक तथा पौराणिक ज्ञान

श्रीहर्ष ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथानकों का प्रचुर ज्ञान रखते थे। नैषधीयचरित में उन्होंने रामायण, महाभारत तथा विभिन्न पुराणों के अनेकों आख्यानों का आश्रय लेकर नैषधीयचरित के कथानक की श्रीवृद्धि की है। रामायण के विभिन्न कथानकों जैसे मैनाक पर्वत का समुद्रवास (१-११६) शम्बूकवध

(२१-७३), राम का सीता एवं लक्ष्मण से वियुक्त होना (२१-७५), त्रिशंकु का स्वर्गारोहण (२-१०२), वाल्मीकि के मुख से आदि श्लोक की उत्पत्ति (१०-५), गौतम का इन्द्र तथा अपनी पत्नी अहल्या को शाप देना (१७-४३) एवं मेघनाद के द्वारा माया की सीता का वध किया जाना (१९-८) आदि का नैषधीयचरित में समावेश है। इसी प्रकार महाभारत के अनेकों कथानक जैसे प्रलयकाल में मार्कण्डेय का विष्णु के उदर में प्रविष्ट हो जाना (२-६१), अगस्त्य का समुद्रपान (४-५१), जरासन्ध की उत्पत्ति (४-६६), शंकर जी के द्वारा कौरव-सेना का विनाश (१७ ३४), वेदव्यास के द्वारा भाई की पत्नियों में पुत्र-उत्पत्ति (१७-६६), व्यासोत्पत्ति (१८-२५), इन्द्र का कर्ण से कवच-कुण्डल मांगना (१९-४३), परशुराम के द्वारा क्षत्रिय-संहार (२१-६५), गरुड तथा देवताओं का युद्ध (२१-१६०) तथा शश-लिखित आख्यान (१९-५६) आदि नैषध में उपनिबद्ध है।

पौराणिक कथाओं में हरिवंश, स्कन्द, मत्स्य विष्णु, श्रीमद्भागवत, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, पद्म तथा ब्रह्माण्ड आदि पुराणों के आख्यानों का नैषध में प्रचुर प्रयोग किया गया है। जैसे हरिवंश पुराण की बाणासुर-पुरी एवं उषा तथा अनिरुद्ध का अनुराग (१-३२), अन्धकासुरवध (४-६७), बलराम के द्वारा यमुनाकर्षण (१४-३१), पुरूरवा की उत्पत्ति तथा उर्वशी का प्रेम (१५-८३) एवं दत्तात्रेय अवतार (२१-८३) आदि कथाएं वर्णित है, स्कन्द पुराण की शंकर जी के पूजन में केतकी का बहिष्कार (१-७८), स्वामिकार्तिकेय का ब्रह्मचर्य (१८-२७), अगस्त्य के द्वारा विन्ध्य पर्वत का झुकाया जाना (५-१३०), द्वादश केशव मूर्तियां (२१-८१) शिव का हरिहर रूप धारण (२१-१०२), चन्द्रमा की सागर से उत्पत्ति (४-५०) आदि कथाएं आई हैं, मत्स्य पुराण के मदन-दहन (१-८७), मत्स्यावतार (३-५७), पृथ्वीदोहन (११-१०), त्रिपुरदाह (१-१७), ब्रह्मा का अपनी कन्या से दुर्वृत्त (१७-१२२), नरसिंह वध वर्णन (२१ १५३), शुक्र के द्वारा कच को संजीवनी विद्या का दान (१९-१५) आदि आख्यान अंकित हैं। उपर्युक्त तीन पुराणों के अतिरिक्त अन्य पुराणों के कथानक अत्यल्प मात्रा में अंकित किए गये हैं।

शेष आख्यानकों में विष्णुपुराण के आख्यान अधिक हैं। इस पुराण के पाताल लोक की रमणीयता (२-८४), सप्तद्वीप-वर्णन (११ व १२ सर्ग), दुर्वासा का इन्द्र को शाप (१६-३१), गुरुपत्नी में चन्द्रमा की आसक्ति (१७-४४) विष्णु के श्वेत तथा कृष्ण केश स्वरूप बलराम एवं कृष्ण की उत्पत्ति (२१-८४) आदि आख्यान आये हैं, श्रीमद्भागवत के अनिरुद्ध जन्म (१-४८), वामन अवतार (१-७०) एवं दधीचि का अस्थिदान (५-१११) आदि कथानक आये हैं, भविष्य पुराण के सूर्य-संतानों का वर्णन (५-१३६), तथा सूर्यभक्त साम्ब का कथानक (२१-३२), ब्रह्म-वैवर्त के अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति (१३-१०), पद्म पुराण के पारिजात हरण (१०-२४) तथा चन्द्रमा की अत्रि से उत्पत्ति (२२-७३) तथा ब्रह्माण्ड पुराण

के मन्देह नामक राक्षस पर सूर्य की विजय (१६-८१) तथा शंकर जी का देवदारुवन में विलास (१८-२४) आदि आख्यानों का भी नैषध में सन्निवेश है। उपर्युक्त कथानकों का निर्दिष्ट पुराणों से भिन्न पुराणों में भी उल्लेख प्राप्त हो जाता है।

इतर-विषय ज्ञान

दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक ज्ञान के समान ही श्रीहर्ष की सर्वतोमुखी प्रतिभा में तत्कालीन बहुविध ज्ञानराशि समाहित हो गई थी। श्रुति, स्मृति, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, काव्य-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, काम-शास्त्र, सामुद्रिक-शास्त्र, तौर्यत्रिक (नृत्य गीत, वाद्य), मन्त्र, तन्त्र, राजनीति, शरीर-मण्डन, माणिक्य-विज्ञान, अश्व विद्या, शकुनि-ज्ञान, जलचर-विज्ञान, शिल्प, शकुन पात्र-शास्त्र आदि अनेक उपयोगी विषयों में श्रीहर्ष की पैनी बुद्धि ने अवगाहन किया था। फलतः इन सभी विषयों की नैषधीयचरित में यत्र-तत्र चर्चा तथा उनकी सूक्ष्म विशेषताओं का अंकन कर श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित को भारतीय ज्ञान-राशि का कोषागार बना दिया है।

शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ श्रीहर्ष का व्यावहारिक जगत् से भी सीधा सम्पर्क था। लोक-चित्रण में वे उतने ही कुशल हैं जितने कि अन्य विषयों में। नैषधीयचरित में उन्होंने तत्कालीन रीति-रिवाजों का विशद अंकन किया है।

श्रीहर्ष की बहुज्ञता की ओर संकेत करते हुए श्री सुशील कुमार डे महोदय कहते हैं

"It should be recognised at once that the N C is not only a learned poem, but is in many ways a repository of traditional learning, and should, therefore, be approached with the full equipment of such learning It is also a treasure house of literary dexterity and involves for its appreciation an aptitude in this direction History of Sanskrit Literature P 329-330

श्रीहर्ष की बहुज्ञता अपार थी। उनकी रचनाओं में उनका ज्ञान अटता-सा नहीं प्रतीत होता। दार्शनिक ज्ञान तथा पौराणिक आख्यानों के तो वे भण्डार ही थे। श्रीकृष्णमाचार्यर का इस विषय में यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है

"समस्त पौराणिक उपाख्यान उनकी उंगलियों पर है। अलंकार शास्त्र पर मानो वे सवार हैं। उनके वर्णन के प्रवाह का अन्त नहीं दीखता।"

संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ पृ० १७३।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

१ अभिनवगुप्त — नाट्य शास्त्र की अभिनवभारती व्याख्या—गायकवाड संस्करण।
ध्वन्यालोक की लोचन व्याख्या—डॉ० राम सागर त्रिपाठी कृत तारावती हिन्दी व्याख्या युक्त—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

२ अप्पय दीक्षित — चित्रमीमांसा—का० म० वि० विद्यालय।

३ डॉ० ए० एन० जानी — ए क्रिटिकल स्टडी आफ श्रीहर्षाज नैषधीयचरितम्।

४ आनन्दवर्धन — ध्वन्यालोक—दीधिति तथा भाषानुवाद सहित—चौखम्बा प्रकाशन।

५ आचार्य विश्वेश्वर — हिन्दी ध्वन्यालोक—दिल्ली विश्व विद्यालय।
हिन्दी अभिनव भारती—दि०वि० विद्यालय।
काव्य प्रकाश—हिन्दी टीका।

६ डॉ०आनन्द प्रकाश दीक्षित — रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण।

७ डॉ० इन्द्रपाल सिंह — शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन।

८ कालिदास — मेघदूत।
अभिज्ञानशाकुन्तल।

९ कीथ — संस्कृत साहित्य का इतिहास—अनुवादक डॉ० मंगलदेव शास्त्री।

१० कुन्तक — हिन्दी वक्रोक्तिजीवित—अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर दिल्ली वि० विद्यालय प्रकाशन।

११ डॉ०चंडिका प्रसाद शुक्ल — नैषध-परिशीलन।
नैषधीयचरित—हिन्दी अनुवाद।

१२ जायसी — पद्मावत।

१३ धनंजय — दशरूपक-चन्द्रकला व्याख्या, चौखम्बा प्रकाशन।
नाट्य-शास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक—ह० प्र० द्विवेदी तथा पृ० ना० द्विवेदी।

१४ डॉ० नगेन्द्र — रस-सिद्धान्त।
भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका।

१५	पण्डितराज जगन्नाथ	रसगंगाधर—बदरीनाथ झा रचित सं० व्याख्या तथा हि० व्याख्या सहित—चौखम्बा प्रकाशन। रसगंगाधर—मर्मप्रकाश तथा मधुसूदनी टीका सहित—हि० वि० विद्यालय, काशी।
१६	डा० प्रेम स्वरूप गुप्त	*रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन।*
१७	पी०वी० काणे	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास।
१८	डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य में हास्य रस।
१९	भरत मुनि	नाट्य-शास्त्र—अभिनवभारती व्याख्या सहित, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज—भाग १-३।
२०	भामह	काव्यालंकार—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।
२१	डॉ० भोलाशंकर व्यास	ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त।
२२	मम्मट	काव्य प्रकाश—वामनाचार्य कृत बालबोधिनी टीका सहित—भ० ओ० रि० इ० पूना। काव्य प्रकाश—डॉ० सत्यव्रत कृत हिन्दी टीका। काव्य प्रकाश—प्रभा हिन्दी टीका।
२३	डा० रघुवंश	भारत का नाट्य-शास्त्र—भाग-१। प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास।
२४	रत्नाकर-जगन्नाथ	उद्धवशतक।
२५	डॉ० राकेश गुप्त	साइकालोजिकल स्टडीज इन रस।
२६	रामचन्द्र शुक्ल	रसमीमांसा—काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
२७	वात्स्यायन	काम-सूत्र—जयमंगला व्या०—चौखम्बा प्रकाशन। काम-सूत्र—माधवाचार्य कृत हिंदी टीका सहित—लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
२८	विद्यानाथ	प्रतापरुद्रीयम्—बालमनोरमा सीरीज—३।
२९	विश्वनाथ	साहित्यदर्पण—मोतीलाल बनारसी दास।
३०	व्यास	महाभारत—भ० ओ० रि० इस्टीट्यूट, पूना।
३१	श्रीहर्ष	नैषधीयचरित—नारायण कृत प्रकाश व्याख्या। नैषधीयचरित—मल्लिनाथ कृत जीवातु टीका। नैषधीयचरित आफ श्रीहर्ष—कृष्णकांत हान्दीकी। नैषधीयचरित—ऋ० ना० भट्ट कृत हिन्दी अनुवाद।
३२	एस०एन० दास गुप्ता	हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—
३३	सूरदास	सूरपदावली।